नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरुभ्यो नमः

सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

भाग

07



आगम - ०४

'समवाय' मूलं एवं वृत्तिः

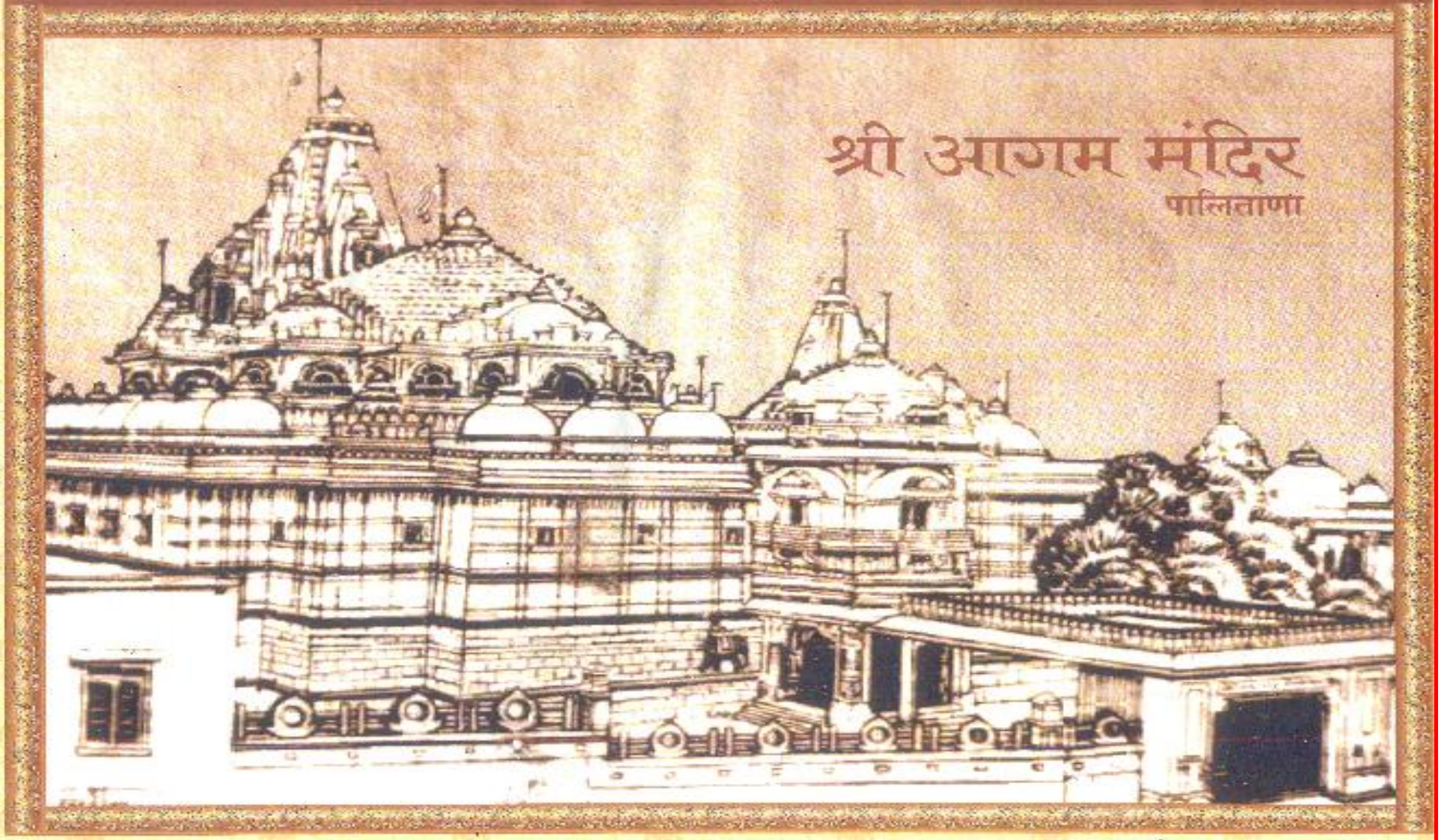
मूल संशोधक :- पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

अभिनव-संकलनकर्ता :- आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी [M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

पूज्य शासनप्रभावक आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से

'वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था' पालिताणा

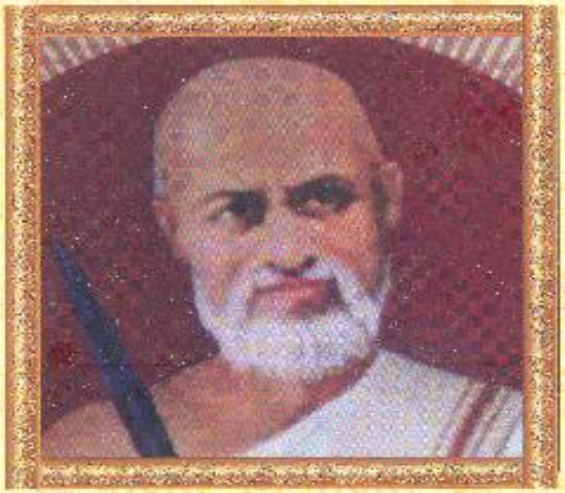
ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता



नमो नमो निम्मलदंसणस्स

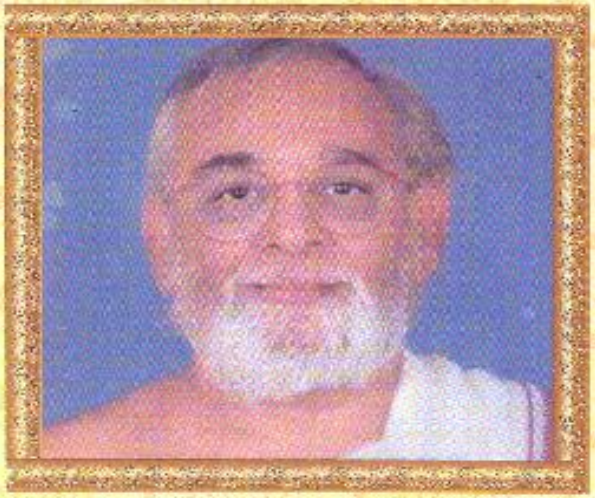
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

अभिनव-संकलनकर्ता



आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदावाद Mo 9825598855 / 9825306275



आगम

वाचना शताब्दी वर्ष

[भाग-७] श्री समवायाङ्गसूत्रम्

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य श्रीआनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

“समवाय” मूलं एवं वृत्ति:

[मूलं एवं अभयदेवसूरि रचित वृत्ति:]

[आद्य संपादक: - पूज्य आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागर-सूरीश्वरजी म॰ सा॰]

(किञ्चित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

पुन: संकलनकर्ता→ मुनि दीपरत्नसागर (M.Com., M.Ed., Ph.D.श्रुतमहर्षि)

28/07/2017, शुक्रवार, २०७३ श्रावण शुक्ल ५

‘सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि’ श्रेणि भाग-६

श्री आगमोद्धारक-वाचना-शताब्दी-वर्ष-निमित्त ‘आगम-वृत्ति-मुद्रण-प्रोजेक्ट’

सामाचारी-संरक्षक, ज्ञानधनी, आगम-संशोधक, तीव्र-मेधावी, समाधिमृत्यु-प्राप्त, बहुमुखीप्रतिभाधारक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

◆ जिन्होने शुद्ध-श्रद्धा, सम्यक्-श्रुत आराधना, यथाख्यातचारित्र के प्रति गति और अंत समय देह-ममत्व के त्याग के द्वारा कायोत्सर्ग नामक अभ्यंतर-तप कि मिशाल कायम कि है ऐसे बहुश्रुत आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी महाराज का परिचय कराना मेरे लिए नामुमकिन है, फ़िर भी गुरुभक्ति बुद्धि से श्रद्धांजली स्वरुप एक मामुली सी झलक पैस करने का यह प्रयास मात्र है |

◆ चारित्र-ग्रहण के बाद अल्प कालमे जो अपने गुरुदेव की छत्रछाया से दूर हो गये, तो भी गुरुदेव के स्वर्ग-गमन को सिर्फ़ कर्मो का प्रभाव मानकर अपने संयम के लक्ष्य प्रति स्थिर रहते हुए अकेले ज्ञान-मार्ग कि साधना के पथ पर चले | पढाई के लिए ही कितने महिनो तक रोज एकासणा तप के साथ बारह किल्लोमिटर पैदल विहार भी किया | लेकिन अपने मंझिल पे डटे रहे, और परिणाम स्वरुप संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का, प्राचीन लिपिओ का, व्याकरण-न्याय-साहित्य आदि का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया | जैन आगमशास्त्रो के समुद्र को भी पार कर गए|

◆ एक अकेला आदमी भी क्या नहीं कर शकता? इस प्रश्न का उत्तर हमें इस महापुरुष के जीवन और कवन से मिल गया, जब वे चल पड़े देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के स्थापित पथ पर. बिना किसी सहाय लिए हुए सिर्फ अकेले ही "जैन-आगम-शास्त्रो" को दीर्घजीवी बनाने के लिए अनेक हस्तप्रतो से शुद्ध-पाठ तैयार किये | दो वैकल्पिक आगम, कल्पसूत्र और निर्युक्तिओ को जोड़कर ४५ आगम-शास्त्रो को संशोधित कर के संपादित किया | फिर पालीताणामें आगम मंदिर बनवाकर आरस-पत्थर के ऊपर ये सभी आगम-साहित्य को कंडारा, सूरतमें ताम्रपत्र पर भी अंकित करवाए और "आगम मंजूषा" नाम से मुद्रण भी करवा के बड़ी बड़ी पेटीमें रखवा के गाँव गाँव भेज दिए | वर्तमानकालमे सर्व प्रथमबार ऐसा कार्य हुआ |

◆ सिर्फ मूल आगम के कार्य से ही उन के कदम रुके नही थे, उन्होंने आगमो की वृत्ति, चूर्णि, निर्युक्ति, अवचूरी, संस्कृत-छाया आदि का भी संशोधन-सम्पादन किया | उपयोगी विषयो के लिए उन्होंने एक लाख श्लोक प्रमाण संस्कृत-प्राकृत नए ग्रंथो की रचना भी की | कितने ही ग्रंथो की प्रस्तावना भी लिखी | ये सम्यक्-श्रुत मुद्रित करवाने के लिए आगमोदय समिति, देवचंद लालभाई इत्यादि विभिन्न संस्था की स्थापना भी की |

◆ ज्ञानमार्ग के अलावा सम्मेतशिखर, अंतरीक्षजी, केशरियाजी आदि तीर्थरक्षा कर के सम्यक-दर्शन-आराधना का परिचय भी दिया | राजाओं को प्रतिबोध कर के और वाचनाओ द्वारा अपनी प्रवचन-प्रभावकता भी उजागर करवाई | बालदिक्षा, देवद्रव्य-संरक्षण, तिथि-प्रश्न इत्यादि विषयोमे सत्य-पक्षमें अंत तक दृढ़ रहे | जैनशासन के लिए जब जरुरत पड़ी तब अदालती कारवाईंओ का सामना भी बड़ी निडरता से किया था |

◆ सागरानंदजी के नाम से मशहूर हो चुके पूज्य आनंदसागरसूरीश्वरजीने अपने परिवार स्वरुप ७०० साधू-साध्वीजी भी शासन को भेट किये |

...ये थे हमारे गुरुदेव "सागरजी"... ***.....मुनि दीपरत्नसागर...***

संयमैकलक्षी, उपधान-तप-प्रेरक, चारित्र-मार्ग-रागी, प्रवचन-पटु, सुपरिवार-युक्त

पूज्य गच्छाधिपतिआचार्यदेव श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी महाराज साहेब

*** परमपूज्य आचार्यश्री आनंदसागरसूरीश्वरजी के पाट-परंपरामे हुए तिसरे गच्छाधिपति थे पूज्य आचार्य श्री देवेन्द्रसागरसूरीश्वरजी, जो एक पून्यवान् आत्मा थे, दीक्षा ग्रहण के बाद अल्पकालमे ही एक शिष्य के गुरु बन गये | फ़िर क्या ! शिष्यो कि संख्या बढती चली, बढ़ते हुए पुन्य के साथ-साथ वे आखिर 'गच्छाधिपति' पद पे आरूढ़ हो गए | इस महात्मा का पुन्य सिर्फ शिष्यों तक सिमित नही था, वे जहा कहीं भी 'उपधान-तप' की प्रेरणा करते थे, तुरंत ही वहां 'उपधान' हो जाते थे | प्रवचनपटुता एवं पर्षदापुन्य के कारण उन के उपदेश-प्राप्त बहोत आत्माओने संयम-मार्ग का स्वीकार किया | खुद भी संयमैकलक्षी होने के कारण चारित्रमार्ग के रागी तो थे ही, साथसाथ ज्ञानमार्ग का स्पर्श भी उन का निरंतर रहेता था | आप कभी भी दुपहर को चले जाइए, वे खुद अकेले या शिष्य-परिवार के साथ कोई भी ग्रन्थ के अध्ययन-अध्यापनमें रत दिखाई देंगे |

*** ये तो हमने उनके जीवन के दो-तीन पहेलु दिखाए | एक और भी अनुसरणीय बात उन के जीवनमें देखने को मिली थी- 'आराधना-प्रेम'. कैसी भी शारीरिक स्थिति हो, मगर उन्होंने दोनों शाश्वती ओलीजी, [पोष}दशमी, शुक्ल पंचमी, त्रिकाल देववंदन, पर्व या पर्वतिथि के देववंदन आदि आराधना कभी नहीं छोड़ी | आखरी सालोमें जब उन को एहसास हो गया की अब 'अंतिम-आराधना' का अवसर नजदीक है, तब उन के मुहमें एक ही रटण बारबार चालु हो गया- "*अरिहंतनुं शरण, सिद्धनुं शरण, साधुनुं शरण, केवली भगवंते भाखेला धर्मनुं शरण* " इसी चार शरणो के रटण के साथ ही वे समाधि-मृत्यु-रूप सम्यक् निद्रा को प्राप्त हुए थे | ऐसे महान् सूरिवर को भावबरी वंदना |

*** मुनि दीपरत्नसागर...

◆◆◆ श्री वर्धमान जैन आगम मंदिर संस्था, पालिताणा ◆◆◆

पूज्यपाद आनंदसागर-सूरीश्वरजी की बौद्धिक-प्रतिभा का मूर्तिमंत स्वरुप ऐसी इस संस्था की स्थापना विक्रम-संवत १९९९ मे महा-वद ५ को हुइ| *पूज्य आचार्य हर्षसागरसूरिजी की प्रेरणा से* जिन की तरफ़ से इस *सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि* के लिए संपूर्ण द्रव्य-सहाय की प्राप्ति हुइ |

शिल्प-स्थापत्य, शिलोत्कीर्ण आगम और समवसरण स्थित नयनरम्य ४५ चौमुख जिन-प्रतिमाजी से सुशोभित ऐसा ये 'आगममंदिर' है, जो शत्रुंजय-गिरिराज कि तलेटीमे स्थित है | वर्तमान २४ जिनवर, २० विहरमान जिनवर और १ शाश्वत मिलाकर ४५ चौमुखजी यहा बिराजमान है | जहां ४० समवसरण की रचना मेरु पर्वत के तिनो काण्ड के वर्णो के अनुसार चार अलग-अलग रंगो के आरस-पत्थर से बना है, देवो द्वारा रचित समवसरण के शास्त्र वर्णन-अनुसार आगम-मंदिर कि समवसरण का स्थापत्य है | ऐसी अनेक विशेषता से युक्त ये आगममंदिर है |

**** मुनि दीपरत्नसागर...*

'सागर-समुदाय-एकता-संरक्षक, तीर्थ-उद्धार-कार्य-प्रवृत्त, गुणानुरागी'

इस "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' श्रेणि भाग १ से ४० के संपूर्ण अनुदान के प्रेरणादाता

पूज्य शासनप्रभावक आचार्य श्री हर्षसागरसूरिजी महाराज साहेब

पूज्यपाद स्व॰ गच्छाधिपति देवेन्द्रसागर-सूरीश्वरजी के विनयी शिष्य एवं दो गच्छाधिपतिओ के मुख्य सहायक के रुपमे 'सागर समुदाय' के सुचारु संचालक पूज्य हर्षसागरसूरिजी, जिन की प्रेरणा से ये "सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि" के मुद्रण के लिए संपूर्ण द्रव्यराशि प्राप्त हुई , उनका अत्यल्प परिचय यहां करेंगे| समुदाय-एकता के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते हुए ये महात्मा *समुदाय के साधु-साध्वीजी* की आवश्यकताओकी पूर्ती के लिए भी प्रवृत्त रहेते है, प्राचीन-अर्वाचीन तीर्थो के जीर्णोद्धार एवं विकाश के लिए भी उत्साहित रहेते है, ज्ञान-क्षेत्र अछूता न रहे इसीलिए अनुमोदना, अनुदान एवं समय मिलने पर शास्त्र-वांचनमें भी रूचि रखते है | समुदाय के जरूरतमंद साध्वीजी भगवंतो के आवास का विषय हो या साध्वीजी के विहारमें मजदूर का वेतन चुकाना हो, ऐसे छोटे-छोटे कार्यो के प्रति भी उन का लक्ष्य रहेता है | दर्शन-शुद्धि के लिए जब उन्होंने समग्र भारतवर्ष के १०० साल तक के पुराने जिनालयो में १८ अभिषेक की प्रेरणा की, उस वक्त लगभग सभी अभिषेक-सामग्री की द्रव्य-शुद्धि का ख़याल रखते हुए अपनी मेधावी बुद्धि का परिचय दिया था, साथमे अनुकंपा भाव से पुजारी या विधि करानेवाले को यत्किंचित् बहुमान प्रगट करते हुए कुछ धन-राशि प्रदान करवाई |

ऐसे बहुगुण-संपन्न महात्मा पूज्य आचार्यश्री हर्षसागर-सूरिजी को हम भावभरी वंदना करते हुए इस श्रुतकार्य का प्रारंभ करने जा रहे है |

**** मुनि दीपरत्नसागर*

[कात्रेज]पूना, शंखेश्वर, कपडवंज, प्रभासपाटण आदि स्थानोमे आगममंदिर के प्रेरक, कर्मग्रंथ अभ्यासु, निस्पृह महात्मा

पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य श्री दौलतसागर-सूरीश्वरजी महाराज साहेब

(एवं) अजातशत्रु, स्वाध्याय-रसिक, प्रशांतमूर्ती और अपने गुरु के प्रीतिपात्र

परम पूज्य आचार्य श्री नंदीवर्धनसागर-सूरिजी महाराज साहेब

इस पवित्र श्रुत-कार्यमे दोनो सूरिवरो का स्मरण करते हुए कोटि कोटि वंदना के साथ

.....मुनि दीपरत्नसागर

मूलांक:	समवाय:	पृष्ठांक	मूलांक::::	समवाय:	पृष्ठांक	मूलांक::::	समवाय:	पृष्ठांक
००१	प्रथम	००८	०५१	एकविंशति	०८४	११७	एकचत्वारिंशत्	१३९
००२	द्वितीय	०२१	०५२	द्वाविंशति	०८७	११८	द्वाचत्वारिंशत्	१३९
००३	तृतीय	०२२	०५३	त्रयोविंशति	०९१	११९	त्रिचत्वारिंशत्	१४२
००४	चतुर्थ	०२२	०५४	चतुर्विंशति	०९२	१२०	चतु:चत्वारिंशत्	१४३
००५	पंचम	०२६	५५-५९	पञ्चविंशति	०९४	१२१-१२३	पञ्चचत्वारिंशत्	१४४
००६	षष्ठ	०२९	६०	षड्विंशति	०९७	१२४	षड्चत्वारिंशत्	१४४
००७	सप्तम	०३१	६१	सप्तविंशति	०९८	१२५	सप्तचत्वारिंशत्	१४५
८-१०	अष्टम	०३३	६२	अष्टाविंशति	१०१	१२६	अष्टचत्वारिंशत्	१४६
११-१३	नवम	०३६	६३	एकोनत्रिंशत्	१०४	१२७	एकोनपंचाशत्	१४६
१४-१८	दशम	०३९	६४-९९	त्रिंशत्	१०७	१२८	पंचाशत्	१४७
०१९	एकादश	०४४	१००-१०१	एकत्रिंशत्	११७	१२९	एकपंचाशत्	१४८
२०-२५	द्वादश	०४९	१०२-१०८	द्वात्रिंशत्	१२०	१३०	द्विपंचाशत्	१४८
०२६	त्रयोदश	०५६	१०९	त्रयस्त्रिंशत्	१२३	१३१	त्रिपंचाशत्	१५०
२७-३१	चतुर्दश	०५९	११०	चतुस्त्रिंशत्	१२६	१३२	चतुष्पंचाशत्	१५१
३२-३७	पंचदश	०६३	१११	पञ्चत्रिंशत्	१३२	१३३	पंचपंचाशत्	१५१
३८-४१	षोडश	०६९	११२	षड्त्रिंशत्	१३५	१३४	षड्पंचाशत्	१५४
०४२	सप्तदश	०७१	११३	सप्तत्रिंशत्	१३६	१३५	सप्तपंचाशत्	१५४
४३-४५	अष्टादश	०७४	११४	अष्टत्रिंशत्	१३६	१३६	अष्टपंचाशत्	१५४
४६-४९	एकोनविंशति	०७९	११५	एकोनचत्वारिंशत्	१३८	१३७	एकोनषष्टि	१५५
०५०	विंशति	०८१	११६	चत्वारिंशत्	१३८	१३८	षष्टि	१५५

मूलांक:	समवाय:	पृष्ठांक	मूलांक::::	समवाय:	पृष्ठांक	मूलांक:	समवाय:	पृष्ठांक
१३९	एकषष्टि	१५६	१४९	एकसप्तति	१७०	१६०	एकाशीति	१८३
१४०	द्विषष्टि	१५७	१५०	द्विसप्तति	१७२	१६१	द्वयशीति	१८४
१४१	त्रिषष्टि	१६१	१५१	त्रिसप्तति	१७४	१६२	त्र्यशीति	१८५
१४२	चतु:षष्टि	१६१	१५२	चतु:सप्तति	१७५	१६३	चतुरशीति	१८७
१४३	पञ्चषष्टि	१६२	१५३	पञ्चसप्तति	१७६	१६४	पंचाशीति	१९०
१४४	षड्षष्टि	१६३	१५४-१५५	षड्सप्तति	१७७	१६५	षडशीति	१९१
१४५	सप्तषष्टि	१६४	१५६	सप्तसप्तति	१७७	१६६	सप्ताशीति	१९२
१४६	अष्टषष्टि	१६७	१५७	अष्टसप्तति	१७८	१६७	अष्टाशीति	१९३
१४७	एकोनसप्तति	१६७	१५८	एकोनाशीति	१८१	१६८	एकोननवति	१९४
१४८	सप्तति	१६८	१५९	अशीति	१८२	१६९	नवति	१९५
१७०	एकनवति	१९६	१७४	पञ्चनवति	२०१	१७८	नवनवति	२०५
१७१	द्विनवति	१९८	१७५	षण्णवति	२०२	१७९	शत	२०७
१७२	त्रिनवति	२००	१७६	सप्तनवति	२०३	१८०-	प्रकीर्णक: समवाया:	२०८-
१७३	चतुर्नवति	२०१	१७७	अष्टनवति	२०४	-३८३		३२७

[समवाय- मूलं एवं वृत्ति:] इस प्रकाशन की विकास-गाथा

यह प्रत सबसे पहले "समवायाङ्गसूत्र" के नामसे सन १९१८ (विक्रम संवत १९७४) में आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित हुई, इस के संपादक-महोदय थे पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्यदेव श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी (सागरानंदसूरिजी) महाराज साहेब |

इसी प्रत को फिर अपने नामसे 'जिनशासन आराधना ट्रस्ट' की तरफ से आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरिजीने छपवाई, जिसमे उन्होंने खुदने तो कुछ नहीं किया, मगर इसी प्रत को ऑफसेट करवा के, ऊपर अपना नाम एवं अपनी प्रकाशन संस्था का नाम छाप दिया. यह स्पष्ट रूपसे एक प्रकारसे अदत्तादान ही है, ऐसी अनेक प्रतो के अगले दो पेज पलटकर या नए डालकर उन्होंने अपने नामसे छपवाइ है, इस तरह वो अपने आपको बड़ा आगम संरक्षक साबित करनेकी अनुचित चेष्टा कर चुके है |

इसी समग सूत्र की प्रत को ऑफसेट की मदद से आचार्य श्री नयचंद्रसागरसूरिजीने भी छपवाया है, समुदाय की वफादारी निभाते हुए इस पूज्यश्रीने पूज्य सागरानंदसूरीश्वरजी महाराजश्री का नाम बड़ी इज्जत के साथ अपनी जगह पे ही रखा है, और खुदका नाम पुन: संपादक रूप से पेश किया है | अपनी प्रस्तावनामें नयचंद्रसागरसूरिजी ने भी मेरी तरह उक्त बात का उल्लेख किया है|

इसी समवायाङ्गसूत्र की प्रत को ऑफसेट की मदद से पूज्य जम्बूविजयजी महाराजजीने श्री मोतीलाल बनारसीदास की तरफसे प्रकाशित करवाई है, जो की पुस्तक रूपसे बाईंडेड है, और परिशिष्टमें पूज्य श्री पुन्यविजयजी संकलित शुद्धि-वृद्धि पत्रक दिया है|

✤हमारा ये प्रयास क्यों? ✤ आगम की सेवा करनेके हमें तो बहोत अवसर मिले, ४५-आगम सटीक भी हमने ३० भागोमे १२५०० से ज्यादा पृष्ठोमें प्रकाशित करवाए है, किन्तु लोगो की पूज्य श्री सागरानंदसूरीश्वरजी के प्रति श्रद्धा तथा प्रत स्वरुप प्राचीन प्रथा का आदर देखकर हमने इसी प्रत को स्केन करवाई, उसके बाद एक स्पेशियल फोरमेट बनवाया, जिसमे बीचमे पूज्यश्री संपादित प्रत ज्यों की त्यों रख दी, ऊपर शीर्षस्थानमे आगम का नाम, फिर अध्ययन-उद्देशक-मूलसूत्र- आदि के नंबर लिख दिए, ताकिँ पढ़नेवाले को प्रत्येक पेज पर कौनसा अध्ययन, उद्देशक आदि चल रहे है उसका सरलतासे ज्ञान हो शके, बायीं तरफ आगम का क्रम और इसी प्रत का सूत्रक्रम दिया है, उसके साथ वहाँ 'दीप अनुक्रम' भी दिया है, जिससे हमारे प्राकृत, संस्कृत, हिंदी गुजराती, इंग्लिश आदि सभी आगम प्रकाशनोमें प्रवेश कर शके| हमारे अनुक्रम तो प्रत्येक प्रकाशनोमें एक सामान और क्रमशः आगे बढते हुए ही है, इसीलिए सिर्फ क्रम नंबर दिए है, मगर प्रत में गाथा और सूत्रों के नंबर अलग-अलग होने से हमने जहां सूत्र है वहाँ कौंस [-] दिए है और जहां गाथा है वहाँ ||-|| ऐसी दो लाइन खींची है| हर पृष्ठ के नीचे विशिष्ठ फूटनोट लिखी है |

शासनप्रभावक पूज्य आचार्यश्री हर्षसागरसूरिजी म०सा० की प्रेरणासे और श्री वर्धमान जैन आगममंदिर, पालिताणा की संपूर्ण द्रव्य सहाय से ये 'सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि' भाग-७ का मुद्रण हुआ है, हम उन के प्रति हमारा आभार व्यक्त करते है |

.....मुनि दीपरत्नसागर.

प्रत सूत्रांक [–] प्रत अनुक्रम [–]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः अर्हम् । नवाङ्गीवृत्तिकारकश्रीमदभयदेवसूरिवर्यविहितविवरणभूषितं **श्रीमत्समवायाङ्गसूत्रम् ।** श्रावद्धमानमानम्य, समवायाङ्गवृत्तिका । विधीयतेऽन्यशास्त्राणां, प्रायः समुपजीवनात् ॥ १ ॥ दुःसम्प्रदायादसदूहनाद्वा, भणिष्यते यद्वितथं मयेह । तद्धीधनैर्मामनुकम्पयद्भिः, शोध्यं मतार्थक्षतिरस्तु मैव ॥ २ ॥ इह स्थानाख्यतृतीयाङ्गानुयोगानन्तरं क्रमप्राप्त एव समवायाभिधानचतुर्थाङ्गानुयोगो भवतीति सोऽधुना समार-भ्यते, तत्र च फलादिद्वारचिन्ता स्थानाङ्गानुयोगवत् क्रमादवसेया, नवरं समुदायार्थोऽयमस्य, समिति–सम्यक् अवेत्याधिक्येन अयनमयः–परिच्छेदो जीवाजीवादिविविधपदार्थसार्थस्य यस्मिन्नसौ समवायः समवयन्ति वा—
	वृत्तिकार-कृत वृत्ति-प्रतिज्ञा एवं शाश्त्र-स्वीकृत्ति

१ स०
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१]

प्रत अनुक्रम [१]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ १ ॥

समवतरन्ति संमिलन्ति नानाविधा आत्मादयो भावा अभिधेयतया यस्मिन्नसौ समवाय इति, स च प्रवचनपुरुषस्याङ्गमिति समवायाङ्गम्, तत्र किल श्रीश्रमणमहावीरवर्द्धमानस्वामिनः सम्बन्धी पञ्चमो गणधर आर्यसुधर्मस्वामी स्वशिष्यं जम्बूनामानमभि समवायाङ्गार्थमभिधित्सुः भगवति धर्म्माचार्ये बहुमानमाविर्भावयन् स्वकीयवचने च समस्तवस्तुविस्तारस्वभावावभासिकेवलालोककलितमहावीरवचननिःश्रिततयाऽविगानेन प्रमाणमिदमिति शिष्यस्य मतिमारोपयन्निदमादावेव सम्बन्धसूत्रमाह—

सुयं मे आउसंतेणं भगवया एवमक्खायं–[इह खलु समणेणं भगवया महावीरेणं आइगरेणं तित्थगरेणं सयंसंबुद्धेणं पुरिसुत्तमेणं पुरिससीहेणं पुरिसवरपुंडरीएणं पुरिसवरगंधहत्थिणा लोगुत्तमेणं लोगनाहेणं लोगहिएणं लोगपईवेणं लोगपज्जोअगरेणं अभयदएणं चक्खुदएणं मग्गदएणं सरणदएणं जीवदएणं धम्मदएणं धम्मदेसएणं धम्मनायगेणं धम्मसारहिणा धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टिणा अप्पडिहयवरनाणदंसणधरेणं वियट्टच्छउमेणं जिणेणं जावएणं तिन्नेणं तारएणं बुद्धेणं बोहएणं मुत्तेणं मोयगेणं सव्वन्नुणा सव्वदरिसिणा सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिसिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपाविउकामेणं इमे दुवालसंगे गणिपिडगे पन्नत्ते, तंजहा–आयारे १ सूयगडे २ ठाणे ३ समवाए ४ विवाहपन्नत्ती ५ नायाधम्मकहाओ ६ उवासगदसाओ ७ अंतगडदसाओ ८ अणुत्तरोववाइदसाओ ९ पण्हावागरणं १० विवागसुए ११ दिट्ठिवाए १२, तत्थ णं जे से चउत्थे अंगे समवाएत्ति आहिते तस्स णं अयमट्ठे पन्नत्ते, तंजहा–] एगे आया एगे अणाया एगे दंडे एगे अदंडे एगा किरिआ एगा अकिरिआ एगे लोए एगे अलोए एगे

१ समवायः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'समवाय' शब्दस्य व्याख्या, मूलसूत्रस्य आरम्भ:



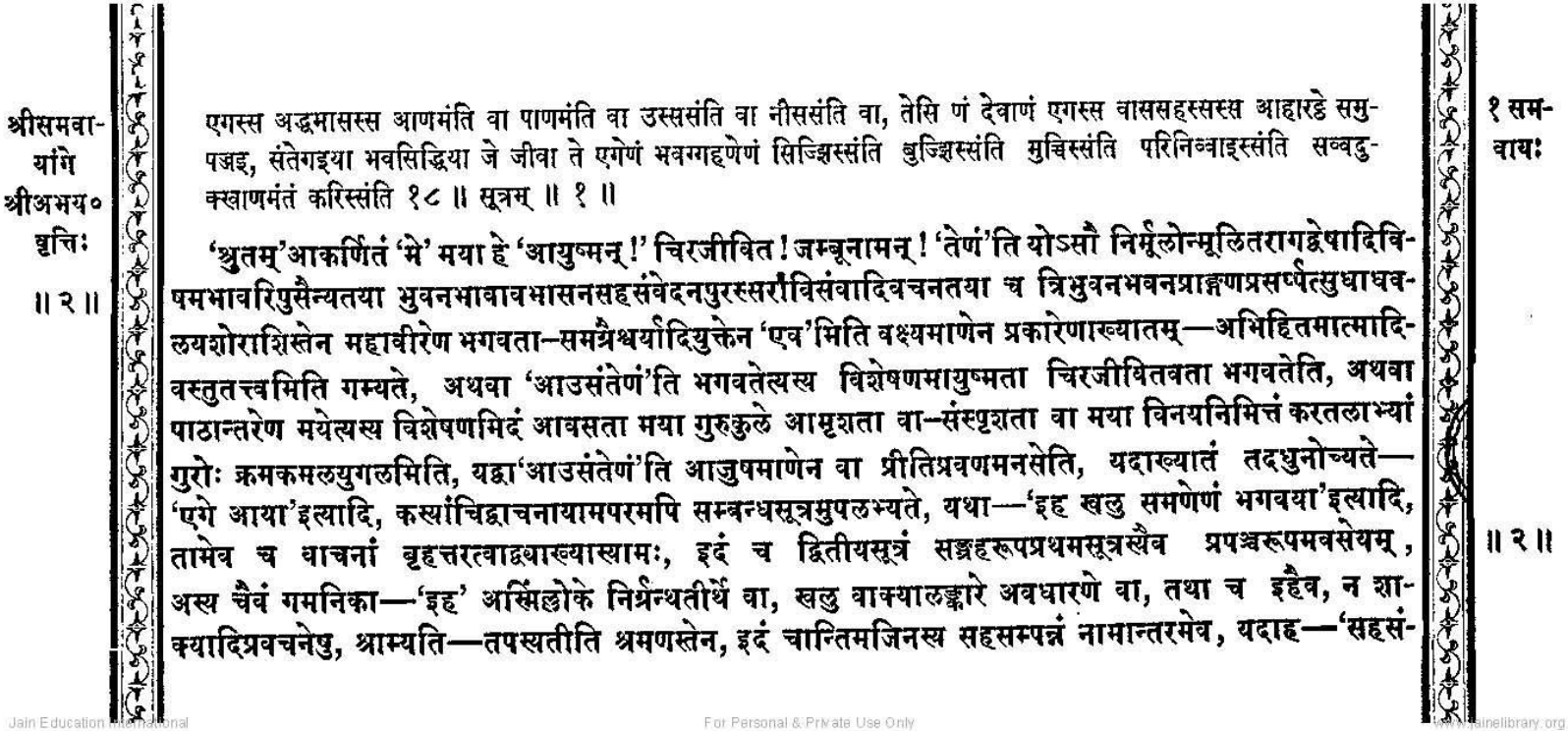
धम्मे एगे अधम्मे एगे पुण्णे एगे पावे एगे बंधे एगे मोक्खे एगे आसवे एगे संवरे एगा वेयणा एगा णिज्जरा १८। जंबुद्दीवे दीवे एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ते, अप्पइट्ठाणे नरए एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं पन्नत्ते, पालए जाणविमाणे एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं पन्नत्ते, सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं पन्नत्ते। अद्दानक्खत्ते एगतारे पन्नत्ते, चित्तानक्खत्ते एगतारे पन्नत्ते, सातिनक्खत्ते एगतारे पन्नत्ते। इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पन्नत्ता, इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए नेरइआणं उक्कोसेणं एगं सागरोवमं ठिई पन्नत्ता, दोच्चाए पुढवीए नेरइयाणं जहन्नेणं एगं सागरोवमं ठिई पन्नत्ता, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पन्नत्ता, असुरकुमाराणं देवाणं उक्कोसेणं एगं साहियं सागरोवमं ठिई पन्नत्ता, असुरकुमारिंदवज्जियाणं भोमिज्जाणं देवाणं अत्थेगइआणं एगं पलिओवमं ठिई पन्नत्ता, असंखिज्जवासाउयसन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं अत्थेगइआणं एगं पलिओवमं ठिई पन्नत्ता, असंखिज्जवासाउयगब्भवक्कंतियसंणिमणुयाणं अत्थेगइयाणं एगं पलिओवमं ठिई पन्नत्ता, वाणमंतराणं देवाणं उक्कोसेणं एगं पलिओवमं ठिई पन्नत्ता, जोइसियाणं देवाणं उक्कोसेणं एगं पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं ठिई पन्नत्ता, सोहम्मे कप्पे देवाणं जहन्नेणं एगं पलिओवमं ठिई पन्नत्ता, सोहम्मे कप्पे देवाणं अत्थेगइआणं एगं सागरोवमं ठिई पन्नत्ता, ईसाणे कप्पे देवाणं जहन्नेणं साइरेगं एगं पलिओवमं ठिई पन्नत्ता, ईसाणे कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं एगं सागरोवमं ठिई पन्नत्ता, जे देवा सागरं सुसागरं सागरकंतं भवं मणुं माणुसोत्तरं लोगहियं विमाणं देवत्ताए उववन्ना तेसि णं देवाणं उक्कोसे णं एगं सागरोवमं ठिई पन्नत्ता, ते णं देवा



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१]

प्रत अनुक्रम [१]



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ २ ॥

एगस्स अद्धमासस्स आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा, तेसि णं देवाणं एगस्स वाससहस्सस्स आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जे जीवा ते एगेणं भवग्गहणेणं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति १८ ॥ सूत्रम् ॥ १ ॥

'श्रुतम्' आकर्णितं 'मे' मया हे 'आयुष्मन्!' चिरजीवित! जम्बूनामन्! 'तेणं'ति योऽसौ निर्मूलोन्मूलितरागद्वेषादिविषमभावरिपुसैन्यतया भुवनभावावभासनसहसंवेदनपुरस्सरौविसंवादिवचनतया च त्रिभुवनभवनप्राङ्गणप्रसर्पत्सुधाधवलयशोराशिस्तेन महावीरेण भगवता–समग्रैश्वर्यादियुक्तेन 'एव'मिति वक्ष्यमाणेन प्रकारेणाख्यातम्—अभिहितमात्मादिवस्तुतत्त्वमिति गम्यते, अथवा 'आउसंतेणं'ति भगवतेत्यस्य विशेषणमायुष्मता चिरजीवितवता भगवतेति, अथवा पाठान्तरेण मयेत्यस्य विशेषणमिदं आवसता मया गुरुकुले आमृशता वा–संस्पृशता वा मया विनयनिमित्तं करतलाभ्यां गुरोः क्रमकमलयुगलमिति, यद्वा 'आउसंतेणं'ति आजुषमाणेन वा प्रीतिप्रवणमनसेति, यदाख्यातं तदधुनोच्यते—'एगे आया'इत्यादि, कस्यांचिद्वाचनायामपरमपि सम्बन्धसूत्रमुपलभ्यते, यथा—'इह खलु समणेणं भगवया'इत्यादि, तामेव च वाचनां बृहत्तरत्वाद्व्याख्यास्यामः, इदं च द्वितीयसूत्रं सङ्ग्रहरूपप्रथमसूत्रस्यैव प्रपञ्चरूपमवसेयम्, अस्य चैवं गमनिका—'इह' अस्मिल्लोके निर्ग्रन्थतीर्थे वा, खलु वाक्यालङ्कारे अवधारणे वा, तथा च इहैव, न शाक्यादिप्रवचनेषु, श्राम्यति—तपस्यतीति श्रमणस्तेन, इदं चान्तिमजिनस्य सहसम्पन्नं नामान्तरमेव, यदाह—'सहसं-

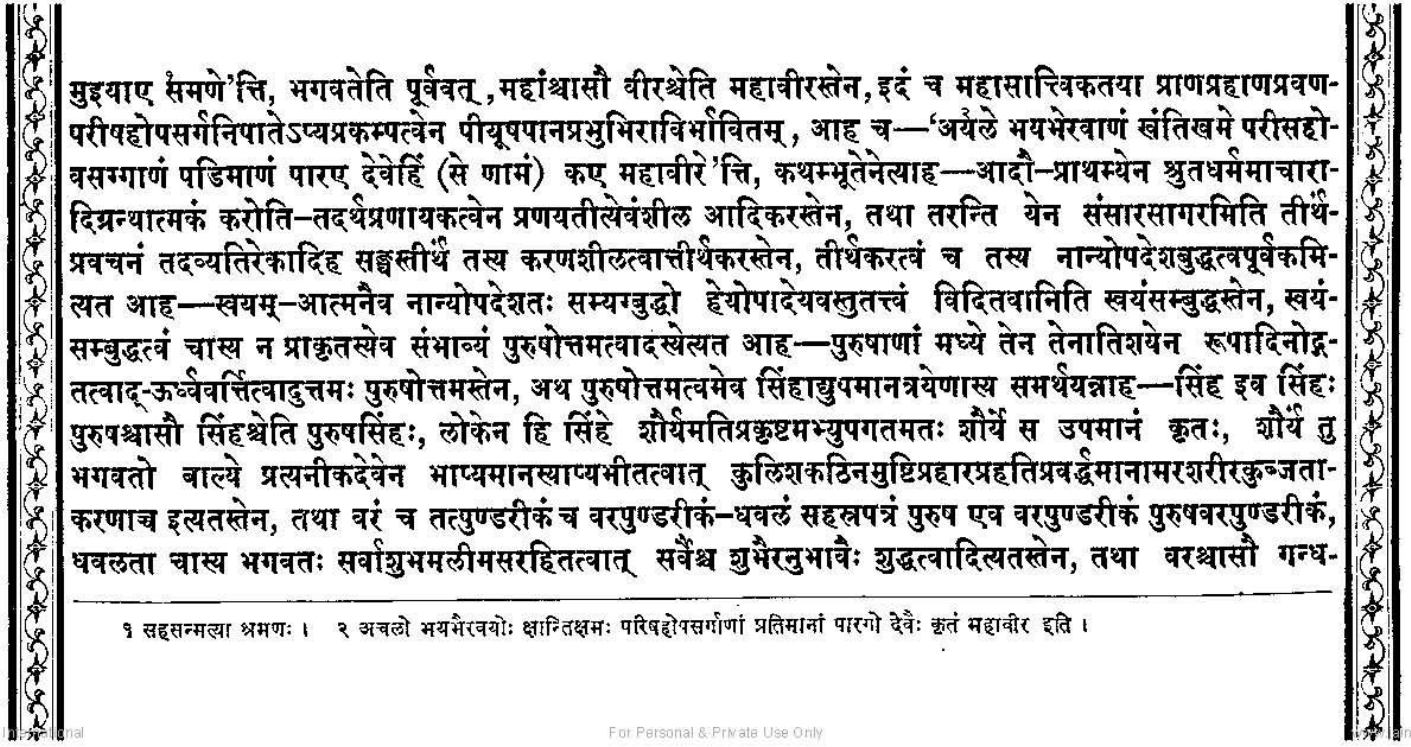
१ समवायः ॥ २ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'आउसंतेणं' शब्दस्य व्याख्या,

प्रत सूत्रांक [१]

प्रत अनुक्रम [१]



मुइयाए समणे'त्ति, भगवतेति पूर्ववत्, महांश्चासौ वीरश्चेति महावीरस्तेन, इदं च महासात्त्विकतया प्राणप्रहाणप्रवण-परीषहोपसर्गनिपातेऽप्यप्रकम्पत्वेन पीयूषपानप्रभुभिराविर्भावितम्, आह च—'अयले भयभेरवाणं खंतिखमे परीसहोवसग्गाणं पडिमाणं पारए देवेहिं (से णामं) कए महावीरे'त्ति, कथम्भूतेनेत्याह—आदौ–प्राथम्येन श्रुतधर्ममाचारादिग्रन्थात्मकं करोति–तदर्थप्रणायकत्वेन प्रणयतीत्येवंशील आदिकरस्तेन, तथा तरन्ति येन संसारसागरमिति तीर्थं-प्रवचनं तदव्यतिरेकादिह सङ्घस्तीर्थं तस्य करणशीलत्वात्तीर्थकरस्तेन, तीर्थकरत्वं च तस्य नान्योपदेशबुद्धत्वपूर्वकमित्यत आह—स्वयम्–आत्मनैव नान्योपदेशतः सम्यग्बुद्धो हेयोपादेयवस्तुतत्त्वं विदितवानिति स्वयंसम्बुद्धस्तेन, स्वयंसम्बुद्धत्वं चास्य न प्राकृतस्येव संभाव्यं पुरुषोत्तमत्वादस्येत्यत आह—पुरुषाणां मध्ये तेन तेनातिशयेन रूपादिनोद्भूतत्वाद्-ऊर्ध्ववर्त्तित्वादुत्तमः पुरुषोत्तमस्तेन, अथ पुरुषोत्तमत्वमेव सिंहाद्युपमानत्रयेणास्य समर्थयन्नाह—सिंह इव सिंहः पुरुषश्चासौ सिंहश्चेति पुरुषसिंहः, लोकेन हि सिंहे शौर्यमतिप्रकृष्टमभ्युपगतमतः शौर्ये स उपमानं कृतः, शौर्यं तु भगवतो बाल्ये प्रत्यनीकदेवेन भाप्यमानस्याप्यभीतत्वात् कुलिशकठिनमुष्टिप्रहारप्रहतिप्रवर्द्धमानामरशरीरकुब्जताकरणाच्च इत्यतस्तेन, तथा वरं च तत्पुण्डरीकं च वरपुण्डरीकं–धवलं सहस्रपत्रं पुरुष एव वरपुण्डरीकं पुरुषवरपुण्डरीकं, धवलता चास्य भगवतः सर्वाशुभमलीमसरहितत्वात् सर्वैश्च शुभैरनुभावैः शुद्धत्वादित्यतस्तेन, तथा वरश्चासौ गन्ध-

१ सहसन्मत्या श्रमणः। २ अचलो भयभैरवयोः क्षान्तिक्षमः परिषहोपसर्गाणां प्रतिमानां पारगो देवैः कृतं महावीर इति।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण, भगवत्, महावीर आदि शब्दानाम व्याख्या, भगवन् महावीरस्य 'वीर शक्रस्तव' रूप विशेषणस्य व्याख्या:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

प्रत अनुक्रम [१]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः

॥ ३ ॥

हस्ती च वरगन्धहस्ती पुरुष एव वरगन्धहस्ती पुरुषवरगन्धहस्ती, यथा गन्धहस्तिनो गन्धेनैव सर्वगजा भज्यन्ते तथा भगवतस्तद्देशविहरणेन ईतिपरचक्रदुर्भिक्षजनडमरकादीनि दुरितानि शतयोजनमध्ये नश्यन्तीति अतस्तेन पुरुषवरगन्धहस्तिना, न भगवान् पुरुषाणामेवोत्तमः किन्तु सकलजीवलोकस्यापीत्यत आह—लोकस्य-तिर्यग्नरनारकनाकिलक्षणजीवलोकस्योत्तमः—चतुस्त्रिंशद्बुद्धातिशयाद्यसाधारणगुणगणोपेततया सकलसुरासुरखचरनरनिकरनमस्यतया च प्रधानो लोकोत्तमस्तेन, लोकोत्तमत्वमेवास्य पुरस्कुर्वन्नाह—लोकस्य-सञ्ज्ञिभव्यलोकस्य नाथः-प्रभुर्लोकनाथस्तेन, नाथत्वं चास्य 'योगक्षेमकृन्नाथ' इति वचनादप्राप्तस्य सम्यग्दर्शनादेर्योगकरणेन लब्धस्य तस्यैव पालनेन चेति, लोकनाथत्वं च तात्त्विकं तद्धितत्वे सति सम्भवतीत्याह—लोकस्य—एकेन्द्रियादिप्राणिगणस्य हितः—आत्यन्तिकतद्रक्षाप्रकर्षप्ररूपणेनानुकूलवर्ती लोकहितस्तेन, यदेतन्नाथत्वं हितत्वं वा तद्भव्यानां यथावस्थितसमस्तवस्तुस्तोमप्रदीपनेन नान्यथेत्याह—लोकस्य—विशिष्टतिर्यग्नरामररूपस्यान्तरतिमिरनिकरनिराकरणेन प्रकृष्टपदार्थप्रकाशकारित्वात्प्रदीप इव प्रदीपो लोकप्रदीपस्तेन, इदं च विशेषणं द्रष्टृलोकमाश्रित्योक्तम्, अथ दृश्यलोकमाश्रित्याह—लोकस्य-लोक्यते इति लोक इति व्युत्पत्त्या लोकालोकरूपस्य समस्तवस्तुस्तोमस्वभावस्याखण्डमार्तण्डमण्डलमिव निखिलभावस्वभावावभासनसमर्थकेवलालोकपूर्वकप्रवचनप्रभापटलप्रवर्तनेन प्रद्योतं—प्रकाशं करोतीत्येवंशीलो लोकप्रद्योतकरस्तेन, ननु लोकनाथत्वादिविशेषणयोगी हरिहरहिरण्यगर्भादिरपि तत्तीर्थिकमतेन सम्भवतीति कोऽस्य विशेष इत्याशङ्कायां तद्विशेषाभिधानाया-

१ समवायः

॥ ३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवन् महावीरस्य 'वीर शक्रस्तव' रूप विशेषणस्य व्याख्या:

प्रत सूत्रांक [१]

प्रत अनुक्रम [१]

ह—न भयं दयते-प्राणापहरणरसिकोपसर्गकारिण्यपि प्राणिनि ददातीत्यभयदयः अभया वा–सर्वप्राणिभयपरिहार-वती दया-घृणा यस्यासावभयदयो, हरिहरादिस्तु नैवमिति, तेनाभयदयेन, न केवलमसावपकारकारिणामप्यनर्थपरि-हारमात्रं करोति अपित्वर्थप्राप्तिं करोतीति दर्शयन्नाह—चक्षुरिव चक्षुः–श्रुतज्ञानं शुभाशुभार्थविभागकारित्वात्तद्दयते इति चक्षुर्दयस्तेन, यथा हि लोके चक्षुर्दत्त्वा वाञ्छितस्थानमार्गं दर्शयन् महोपकारी भवतीत्येवमिहापीति दर्शयन्नाह–मार्गं-सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रात्मकं परमपदपथं दयत इति मार्गदयस्तेन, यथा हि लोके चक्षुरुद्घाटनं मार्गदर्शनं च कृत्वा चौरादिविलुप्तान् निरुपद्रवं स्थानं प्रापयन् परमोपकारी भवति एवमिहापीति दर्शयन्नाह–शरणं-त्राणमज्ञानो-पद्रवोपहतानां तद्रक्षास्थानं तत्त्व परमार्थतो निर्वाणं तद्दयत इति शरणदयस्तेन, यथा हि लोके चक्षुर्मार्गशरणदानात् दुःस्थानां जीवितव्यं ददाति एवमिहापीति दर्शयन्नाह—जीवनं जीवो–भावप्राणधारणममरणधर्मत्वमित्यर्थस्तं दयत इति जीवदयो जीवेषु वा दया यस्य स जीवदयोऽतस्तेन, इदं चानन्तरोक्तं विशेषणकदम्बकं भगवतो धर्ममयमूर्ति-त्वात्सम्पन्नमिति धर्मात्मकतामस्यान्यविशेषणपञ्चकेनाह—धर्मं-श्रुतचारित्रात्मकं दुर्गतिप्रपतज्जन्तुधारणस्वभावं दयते–ददातीति धर्मदयस्तेन, तद्दानं चास्य तद्देशनादेवेत्यत आह—धर्मम्–उक्तलक्षणं देशयति-कथयतीति धर्मदेशकस्तेन, धर्मदेशकत्वं चास्य धर्मस्वामित्वे सति न पुनर्यथा नटस्येति दर्शयन्नाह—धर्मस्य–क्षायिकज्ञानदर्शनचारित्रात्मकस्य नायकः–स्वामी यथावत्पालनाद्धर्मनायकस्तेन, तथा धर्मस्य सारथिर्धर्मसारथिः, यथा रथस्य सारथी रथं रथिकमश्वांश्च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवन् महावीरस्य 'वीर शक्रस्तव' रूप विशेषणस्य व्याख्या:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

प्रत अनुक्रम [१]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ४ ॥

रक्षति एवं भगवांश्चारित्रधर्माज्ञानां संयमात्मप्रवचनाख्यानां रक्षणोपदेशाद्धर्मसारथिर्भवतीति तेन धर्मसारथिना, तथा त्रयः समुद्राश्चतुर्थो हिमवान् एते चत्वारः अन्ताः–पर्यन्तास्तेषु स्वामितया भवतीति चातुरन्तः स चासौ चक्रवर्त्ती च चातुरन्तचक्रवर्त्ती वरश्चासौ पृथिव्याः चातुरन्तचक्रवर्त्ती चेति वरचातुरन्तचक्रवर्ती–राजातिशयः धर्मविषये वरचातुरन्तचक्रवर्त्ती धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्त्ती, यथा हि पृथिव्यां शेषराजातिशायी वरचातुरन्तचक्रवर्त्ती भवति तथा भगवान् धर्मविषये शेषप्रणेतॄणां मध्ये सातिशयत्वात् तथोच्यत इति तेन धर्मवरचातुरन्तचक्रवर्त्तिना, एतच्च धर्मदायकत्वादिविशेषणपञ्चकं प्रकृष्टज्ञानादियोगे सति भवतीत्यत आह—अप्रतिहते-कटकुड्यपर्वतादिभिरस्खलिते अविसंवादके वा अत एव क्षायिकत्वाद्वा वरे–प्रधाने ज्ञानदर्शने केवललक्षणे धारयतीति अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरस्तेन, एवंविधसंवेदनसंपदुपेतोऽपि छद्मवान् मिथ्योपदेशित्वान्नोपकारीति निश्छद्मतामाप्रतिपादनायास्याह, अथवा कथमस्याप्रतिहतसंवेदनत्वं सम्पन्नं ?, अत्रोच्यते, आवरणाभावाद्, एतदेवाह–व्यावृत्तं—निवृत्तमपगतं छद्म-शठत्वमावरणं वा यस्य स तथा तेन व्यावृत्तछद्मना, मायावरणयोश्चाभावोऽस्य रागादिजयाज्जात इत्यत आह–जयति–निराकरोति रागद्वेषादिरूपानरातीनिति जिनस्तेन, रागादिजयश्चास्य रागादिस्वरूपतज्जयोपायज्ञानपूर्वक एव भवतीत्येतदस्याह—जानाति छाद्मस्थिकज्ञानचतुष्टयेनेति ज्ञापकस्तेन, अनन्तरमस्य स्वार्थसम्पत्त्युपाय उक्तः, अधुना स्वार्थसम्पत्तिपूर्वकं परार्थसम्पादकत्वं विशेषणषट्केनाह—तीर्ण इव तीर्णः, संसारसागरमिति गम्यते, तेन, तथा तारयति परानप्युपदेशवर्त्तिन

१ सम_ वायः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवन् महावीरस्य 'वीर शक्रस्तव' रूप विशेषणस्य व्याख्या:

प्रत सूत्रांक [१]

प्रत अनुक्रम [१]

इति तारकस्तेन, तथा बुद्धेन जीवादितत्त्वं, तथा बोधकेन जीवादितत्त्वमेवापरेषां, तथा मुक्तेन बाह्याभ्यन्तरग्रन्थिबन्धनात्, मोचकेन तत एव परेषां, तथा मुक्तत्वेऽपि सर्वज्ञेन सर्वदर्शिना, न तु मुक्तावस्थायां दर्शनान्तराभिमतपुरुषेणेव भाविजडत्वेन, तथा शिवं सर्वाबाधारहितत्वात्, अचलं स्वाभाविकप्रायोगिकचलनहेत्वभावात्, अरुजम्–अविद्यमानरोगं, शरीरमनसोरभावात्, अनन्तमनन्तार्थविषयज्ञानस्वरूपत्वात्, अक्षयम्–अनाशं साद्यपर्यवसितस्थितिकत्वात्, अक्षतं वा परिपूर्णत्वात् पूर्णिमाचन्द्रमण्डलवत्, अव्याबाधमपीडाकारित्वात्, 'अपुनरावर्तकम्' अविद्यमानपुनर्भवावतारं, तद्बीजभूतकर्माभावात् सिद्धिगतिरिति नामधेयं यस्य तत्सिद्धिगतिनामधेयं, तिष्ठति यस्मिन् कर्मकृद्विकाररहितत्वेन सदाऽवस्थितो भवति तत्स्थानं—क्षीणकर्मणो जीवस्य स्वरूपं लोकाग्रं वा, जीवस्वरूपविशेषणानि तु लोकाग्रस्याधेयधर्माणामाधारेऽध्यारोपादवसेयानि, तदेवंभूतं स्थानं सम्प्राप्तुकामेन—यातुमनसा न तु तत्प्राप्तेन, तत्प्राप्तस्याकरणत्वेन प्रज्ञापनाऽभावात्, प्राप्तुकामेनेति यदुच्यते तदुपचाराद्, अन्यथा हि निरभिलाषा एव भगवन्तः केवलिनो भवन्ति, 'मोक्षे भवे च सर्वत्र, निःस्पृहो मुनिसत्तम' इति वचनादिति। तदेवमगणितगुणगणसम्पदुपेतेन भगवता 'इमं' ति इदं वक्ष्यमाणतया प्रत्यक्षमासन्नं च द्वादशाङ्गानि यस्मिंस्तद् द्वादशाङ्गं गणिनः-आचार्यस्य पिटकमिव पिटकं गणिपिटकं, यथा हि वालङ्कुकवाणिजकस्य पिटकं सर्वस्वाधारभूतं भवति एवमाचार्यस्य द्वादशाङ्गं ज्ञानादिगुणरत्नसर्वस्वाधारकल्पं भवतीति भावः, प्रज्ञप्तं तीर्थङ्करनामकर्मोदयवर्तितया प्रायः कृतार्थेनापि परोपकाराय प्रकाशितं, 'तद्यथे'-

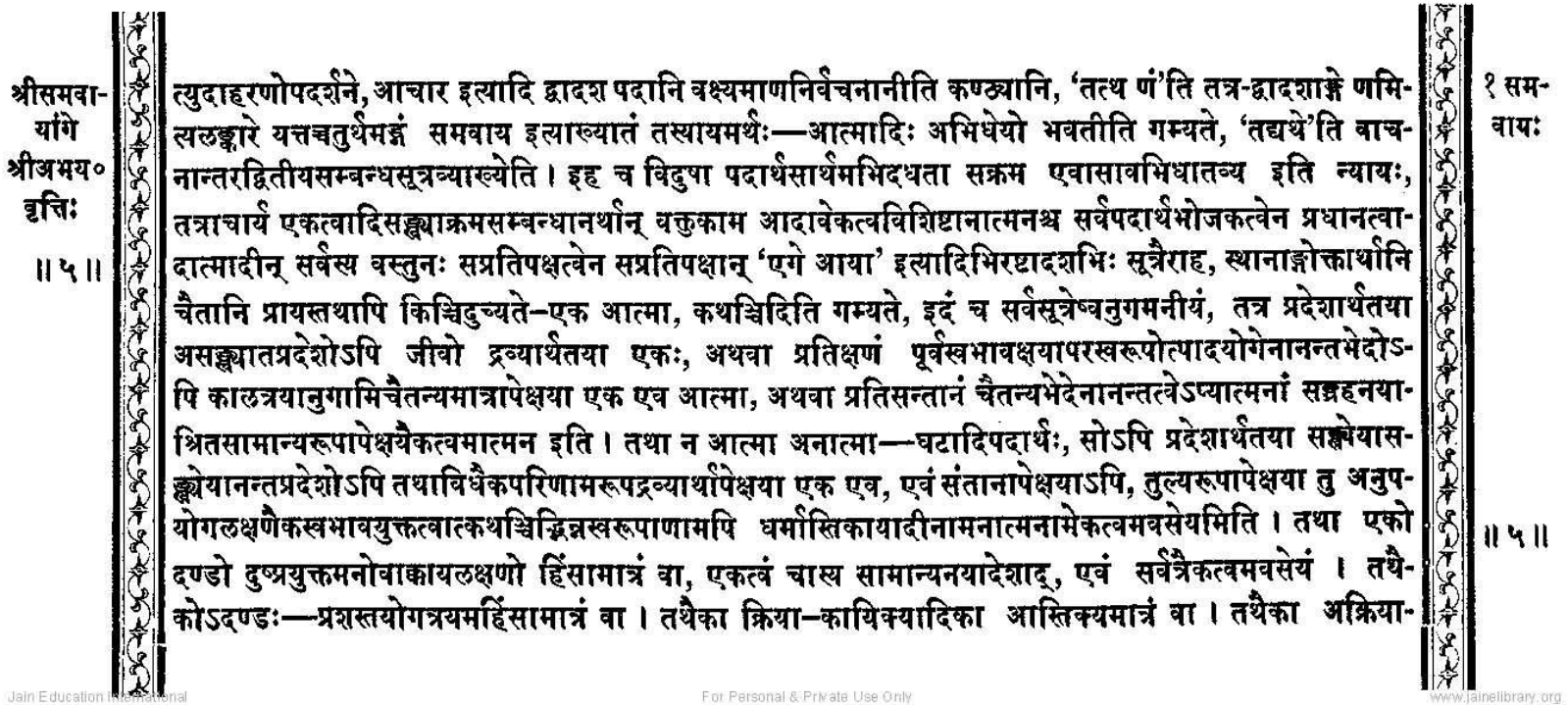
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवन् महावीरस्य 'वीर शक्रस्तव' रूप विशेषणस्य व्याख्या:

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१]

प्रत अनुक्रम [१]



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ५ ॥

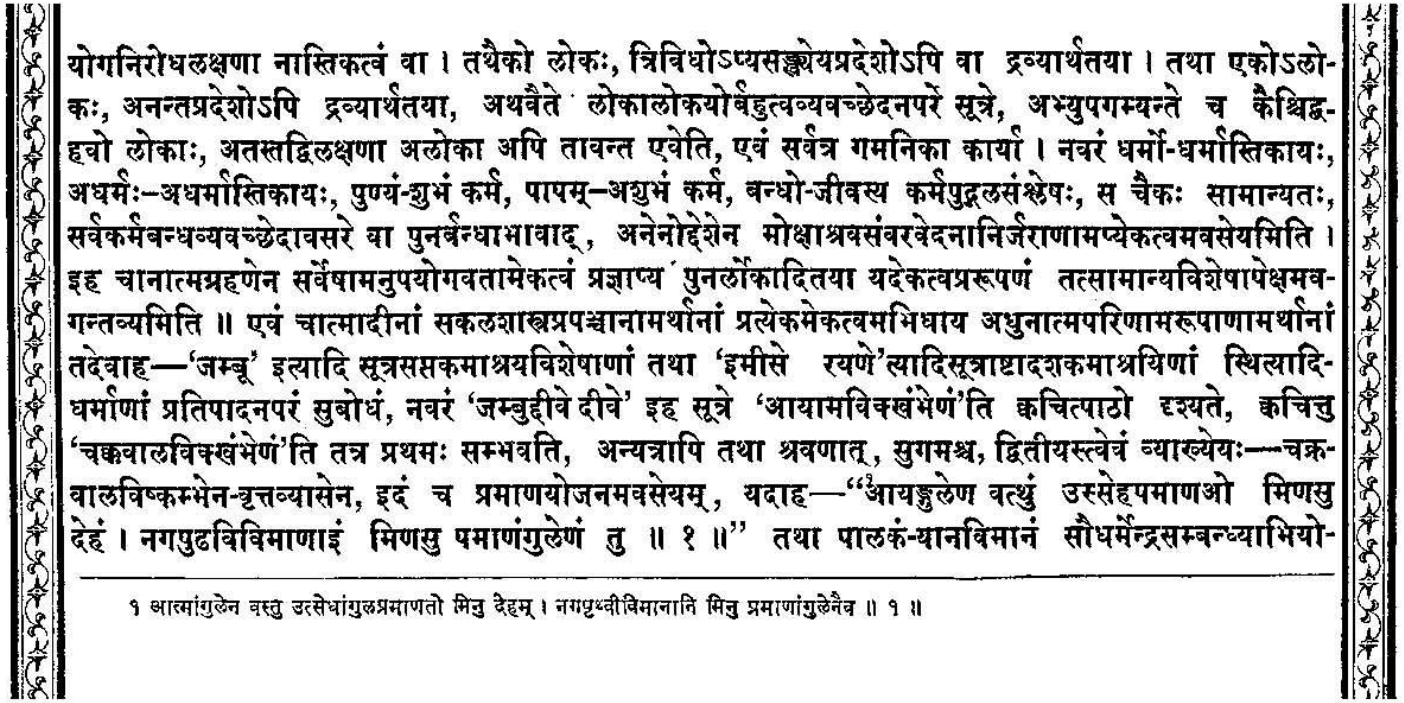
त्युदाहरणोपदर्शने, आचार इत्यादि द्वादश पदानि वक्ष्यमाणनिर्वचनानीति कण्ठ्यानि, 'तत्थ णं'ति तत्र-द्वादशाङ्गे णमिस्यलङ्कारे यत्तच्चतुर्थमङ्गं समवाय इत्याख्यातं तस्यायमर्थः—आत्मादिः अभिधेयो भवतीति गम्यते, 'तद्यथे'ति वाचनान्तरद्वितीयसम्बन्धसूत्रव्याख्येति। इह च विदुषा पदार्थसार्थमभिदधता सक्रम एवासावभिधातव्य इति न्यायः, तत्राचार्य एकत्वादिसङ्ख्याक्रमसम्बन्धानर्थान् वक्तुकाम आदावेकत्वविशिष्टानात्मनश्च सर्वपदार्थभोजकत्वेन प्रधानत्वादात्मादीन् सर्वस्य वस्तुनः सप्रतिपक्षत्वेन सप्रतिपक्षान् 'एगे आया' इत्यादिभिरष्टादशभिः सूत्रैराह, स्थानाङ्गोक्तार्थानि चैतानि प्रायस्तथापि किञ्चिदुच्यते—एक आत्मा, कथञ्चिदिति गम्यते, इदं च सर्वसूत्रेष्वनुगमनीयं, तत्र प्रदेशार्थतया असङ्ख्यातप्रदेशोऽपि जीवो द्रव्यार्थतया एकः, अथवा प्रतिक्षणं पूर्वस्वभावक्षयापरस्वरूपोत्पादयोगेनानन्तभेदोऽपि कालत्रयानुगामिचैतन्यमात्रापेक्षया एक एव आत्मा, अथवा प्रतिसन्तानं चैतन्यभेदेनानन्तत्वेऽप्यात्मनां सङ्ग्रहनयाश्रितसामान्यरूपापेक्षयैकत्वमात्मन इति। तथा न आत्मा अनात्मा—घटादिपदार्थः, सोऽपि प्रदेशार्थतया सङ्ख्येयासङ्ख्येयानन्तप्रदेशोऽपि तथाविधैकपरिणामरूपद्रव्यार्थापेक्षया एक एव, एवं संतानापेक्षयाऽपि, तुल्यरूपापेक्षया तु अनुपयोगलक्षणैकस्वभावयुक्तत्वात्कथञ्चिद्भिन्नस्वरूपाणामपि धर्मास्तिकायादीनामनात्मनामेकत्वमवसेयमिति। तथा एको दण्डो दुष्प्रयुक्तमनोवाक्कायलक्षणो हिंसामात्रं वा, एकत्वं चास्य सामान्यनयादेशाद्, एवं सर्वत्रैकत्वमवसेयं। तथैकोऽदण्डः—प्रशस्तयोगत्रयमहिंसामात्रं वा। तथैका क्रिया—कायिक्यादिका आस्तिक्यमात्रं वा। तथैका अक्रिया-

१ समवायः

॥ ५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'आत्मा' आदि सूत्रोक्त शब्दस्य व्याख्या:



योगनिरोधलक्षणा नास्तिकत्वं वा । तथैको लोकः, त्रिविधोऽप्यसङ्ख्येयप्रदेशोऽपि वा द्रव्यार्थतया । तथा एकोऽलोकः, अनन्तप्रदेशोऽपि द्रव्यार्थतया, अथवैते लोकालोकयोर्बहुत्वव्यवच्छेदनपरे सूत्रे, अभ्युपगम्यन्ते च कैश्चिद्बहवो लोकाः, अतस्तद्विलक्षणा अलोका अपि तावन्त एवेति, एवं सर्वत्र गमनिका कार्या । नवरं धर्मो-धर्मास्तिकायः, अधर्मः–अधर्मास्तिकायः, पुण्यं-शुभं कर्म, पापम्–अशुभं कर्म, बन्धो-जीवस्य कर्मपुद्गलसंश्लेषः, स चैकः सामान्यतः, सर्वकर्मबन्धव्यवच्छेदावसरे वा पुनर्बन्धाभावाद्, अनेनोद्देशेन मोक्षाश्रवसंवरवेदनानिर्जराणामप्येकत्वमवसेयमिति । इह चानात्मग्रहणेन सर्वेषामनुपयोगवतामेकत्वं प्रज्ञाप्य पुनर्लोकादितया यदेकत्वप्ररूपणं तत्सामान्यविशेषापेक्षमवगन्तव्यमिति ॥ एवं चात्मादीनां सकलशास्त्रप्रपञ्चानामर्थानां प्रत्येकमेकत्वमभिधाय अधुनात्मपरिणामरूपाणामर्थानां तदेवाह—'जम्बू' इत्यादि सूत्रसप्तकमाश्रयविशेषाणां तथा 'इमीसे रयणे'त्यादिसूत्राष्टादशकमाश्रयिणां स्थित्यादिधर्माणां प्रतिपादनपरं सुबोधं, नवरं 'जम्बुद्दीवे दीवे' इह सूत्रे 'आयामविक्खंभेणं'ति क्वचित्पाठो दृश्यते, क्वचित्तु 'चक्कवालविक्खंभेणं'ति तत्र प्रथमः सम्भवति, अन्यत्रापि तथा श्रवणात्, सुगमश्च, द्वितीयस्त्वेवं व्याख्येयः—चक्रवालविष्कम्भेन-वृत्तव्यासेन, इदं च प्रमाणयोजनमवसेयम्, यदाह—"[1]आयङ्गुलेण वत्थुं उस्सेहपमाणओ मिणसु देहं । नगपुढविविमाणाइं मिणसु पमाणंगुलेणं तु ॥ १ ॥" तथा पालकं-यानविमानं सौधर्मेन्द्रसम्बन्ध्याभियो-

१ आत्मांगुलेन वस्तु उत्सेधांगुलप्रमाणतो मिनु देहम् । नगपृथ्वीविमानानि मिनु प्रमाणांगुलेनैव ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	'आत्मा' आदि सूत्रोक्त शब्दस्य व्याख्या:

प्रत सूत्रांक [१]

प्रत अनुक्रम [१]

गिकपालकाभिधानदेवकृतं वैक्रियं, यानं-गमनं तदर्थं विमानं (यानविमानं) यायतेऽनेनेति यानं तदेव वा विमानं यानविमानं पारियानिकमिति यदुच्यते,'अत्थी'त्यादि, अस्ति-विद्यते एकेषा-केषाञ्चिन्नैरयिकाणामेकं पल्योपमं स्थितिरितिकृत्वा 'प्रज्ञप्ता' प्रवेदिता मया अन्यैश्च जिनैः, सा चतुर्थे प्रस्तटे मध्यमाऽवसेयेति, एवमेकं सागरोपमं त्रयोदशे प्रस्तटे उत्कृष्टा स्थितिः इति ॥ 'असुरिन्दवज्जियाणं'ति चमरबलिवर्जितानां 'भोमेज्जाणं'ति भवनवासिनां भूमौ–पृथिव्यां रत्नप्रभाभिधानायां भवत्वात्तेषामिति, तेषां चैकं पल्योपमं मध्यमा स्थितिर्यत उत्कृष्टा देशोने द्वे पल्योपमे सा, आह च—"दाहिण दिवड्ढ पलियं दो देसूणुत्तरिल्लाणं"ति, 'असंखेज्जे'त्यादि, असङ्ख्येयानि वर्षाण्यायुर्येषां ते तथा ते च ते सञ्ज्ञिनश्च-समनस्कास्ते च ते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चेत्यसङ्ख्येयवर्षायुःसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकास्तेषा केषाञ्चिद् ये हेमवतैरण्यवतवर्षयोरुत्पन्नास्तेषामेकं पल्योपमं स्थितिः, एवं मनुष्यसूत्रमपि, नवरं गर्भे-गर्भाशये व्युत्क्रान्तिः-उत्पत्तिर्येषां ते गर्भव्युत्क्रान्तिका न समूर्च्छनजा इत्यर्थः।'वाणमन्तराणं देवाणं'ति, देवानामेव न तु देवीनां, तासामर्द्धपल्योपमस्य प्रतिपादितत्वात्, 'जोइसियाणं देवाणं'ति चन्द्रविमानदेवानां, न सूर्यादिदेवानां, नापि चन्द्रादिदेवीनां, 'पलियं च सयसहस्सं चन्दाणवि आउयं जाण' इतिवचनात्, 'सोहम्मे कप्पे देवाणं'ति इह देवशब्देन देवा देव्यश्च गृहीताः, सौधर्मे हि पल्योपमाद्धीनतरा स्थितिर्जघन्यतोऽपि नास्ति, इयं च प्रथमप्रस्तटेऽवसेया, 'सोहम्मे कप्पे अत्थे-

१ दाक्षिणात्यानां सार्धं पल्योपमं द्वे देशोने उत्तरत्यानाम् ॥ २ पल्योपमं च शतसहस्राधिकं चन्द्राणामप्यायुर्जानीहि ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१]

प्रत अनुक्रम [१]

गइयाणं देवाणं एगं सागरोवम'मिति, अत्र देवानामेव ग्रहणं न तु देवीनां, उत्कृष्टतोऽपि तत्र तासां पञ्चाशत्पल्यो-
पमस्थितिकत्वात्, तथा एकं सागरोपममिति मध्यमस्थित्यपेक्षया, उत्कर्षतस्तत्र सागरोपमद्वयसद्भावात्, प्रस्तटा-
पेक्षया त्वेषा सप्तमे प्रस्तटे मध्यमावसेया। 'ईसाणे कप्पे देवाण'मित्यत्र देवग्रहणेन देवा देव्यश्च गृह्यन्ते, यतस्तत्र
सातिरेकपल्योपमादन्या जघन्यतः स्थितिरेव नास्ति, 'ईसाणे कप्पे देवाणं अत्थेगइयाण'मित्यत्र देवानामेव ग्रहणं न
देवीनां, तत्र तासामुत्कर्षतोऽपि पञ्चपञ्चाशत्पल्योपमस्थितिकत्वादिति, तथा ये देवाः सागरं-सागराभिधानमेवं सुसा-
गरं सागरकान्तं भवं मनुं मानुषोत्तरं लोकहितमिह चकारो द्रष्टव्यः, समुच्चयस्य द्योतनीयत्वाद्, विमानं-देवनिवास-
विशेषमासाद्येति शेषः, देवत्वेन न तु देवीत्वेन तासां सागरोपमस्थितेरसम्भवात् उत्पन्ना-जातास्तेषां देवीनामेकं साग-
रोपमं स्थितिः, एतानि च विमानानि सप्तमे प्रस्तटेऽवसेयानि ॥ स्थित्यनुसारेण च देवानामुच्छ्वासादयो भवन्तीति तान्
दर्शयन्नाह—'ते ण'मित्यादि, येषां देवानामेकं सागरोपमं स्थितिस्ते देवा णमित्यलङ्कारे अर्द्धमासस्यान्ते इति शेषः
आनन्ति प्राणन्ति, एतदेव क्रमेण व्याख्यानयन्नाह—उच्छ्वसन्ति निःश्वसन्ति, वाशब्दाः विकल्पार्थाः, तथा तेषा-
मेव वर्षसहस्रस्यान्ते इति शेषः, आहारार्थः—आहारप्रयोजनमाहारपुद्गलानां ग्रहणमाभोगतो भवति, अनाभोगतस्तु
प्रतिसमयमेव विग्रहादन्यत्र भवतीति, गाथेह—'जस्स जइ सागरोवमाइं ठिइ तस्स तत्तिएहिं पक्खेहिं। ऊसासो दे-

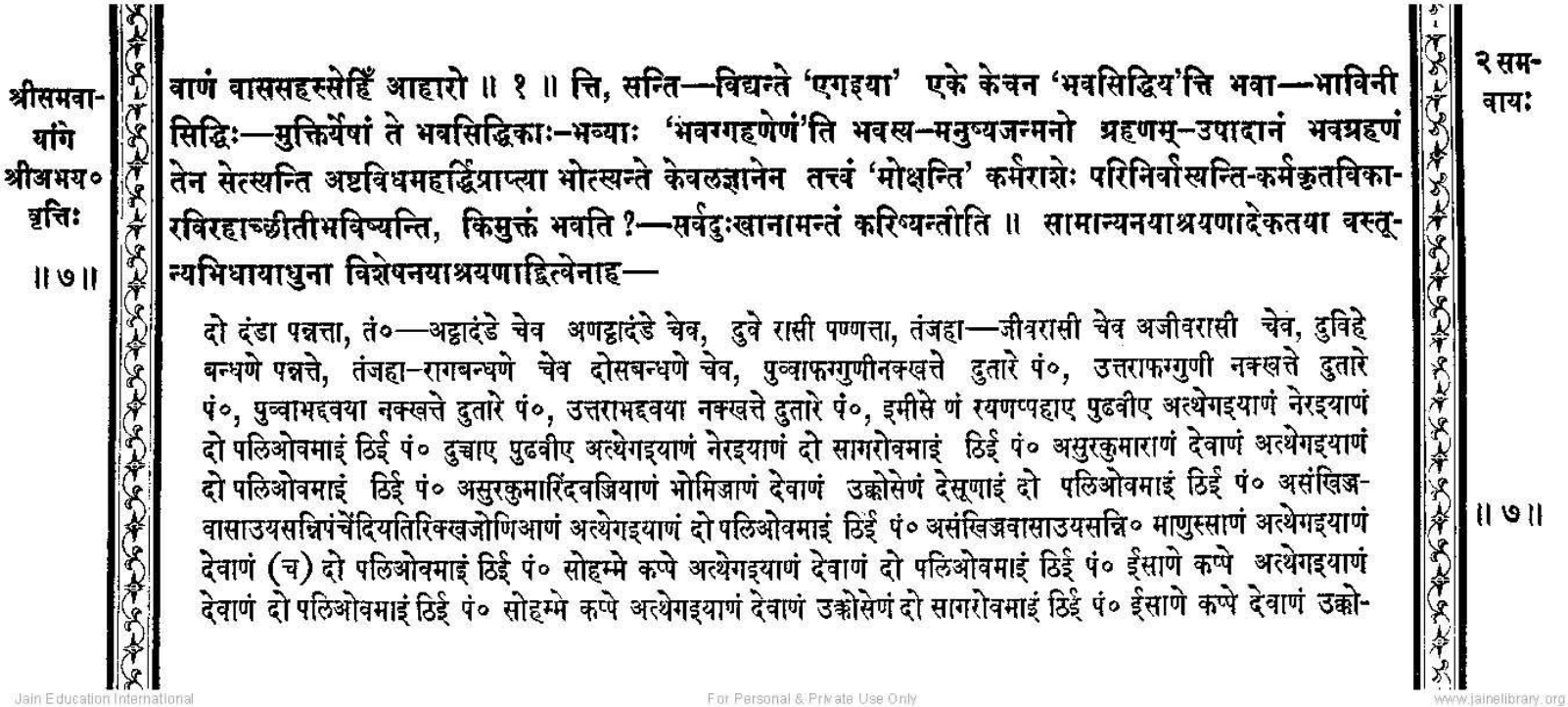
२ स०

१ यस्य यावन्तिः सागरोपमाणि स्थितिस्तस्य तावद्भिः पक्षैः। उच्छ्वासो देवानां वर्षसहस्रैराहारः ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१]

प्रत अनुक्रम [१]



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ७ ॥

वाणं वाससहस्सेहिं आहारो ॥ १ ॥ त्ति, सन्ति—विद्यन्ते 'एगइया' एके केचन 'भवसिद्धिय'त्ति भवा—भाविनी सिद्धिः—मुक्तिर्येषां ते भवसिद्धिकाः—भव्याः 'भवग्गहणेणं'ति भवस्य—मनुष्यजन्मनो ग्रहणम्—उपादानं भवग्रहणं तेन सेत्स्यन्ति अष्टविधमहर्द्धिप्राप्त्या भोत्स्यन्ते केवलज्ञानेन तत्त्वं 'मोक्षन्ति' कर्मराशेः परिनिर्वास्यन्ति-कर्मकृतविकारविरहाच्छीतीभविष्यन्ति, किमुक्तं भवति ?—सर्वदुःखानामन्तं करिष्यन्तीति ॥ सामान्यनयाश्रयणादेकतया वस्तून्यभिधायाधुना विशेषनयाश्रयणाद्वित्वेनाह—

दो दंडा पन्नत्ता, तं०—अट्ठादंडे चेव अणट्ठादंडे चेव, दुवे रासी पण्णत्ता, तंजहा—जीवरासी चेव अजीवरासी चेव, दुविहे बन्धणे पन्नत्ते, तंजहा—रागबन्धणे चेव दोसबन्धणे चेव, पुव्वाफग्गुणीनक्खत्ते दुतारे पं०, उत्तराफग्गुणी नक्खत्ते दुतारे पं०, पुव्वाभद्दवया नक्खत्ते दुतारे पं०, उत्तराभद्दवया नक्खत्ते दुतारे पं०, इमीसे णं रयणप्पहाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पं० दुचाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं दो सागरोवमाइं ठिई पं० असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पं० असुरकुमारिंदवज्जियाणं भोमिज्जाणं देवाणं उक्कोसेणं देसूणाइं दो पलिओवमाइं ठिई पं० असंखिज्जवासाउयसन्निपंचेंदियतिरिक्खजोणिआणं अत्थेगइयाणं दो पलिओवमाइं ठिई पं० असंखिज्जवासाउयसन्नि० माणुस्साणं अत्थेगइयाणं देवाणं (च) दो पलिओवमाइं ठिई पं० सोहम्मे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं दो पलिओवमाइं ठिई पं० ईसाणे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं दो पलिओवमाइं ठिई पं० सोहम्मे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं ठिई पं० ईसाणे कप्पे देवाणं उक्को-

२ समवायः

॥ ७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एते सूत्रे 'दंड' आदि पदार्थस्य द्वित्वं उक्तं

प्रत सूत्रांक [२]

प्रत अनुक्रम [२]

सेणं साहियाइं दो सागरोवमाइं ठिई पं० सणंकुमारे कप्पे देवाणं जहण्णेणं दो सागरोवमाइं ठिई पं० माहिंदे कप्पे देवाणं जहण्णेणं साहियाइं दो सागरोवमाइं ठिई प० जे देवा सुभं सुभकंतं सुभवण्णं सुभगंधं सुभलेसं सुभफासं सोहम्मवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं ठिई पं० ते णं देवा दोण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा तेसि णं देवाणं दोहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ । अत्थेगइया भवसिद्धिया जीवा जे दोहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रम् २ ॥

'दो दंडे'त्यादि सुगममाद्विस्थानकसमासेः, नवरमिह दण्डराशिबन्धनार्थं सूत्राणां त्रयं नक्षत्रार्थं चतुष्टयं स्थित्यर्थं त्रयोदशकमुच्छ्वासाद्यर्थं त्रयमिति, तत्रार्थेन–स्वपरोपकारलक्षणेन प्रयोजनेन दण्डो–हिंसा अर्थदण्डः एतद्विपरीतोऽनर्थदण्ड इति, तथा रत्नप्रभायां द्विपल्योपमा स्थितिश्चतुर्थप्रस्तटे मध्यमा, द्वितीयायां द्वे सागरोपमे स्थितिः षष्ठप्रस्तटे मध्यमा ज्ञेया, तथा असुरेन्द्रवर्जितभवनवासिनां द्वे देशोने पल्योपमे स्थितिरौदीच्यनागकुमारादीनाश्रित्यावसेया, यत आह—'दो देसूणुत्तरिल्लाणं'ति, तथा असङ्ख्येयवर्षायुषां पञ्चेन्द्रियतिरश्चां मनुष्याणां च हरिवर्षरम्यकवर्षजन्मनां द्विपल्योपमा स्थितिरिति ॥ २ ॥ अथ त्रिस्थानकं—

तओ दंडा पं० तं०–मणदण्डे वयदंडे कायदंडे, तओ गुत्तीओ पं०, तंजहा–मणगुत्ती वयगुत्ती कायगुत्ती, तओ सल्ला पं० तं०–मायासल्ले णं नियाणसल्ले णं मिच्छादंसणसल्ले णं, तओ गारवा पं० तं०–इड्ढीगारवे णं रसगारवे णं सायागारवे णं, तओ विरा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एते सूत्रे 'दंड' आदि पदार्थस्य त्रिविधत्वं उक्तं

प्रत सूत्रांक [३]

प्रत अनुक्रम [३]

हणा पं० तं०–नाणविराहणा दंसणविराहणा चरित्तविराहणा, मिगसिरनक्खत्ते तितारे पं०, पुस्सनक्खत्ते तितारे पं० जेट्ठानक्खत्ते तितारे पं० अभीइनक्खत्ते तितारे पं० सवणनक्खत्ते तितारे पं० अस्सिणिनक्खत्ते तितारे पं० भरणीनक्खत्ते तितारे पं०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तिन्नि पलिओवमाइं ठिई पं०, दोच्चाए णं पुढवीए नेरइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पं०, तच्चाए णं पुढवीए नेरइयाणं जहण्णेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पं०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पं०, असंखिज्जवासाउयसन्निपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पं०, असंखिज्जवासाउयसन्निगब्भवक्कंतियमणुस्साणं उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पं०, सोहम्मीसाणेसु अत्थेगइयाणं तिण्णि पलिओवमाइं ठिई पं०, सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई, पं०, जे देवा आभंकरं पभंकरं आभंकरपभंकरं चंदं चंदावत्तं चंदप्पभं चंदकंतं चंदवण्णं चंदलेसं चंदज्झयं चंदसिंगं चंदसिट्ठं चंदकूडं चंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पं० ते णं देवा तिण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तिहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रम् ३ ॥

'तओ' इत्यादि सर्वं सुगमं, नवरमिह दण्डगुप्तिशल्यगौरवविराधनार्थं सूत्राणां पञ्चकं, नक्षत्रार्थं सप्तकं, स्थित्यर्थं नवकम्, उच्छ्वासाद्यर्थं त्रयमिति, तथा दण्ड्यते-चारित्रैश्वर्यापहारतोऽसारीक्रियते एभिरात्मेति दण्डाः–दुष्प्रयुक्तमनः-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३]

प्रत अनुक्रम [३]

प्रभृतयः मन एव दण्डो मनोदण्डो मनसा वा दुष्प्रयुक्तेनात्मनो दण्डो–दण्डनं मनोदण्डः एवमितरावपि, तथा गोपनानि गुप्तयः–मनःप्रभृतीनामशुभप्रवृत्तिनिरोधनानि शुभप्रवृत्तिकरणानि चेति। तथा तोमरादिशल्यानीव शल्यानि दुःखदायकत्वात् मायादीनि, तत्र माया—निकृतिः सैव शल्यं मायाशल्यं 'ण'मित्यलङ्कारे एवमितरे अपि नवरं नि-दानं–देवादिऋद्धीनां दर्शनश्रवणाभ्यामितो ब्रह्मचर्यादेरनुष्ठानान्ममैता भूयासुरित्यध्यवसायो मिथ्यादर्शनम्—अतत्त्वा-र्थश्रद्धानमिति। तथा गौरवाणि—अभिमानलोभाभ्यामात्मनोऽशुभभावगुरुत्वानि तानि च संसारचक्रवालपरिभ्रमण-हेतुकर्मनिदानानि, तत्र ऋद्धा—नरेन्द्रादिपूज्याचार्यत्वादिलक्षणया गौरवम्, ऋद्धिप्राप्त्यभिमानतदप्राप्तिप्रार्थनद्वा-रेणात्मनोऽशुभभावगौरवमित्यर्थः, एवं रसेन गौरवं रसगौरवं सातया गौरवं सातगौरवं चेति। तथा विराधनाः—ख-ण्डनाः, तत्र ज्ञानस्य विराधना ज्ञानविराधना—ज्ञानप्रत्यनीकतानिह्नवादिरूपा एवमितरे अपि, नवरं दर्शनं—सम्य-ग्दर्शनं क्षायिकादि चारित्रं—सामायिकादीति। तथा असङ्ख्यातवर्षायुषां पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मनुष्याणां देवकुरूत्तरकुरु-जन्मनां त्रीणि पल्योपमानीति, तथा आभङ्करं प्रभङ्करं आभङ्करप्रभङ्करं चन्द्रं चन्द्रावर्त्तं चन्द्रप्रभं चन्द्रकान्तं चन्द्रवर्णं चन्द्रलेश्यं चन्द्रध्वजं चन्द्रशृङ्गं चन्द्रसृष्टं चन्द्रकूटं चन्द्रोत्तरावतंसकं विमानमित्यादि ॥ ३ ॥

चत्तारि कसाया प० तं०—कोहकसाए माणकसाए मायाकसाए लोभकसाए, चत्तारि झाणा प० तं०—अट्टज्झाणे रुद्दज्झाणे धम्मज्झाणे सुक्कज्झाणे, चत्तारि विगहाओ प० तं०—इत्थिकहा भत्तकहा रायकहा देसकहा, चत्तारि सण्णा प० तं०–आहार०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एते सूत्रे 'कषाय' आदि पदार्थस्य चतुर्विधत्वं उक्तं

प्रत सूत्रांक [४]

प्रत अनुक्रम [४]

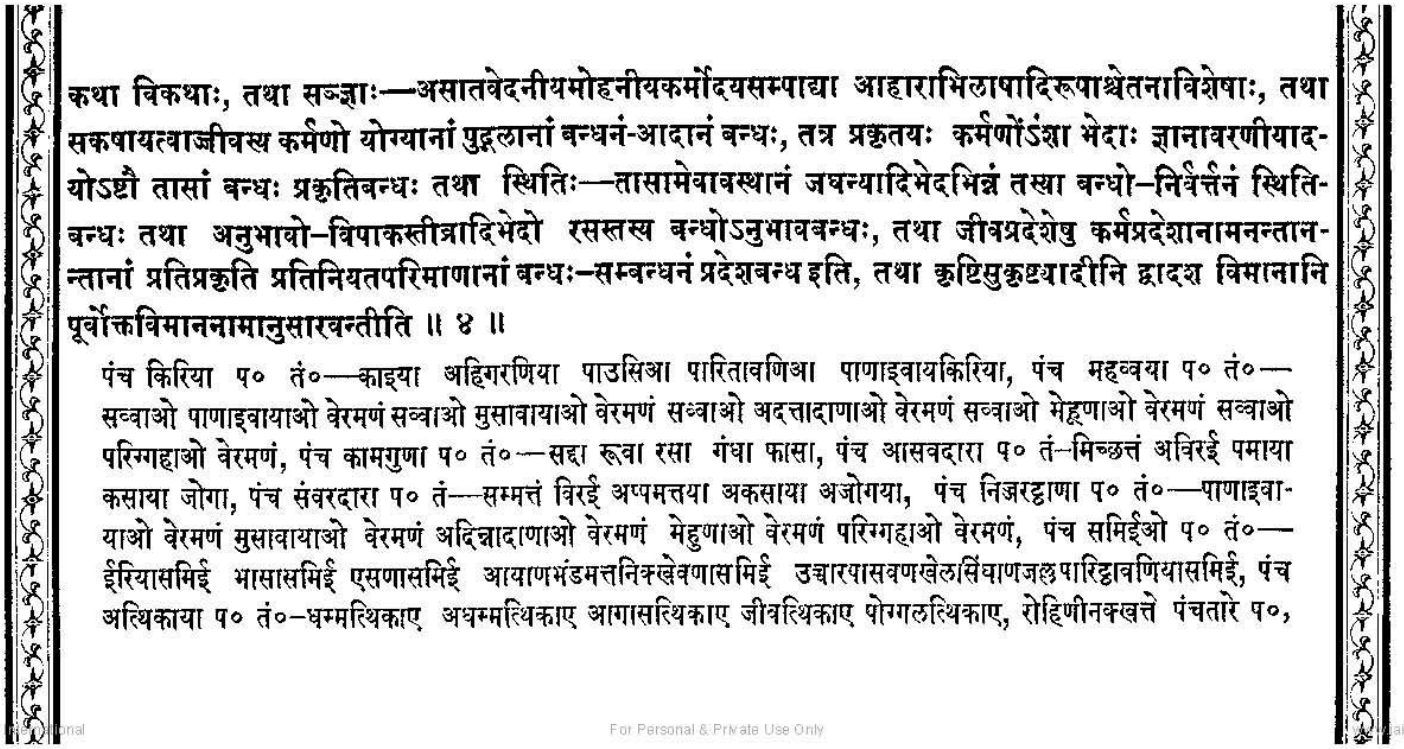
भय० मेहुण० परिग्गहसण्णा चउव्विहे बन्धे प० तं०—पगइबंधे ठिइबन्धे अणुभावबन्धे पएसबन्धे, चउगाउए जोयणे प०, अणुराहानक्खत्ते चउतारे प०, पुव्वासाढानक्खत्ते चउतारे प०, उत्तरासाढानक्खत्ते चउतारे प०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई प०, तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चत्तारि सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई प०, सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा किट्ठिं सुकिट्ठिं किट्ठियावत्तं किट्ठिप्पभं किट्ठिजुत्तं किट्ठिवण्णं किट्ठिलेसं किट्ठिज्झयं किट्ठिसिंगं किट्ठिसिट्ठं किट्ठिकूडं किट्ठुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं चत्तारि सागरोवमाइं ठिई प० ते णं देवा चउण्हऽद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा तेसिं देवाणं चउहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, अत्थेगइआ भवसिद्धिया जीवा जे चउहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करिस्संति ॥ सूत्रम् ४ ॥

चतुःस्थानकमपि सुगममेव, नवरं कषायध्यानविकथासञ्ज्ञाबन्धयोजनार्थं सूत्राणां षट्कं, नक्षत्रार्थं त्रयं, स्थित्यर्थं षट्कं, शेषं तथैव, अन्तर्मुहूर्त्तं यावच्चित्तस्यैकाग्रता योगनिरोधश्च ध्यानं, तत्रार्त्तं मनोज्ञामनोज्ञेषु वस्तुषु वियोगसंयोगादिनिबन्धनचित्तविक्लवलक्षणं रौद्रं हिंसानृतचौर्यधनसंरक्षणाभिसन्धानलक्षणं धर्म्यमाज्ञादिपदार्थस्वरूपपर्यालोचनैकाग्रता शुक्लं पूर्वगतश्रुतावलम्बनेन मनसोऽत्यन्तस्थिरता योगनिरोधश्चेति, तथा विरुद्धाश्चारित्रं प्रति रत्यादिविषयाः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४]

प्रत अनुक्रम [४]



कथा विकथाः, तथा सञ्ज्ञाः—असातवेदनीयमोहनीयकर्मोदयसम्पाद्या आहाराभिलाषादिरूपाश्चेतनाविशेषाः, तथा सकषायत्वाज्जीवस्य कर्मणो योग्यानां पुद्गलानां बन्धनं-आदानं बन्धः, तत्र प्रकृतयः कर्मणोंऽशा भेदाः ज्ञानावरणीयादयोऽष्टौ तासां बन्धः प्रकृतिबन्धः तथा स्थितिः—तासामेवावस्थानं जघन्यादिभेदभिन्नं तस्या बन्धो–निर्वर्त्तनं स्थितिबन्धः तथा अनुभावो–विपाकस्तीव्रादिभेदो रसस्तस्य बन्धोऽनुभावबन्धः, तथा जीवप्रदेशेषु कर्मप्रदेशानामनन्तानन्तानां प्रतिप्रकृति प्रतिनियतपरिमाणानां बन्धः–सम्बन्धनं प्रदेशबन्ध इति, तथा कृष्टिसुकृष्टयादीनि द्वादश विमानानि पूर्वोक्तविमाननामानुसारवन्तीति ॥ ४ ॥

पंच किरिया प० तं०—काइया अहिगरणिया पाउसिआ पारितावणिआ पाणाइवायकिरिया, पंच महव्वया प० तं०—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं सव्वाओ अदत्तादाणाओ वेरमणं सव्वाओ मेहूणाओ वेरमणं सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं, पंच कामगुणा प० तं०—सद्दा रूवा रसा गंधा फासा, पंच आसवदारा प० तं–मिच्छत्तं अविरई पमाया कसाया जोगा, पंच संवरदारा प० तं—सम्मत्तं विरई अप्पमत्तया अकसाया अजोगया, पंच निज्जरट्ठाणा प० तं०—पाणाइवायाओ वेरमणं मुसावायाओ वेरमणं अदिन्नादाणाओ वेरमणं मेहुणाओ वेरमणं परिग्गहाओ वेरमणं, पंच समिईओ प० तं०—ईरियासमिई भासासमिई एसणासमिई आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिई उच्चारपासवणखेलसिंघाणजल्लपारिट्ठावणियासमिई, पंच अत्थिकाया प० तं०–धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए आगासत्थिकाए जीवत्थिकाए पोग्गलत्थिकाए, रोहिणीनक्खत्ते पंचतारे प०,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	एते सूत्रे 'क्रिया' आदि पदार्थस्य पञ्चविधत्वं उक्तं

प्रत सूत्रांक [५]

प्रत अनुक्रम [५]

पुणव्वसुनक्खत्ते पंचतारे प०, हत्थनक्खत्ते पंचतारे प०, विसाहानक्खत्ते पंचतारे प०, धणिट्ठानक्खत्ते पंचतारे प०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पंच पलिओवमाइं ठिई प०, तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पंच सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं पंच पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं पंच पलिओवमाइं ठिई प०, सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं पंच सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा वायं सुवायं वायावत्तं वायप्पभं वायकंतं वायवण्णं वायलेसं वायज्झयं वायसिंगं वायसिट्ठं वायकूडं वाउत्तरवडिंसगं सूरं सुसूरं सूरावत्तं सूरप्पभं सूरकंतं सूरवण्णं सूरलेसं सूरज्झयं सूरसिंगं सूरसिट्ठं सूरकूडं सूरुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं पंच सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा पंचण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा तेसि णं देवाणं पंचहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे पंचहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव अंतं करिस्संति ॥ सूत्रं ५ ॥

पञ्चस्थानकमपि सुगमं, नवरं क्रियामहाव्रतकामगुणाश्रवसंवरनिर्जरास्थानसमित्यस्तिकायार्थं सूत्राणामष्टकं, नक्षत्रार्थं पञ्चकं, स्थित्यर्थं षट्कं, उच्छ्वासाद्यर्थं त्रयमेवेति, तथा क्रियाः—व्यापारविशेषाः तत्र कायेन निर्वृत्ता कायिकी, कायचेष्टेत्यर्थः, अधिक्रियते आत्मा नरकादिषु येन तदधिकरणं तेन निर्वृत्ता आधिकरणिकी—खड्गादिनिर्वर्त्तनादिलक्षणेति, प्रद्वेषो—मत्सरस्तेन निर्वृत्ता प्राद्वेषिकी परितापनं—ताडनादिदुःखविशेषलक्षणं तेन निर्वृत्ता पारितापनिकी प्राणातिपातक्रिया प्रतीतेति, तथा काम्यन्ते—अभिलष्यन्ते इति कामास्ते च ते गुणाश्च—पुद्गलधर्माः शब्दादय इति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५]

प्रत अनुक्रम [५]

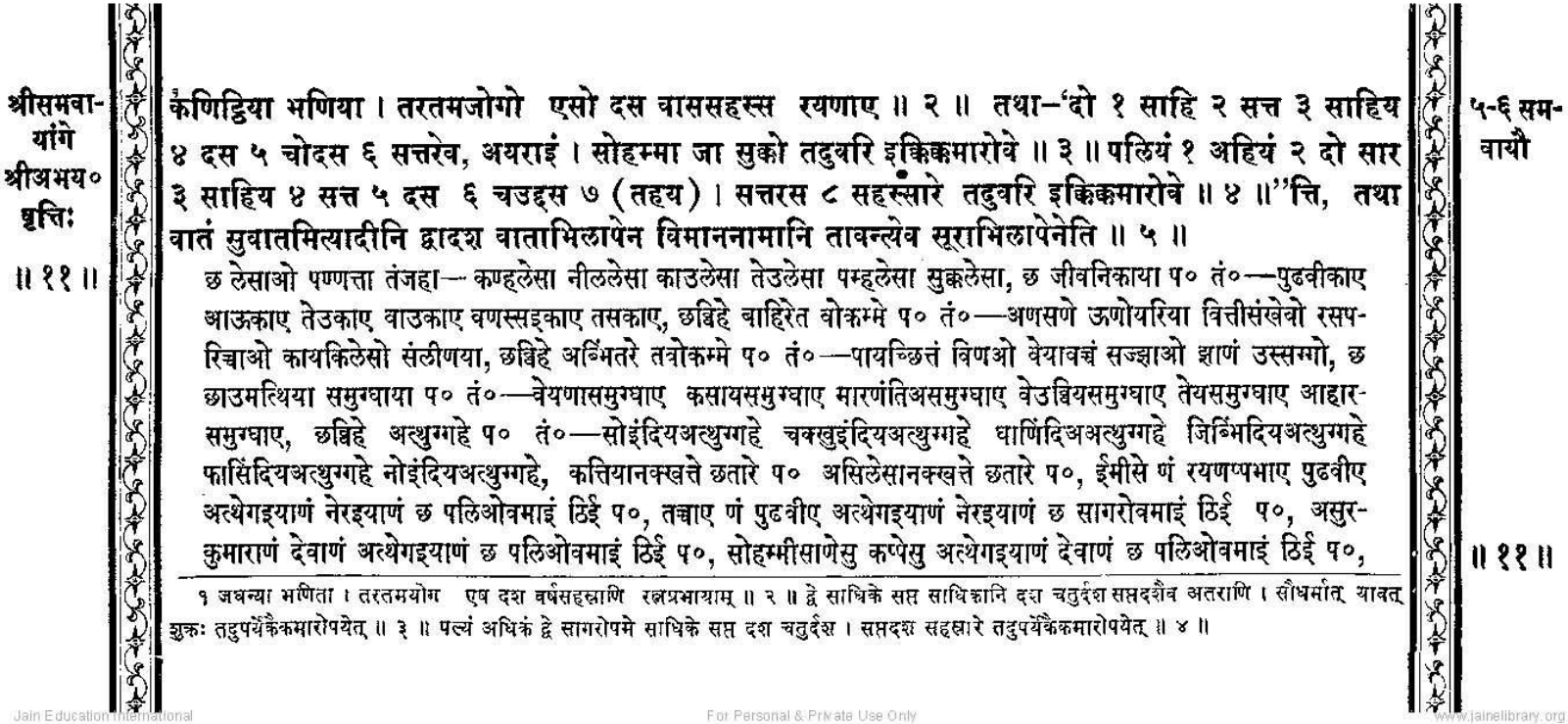
कामगुणाः कामस्य वा–मदनस्योद्दीपका गुणाः कामगुणाः–शब्दादय इति, तथा आश्रवद्वाराणि–कर्मोपादानोपाया मिथ्यात्वादीनि संवरस्य—कर्मानुपादानस्य द्वाराणि—उपायाः संवरद्वाराणि–मिथ्यात्वाद्याश्रवद्वारविपरीतानि सम्यक्त्वादीनि, तथा निर्जरा–देशतः कर्मक्षपणा तस्याः स्थानानि–आश्रयाः कारणानीतियावन्निर्जरास्थानानि—प्राणातिपातविरमणादीनि, एतान्येव च सर्वशब्दविशेषितानि महाव्रतानि भवन्ति, तानि च पूर्वसूत्राभिहितानि स्थूलशब्दविशेषितानि अणुव्रतानि भवन्ति, निर्जरास्थानत्वं पुनरेषां साधारणमिति तदिहैषामभिहितं, तथा समितयः–सङ्गताः प्रवृत्तयः, तत्रेर्यासमितिः—गमने सम्यक् सत्त्वपरिहारतः प्रवृत्तिः भाषासमितिः—निरवद्यवचनप्रवृत्तिः, एषणासमितिः—द्विचत्वारिंशद्दोषवर्जनेन भक्तादिग्रहणे प्रवृत्तिः, आदाने—ग्रहणे भाण्डमात्रयोरुपकरणपरिच्छदस्य निक्षेपणेअवस्थापने समितिः—सुप्रत्युपेक्षितादिसाङ्गत्येन प्रवृत्तिश्चतुर्थी, तथोच्चारस्य—पुरीषस्य प्रश्रवणस्य—मूत्रस्य खेलस्य–निष्ठीवनस्य सिंघाणस्य—नासिकाश्लेष्मणो जल्लस्य—देहमलस्य परिष्ठापनायां—परित्यागे समितिः—स्थण्डिलादिदोषपरिहारतः प्रवृत्तिरिति पञ्चमी, अस्तिकायाः–प्रदेशराशयः धर्मास्तिकायादयो गतिस्थित्यवगाहोपयोगस्पर्शादिलक्षणाः, स्थितिसूत्रेषु स्थितेरुत्कृष्टादिविभाग एवमनुगन्तव्यः, यदुत—सागरमेगं १ तिय २ सत्त ३ दस य ४ सत्तरस ५ तह य बावीसा ६। तेत्तीसं जाव ठिई सत्तसुवि कमेण सुढवीसु ॥ १ ॥ जा पढमाए जेट्ठा सा बीयाए

१ सागरोपममेकं त्रीणि सप्त दश च सप्तदश तथा च द्वाविंशतिः । त्रयस्त्रिंशत् यावत् स्थितिः सप्तस्वपि क्रमेण पृथ्वीषु ॥१॥ या प्रथमायां ज्येष्ठा सा अग्रेतनायां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५]

प्रत अनुक्रम [५]



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ११ ॥

[1]कणिट्ठिया भणिया । तरतमजोगो एसो दस वाससहस्स रयणाए ॥ २ ॥ तथा–'दो १ साहि २ सत्त ३ साहिय ४ दस ५ चोदस ६ सत्तरेव, अयराइं । सोहम्मा जा सुक्को तदुवरि इक्किक्कमारोवे ॥ ३ ॥ पलियं १ अहियं २ दो सार ३ साहिय ४ सत्त ५ दस ६ चउद्दस ७ (तहय) । सत्तरस ८ सहस्सारे तदुवरि इक्किक्कमारोवे ॥ ४ ॥''त्ति, तथा वातं सुवातमित्यादीनि द्वादश वाताभिलापेन विमाननामानि तावन्त्येव सूराभिलापेनेति ॥ ५ ॥

छ लेसाओ पण्णत्ता तंजहा— कण्हलेसा नीललेसा काउलेसा तेउलेसा पम्हलेसा सुक्कलेसा, छ जीवनिकाया प० तं०—पुढवीकाए आऊकाए तेउकाए वाउकाए वणस्सइकाए तसकाए, छव्विहे बाहिरेत बोक्कम्मे प० तं०—अणसणे ऊणोयरिया वित्तीसंखेवो रसपरिचाओ कायकिलेसो संलीणया, छव्विहे अब्भितरे तवोकम्मे प० तं०—पायच्छित्तं विणओ वेयावच्चं सज्झाओ झाणं उस्सग्गो, छ छाउमत्थिया समुग्घाया प० तं०—वेयणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणंतिअसमुग्घाए वेउव्वियसमुग्घाए तेयसमुग्घाए आहारसमुग्घाए, छव्विहे अत्थुग्गहे प० तं०—सोइंदियअत्थुग्गहे चक्खुइंदियअत्थुग्गहे घाणिंदिअअत्थुग्गहे जिब्भिदियअत्थुग्गहे फासिंदियअत्थुग्गहे नोइंदियअत्थुग्गहे, कत्तियानक्खत्ते छतारे प० असिलेसानक्खत्ते छतारे प०, ईमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छ पलिओवमाइं ठिई प०, तच्चाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छ सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं छ पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं छ पलिओवमाइं ठिई प०,

[1] जघन्या भणिता । तरतमयोग एष दश वर्षसहस्राणि रत्नप्रभायाम् ॥ २ ॥ द्वे साधिके सप्त साधिकानि दश चतुर्दश सप्तदशैव अतराणि । सौधर्मात् यावत् शुक्रः तदुपर्येकैकमारोपयेत् ॥ ३ ॥ पल्यं अधिकं द्वे सागरोपमे साधिके सप्त दश चतुर्दश । सप्तदश सहस्रारे तदुपर्येकैकमारोपयेत् ॥ ४ ॥

५-६ समवायौ

॥ ११ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एते सूत्रे 'क्रिया' आदि पदार्थस्य षड्विधत्वं उक्तं

सणंकुमारमाहिंदेसु अत्थेगइयाणं देवाणं छ सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा सयंभुं सयंभूरमणं घोसं सुघोसं महाघोसं किट्टिघोसं वीरं सुवीरं वीरगतं वीरसेणियं वीरावत्तं वीरप्पभं वीरकंतं वीरवण्णं वीरलेसं वीरज्झयं विरसिंगं वीरसिट्ठं वीरकूडं वीरुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं छ सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा छण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा तेसि णं देवाणं छहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे छहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं ६ ॥

षट्स्थानकमथ, तच्च सुबोधं, नवरमिह लेश्या १ जीवनिकाय २ बाह्या ३ऽऽभ्यन्तरतपः ४ समुद्घाता ५ऽवग्रहार्थानि सूत्राणि षट्, नक्षत्रार्थे द्वे, स्थित्यर्थानि षट्, उच्छ्वासाद्यर्थं त्रयमेवेति, तत्र लेश्यानां स्वरूपमिदं—'कृष्णादिद्रव्यसाचिव्यात्, परिणामो य आत्मनः । स्फटिकस्येव तत्रायं, लेश्याशब्दः प्रयुज्यते ॥ १ ॥' इति, तथा बाह्यतपः—बाह्यशरीरस्य परिशोषणेन कर्मक्षपणहेतुत्वादिति, आभ्यन्तरं—चित्तनिरोधप्राधान्येन कर्मक्षपणहेतुत्वादिति, तथा छद्मस्थः—अकेवली तत्र भवा छाद्मस्थिकाः तत्र सम्—एकीभावेनोत्—प्राबल्येन च घातानि—निर्जरणानि समुद्घाताः, वेदनादिपरिणतो हि जीवो बहून् वेदनीयादिकर्मप्रदेशान् कालान्तरानुभवयोग्यानुदीरणाकरणेनाकृष्योदये प्रक्षिप्यानुभूय निर्जरयति, आत्मप्रदेशैः संश्लिष्टान् शातयतीत्यर्थः, ते चेह वेदनादिभेदेन षडुक्ताः, तत्र वेदनासमुद्घातोऽसद्वेद्यकर्माश्रयः कषायसमुद्घातः कषायाख्यचारित्रमोहनीयकर्माश्रयः मारणान्तिकसमुद्घातोऽन्तर्मुहूर्तशेषायुष्ककर्माश्रयो वैक्रु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [६]	प्रत अनुक्रम [६]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ १२ ॥

विकतैजसाहारकसमुद्घाताः शरीरनामकर्माश्रयाः, तत्र वेदनासमुद्घातसमुद्गत आत्मा वेदनीयकर्मपुद्गलशाटनं करोति कषायसमुद्घातसमुद्गतः कषायपुद्गलशातं मारणान्तिकसमुद्घातसमुद्गत आयुःकर्मपुद्गलघातं वैकुर्विकसमुद्घातसमुद्गतस्तु जीवप्रदेशान् शरीराद्बहिर्निष्काश्य शरीरविष्कम्भबाहल्यमात्रमायामतश्च सङ्ख्येयानि योजनानि दण्डं निसृजति निसृज्य च यथास्थूलान् वैक्रियशरीरनामकर्मपुद्गलान् प्राग्बद्धान् शातयति, एवं तैजसाहारकसमुद्घातावपि व्याख्येयाविति, तथा अर्थस्य–सामान्यानिर्देश्यस्वरूपस्य शब्दादेः 'अवे'ति प्रथमं व्यञ्जनावग्रहानन्तरं ग्रहणं–परिच्छेदनमर्थावग्रहः, स चैकसामयिको नैश्चयिको व्यावहारिकस्त्वसङ्ख्येयसामयिकः, स च षोढा—श्रोत्रादिभिरिन्द्रियैर्नोइन्द्रियेण च मनसा जन्यमानत्वादिति, स्थितिसूत्रे स्वयम्भ्वादीनि विंशतिर्विमानानीति ॥ ६ ॥ अथ सप्तमं स्थानकं विव्रियते

सत्त भयट्ठाणा प० तं०—इहलोगभए परलोगभए आदाणभए अकम्हाभए आजीवभए मरणभए असिलोगभए, सत्त समुग्घाया प० तं०—वेयणासमुग्घाए कसायसमुग्घाए मारणंतियसमुग्घाए वेउव्वियसमुग्घाए तेयसमुग्घाए आहारसमुग्घाए केवलिसमुग्घाए, समणे भगवं महावीरे सत्त रयणीओ उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, इहेव जंबुद्दीवे दीवे सत्त वासहरपव्वया प० तं०—चुल्लहिमवंते महाहिमवंते निसढे नीलवंते रुप्पी सिहरी मन्दरे, इहेव जम्बुद्दीवे दीवे सत्त वासा प० तं—भरहे हेमवते हरिवासे महाविदेहे रम्मए एरण्णवए एरवए, खीणमोहेणं भगवया मोहणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मपयडीओ वेए(ज)ई, महानक्खत्ते सततारे प०, कत्तिआइआ

६-७ समवायौ

॥ १२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एते सूत्रे 'क्रिया' आदि पदार्थस्य सप्तविधत्वं उक्तं

प्रत सूत्रांक [७]

प्रत अनुक्रम [७]

सत्त नक्खत्ता पुव्वदारिआ प० [पाठा० अभियाइया सत्त नक्खत्ता], महाइआ सत्त नक्खत्ता दाहिणदारिआ प० अणुराहाइआ सत्त नक्खत्ता अवरदारिआ प० धणिट्ठाइआ सत्त नक्खत्ता उत्तरदारिआ प०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई प०, तच्चाए णं पुढवीए नेरइयाणं उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई प०, चउत्थीए णं पुढवीए नेरइयाणं जहण्णेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सत्त पलिओवमाइं ठिई प०, सणंकुमारे कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई प०, माहिंदे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं साइरेगाइं सत्त सागरोवमाइं ठिई प०, बंभलोए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं सत्त साहिया सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा समं समप्पभं महापभं पभासं भासुरं विमलं कंचणकूडं सणंकुमारवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं सत्त सागरोवमाइं ठिई ते णं देवा सत्तण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा तेसि णं देवाणं सत्तहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे णं सत्तहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रम् ७ ॥

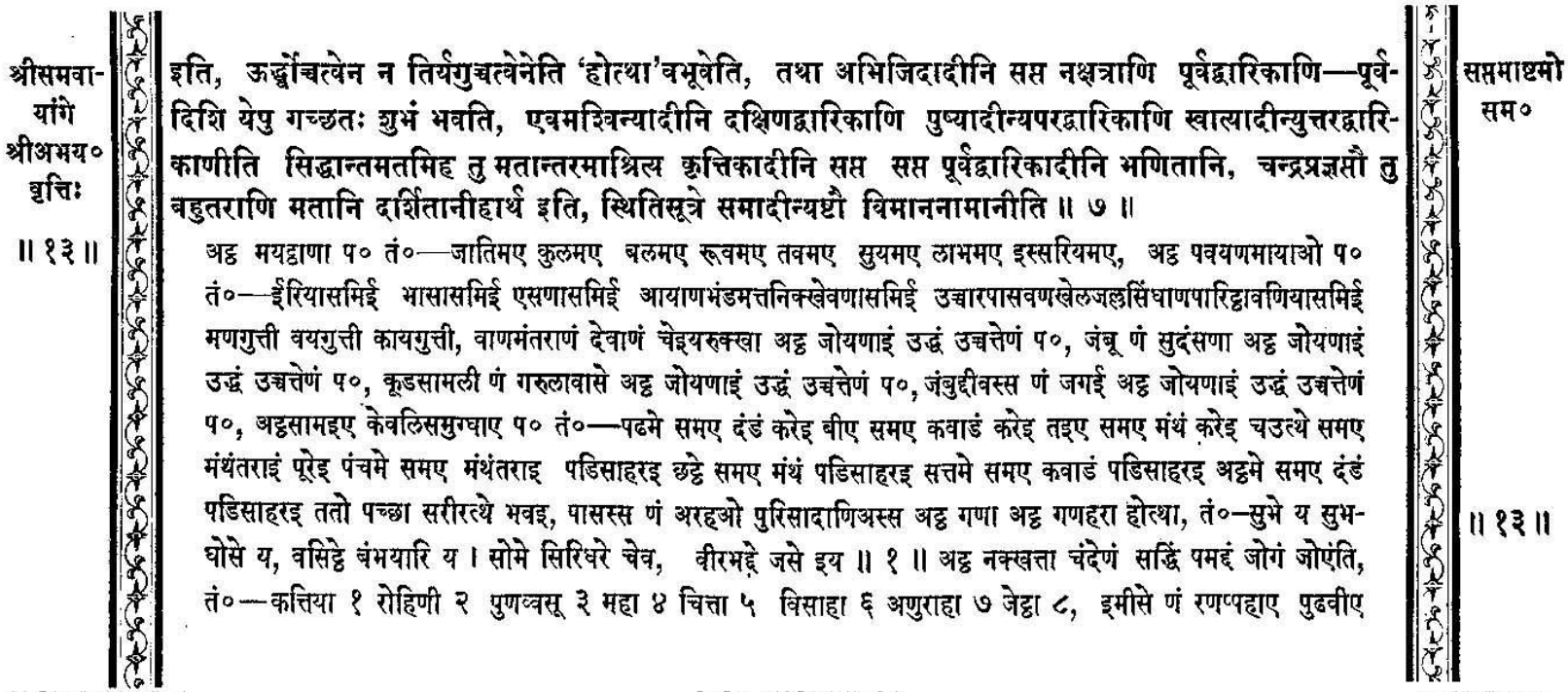
तच्च कण्ठ्यं, नवरमिह भयसमुद्घातमहावीरवर्षधरवर्षक्षीणमोहार्थानि च सूत्राणि षट् नक्षत्रार्थानि पञ्च स्थित्यर्थानि नव उच्छ्वासाद्यर्थानि त्रीण्येवेति, तत्रेहलोकभयं यत्सजातीयात् परलोकभयं यद्विजातीयात् आदानभयं यद् द्रव्यमाश्रित्य जायते अकस्माद्भयं बाह्यनिमित्तनिरपेक्षं स्वविकल्पाज्जातं शेषाणि प्रतीतानि, नवरमश्लोकः—अकीर्त्तिरिति, समुद्घाताः प्राग्वत्, नवरं केवलिसमुद्घातो वेदनीयनामगोत्राश्रय इति, तथा रत्निः—विततावङ्गुलिर्हस्त

३ स०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७]

प्रत अनुक्रम [७]



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ १३ ॥

इति, ऊर्द्धोच्चत्वेन न तिर्यगुच्चत्वेनेति 'होत्था'वभूवेति, तथा अभिजिदादीनि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वारिकाणि—पूर्वदिशि येषु गच्छतः शुभं भवति, एवमश्विन्यादीनि दक्षिणद्वारिकाणि पुष्यादीन्यपरद्वारिकाणि स्वात्यादीन्युत्तरद्वारिकाणीति सिद्धान्तमतमिह तु मतान्तरमाश्रित्य कृत्तिकादीनि सप्त सप्त पूर्वद्वारिकादीनि भणितानि, चन्द्रप्रज्ञप्तौ तु बहुतराणि मतानि दर्शितानीहार्थ इति, स्थितिसूत्रे समादीन्यष्टौ विमाननामानीति ॥ ७ ॥

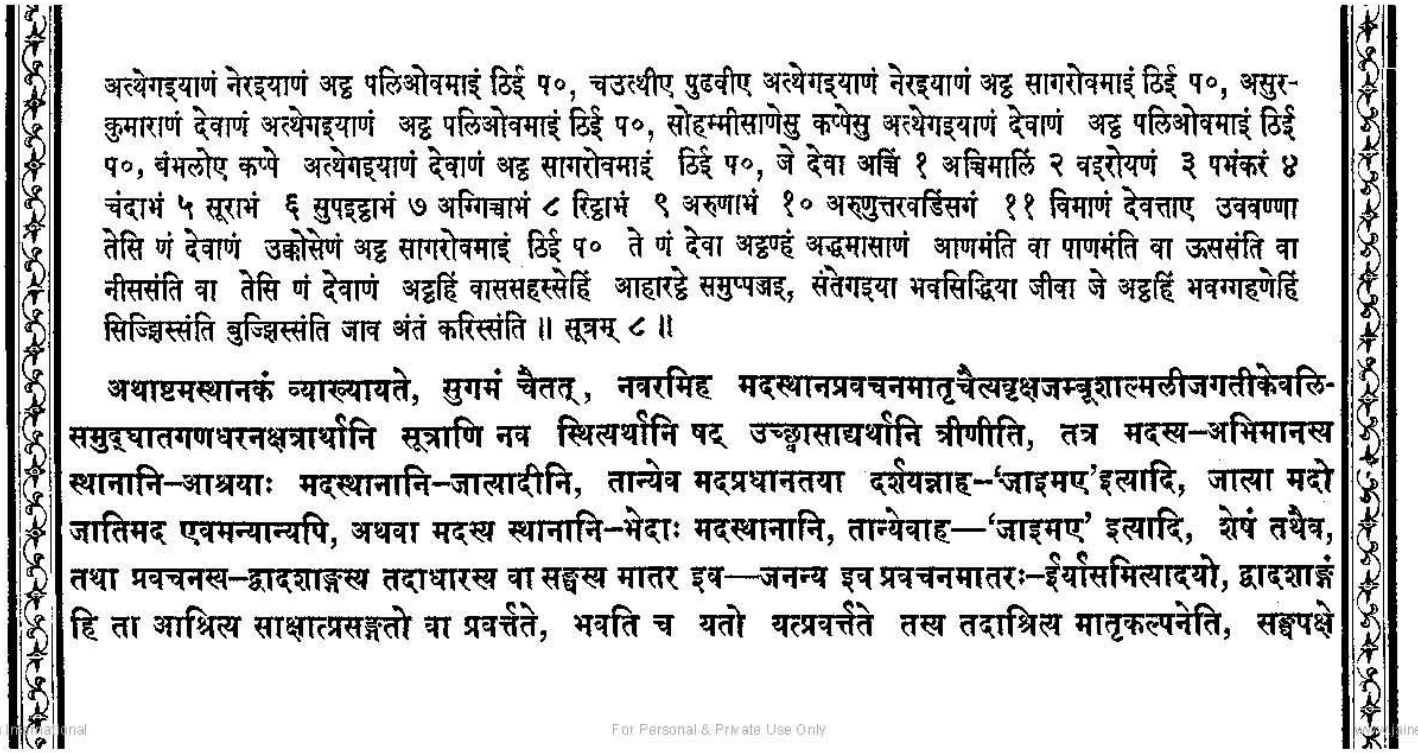
अट्ठ मयट्ठाणा प० तं०—जातिमए कुलमए बलमए रूवमए तवमए सुयमए लाभमए इस्सरियमए, अट्ठ पवयणमायाओ प० तं०—ईरियासमिई भासासमिई एसणासमिई आयाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिई उच्चारपासवणखेलजल्लसिंघाणपारिट्ठावणियासमिई मणगुत्ती वयगुत्ती कायगुत्ती, वाणमंतराणं देवाणं चेइयरुक्खा अट्ठ जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं प०, जंबू णं सुदंसणा अट्ठ जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं प०, कूडसामली णं गरुलावासे अट्ठ जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं प०, जंबुद्दीवस्स णं जगई अट्ठ जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं प०, अट्ठसामइए केवलिसमुग्घाए प० तं०—पढमे समए दंडं करेइ बीए समए कवाडं करेइ तइए समए मंथं करेइ चउत्थे समए मंथंतराइं पूरेइ पंचमे समए मंथंतराइ पडिसाहरइ छट्ठे समए मंथं पडिसाहरइ सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरइ अट्ठमे समए दंडं पडिसाहरइ ततो पच्छा सरीरत्थे भवइ, पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणिअस्स अट्ठ गणा अट्ठ गणहरा होत्था, तं०—सुभे य सुभघोसे य, वसिट्ठे बंभयारि य । सोमे सिरिधरे चेव, वीरभद्दे जसे इय ॥ १ ॥ अट्ठ नक्खत्ता चंदेणं सद्धिं पमदं जोगं जोएंति, तं०—कत्तिया १ रोहिणी २ पुणव्वसू ३ महा ४ चित्ता ५ विसाहा ६ अणुराहा ७ जेट्ठा ८, इमीसे णं रणप्पहाए पुढवीए

सप्तमाष्टमो समः

॥ १३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एते सूत्रे 'क्रिया' आदि पदार्थस्य अष्टविधत्वं उक्तं



अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई प०, चउत्थीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं अट्ठ पलिओवमाइं ठिई प०, बंभलोए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा अचिं १ अचिमालिं २ वइरोयणं ३ पभंकरं ४ चंदाभं ५ सूराभं ६ सुपइट्ठाभं ७ अग्गिच्चाभं ८ रिट्ठाभं ९ अरुणाभं १० अरुणुत्तरवडिंसगं ११ विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं अट्ठ सागरोवमाइं ठिई प० ते णं देवा अट्ठण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा तेसि णं देवाणं अट्ठहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे अट्ठहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति जाव अंतं करिस्संति ॥ सूत्रम् ८ ॥

अथाष्टमस्थानकं व्याख्यायते, सुगमं चैतत्, नवरमिह मदस्थानप्रवचनमातृचैत्यवृक्षजम्बूशाल्मलीजगतीकेवलिसमुद्घातगणधरनक्षत्रार्थानि सूत्राणि नव स्थित्यर्थानि षट् उच्छ्वासाद्यर्थानि त्रीणीति, तत्र मदस्य–अभिमानस्य स्थानानि–आश्रयाः मदस्थानानि–जात्यादीनि, तान्येव मदप्रधानतया दर्शयन्नाह–'जाइमए' इत्यादि, जात्या मदो जातिमद एवमन्यान्यपि, अथवा मदस्य स्थानानि–भेदाः मदस्थानानि, तान्येवाह—'जाइमए' इत्यादि, शेषं तथैव, तथा प्रवचनस्य–द्वादशाङ्गस्य तदाधारस्य वा सङ्घस्य मातर इव—जनन्य इव प्रवचनमातरः–ईर्यासमित्यादयो, द्वादशाङ्गं हि ता आश्रित्य साक्षात्प्रसङ्गतो वा प्रवर्त्तते, भवति च यतो यत्प्रवर्त्तते तस्य तदाश्रित्य मातृकल्पनेति, सङ्घपक्षे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८]

प्रत अनुक्रम [८-१०]

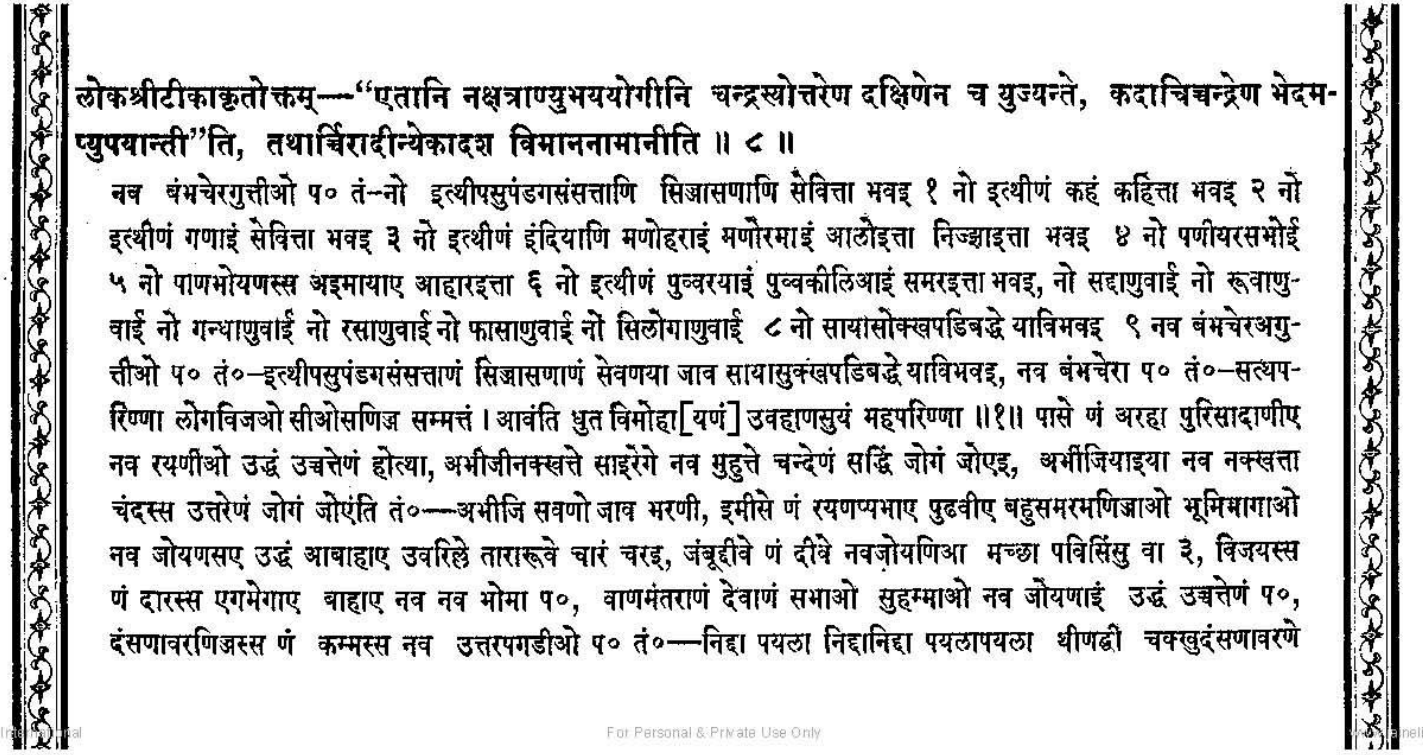
पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

तु यथा शिशुर्मातरममुञ्चन्नात्मलाभं लभते एवं सङ्गस्ताममुञ्चन् सङ्गत्वं लभते नान्यथेतीर्यासमित्यादीनां प्रवचनमातृ-
तेति, तथा व्यन्तरदेवानां चैत्यवृक्षाः तन्नगरेषु सुधर्मादिसभानामग्रतो मणिपीठिकानामुपरि सर्वरत्नमया छत्रचामरध्व-
जादिभिरलङ्कृता भवन्ति, ते चैवं श्लोकाभ्यामवगन्तव्याः—'कलंबो उ पिसायाणं, वडो जक्खाण चेइयं । तुलसी
भूयाणं भवे, रक्खसाणं तु कंडओ ॥ १ ॥ असोगो किण्णराणं च, किंपुरिसाण य चंपओ । नागरुक्खो भुयं-
गाणं, गंधव्वाण य तुंबुरू ॥ २ ॥" त्ति, तथा 'जम्बु'त्ति उत्तरकुरुषु जम्बूवृक्षः पृथिवीपरिणामः सुदर्शनेति तन्नाम,
एवं कूटशाल्मली वृक्षविशेषः, एष देवकुरुषु गरुडजातीयस्य वेणुदेवाभिधानस्य देवस्यावास इति, जगती जम्बूद्वीप-
नगरस्य प्राकारकल्पा पालीति, तथा पार्श्वस्यार्हतः—त्रयोविंशतितमतीर्थकरस्य 'पुरिसादाणीयस्स'त्ति पुरुषाणां
मध्ये आदानीयः–आदेयः पुरुषादानीयस्तस्याष्टौ गणाः—समानवाचनाक्रियाः साधुसमुदायाः अष्टौ गणधराः—तन्ना-
मकाः सूरयः, इदं चैतत्प्रमाणं स्थानाङ्गे पर्युषणाकल्पे च श्रूयते, केवलमावश्यके अन्यथा, तत्र ह्युक्तम्—'दस नवगं
गणाण माणं जिणिंदाणं'ति, कोऽर्थः ?—प्रार्श्वस्य दश गणाः गणधराश्च, तदिह द्वयोरल्पायुष्कत्वादिना कारणेनावि-
वक्षाऽनुगन्तव्येति, 'सुभे' इत्यादि श्लोकः, तथा अष्टौ नक्षत्राणि चन्द्रेण सार्धं प्रमर्द–चन्द्र(:)मध्येन तेषां गच्छतीत्येवं-
लक्षणं योगं–सम्बन्धं योजयन्ति–कुर्वन्ति, अत्रार्थेऽभिहितं लोकश्रियां—"पुणवसु रोहिणी चित्ता मह जेट्ठणुराह कि-
त्तिय विसाहा । चंदस्स उभयजोग"न्ति, यानि च दक्षिणोत्तरयोगीनि तानि प्रमर्दयोगीन्यपि कदाचिद्भवन्ति, यतो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८]

प्रत अनुक्रम [८-१०]



लोकश्रीटीकाकृतोक्तम्—"एतानि नक्षत्राण्युभययोगीनि चन्द्रस्योत्तरेण दक्षिणेन च युज्यन्ते, कदाचिच्चन्द्रेण भेदमप्युपयान्ती"ति, तथार्चिरादीन्येकादश विमाननामानीति ॥ ८ ॥

नव बंभचेरगुत्तीओ प० तं०–नो इत्थीपसुपंडगसंसत्ताणि सिज्जासणाणि सेवित्ता भवइ १ नो इत्थीणं कहं कहित्ता भवइ २ नो इत्थीणं गणाइं सेवित्ता भवइ ३ नो इत्थीणं इंदियाणि मणोहराइं मणोरमाइं आलोइत्ता निज्झाइत्ता भवइ ४ नो पणीयरसभोई ५ नो पाणभोयणस्स अइमायाए आहारइत्ता ६ नो इत्थीणं पुव्वरयाइं पुव्वकीलिआइं समरइत्ता भवइ, नो सद्दाणुवाई नो रूवाणुवाई नो गन्धाणुवाई नो रसाणुवाई नो फासाणुवाई नो सिलोगाणुवाई ८ नो सायासोक्खपडिबद्धे यावि भवइ ९ नव बंभचेरअगुत्तीओ प० तं०–इत्थीपसुपंडगसंसत्ताणं सिज्जासणाणं सेवणया जाव सायासुक्खपडिबद्धे यावि भवइ, नव बंभचेरा प० तं०–सत्थपरिण्णा लोगविजओ सीओसणिज्ज सम्मत्तं । आवंति धुत विमोहा[यणं] उवहाणसुयं महपरिण्णा ॥१॥ पासे णं अरहा पुरिसादाणीए नव रयणीओ उद्धं उच्चत्तेणं होत्था, अभीजीनक्खत्ते साइरेगे नव मुहुत्ते चन्देणं सद्धिं जोगं जोएइ, अभीजियाइया नव नक्खत्ता चंदस्स उत्तरेणं जोगं जोएंति तं०—अभीजि सवणो जाव भरणी, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ नव जोयणसए उद्धं आबाहाए उवरिल्ले तारारूवे चारं चरइ, जंबूदीवे णं दीवे नवजोयणिआ मच्छा पविसिंसु वा ३, विजयस्स णं दारस्स एगमेगाए बाहाए नव नव भोमा प०, वाणमंतराणं देवाणं सभाओ सुहम्माओ नव जोयणाइं उद्धं उच्चत्तेणं प०, दंसणावरणिज्जस्स णं कम्मस्स नव उत्तरपगडीओ प० तं०—निद्दा पयला निद्दानिद्दा पयलापयला थीणद्धी चक्खुदंसणावरणे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एते सूत्रे 'क्रिया' आदि पदार्थस्य नवविधत्वं उक्तं

प्रत सूत्रांक [९]

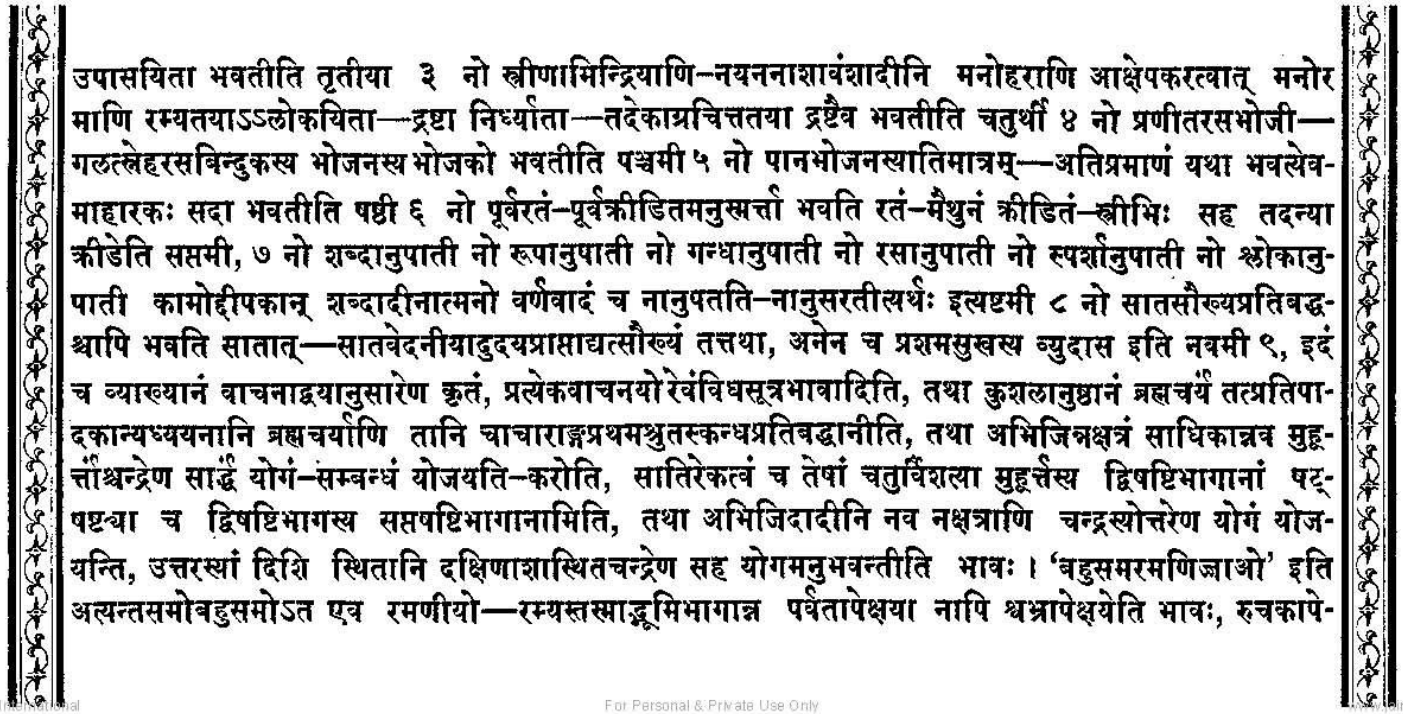
प्रत अनुक्रम [११-१३]

अचक्खुदंसणावरणे ओहिदंसणावरणे केवलदंसणावरणे, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं नव पलिओवमाइं ठिई प०, चउत्थीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं नव सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं नव पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं नव पलिओवमाइं ठिई प०, बंभलोए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं नव सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा पम्हं सुपम्हं पम्हावत्तं पम्हप्पभं पम्हकंतं पम्हवण्णं पम्हलेसं पम्हज्झयं पम्हसिंगं पम्हसिट्ठं पम्हकूडं पम्हुत्तरवडिंसगं सुज्जं सुसुज्जं सुज्जवित्तं सुज्जप्पभं सुज्जकंतं सुज्जवण्णं सुज्जलेसं सुज्जज्झयं सुज्जसिंगं सुज्जसिट्ठं सुज्जकूडं सुज्जुत्तरवडिंसगं (रुइलं) रुइलावत्तं रुइलप्पभं रुइलकंतं रुइलवण्णं रुइललेसं रुइलज्झयं रुइलसिंगं रुइलसिट्ठं रुइलकूडं रुइल्लुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं नव सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा नवण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा तेसि णं देवाणं नवहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे नवहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति जाव सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं ९ ॥

अथ नवमस्थानकं सुखावबोधं, नवरमिह ब्रह्मगुप्तिः १ तदगुप्तिः २ ब्रह्मचर्याध्ययनं ३ पार्श्वार्थं ४ सूत्राणां चतुष्टयं ज्योतिष्कार्थं त्रयं मत्स्य १ भौम २ सभा ३ दर्शनावरणार्थं ४ चतुष्टयं स्थित्याद्यर्थानि तथैव, तत्र ब्रह्मचर्यगुप्तयो मैथुनविरतिपरिरक्षणोपायाः नो स्त्रीपशुपण्डकैः संसक्तानि–सङ्कीर्णानि शय्यासनानि–शयनीयविष्टराणि वसत्यासनानि वा सेवयिता भवतीत्येका १ नो स्त्रीणां कथाः कथयिता भवतीति द्वितीया २ नो स्त्रीगणान्–स्त्रीसमुदायान् सेवयिता—

॥ १५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



उपासयिता भवतीति तृतीया ३ नो स्त्रीणामिन्द्रियाणि–नयननाशावंशादीनि मनोहराणि आक्षेपकरत्वात् मनोरमाणि रम्यतयाऽऽलोकयिता—द्रष्टा निर्ध्याता—तदेकाग्रचित्ततया द्रष्टैव भवतीति चतुर्थी ४ नो प्रणीतरसभोजी—गलत्स्नेहरसबिन्दुकस्य भोजनस्य भोजको भवतीति पञ्चमी ५ नो पानभोजनस्यातिमात्रम्—अतिप्रमाणं यथा भवत्येवमाहारकः सदा भवतीति षष्ठी ६ नो पूर्वरतं–पूर्वक्रीडितमनुस्मर्त्ता भवति रतं–मैथुनं क्रीडितं–स्त्रीभिः सह तदन्या क्रीडेति सप्तमी, ७ नो शब्दानुपाती नो रूपानुपाती नो गन्धानुपाती नो रसानुपाती नो स्पर्शानुपाती नो श्लोकानुपाती कामोद्दीपकान् शब्दादीनात्मनो वर्णवादं च नानुपतति–नानुसरतीत्यर्थः इत्यष्टमी ८ नो सातसौख्यप्रतिबद्धश्चापि भवति सातात्—सातवेदनीयादुदयप्राप्ताद्यत्सौख्यं तत्तथा, अनेन च प्रशमसुखस्य व्युदास इति नवमी ९, इदं च व्याख्यानं वाचनाद्वयानुसारेण कृतं, प्रत्येकवाचनयोरेवंविधसूत्रभावादिति, तथा कुशलानुष्ठानं ब्रह्मचर्यं तत्प्रतिपादकान्यध्ययनानि ब्रह्मचर्याणि तानि चाचाराङ्गप्रथमश्रुतस्कन्धप्रतिबद्धानीति, तथा अभिजिन्नक्षत्रं साधिकान्नव मुहूर्त्तांश्चन्द्रेण सार्द्धं योगं–सम्बन्धं योजयति–करोति, सातिरेकत्वं च तेषां चतुर्विंशत्या मुहूर्त्तस्य द्विषष्टिभागानां षट्षष्ट्या च द्विषष्टिभागस्य सप्तषष्टिभागानामिति, तथा अभिजिदादीनि नव नक्षत्राणि चन्द्रस्योत्तरेण योगं योजयन्ति, उत्तरस्यां दिशि स्थितानि दक्षिणाशास्थितचन्द्रेण सह योगमनुभवन्तीति भावः। 'बहुसमरमणिज्जाओ' इति अत्यन्तसमोबहुसमोऽत एव रमणीयो—रम्यस्तस्माद्भूमिभागान्न पर्वतापेक्षया नापि श्वभ्रापेक्षयेति भावः, रुचकापे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९]

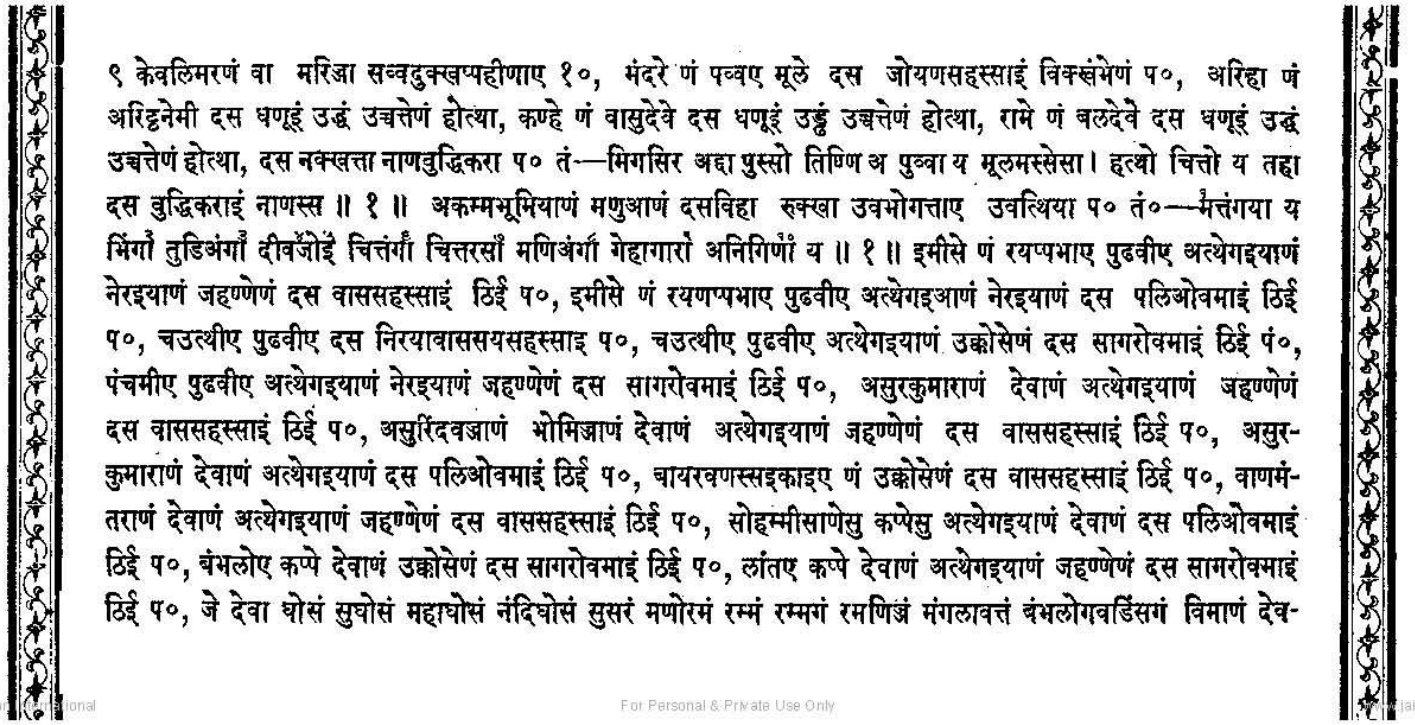
प्रत अनुक्रम [११-१३]

क्षयेति तात्पर्यम्, 'आबाहाए'त्ति अन्तरे कृत्वेति शेषः 'उवरिल्ले'त्ति उपरितनं तारारूपं–तारकजातीयं चारं–भ्रमणं चरति—करोति, 'नवजोयणिय'त्ति नवयोजनायामा एव प्रविशन्ति, लवणसमुद्रे यद्यपि पञ्चयोजनशतिका मत्स्याः सम्भवन्ति तथापि नदीमुखेषु जगतीरन्ध्रौचित्येनैतावतामेव प्रवेश इति, लोकानुभावो वाऽयमिति, विजयद्वारस्य—जम्बूदीपसम्बन्धिनः पूर्वदिग्व्यवस्थितस्य 'एगमेगाए'त्ति एकैकस्यां 'बाहाए'त्ति बाहौ पार्श्वे भौमानि–नगराणीत्येके विशिष्टस्थानानीत्यन्ये, तथा व्यन्तराणां सभा सुधर्मा नव योजनानि ऊर्द्धमुच्चत्वेन तथा पक्ष्मादीनि द्वादश सूर्यादीन्यपि द्वादशैव रुचिरादीन्येकादश विमाननामानीति ॥ ९ ॥

दसविहे समणधम्मे प० तं०—खंती १ मुत्ती २ अज्जवे ३ मद्दवे ४ लाघवे ५ सच्चे ६ संजमे ७ तवे ८ चियाए ९ बंभचेरवासे १०, दस चित्तसमाहिट्ठाणा प० तं—धम्मचिंता वा से असमुप्पण्णपुव्वा समुप्पज्जिज्जा सव्वं धम्मं जाणित्तए १ सुमिणदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा अहातच्चं सुमिणं पासित्तए २ सण्णिनाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा पुव्वभवे सुमरित्तए ३ देवदंसणे वा से असमुप्पन्नपुव्वे समुप्पज्जिज्जा दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुइं दिव्वं देवाणुभावं पासित्तए ४ ओहिनाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा ओहिणा लोगं जाणित्तए ५ ओहिदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा ओहिणा लोगं पासित्तए ६ मणपज्जवनाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा जाव मणोगए भावे जाणित्तए ७ केवलनाणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा केवलं लोगं जाणित्तए ८ केवलदंसणे वा से असमुप्पण्णपुव्वे समुप्पज्जिज्जा केवलं लोयं पासित्तए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एते सूत्रे 'क्रिया' आदि पदार्थस्य दशविधत्वं उक्तं



९ केवलिमरणं वा मरिजा सव्वदुक्खप्पहीणाए १०, मंदरे णं पव्वए मूले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं प०, अरिट्ठा णं अरिट्ठनेमी दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, कण्हे णं वासुदेवे दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, रामे णं बलदेवे दस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, दस नक्खत्ता नाणवुद्धिकरा प० तं०—मिगसिर अद्दा पुस्सो तिण्णि अ पुव्वा य मूलमस्सेसा। हत्थो चित्तो य तहा दस बुद्धिकराइं नाणस्स ॥ १ ॥ अकम्मभूमियाणं मणुआणं दसविहा रुक्खा उवभोगत्ताए उवत्थिया प० तं०—मत्तंगया य भिंगा तुडिअंगा दीवजोई चित्तंगा चित्तरसा मणिअंगा गेहागारा अनिगिणा य ॥ १ ॥ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिई प०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाणं दस पलिओवमाइं ठिई प०, चउत्थीए पुढवीए दस निरयावाससयसहस्साइ प०, चउत्थीए पुढवीए अत्थेगइयाणं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ठिई पं०, पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं जहण्णेणं दस सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिई प०, असुरिंदवज्जाणं भोमिज्जाणं देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं दस पलिओवमाइं ठिई प०, वायरवणस्सइकाइए णं उक्कोसेणं दस वाससहस्साइं ठिई प०, वाणमंतराणं देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं दस पलिओवमाइं ठिई प०, बंभलोए कप्पे देवाणं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ठिई प०, लंतए कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं दस सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा घोसं सुघोसं महाघोसं नंदिघोसं सुसरं मणोरमं रम्मं रम्मगं रमणिज्जं मंगलावत्तं बंभलोगवडिंसगं विमाणं देव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

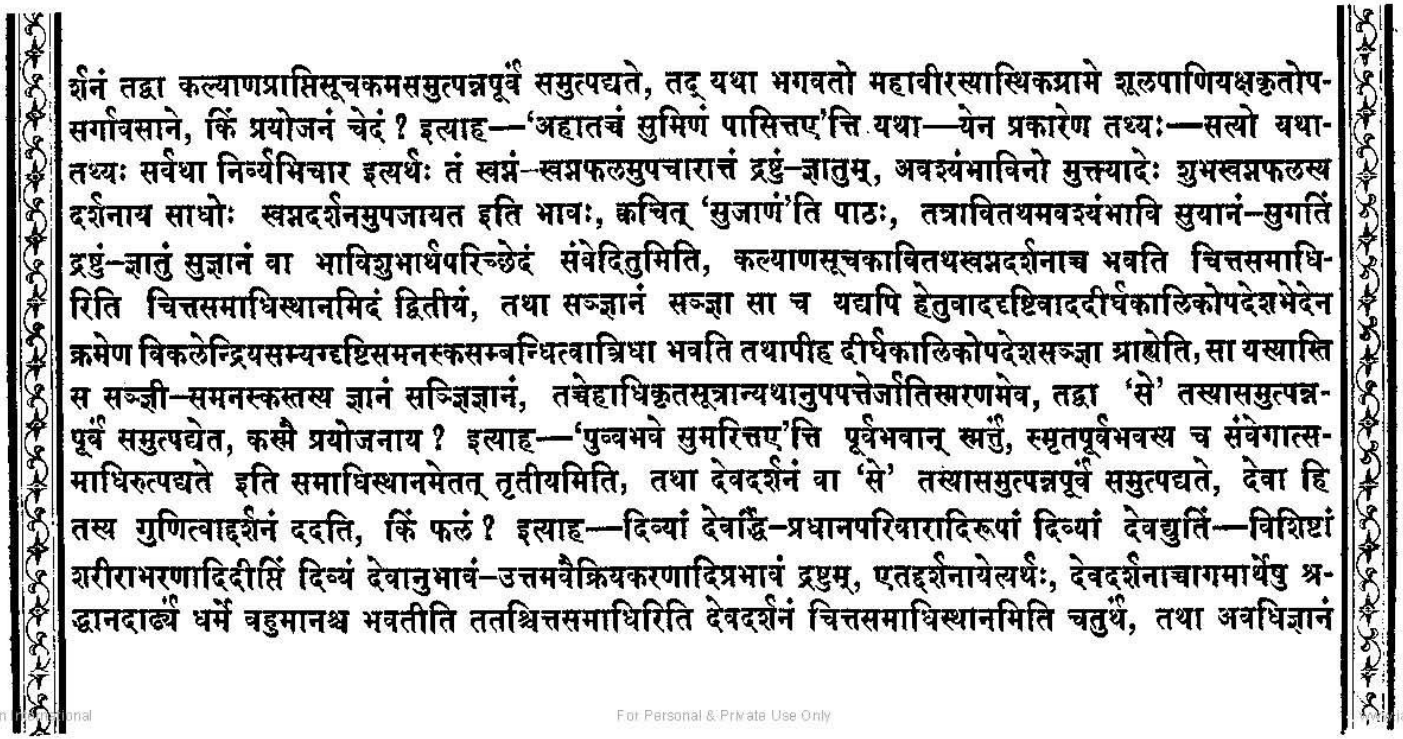
प्रत सूत्रांक [१०]

प्रत अनुक्रम [१४-१८]

त्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा दसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा तेसि णं देवाणं दसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइआ भवसिद्धिया जीवा जे दसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं १० ॥

दशमं स्थानकं सुबोधमेव तथापि किञ्चिल्लिख्यते, इह पञ्चविंशतिः सूत्राणि, तत्र लाघवं द्रव्यतोऽल्पोपधिता भावतो गौरवत्यागः त्यागः सर्वसङ्गानां संविग्नमनोज्ञसाधुदानं वा ब्रह्मचर्येण वसनम्—अवस्थानं ब्रह्मचर्यवास इति, तथा चित्तस्य–मनसः समाधिः–समाधानं प्रशान्तता तस्य स्थानानि–आश्रया भेदा वा चित्तसमाधिस्थानानि, तत्र धर्मा–जीवादिद्रव्याणामुपयोगोत्पादादयः स्वभावास्तेषां चिन्ता–अनुप्रेक्षा धर्मस्य वा–श्रुतचारित्रात्मकस्य सर्वज्ञभाषितस्य हरिहरादिनिगदितधर्मेभ्यः प्रधानोऽयमित्येवं चिन्ता धर्मचिन्ता, वाशब्दो वक्ष्यमाणसमाधिस्थानान्तरापेक्षया विकल्पार्थः, 'स'इति यः कल्याणभागी तस्य साधोरसमुत्पन्नपूर्वा–पूर्वस्मिन्ननादौ अतीते काले ऽनुपजाता तदुत्पादे ह्यपार्द्धपुद्गलपरावर्त्तान्ते कल्याणस्यावश्यंभावात् समुत्पद्येत–जायेत सः, किंप्रयोजनाय चेयमत आह—सर्वं—निरवशेषं धर्मं–जीवादिद्रव्यस्वभावमुपयोगोत्पादादिकं श्रुतादिरूपं वा 'जाणित्तए' ज्ञपरिज्ञया ज्ञातुं ज्ञात्वा च प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरणीयकर्म परिहर्त्तुम्, इदमुक्तं भवति—धर्मचिन्ता धर्मज्ञानकारणभूता जायत इति, इयं च समाधेरुक्तलक्षणस्य स्थानमुक्तलक्षणमेव भवतीति प्रथमं, तथा स्वप्नस्य–निद्रावशविकल्पज्ञानस्य दर्शनं–संवेदनं स्वप्नद-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



र्शनं तद्वा कल्याणप्राप्तिसूचकमसमुत्पन्नपूर्वं समुत्पद्यते, तद् यथा भगवतो महावीरस्यास्थिकग्रामे शूलपाणियक्षकृतोपसर्गावसाने, किं प्रयोजनं चेदं ? इत्याह—'अहातच्चं सुमिणं पासित्तए'त्ति यथा—येन प्रकारेण तथ्यः—सत्यो यथातथ्यः सर्वथा निर्व्यभिचार इत्यर्थः तं स्वप्नं—स्वप्नफलमुपचारात्तं द्रष्टुं—ज्ञातुम्, अवश्यंभाविनो मुक्त्यादेः शुभस्वप्नफलस्य दर्शनाय साधोः स्वप्नदर्शनमुपजायत इति भावः, क्वचित् 'सुजाणं'ति पाठः, तत्रावितथमवश्यंभावि सुयानं—सुगतिं द्रष्टुं—ज्ञातुं सुज्ञानं वा भाविशुभार्थपरिच्छेदं संवेदितुमिति, कल्याणसूचकावितथस्वप्नदर्शनाच्च भवति चित्तसमाधिरिति चित्तसमाधिस्थानमिदं द्वितीयं, तथा सञ्ज्ञानं सञ्ज्ञा सा च यद्यपि हेतुवाददृष्टिवाददीर्घकालिकोपदेशभेदेन क्रमेण विकलेन्द्रियसम्यग्दृष्टिसमनस्कसम्बन्धित्वात्त्रिधा भवति तथापीह दीर्घकालिकोपदेशसञ्ज्ञा ग्राह्येति, सा यस्यास्ति स सञ्ज्ञी—समनस्कस्तस्य ज्ञानं सञ्ज्ञिज्ञानं, तच्चेहाधिकृतसूत्रान्यथानुपपत्तेर्जातिस्मरणमेव, तद्वा 'से' तस्यासमुत्पन्नपूर्वं समुत्पद्येत, कस्मै प्रयोजनाय ? इत्याह—'पुव्वभवे सुमरित्तए'त्ति पूर्वभवान् स्मर्तुं, स्मृतपूर्वभवस्य च संवेगात्समाधिरुत्पद्यते इति समाधिस्थानमेतत् तृतीयमिति, तथा देवदर्शनं वा 'से' तस्यासमुत्पन्नपूर्वं समुत्पद्यते, देवा हि तस्य गुणित्वाद्दर्शनं ददति, किं फलं ? इत्याह—दिव्यां देवर्द्धि—प्रधानपरिवारादिरूपां दिव्यां देवद्युतिं—विशिष्टां शरीराभरणादिदीप्तिं दिव्यं देवानुभावं—उत्तमवैक्रियकरणादिप्रभावं द्रष्टुम्, एतद्दर्शनायेत्यर्थः, देवदर्शनाच्चागमार्थेषु श्रद्धानदार्ढ्यं धर्मे बहुमानश्च भवतीति ततश्चित्तसमाधिरिति देवदर्शनं चित्तसमाधिस्थानमिति चतुर्थं, तथा अवधिज्ञानं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०]

प्रत अनुक्रम [१४-१८]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ १८ ॥

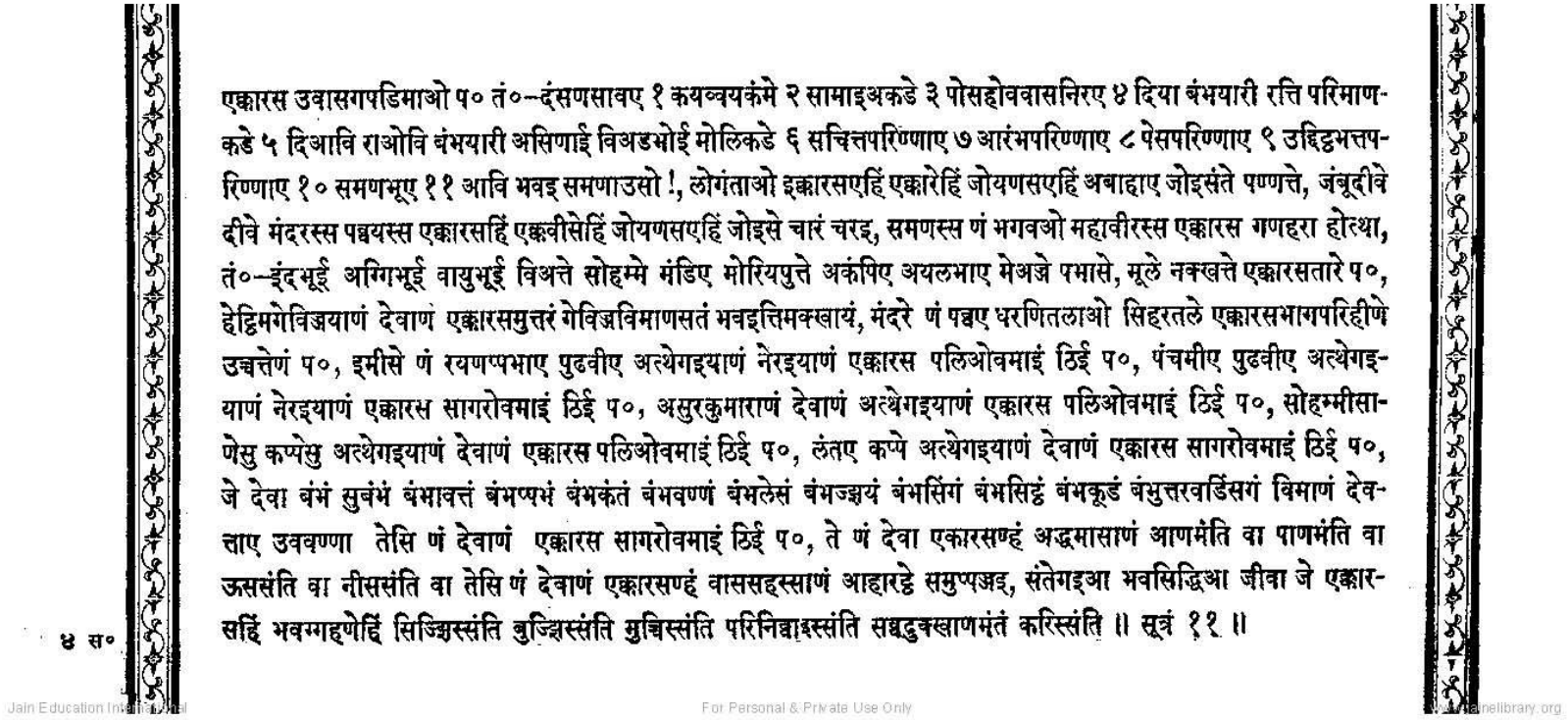
वा 'से' तस्याससमुत्पन्नपूर्वं समुत्पद्येत, किमर्थं इत्याह—अवधिना–मर्यादया नियतद्रव्यक्षेत्रकालभावरूपेण लोकं ज्ञातुं लोकज्ञानायेत्यर्थः, भवति च विशिष्टज्ञानाच्चित्तसमाधिरिति पञ्चमं तदिति, एवमवधिदर्शनसूत्रमपीति षष्ठं, तथा मनःपर्यवज्ञानं वा 'से' तस्याससमुत्पन्नपूर्वं समुत्पद्येत, किमर्थं अत आह—'मणोगते भावे जाणित्तए' अर्द्धतृतीयद्वीपसमुद्रेषु सञ्ज्ञिनां पञ्चेन्द्रियाणां पर्याप्तकानां मनोगतान् भावान् ज्ञातुम्, एतद्ज्ञानायेत्यर्थं इति सप्तमं, तथा केवलज्ञानं वा 'से' तस्याससमुत्पन्नपूर्वं समुत्पद्येत, केवलः–परिपूर्णः लोक्यते–दृश्यते केवलालोकेनेति लोको–लोकालोकस्वरूपं वस्तु तद् ज्ञातुं केवलज्ञानस्य च समाधिभेदत्वा[चित्तसमाधिभेदत्वा]च्चित्तसमाधिस्थानता, इह चामनस्कतया केवलिनश्चित्तं चैतन्यमवसेयमित्यष्टमं, एवं केवलदर्शनसूत्रं नवरं द्रष्टुमिति विशेष इति नवमं, तथा केवलिमरणं वा म्रियेत–कुर्यात् इत्यर्थः, किमर्थं अत आह—'सर्वदुःखप्रहाणाये'ति, इदं तु केवलिमरणं सर्वोत्तमसमाधिस्थानमेवेति दशममिति, तथा अकर्मभूमिकानां–भोगभूमिजन्मनां मनुष्याणां दशविधा 'रुक्ख'त्ति कल्पवृक्षाः 'उवभोगत्ताए'त्ति उपभोग्यत्वाय 'उवत्थिय'त्ति उपस्थिता–उपनता इत्यर्थः, तत्र मत्ताङ्गकाः मद्यकारणभूताः 'भिंग'त्ति भाजनदायिनः 'तुडियंग'त्ति तूर्याङ्गसम्पादकाः 'दीव'त्ति दीपशिखाः–प्रदीपकार्यकारिणः 'जोइ'त्ति ज्योतिः–अग्निसत्कार्यकारिण इति 'चित्तंग'त्ति चित्राङ्गाः पुष्पदायिनः चित्ररसा–भोजनदायिनः मण्यङ्गाः–आभरणदायिनः गेहाकाराः–भवनत्वेनोपकारिणः 'अणिगिण'त्ति अनग्नत्वं–सवस्त्रत्वं तद्धेतुत्वादनग्ना इति, घोषादीन्येकादश विमाननामानीति ॥ १० ॥

दशमः समवायः ॥ १८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [११]

प्रत अनुक्रम [१९]



४ स०

एक्कारस उवासगपडिमाओ प० तं०–दंसणसावए १ कयव्वयकंमे २ सामाइअकडे ३ पोसहोववासनिरए ४ दिया बंभयारी रत्ति परिमाणकडे ५ दिआवि राओवि बंभयारी असिणाई विअडभोई मोलिकडे ६ सचित्तपरिण्णाए ७ आरंभपरिण्णाए ८ पेसपरिण्णाए ९ उद्दिट्ठभत्तपरिण्णाए १० समणभूए ११ आवि भवइ समणाउसो !, लोगंताओ इक्कारसएहिं एक्कारेहिं जोयणसएहिं अबाहाए जोइसंते पण्णत्ते, जंबूदीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स एक्कारसहिं एक्कवीसेहिं जोयणसएहिं जोइसे चारं चरइ, समणस्स णं भगवओ महावीरस्स एक्कारस गणहरा होत्था, तं०–इंदभूई अग्गिभूई वायुभूई विअत्ते सोहम्मे मंडिए मोरियपुत्ते अकंपिए अयलभाए मेअज्जे पभासे, मूले नक्खत्ते एक्कारसतारे प०, हेट्ठिमगेविज्जयाणं देवाणं एक्कारसमुत्तरं गेविज्जविमाणसतं भवइत्तिमक्खायं, मंदरे णं पव्वए धरणितलाओ सिहरतले एक्कारसभागपरिहीणे उच्चत्तेणं प०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कारस पलिओवमाइं ठिई प०, पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कारस सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एक्कारस पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कारस पलिओवमाइं ठिई प०, लंतए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कारस सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा बंभं सुबंभं बंभावत्तं बंभप्पभं बंभकंतं बंभवण्णं बंभलेसं बंभज्झयं बंभसिंगं बंभसिट्ठं बंभकूडं बंभुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं एक्कारस सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा एक्कारसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा तेसि णं देवाणं एक्कारसण्हं वाससहस्साणं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइआ भवसिद्धिआ जीवा जे एक्कारसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं ११ ॥

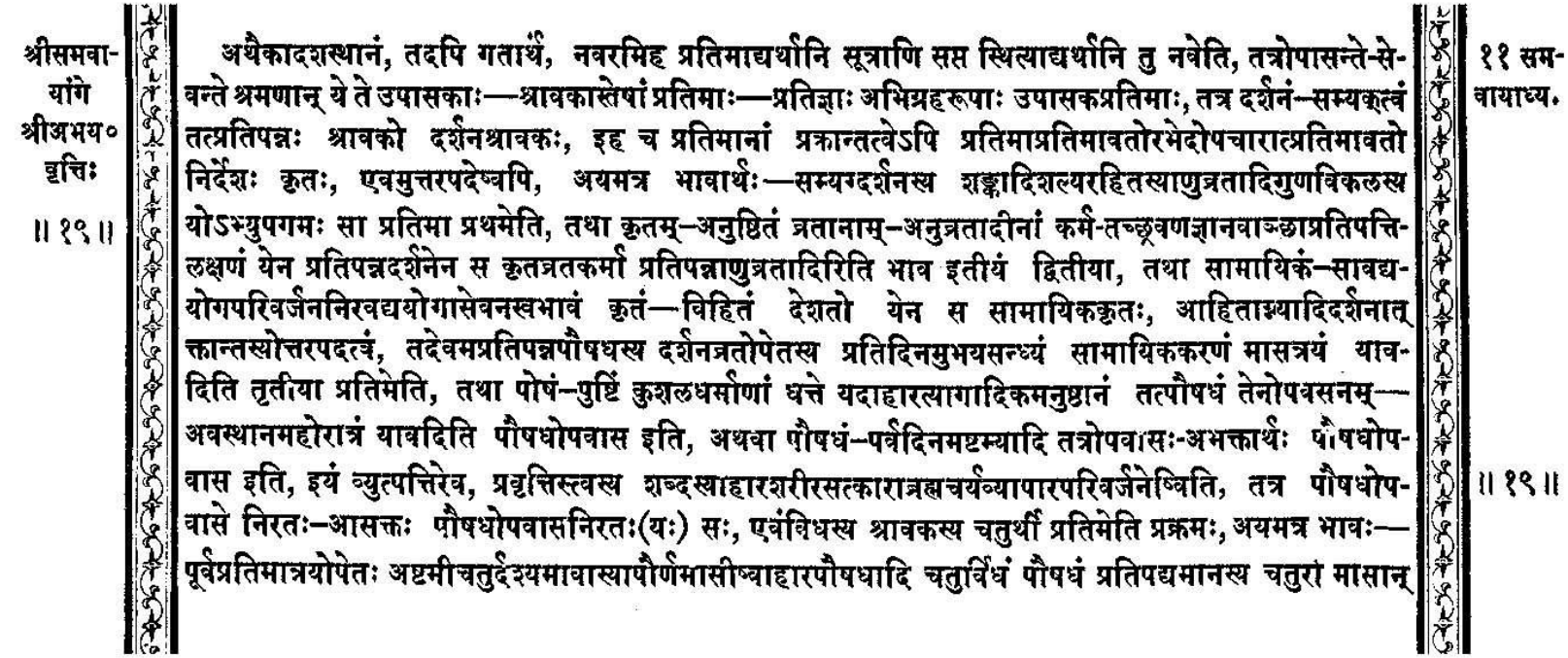
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एते सूत्रे 'क्रिया' आदि पदार्थस्य एकादशविधत्वं उक्तं | (ईसी तरह आगे भी प्रत्येक समवायमें समझ लेना)

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [११]

प्रत अनुक्रम [१९]



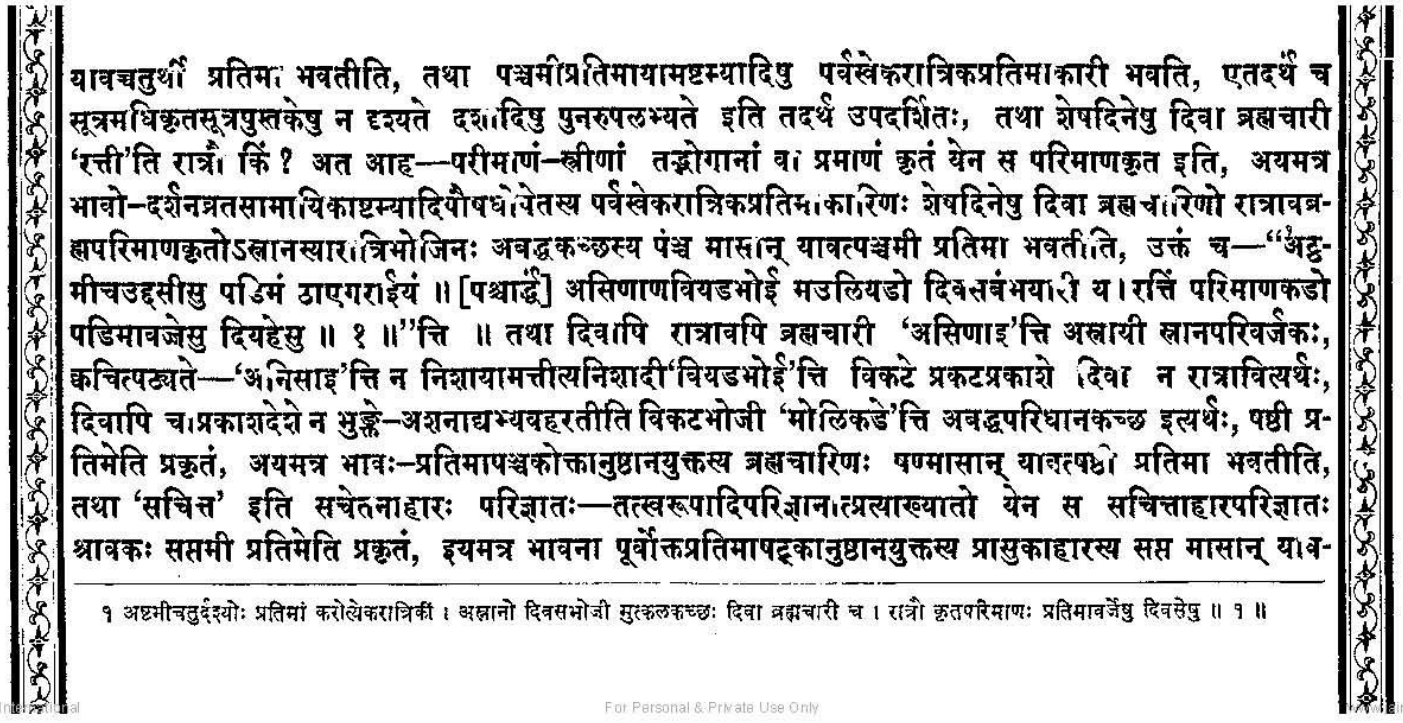
श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ १९ ॥

अथैकादशस्थानं, तदपि गतार्थं, नवरमिह प्रतिमाद्यर्थानि सूत्राणि सप्त स्थित्याद्यर्थानि तु नवेति, तत्रोपासन्ते-सेवन्ते श्रमणान् ये ते उपासकाः—श्रावकास्तेषां प्रतिमाः—प्रतिज्ञाः अभिग्रहरूपाः उपासकप्रतिमाः, तत्र दर्शनं—सम्यक्त्वं तत्प्रतिपन्नः श्रावको दर्शनश्रावकः, इह च प्रतिमानां प्रक्रान्तत्वेऽपि प्रतिमाप्रतिमावतोरभेदोपचारात्प्रतिमावतो निर्देशः कृतः, एवमुत्तरपदेष्वपि, अयमत्र भावार्थः—सम्यग्दर्शनस्य शङ्कादिशल्यरहितस्याणुव्रतादिगुणविकलस्य योऽभ्युपगमः सा प्रतिमा प्रथमेति, तथा कृतम्—अनुष्ठितं व्रतानाम्—अनुव्रतादीनां कर्म-तच्छ्रवणज्ञानवाञ्छाप्रतिपत्तिलक्षणं येन प्रतिपन्नदर्शनेन स कृतव्रतकर्मा प्रतिपन्नाणुव्रतादिरिति भाव इतीयं द्वितीया, तथा सामायिकं—सावद्ययोगपरिवर्जननिरवद्ययोगासेवनस्वभावं कृतं—विहितं देशतो येन स सामायिककृतः, आहिताग्न्यादिदर्शनात् क्तान्तस्योत्तरपदत्वं, तदेवमप्रतिपन्नपौषधस्य दर्शनव्रतोपेतस्य प्रतिदिनमुभयसन्ध्यं सामायिककरणं मासत्रयं यावदिति तृतीया प्रतिमेति, तथा पोषं—पुष्टिं कुशलधर्माणां धत्ते यदाहारत्यागादिकमनुष्ठानं तत्पौषधं तेनोपवसनम्—अवस्थानमहोरात्रं यावदिति पौषधोपवास इति, अथवा पौषधं—पर्वदिनमष्टम्यादि तत्रोपवासः-अभक्तार्थः पौषधोपवास इति, इयं व्युत्पत्तिरेव, प्रवृत्तिस्त्वस्य शब्दस्याहारशरीरसत्काराब्रह्मचर्यव्यापारपरिवर्जनेष्विति, तत्र पौषधोपवासे निरतः—आसक्तः पौषधोपवासनिरतः(यः) सः, एवंविधस्य श्रावकस्य चतुर्थी प्रतिमेति प्रक्रमः, अयमत्र भावः—पूर्वप्रतिमात्रयोपेतः अष्टमीचतुर्दश्यमावास्यापौर्णमासीष्वाहारपौषधादि चतुर्विधं पौषधं प्रतिपद्यमानस्य चतुरो मासान्

११ समवायाध्य. ॥ १९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रावकस्य एकादश प्रतिमायाः वर्णनं



यावच्चतुर्थी प्रतिमा भवतीति, तथा पञ्चमीप्रतिमायामष्टम्यादिषु पर्वस्वेकरात्रिकप्रतिमाकारी भवति, एतदर्थं च सूत्रमधिकृतसूत्रपुस्तकेषु न दृश्यते दशादिषु पुनरुपलभ्यते इति तदर्थ उपदर्शितः, तथा शेषदिनेषु दिवा ब्रह्मचारी 'रत्ती'ति रात्रौ किं ? अत आह—परिमाणं–स्त्रीणां तद्भोगानां वा प्रमाणं कृतं येन स परिमाणकृत इति, अयमत्र भावो–दर्शनव्रतसामायिकाष्टम्यादिपौषधोपेतस्य पर्वस्वेकरात्रिकप्रतिमाकारिणः शेषदिनेषु दिवा ब्रह्मचारिणो रात्रावब्रह्मपरिमाणकृतोऽस्नानस्यारात्रिभोजिनः अवद्धकच्छस्य पंच मासान् यावत्पञ्चमी प्रतिमा भवतीति, उक्तं च—"अट्ठमीचउद्दसीसु पडिमं ठाएगराईयं ॥ [पश्चार्द्धं] असिणाणवियडभोई मउलियडो दिवसबंभयारी य। रत्तिं परिमाणकडो पडिमावज्जेसु दियहेसु ॥ १ ॥"त्ति ॥ तथा दिवापि रात्रावपि ब्रह्मचारी 'असिणाइ'त्ति अस्नायी स्नानपरिवर्जकः, क्वचित्पठ्यते—'अनिसाइ'त्ति न निशायामत्तीत्यनिशादी'वियडभोई'त्ति विकटे प्रकटप्रकाशे दिवा न रात्रावित्यर्थः, दिवापि च प्रकाशदेशे न भुङ्क्ते–अशनाद्यभ्यवहरतीति विकटभोजी 'मोलिकडे'त्ति अवद्धपरिधानकच्छ इत्यर्थः, षष्ठी प्रतिमेति प्रकृतं, अयमत्र भावः–प्रतिमापञ्चकोक्तानुष्ठानयुक्तस्य ब्रह्मचारिणः षण्मासान् यावत्षष्ठी प्रतिमा भवतीति, तथा 'सचित्त' इति सचेतनाहारः परिज्ञातः—तत्स्वरूपादिपरिज्ञानात्प्रत्याख्यातो येन स सचित्ताहारपरिज्ञातः श्रावकः सप्तमी प्रतिमेति प्रकृतं, इयमत्र भावना पूर्वोक्तप्रतिमापट्कानुष्ठानयुक्तस्य प्रासुकाहारस्य सप्त मासान् याव-

१ अष्टमीचतुर्दश्योः प्रतिमां करोत्येकरात्रिकीं । अस्नानो दिवसभोजी मुत्कलकच्छः दिवा ब्रह्मचारी च । रात्रौ कृतपरिमाणः प्रतिमावर्जेषु दिवसेषु ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	श्रावकस्य एकादश प्रतिमायाः वर्णनं

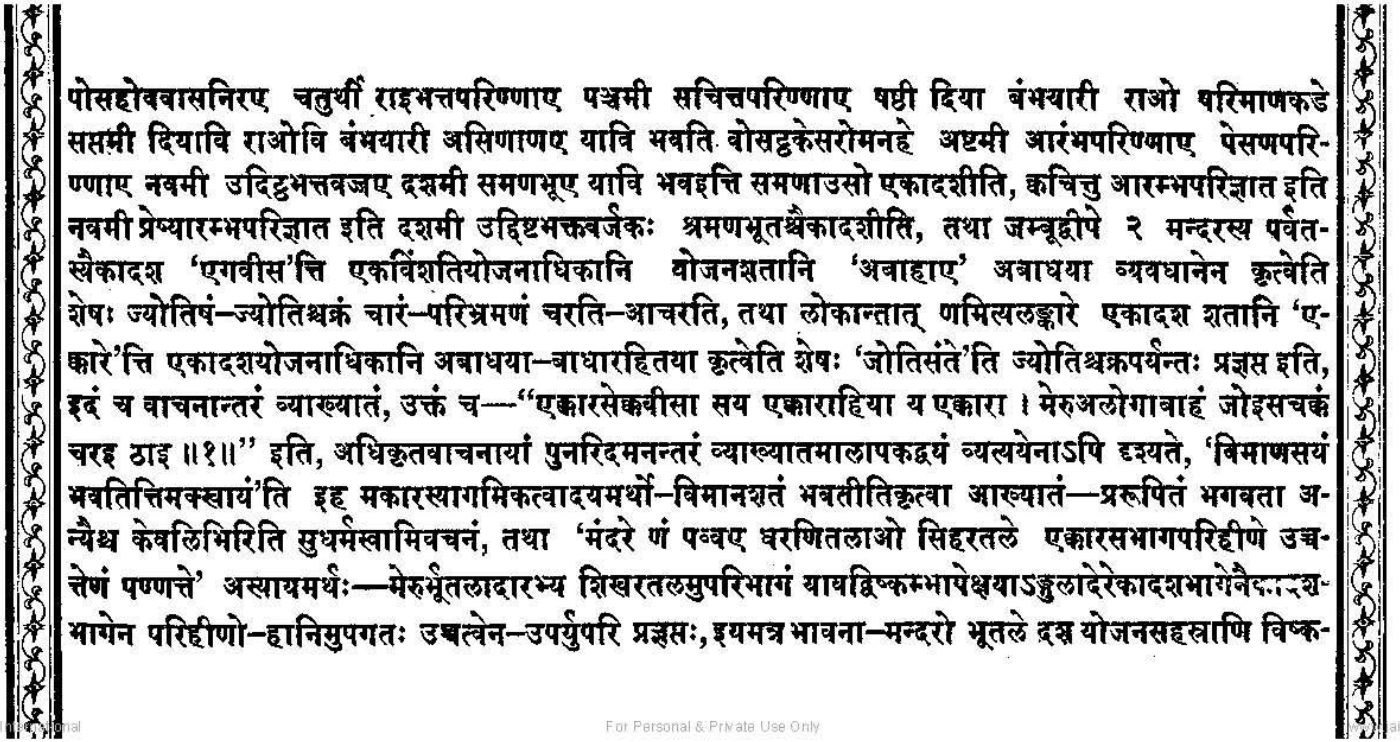
प्रत सूत्रांक [११]

प्रत अनुक्रम [१९]

त्सप्तमी प्रतिमा भवतीति, तथा आरम्भः—पृथिव्याद्युपमर्दनलक्षणः परिज्ञातः-तथैव प्रत्याख्यातो येनासावारम्भपरिज्ञातः श्राद्धोऽष्टमी प्रतिमेति, इह भावना–समस्तपूर्वोक्तानुष्ठानयुक्तस्यारम्भवर्जनमष्टौ मासान् यावदष्टमी प्रतिमेति, तथा प्रेष्याः—आरम्भेषु व्यापारणीयाः परिज्ञाताः—तथैव प्रत्याख्याता येन स प्रेष्यपरिज्ञातः श्रावको नवमीति, भावार्थश्चेह पूर्वोक्तानुष्ठायिनः आरम्भं परैरप्यकारयतो नव मासान् यावन्नवमी प्रतिमेति, तथा उद्दिष्टं–तमेव श्रावकमुद्दिश्य कृतं भक्तम्–ओदनादि उद्दिष्टभक्तं तत्परिज्ञातं येनासावुद्दिष्टभक्तपरिज्ञातः प्रतिमेति प्रकृतं, इहायं भावार्थः—पूर्वोदितगुणयुक्तस्याधाकर्मिकभोजनपरिहारवतः क्षुरमुण्डितशिरसः शिखावतो वा केनापि किञ्चिद्गृहव्यतिकरे पृष्टस्य तज्ज्ञाने सति जानामीति अज्ञाने च सति न जानामीति ब्रुवाणस्य दश मासान् यावदुत्कर्षेण एवंविधविहारस्य दशमी प्रतिमेति, तथा श्रमणो–निर्ग्रन्थस्तद्वद्यस्तदनुष्ठानकरणात् स श्रमणभूतः, साधुकल्प इत्यर्थः, चकारः समुच्चयेऽपिः सम्भावने, भवति श्रावक इति प्रकृतं, हे श्रमण! हे आयुष्मन्! इति सुधर्मस्वामिना जम्बूस्वामिनमामन्त्रयतोक्तं इत्येकादशीति, इह चेयं भावना–पूर्वोक्तसमग्रगुणोपेतस्य क्षुरमुण्डस्य कृतलोचस्य वा गृहीतसाधुनेपथ्यस्य ईर्यासमित्यादिकं साधुधर्ममनुपालयतो भिक्षार्थं गृहिकुलप्रवेशे सति श्रमणोपासकाय प्रतिमाप्रतिपन्नाय भिक्षां दत्तेति भाषमाणस्य कस्त्वमिति कस्मिंश्चित्पृच्छति प्रतिमाप्रतिपन्नः श्रमणोपासकोऽहमिति ब्रुवाणस्यैकादश मासान् यावदेकादशी प्रतिमा भवतीति, पुस्तकान्तरे त्वेवं वाचना—दंसणसावए प्रथमा कयवयकम्मे द्वितीया कयसामाइए तृतीया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

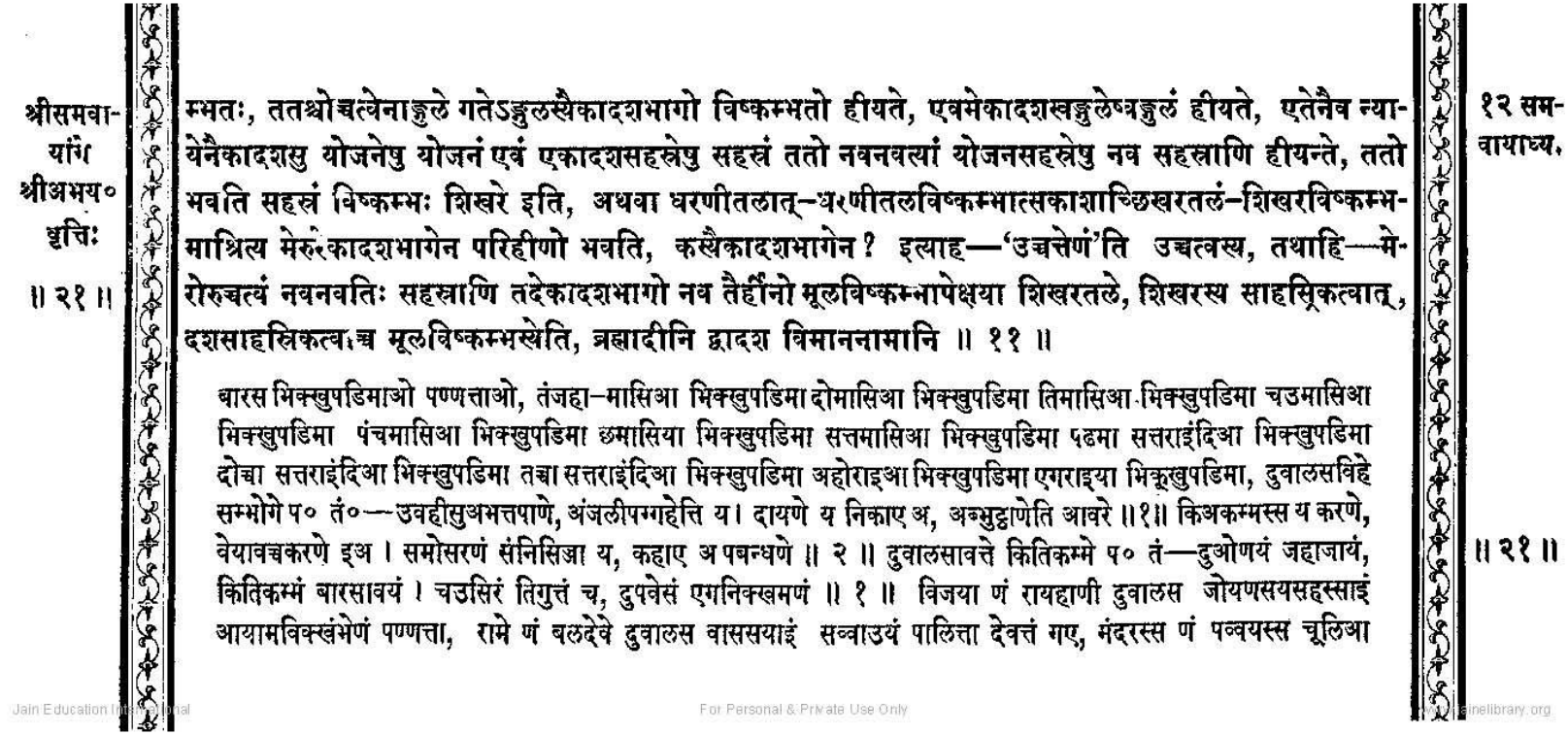
श्रावकस्य एकादश प्रतिमायाः वर्णनं



पोसहोववासनिरए चतुर्थी राइभत्तपरिण्णाए पञ्चमी सचित्तपरिण्णाए षष्ठी दिया बंभयारी राओ परिमाणकडे सत्तमी दियावि राओवि बंभयारी असिणाणए यावि भवति वोसट्ठकेसरोमनहे अष्टमी आरंभपरिण्णाए पेसणपरिण्णाए नवमी उद्दिट्ठभत्तवज्जए दशमी समणभूए यावि भवइत्ति समणाउसो एकादशीति, क्वचित्तु आरम्भपरिज्ञात इति नवमी प्रेष्यारम्भपरिज्ञात इति दशमी उद्दिष्टभक्तवर्जकः श्रमणभूतश्चैकादशीति, तथा जम्बूद्वीपे २ मन्दरस्य पर्वतस्यैकादश 'एगवीस'त्ति एकविंशतियोजनाधिकानि योजनशतानि 'अबाहाए' अबाधया व्यवधानेन कृत्वेति शेषः ज्योतिषं–ज्योतिश्चक्रं चारं–परिभ्रमणं चरति–आचरति, तथा लोकान्तात् णमित्यलङ्कारे एकादश शतानि 'एक्कारे'त्ति एकादशयोजनाधिकानि अबाधया–बाधारहितया कृत्वेति शेषः 'जोतिसंते'ति ज्योतिश्चक्रपर्यन्तः प्रज्ञप्त इति, इदं च वाचनान्तरं व्याख्यातं, उक्तं च—"एक्कारसेक्कवीसा सय एक्काराहिया य एक्कारा । मेरुअलोगाबाहं जोइसचक्कं चरइ ठाइ ॥१॥" इति, अधिकृतवाचनायां पुनरिदमनन्तरं व्याख्यातमालापकद्वयं व्यत्ययेनाऽपि दृश्यते, 'विमाणसयं भवतित्तिमक्खायं'ति इह मकारस्यागमिकत्वादयमर्थो–विमानशतं भवतीतिकृत्वा आख्यातं—प्ररूपितं भगवता अन्यैश्च केवलिभिरिति सुधर्मस्वामिवचनं, तथा 'मंदरे णं पव्वए धरणितलाओ सिहरतले एक्कारसभागपरिहीणे उच्चत्तेणं पण्णत्ते' अस्यायमर्थः—मेरुर्भूतलादारभ्य शिखरतलमुपरिभागं यावद्विष्कम्भापेक्षयाऽङ्गुलादेरेकादशभागेनैकादशभागेन परिहीणो–हानिमुपगतः उच्चत्वेन–उपर्युपरि प्रज्ञप्तः, इयमत्र भावना–मन्दरो भूतले दश योजनसहस्राणि विष्क-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	श्रावकस्य एकादश प्रतिमायाः वर्णनं



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ २१ ॥

म्मतः, ततश्चोच्चत्वेनाङ्गुले गतेऽङ्गुलस्यैकादशभागो विष्कम्भतो हीयते, एवमेकादशस्वङ्गुलेष्वङ्गुलं हीयते, एतेनैव न्यायेनैकादशसु योजनेषु योजनं एवं एकादशसहस्रेषु सहस्रं ततो नवनवत्यां योजनसहस्रेषु नव सहस्राणि हीयन्ते, ततो भवति सहस्रं विष्कम्भः शिखरे इति, अथवा धरणीतलात्–धरणीतलविष्कम्भात्सकाशाच्छिखरतलं–शिखरविष्कम्भमाश्रित्य मेरुरेकादशभागेन परिहीणो भवति, कस्यैकादशभागेन? इत्याह—'उच्चत्तेणं'ति उच्चत्वस्य, तथाहि—मेरोरुच्चत्वं नवनवतिः सहस्राणि तदेकादशभागो नव तैर्हीनो मूलविष्कम्भापेक्षया शिखरतले, शिखरस्य साहस्रिकत्वात्, दशसाहस्रिकत्वाच्च मूलविष्कम्भस्येति, ब्रह्मादीनि द्वादश विमाननामानि ॥ ११ ॥

बारस भिक्खुपडिमाओ पण्णत्ताओ, तंजहा–मासिआ भिक्खुपडिमा दोमासिआ भिक्खुपडिमा तिमासिआ भिक्खुपडिमा चउमासिआ भिक्खुपडिमा पंचमासिआ भिक्खुपडिमा छमासिया भिक्खुपडिमा सत्तमासिआ भिक्खुपडिमा पढमा सत्तराइंदिआ भिक्खुपडिमा दोच्चा सत्तराइंदिआ भिक्खुपडिमा तच्चा सत्तराइंदिआ भिक्खुपडिमा अहोराइआ भिक्खुपडिमा एगराइया भिक्खुपडिमा, दुवालसविहे सम्भोगे प० तं०—उवहीसुअभत्तपाणे, अंजलीपग्गहेत्ति य। दायणे य निकाए अ, अब्भुट्ठाणेति आवरे ॥१॥ किअकम्मस्स य करणे, वेयावच्चकरणे इअ। समोसरणं संनिसिज्जा य, कहाए अ पबन्धणे ॥ २ ॥ दुवालसावत्ते कितिकम्मे प० तं—दुओणयं जहाजायं, कितिकम्मं बारसावयं। चउसिरं तिगुत्तं च, दुपवेसं एगनिक्खमणं ॥ १ ॥ विजया णं रायहाणी दुवालस जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं पण्णत्ता, रामे णं बलदेवे दुवालस वाससयाइं सव्वाउयं पालित्ता देवत्तं गए, मंदरस्स णं पव्वयस्स चूलिआ

१२ समवायाध्य. ॥ २१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूले दुवालस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, जंबूदीवस्स णं दीवस्स वेइआ मूले दुवालस जोयणाइं विक्खंभेणं पण्णत्ता, सव्वजहण्णिआ राई दुवालसमुहुत्तिआ पण्णत्ता, एवं दिवसोऽवि नायव्वो, सव्वट्ठसिद्धस्स णं महाविमाणस्स उवरिल्लाओ थुभिअग्गाओ दुवालस जोयणाइं उद्धं उप्पइआ ईसिपब्भारनामपुढवी पण्णत्ता, इसिपब्भाराए णं पुढवीए दुवालस नामधेज्जा पण्णत्ता, तंजहा— ईसित्ति वा इसिपब्भाराति वा तणूइ वा तणूयतरित्ति वा सिद्धित्ति वा सिद्धालएत्ति वा मुत्तीति वा मुत्तालएत्ति वा बंभेत्ति वा बंभवडिंसएत्ति वा लोकपडिपूरणेत्ति वा लोगग्गचूलिआइ वा, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाणं बारस पलिओवमाइं ठिई प०, पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बारस सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं बारस पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं बारस पलिओवमाइं ठिई प०, लंतए कप्पे अत्थेगइयाणं देवाणं बारस सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा महिंदं महिंदज्झयं कंबुं कंबुग्गीवं पुंखं सुपुंखं महापुंखं पुंडं सुपुंडं महापुंडं नरिंदं नरिंदकंतं नरिंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं बारस सागरोवमाइं ठिई प० ते णं देवा बारसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा तेसि णं देवाणं बारसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइआ भवसिद्धिआ जीवा जे बारसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं १२ ॥

द्वादशस्थानमथ, तच्च सुगमं, नवरं स्थितिसूत्रेभ्योऽर्वागेकादश सूत्राण्याह, तत्र भिक्षूणां विशिष्टसंहननश्रुतवतां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिमाः—अभिग्रहा भिक्षुप्रतिमाः तत्र मासिक्यादयः सप्तमासिक्यन्ताः सप्त मासेन मासेनोत्तरोत्तरं वृद्धा एकैकाभिर्भक्तपानदत्तिभिश्चेति, तथा सप्त रात्रिन्दिवानि—अहोरात्राणि यासु ताः सप्तरात्रिन्दिवास्ताश्च तिस्रो भवन्तीति, सप्तानासु पर्यष्टमी प्रथमा सप्तरात्रिन्दिवा एवं नवमी द्वितीया दशमी तृतीया, आसां च तिसृणामप्यनुष्ठानकृतो विशेषः, तथाहि—अष्टम्यां चतुर्थभक्तं तपः ग्रामादेर्बहिरवस्थानमुत्तानादिकं च स्थानमिति, नवम्यां तु उत्कटुकाद्यासनेन विशेषः, दशम्यां वीरासनादिना, तथा अहोरात्रप्रमाणाऽहोरात्रिकी एकादशी, सा च षष्ठभक्तेन भवतीति विशेषः, एकरात्रिकी—रात्रिप्रमाणा, सा चाष्टमभक्तपर्यन्तरात्रौ प्रलम्बभुजस्य संहृतपादस्थेषदवनतकायस्यानिमेषनयनस्येति। तथा-सम्-एकीभूय समानसमाचाराणां साधूनां भोजनं सम्भोगः, स चोपध्यादिलक्षणविषयभेदात् द्वादशधा, तत्र 'उवहि'त्यादिरूपकद्वयं, तत्रोपधिर्वस्त्रपात्रादिस्तं सम्भोगिकः साम्भोगिकेन सार्द्धमुद्गमोत्पादनैषणादोषैर्विशुद्धं गृह्णन् शुद्धः अशुद्धं गृह्णन् प्रेरितः प्रतिपन्नप्रायश्चित्तो वारत्रयं यावत्सम्भोगार्हश्चतुर्थवेलायां प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यमानोऽपि विसम्भोगार्ह इति, विसम्भोगिकेन—पार्श्वस्थादिना वा संयत्या वा सार्द्धमुपधिं शुद्धमशुद्धं वा निष्कारणं गृह्णन् प्रेरितः प्रतिपन्नप्रायश्चित्तोऽपि वेलात्रयस्योपरि न सम्भोग्यः, एवमुपधेः परिकर्म परिभोगं वा कुर्वन् सम्भोग्यो विसम्भोग्यश्चेति, उक्तं च—"एगं व दो व तिन्नि व आउट्टंतस्स होइ पच्छित्तं। [आलोचयत इत्यर्थः] आउट्टंतेवि तओ परेण तिण्हं विसंभोगो ॥ १ ॥" त्ति, 'सुयत्ति' सम्भोगिकस्यान्यसांभोगिकस्य वोपसम्पन्नस्य श्रुतस्य वाचनाप्रच्छनादिकं विधिना कुर्वन् तथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भिक्षुणाम द्वादशः प्रतिमायाः वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१२]

प्रत अनुक्रम [२०-२५]

शुद्धः, तस्यैवाविधिनोपसम्पन्नस्यानुपसम्पन्नस्य वा पार्श्वस्थादेर्वा स्त्रिया वा वाचनादि कुर्वंस्तथैव वेलात्रयोपरि विसम्भोग्यः, तथा 'भत्तपाणे'त्ति उपधिद्वारवदवसेयं, नवरमिह भोजनं दानं च परिकर्मपरिभोगयोः स्थाने वाच्यमिति, तथा 'अंजलीपग्गहेत्ति य' इहेतिशब्दा उपदर्शनार्थाः चकाराः समुच्चयार्थाः, तत्रोपलक्षणत्वादञ्जलिप्रग्रहस्य वन्दनादिकमपीह द्रष्टव्यं, तथाहि—सम्भोगिकानामन्यसम्भोगिकानां वा संविग्नानां वन्दनकं–प्रणाममञ्जलिप्रग्रहं नमः क्षमाश्रमणेभ्य इति भणनं, आलोचनासूत्रार्थनिमित्तनिषद्याकरणं च कुर्वन् शुद्धः पार्श्वस्थादेरेतानि कुर्वंस्तथैव सम्भोग्यो विसम्भोग्यश्चेति, तथा 'दायणे य'त्ति दानं, तत्र सम्भोगिकः सम्भोगिकाय [वस्त्रादिभिः शिष्यगणोपग्रहासमर्थे सम्भोगिके]ऽन्यसम्भोगिकाय वा शिष्यगणं यच्छन् शुद्धः, निष्कारणं विसम्भोगिकस्य पार्श्वस्थादेर्वा संयत्या वा तं यच्छंस्तथैव सम्भोग्यो विसम्भोग्यश्चेति, तथा 'निकाए य'त्ति निकाचनं छन्दनं निमन्त्रणमित्यनर्थान्तरं, तत्र शय्योपध्याहारैः शिष्यगणप्रदानेन स्वाध्यायेन च सम्भोगिकः सम्भोगिकं निमन्त्रयन् शुद्धः,शेषं तथैव, तथा 'अब्भुट्ठाणेत्ति यावरे'त्ति अभ्युत्थानमासनत्यागरूपमित्यपरं सम्भोगासम्भोगस्थानमित्यर्थः, तत्राभ्युत्थानं पार्श्वस्थादेः कुर्वंस्तथैवासम्भोग्यः, उपलक्षणत्वादभ्युत्थानस्य किङ्करतां च—प्राघूर्णकग्लानाद्यवस्थायां किं विश्रामणादि करोमीत्येवंप्रश्नलक्षणां तथाऽभ्यासकरणं-पार्श्वस्थादिधर्माच्च्युतस्य पुनस्तत्रैव संस्थापनलक्षणं, तथा अविभक्तिं च—अपृथग्भावलक्षणां कुर्वन्नशुद्धोऽसम्भोग्यश्चापि, एतान्येव यथाऽऽगमं कुर्वन् शुद्धः सम्भोग्यश्चेति, तथा 'किइकम्मस्स य करणे'त्ति कृतिकर्म–वन्द-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भिक्षुणाम द्वादशः प्रतिमायाः वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१२]

प्रत अनुक्रम [२०-२५]

नकं तस्य करणं–विधानं तद्विधिना कुर्वन् शुद्धः, इतरथा तथैवासम्भोग्यः, तत्र चायं विधिः—यः साधुर्वातेन स्तब्धदेह उत्थानादि कर्तुमशक्तः स सूत्रमेवास्खलितादिगुणोपेतमुच्चारयति, एवमावर्त्तशिरोनमनादि यच्छक्नोति तत्करोत्येवं चाशठप्रवृत्तिर्वन्दनविधिरिति भावः, तथा 'वेयावच्चकरणे इय'त्ति वैयावृत्त्यम्—आहारोपधिदानादिना प्रश्रवणादिमात्रकार्प्पणादिनाऽधिकरणोपशमनेन सहायदानेन वोपष्टम्भकरणं तस्मिंश्च विषये सम्भोगासम्भोगौ भवत इति, तथा 'समोसरणं'ति जिनस्नपनरथानुयानपट्टयात्रादिषु यत्र बहवः साधवो मिलन्ति तत्समवसरणं, इह च क्षेत्रमाश्रित्य साधूनां साधारणोऽवग्रहो भवति, वसतिमाश्रित्य साधारणोऽसाधारणश्चेति, अनेन चान्येऽप्यवग्रहा उपलक्षिताः, ते चानेके, तद्यथा—वर्षावग्रह ऋतुबद्धावग्रहो वृद्धवासावग्रहश्चेति, एकैकश्चायं साधारणावग्रहः प्रत्येकावग्रहश्चेति द्विधा, तत्र यत् क्षेत्रं वर्षाकल्पाद्यर्थं युगपत् द्व्यादिभिः साधुभिर्भिन्नगच्छस्थैरनुज्ञाप्यते स साधारणो यत्तु क्षेत्रमेके साधवोऽनुज्ञाप्याश्रिताः स प्रत्येकावग्रह इति, एवं चैतेष्ववग्रहेषु आकुट्या अनाभाव्यं सचित्तं शिष्यमचित्तं वा वस्त्रादि गृह्णन्तोऽनाभोगेन च गृहीतं तदनर्पयन्तः समनोज्ञा अमनोज्ञाश्च प्रायश्चित्तिनो भवन्त्यसंभोग्याश्च, पार्श्वस्थादीनां चावग्रह एव नास्ति तथापि यदि तत् क्षेत्रं क्षुल्लकमन्यत्रैव च संविग्ना निर्वहन्ति ततस्तत् क्षेत्रं परिहरन्त्येव, अथ पार्श्वस्थादीनां क्षेत्रं विस्तीर्णं संविग्नाश्चान्यत्र न निर्वहन्ति ततस्तत्रापि प्रविशन्ति सचित्तादि च गृह्णन्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रायश्चित्तिनोऽपि न भवन्तीति, आह च—"संभणुन्नमसमणुन्ने अदिन्नणाभवगिण्हमाणे वा। सम्भोग वीसुकरणं [पृथक्करणमित्यर्थः] इयरे य अलंभ पेल्लंति ॥ १ ॥" [इतरान् पार्श्वस्थादीनित्यर्थः] तथा 'सन्निसिज्जा य'त्ति सन्निषद्या–आसनविशेषः, सा च सम्भोगासम्भोगकारणं भवति, तथाहि—संनिषद्यागत आचार्यो निषद्यागतेन सम्भोगिकाचार्येण सह श्रुतपरिवर्त्तनां करोति शुद्धः, अथामनोज्ञपार्श्वस्थादिसाध्वीगृहस्थैः सह तदा प्रायश्चित्ती भवति, तथा अक्षनिषद्यां विनाऽनुयोगं कुर्वतः शृण्वतश्च प्रायश्चित्तं, तथा निषद्यायामुपविष्टः सूत्रार्थौ पृच्छति अतिचारान् वाऽऽलोचयति यदि तदा तथैवेति, तथा 'कहाए य पबंधणे'त्ति कथा–वादादिका पञ्चधा तस्याः प्रबन्धनं–प्रबन्धेन करणं कथाप्रबन्धनं, तत्र सम्भोगासम्भोगौ भवतः, तत्र मतमभ्युपगम्य पञ्चावयवेन त्र्यवयवेन वा वाक्येन यत्तत्समर्थनं स छलजातिविरहितो भूतार्थान्वेषणपरो वादः, स एव छलजातिनिग्रहस्थानपरो जल्पः, यत्रैकस्य पक्षपरिग्रहोऽस्ति नापरस्य सा दूषणमात्रप्रवृत्ता वितण्डा, तथा प्रकीर्णकथा चतुर्थी, सा चोत्सर्गकथा द्रव्यास्तिकनयकथा वा, तथा निश्चयकथा पञ्चमी, सा चापवादकथा पर्यायास्तिकनयकथा वेति, तत्राद्यास्तिस्रः कथाः श्रमणीवर्जैः सह करोति, श्रमणीभिस्तु सह कुर्वन् प्रायश्चित्ती, चतुर्थवेलायां चालोचयन्नपि विसम्भोगार्ह इति रूपकद्वयस्य संक्षेपार्थः विस्तरार्थस्तु निशीथपञ्चमोद्देशकभाष्यादवसेय इति, तथा 'दुवालसावत्ते किइकम्मे'त्ति द्वादशावर्त्तं कृतिकर्म–वन्दनकं

१ समनोज्ञामनोज्ञयोरदत्तमनाभाव्ये गृह्णति वा । संभोगविच्छेदकरणं इतरांश्चालाभे प्रेरयन्ति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

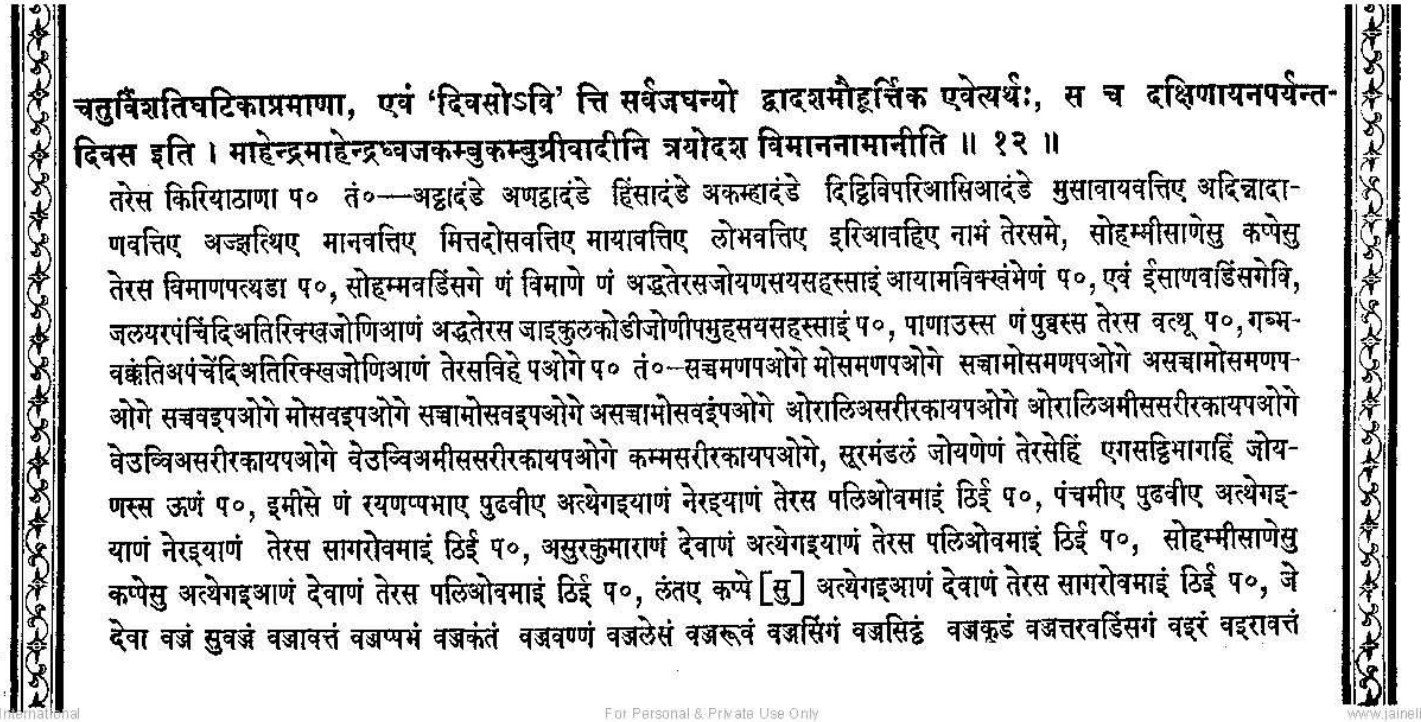
प्रत सूत्रांक [१२]

प्रत अनुक्रम [२०-२५]

प्रज्ञप्तं, द्वादशावर्त्ततामेवास्यानुवदन् शेषांश्च तद्धर्मानभिधित्सुः रूपकमाह—'दुओणए'त्यादि, अवनतिरवनतम्—उत्तमाङ्गप्रधानं प्रणमनमित्यर्थः, द्वे अवनते यस्मिंस्तद्द्व्यवनतं, तत्रैकं यदा प्रथममेव 'इच्छामि खमासमणो! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहियाए'त्ति अभिधायावग्रहानुज्ञापनायावनमतीति, द्वितीयं पुनर्यदाऽवग्रहानुज्ञापनायैवावनमतीति, यथाजातं—श्रमणत्वभवनलक्षणं जन्माश्रित्य योनिनिष्क्रमणलक्षणं च, तत्र रजोहरणमुखवस्त्रिकाचोलपट्टमात्रया श्रमणो जातो रचितकरपुटस्तु योन्या निर्गत एवंभूत एव वन्दते तदव्यतिरेकाद्वा यथाजातं भण्यते, कृतिकर्म—वन्दनकं 'बारसावयं'ति द्वादशावर्त्ताः—सूत्राभिधानगर्भाः कायव्यापारविशेषाः यतिजनप्रसिद्धा यस्मिंस्तद् द्वादशावर्त्तं, तथा 'चउसिरं'ति चत्वारि शिरांसि यस्मिंस्तच्चतुःशिरः प्रथमप्रविष्टस्य क्षामणाकाले शिष्याचार्यशिरोद्वयं पुनरपि निष्क्रम्य प्रविष्टस्य द्वयमेवेति भावना, तथा 'तिगुत्तं'ति तिसृभिर्गुप्तिभिर्गुप्तः पाठान्तरेऽपि तिसृभिः (श्रद्धाभिः) गुप्तिभिरेवेति, तथा 'दुपवेसं'ति द्वौ प्रवेशौ यस्मिंस्तद् द्विप्रवेशं तत्र प्रथमोऽवग्रहमनुज्ञाप्य प्रविशतो द्वितीयः पुनर्निर्गत्य प्रविशत इति, 'एगनिक्खमणं'ति एकं निष्क्रमणमवग्रहादावश्यिक्या निर्गच्छतः, द्वितीयवेलायां त्ववग्रहान्न निर्गच्छति, पादपतित एव सूत्रं समापयतीति, तथा 'विजयरायहाणी' असङ्ख्याततमे जम्बूद्वीपे आद्यजम्बूद्वीपविजयाभिधानपूर्वद्वाराधिपस्य विजयाभिधानस्य पल्योपमस्थितिकस्य देवस्य सम्बन्धिनीति, तथा रामो नवमो बलदेवः 'देवत्तं गए'त्ति देवत्वं—पञ्चमदेवलोके देवत्वं गतः, तथा सर्वजघन्या रात्रिरुत्तरायणपर्यन्ताहोरात्रस्य रात्रिः, सा च द्वादशमौहूर्त्तिका—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वाद्शावार्त वन्दंस्य व्याख्या एवं विधिः



चतुर्विंशतिघटिकाप्रमाणा, एवं 'दिवसोऽवि' त्ति सर्वजघन्यो द्वादशमौहूर्त्तिक एवेत्यर्थः, स च दक्षिणायनपर्यन्त-दिवस इति । माहेन्द्रमाहेन्द्रध्वजकम्बुकम्बुग्रीवादीनि त्रयोदश विमाननामानीति ॥ १२ ॥

तेरस किरियाठाणा प० तं०—अट्ठादंडे अणट्ठादंडे हिंसादंडे अकम्हादंडे दिट्ठिविपरिआसिआदंडे मुसावायवत्तिए अदिन्नादाणवत्तिए अज्झत्थिए मानवत्तिए मित्तदोसवत्तिए मायावत्तिए लोभवत्तिए इरिआवहिए नामं तेरसमे, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु तेरस विमाणपत्थडा प०, सोहम्मवडिंसगे णं विमाणे णं अद्धतेरसजोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं प०, एवं ईसाणवडिंसगेवि, जलयरपंचिंदिअतिरिक्खजोणिआणं अद्धतेरस जाइकुलकोडीजोणीपमुहसयसहस्साइं प०, पाणाउस्स णं पुव्वस्स तेरस वत्थू प०, गब्भवक्कंतिअपंचेंदिअतिरिक्खजोणिआणं तेरसविहे पओगे प० तं०—सच्चमणपओगे मोसमणपओगे सच्चामोसमणपओगे असच्चामोसमणपओगे सच्चवइपओगे मोसवइपओगे सच्चामोसवइपओगे असच्चामोसवइपओगे ओरालिअसरीरकायपओगे ओरालिअमीससरीरकायपओगे वेउव्विअसरीरकायपओगे वेउव्विअमीससरीरकायपओगे कम्मसरीरकायपओगे, सूरमंडलं जोयणेणं तेरसेहिं एगसट्ठिभागेहिं जोयणस्स ऊणं प०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेरस पलिओवमाइं ठिई प०, पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेरस सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तेरस पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइआणं देवाणं तेरस पलिओवमाइं ठिई प०, लंतए कप्पे [सु] अत्थेगइआणं देवाणं तेरस सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा वज्जं सुवज्जं वज्जावत्तं वज्जप्पभं वज्जकंतं वज्जवण्णं वज्जलेसं वज्जरूवं वज्जसिंगं वज्जसिट्ठं वज्जकूडं वज्जुत्तरवडिंसगं वइरं वइरावत्तं

५ स०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३]

प्रत अनुक्रम [२६]

वइरप्पभं वइरकंतं वइरवण्णं वइरलेसं वइररूवं वइरसिंगं वइरसिट्ठं वइरकूडं वइरुत्तरवडिंसगं लोगं लोगावत्तं लोगप्पभं लोगकंतं लोगवण्णं लोगलेसं लोगरूवं लोगसिंगं लोगसिट्ठं लोगकूडं लोगुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तेरस सागरोवमाइं ठिई प० ते णं देवा तेरसहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीस्ससंति वा तेसि णं देवाणं तेरसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइआ भवसिद्धिआ जीवा जे तेरसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं १३ ॥

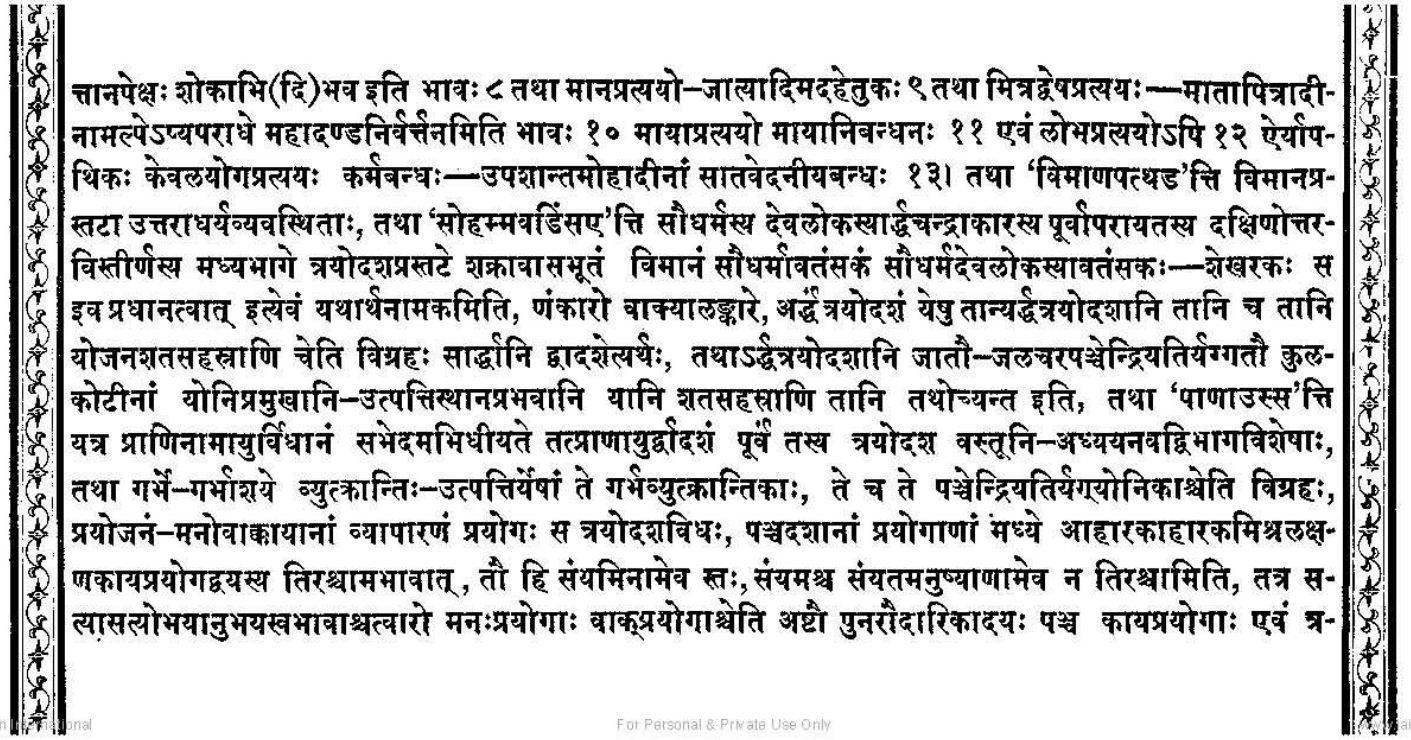
अथ त्रयोदशस्थानके किञ्चिल्लिख्यते, इह स्थितिसूत्रेभ्योऽर्वागष्ट सूत्राणि, तत्र करणं क्रिया–कर्मबन्धनिबन्धनचेष्टा तस्याः स्थानानि–भेदाः पर्यायाः क्रियास्थानानि, तत्रार्थाय–शरीरस्वजनधर्मादिप्रयोजनाय दण्डः—त्रसस्थावरहिंसा अर्थदण्डः क्रियास्थानमितिप्रक्रमः १ तद्विलक्षणोऽनर्थदण्डः २ तथा हिंसामाश्रित्य हिंसितवान् हिनस्ति हिंसिष्यति वा अयं वैरिकादिर्ममेत्येवंप्रणिधानेन दण्डो—विनाशनं हिंसादण्डः ३ तथाऽकस्माद्—अनभिसंधिनोऽन्यवधाय प्रवृत्त्या दण्डः–अन्यस्य विनाशोऽकस्माद्दण्डः ४ तथा दृष्टेः—बुद्धेर्विपर्यासिका विपर्यासिता वा दृष्टिविपर्यासिका दृष्टिविपर्यासिता वा मतिभ्रम इत्यर्थः तया दण्डः—प्राणिवधो दृष्टिविपर्यासिकादण्डो दृष्टिविपर्यासितादण्डो वा, मित्रादेरमित्रादिबुद्ध्या हननमिति भावः ५ तथा मृषावादः—आत्मपरोभयार्थमलीकवचनं तदेव प्रत्ययः—कारणं यस्य दण्डस्य स मृषावादप्रत्ययः ६ एवमदत्तादानप्रत्ययोऽपि ७ तथा अध्यात्मनि–मनसि भव आध्यात्मिको बाह्यनिमि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रियायाः त्रयोदशः स्थानानाम् वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१३]

प्रत अनुक्रम [२६]



त्तानपेक्षः शोकाभि(दि)भव इति भावः ८ तथा मानप्रत्ययो–जात्यादिमदहेतुकः ९ तथा मित्रद्वेषप्रत्ययः—मातापित्रादीनामल्पेऽप्यपराधे महादण्डनिर्वर्त्तनमिति भावः १० मायाप्रत्ययो मायानिबन्धनः ११ एवं लोभप्रत्ययोऽपि १२ ऐर्यापथिकः केवलयोगप्रत्ययः कर्मबन्धः—उपशान्तमोहादीनां सातवेदनीयबन्धः १३। तथा 'विमाणपत्थड'त्ति विमानप्रस्तटा उत्तराधर्यव्यवस्थिताः, तथा 'सोहम्मवडिंसए'त्ति सौधर्मस्य देवलोकस्यार्द्धचन्द्राकारस्य पूर्वापरायतस्य दक्षिणोत्तरविस्तीर्णस्य मध्यभागे त्रयोदशप्रस्तटे शक्रावासभूतं विमानं सौधर्मावतंसकं सौधर्मदेवलोकस्यावतंसकः—शेखरकः स इव प्रधानत्वात् इत्येवं यथार्थनामकमिति, णंकारो वाक्यालङ्कारे, अर्द्धत्रयोदशं येषु तान्यर्द्धत्रयोदशानि तानि च तानि योजनशतसहस्राणि चेति विग्रहः सार्द्धानि द्वादशेत्यर्थः, तथाऽर्द्धत्रयोदशानि जातौ–जलचरपञ्चेन्द्रियतिर्यग्गतौ कुलकोटीनां योनिप्रमुखानि–उत्पत्तिस्थानप्रभवानि यानि शतसहस्राणि तानि तथोच्यन्त इति, तथा 'पाणाउस्स'त्ति यत्र प्राणिनामायुर्विधानं सभेदमभिधीयते तत्प्राणायुर्द्वादशं पूर्वं तस्य त्रयोदश वस्तूनि–अध्ययनवद्विभागविशेषाः, तथा गर्भे–गर्भाशये व्युत्क्रान्तिः–उत्पत्तिर्येषां ते गर्भव्युत्क्रान्तिकाः, ते च ते पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकाश्चेति विग्रहः, प्रयोजनं–मनोवाक्कायानां व्यापारणं प्रयोगः स त्रयोदशविधः, पञ्चदशानां प्रयोगाणां मध्ये आहारकाहारकमिश्रलक्षणकायप्रयोगद्वयस्य तिरश्चामभावात्, तौ हि संयमिनामेव स्तः, संयमश्च संयतमनुष्याणामेव न तिरश्चामिति, तत्र सत्यासत्योभयानुभयस्वभावाश्चत्वारो मनःप्रयोगाः वाक्प्रयोगाश्चेति अष्टौ पुनरौदारिकादयः पञ्च कायप्रयोगाः एवं त्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रियायाः त्रयोदशः स्थानानाम् वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१३]

प्रत अनुक्रम [२६]

योदशेति, तथा सूरमण्डलस्य–आदित्यविमानवृत्तस्य योजनं सूरमण्डलयोजनं तत् 'ण'मित्यलङ्कारे त्रयोदशभिरेकषष्टिभागैर्येषां भागानामेकषष्ट्या योजनं भवति तैर्भागैर्योजनस्य सम्बन्धिभिरूनं–न्यूनं प्रज्ञप्तमष्टचत्वारिंशद् योजनभागा इत्यर्थः । वज्राभिलापेन द्वादश वइराभिलापेन लोकाभिलापेन चैकादश विमानानीति ॥ १३ ॥

चउद्दस भूअग्गामा प० तं०—सुहुमा अपज्जत्तआ सुहुमा पज्जत्तया बादरा अपज्जत्तया बादरा पज्जत्तया बेइंदिआ अपज्जत्तया बेइंदिया पज्जत्तया तेंदिआ अपज्जत्तया तेंदिया पज्जत्तया चउरिंदिआ अपज्जत्तया चउरिंदिया पज्जत्तया पंचिंदिआ असन्निअपज्जत्तया पंचिंदिआ असन्निपज्जत्तया पंचिंदिआ सन्निअपज्जत्तया पंचेंदिआ सन्निपज्जत्तया, चउदस पुव्वा प० तं०—उप्पायपुव्वमग्गेणियं च तइयं च वीरियं पुव्वं । अत्थीनत्थिपवायं तत्तो णाणप्पवायं च ॥ १ ॥ सच्चप्पवायपुव्वं तत्तो आयप्पवायपुव्वं च । कम्मप्पवायपुव्वं पच्चक्खाणं भवे नवमं ॥ २ ॥ विज्जाअणुप्पवायं अवंझपाणाउ बारसं पुव्वं । तत्तो किरियविसालं पुव्वं तह बिंदुसारं च ॥ ३ ॥ अग्गेणीअस्स णं पुव्वस्स चउद्दस वत्थू प०, समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चउद्दस समणसाहस्सीओ उक्कोसिआ समणसंपया होत्था, कम्मविसोहिमग्गणं पडुच्च चउदस जीवट्ठाणा प० तं०—मिच्छदिट्ठी सासायणसम्मदिट्ठी सम्मामिच्छदिट्ठी अविरयसम्मदिट्ठी विरयाविरए पमत्तसंजए अप्पमत्तसंजए निअट्टीबायरे अनिअट्टिबायरे सुहुमसंपराए उवसामए वा खवए वा उवसंतमोहे खीणमोहे सजोगी केवली अयोगी केवली, भरहेरवयाओ णं जीवाओ चउद्दस चउद्दस जोयणसहस्साइं चत्तारि अ एगुत्तरे जोयणसए छच्च एगूणवीसे भागे जोयणस्स आयामेणं प०, एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चउद्दस रयणा प० तं०—इत्थी-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४]

प्रत अनुक्रम [२७-३१]

रयणे संणावइरयण गाहावइरयणे पुरोहियरयणे वड्ढइरयणे आसरयणे हत्थिरयणे असिरयणे दंडरयणे चक्करयणे छत्तरयणे चम्मरयणे मणिरयणे कागिणिरयणे, जंबुद्दीवे णं दीवे चउद्दस महानईओ पुव्वावरेण लवणसमुद्दं समप्पंति, तं० गंगा सिंधू रोहिआ रोहिअंसा हरी हरिकंता सीआ सीओदा नरकन्ता नारिकांता सुवण्णकूला रुप्पकूला रत्ता रत्तवई, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चउदस पलिओवमाइं ठिई प०, पञ्चमीए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चउद्दस सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चउद्दस पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं चउद्दस पलिओवमाइं ठिई प०, लंतए कप्पे[सु] देवाणं अत्थेगइयाणं चउद्दस सागरोवमाइं ठिई प०, महासुक्के कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं चउदस सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा सिरिकंतं सिरिमहिअं सिरिसोमनसं लंतयं काविट्ठं महिंदकंतं महिंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं चउद्दस सागरोवमाइं ठिई प० ते णं देवा चउद्दसहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा तेसिणं देवाणं चउद्दसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइआ भवसिद्धिआ जीवा जे चउद्दसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं १४ ॥

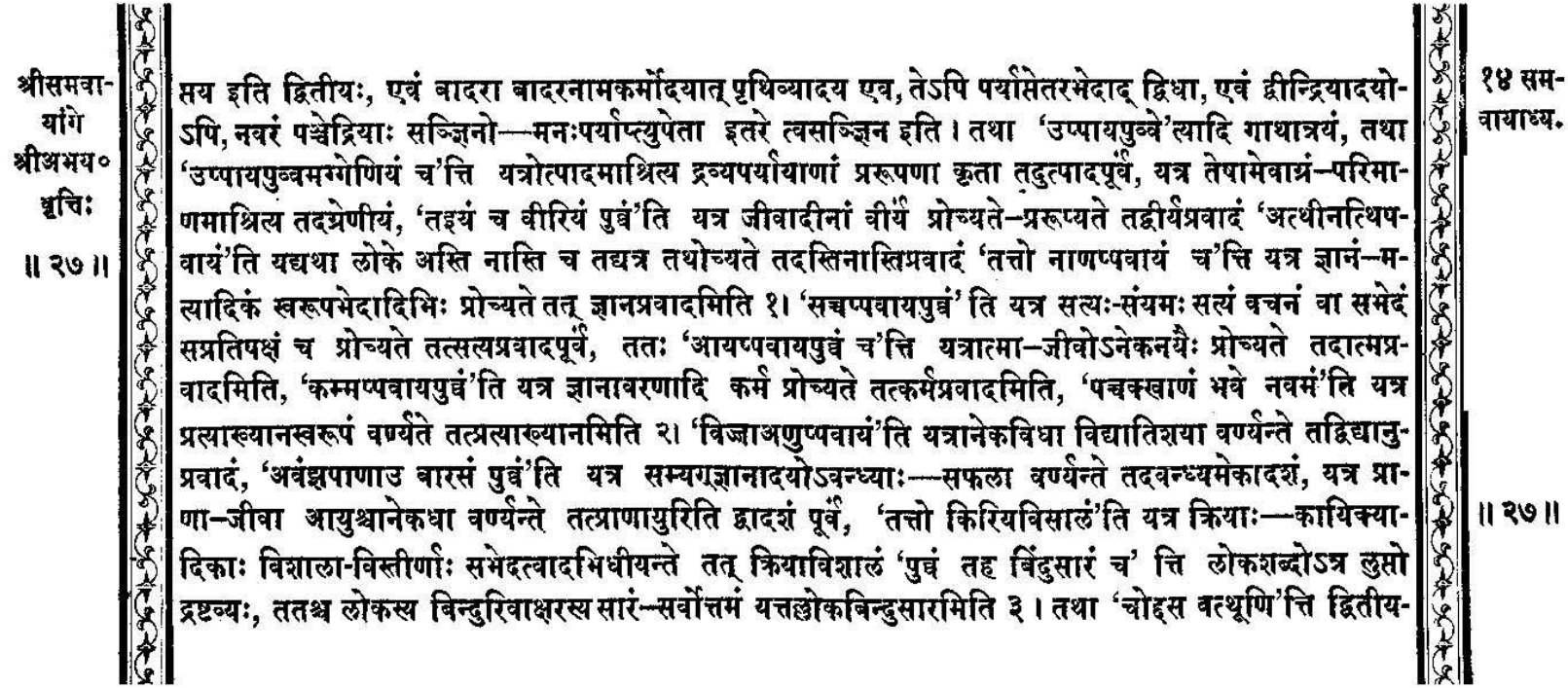
अथ चतुर्दशस्थानकं सुबोधं, नवरमिहाष्टौ सूत्राण्यर्वाक् स्थितिसूत्रादिति, तत्र चतुर्दश 'भूतग्रामाः' भूतानि—जीवाः तेषां ग्रामाः—समूहाः भूतग्रामाः, तत्र सूक्ष्माः सूक्ष्मनामकर्मोदयवर्त्तित्वात् पृथिव्यादय एकेन्द्रियाः, किंभूता ?—अपर्याप्तकाः—तत्कर्मोदयादपरिपूर्णस्वकीयपर्याप्तय इत्येको ग्रामः, एवमेते एव पर्याप्तकाः-तथैव परिपूर्णस्वकीयपर्या-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्दश-भूतग्रामानाम् वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१४]

प्रत अनुक्रम [२७-३१]



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ २७ ॥

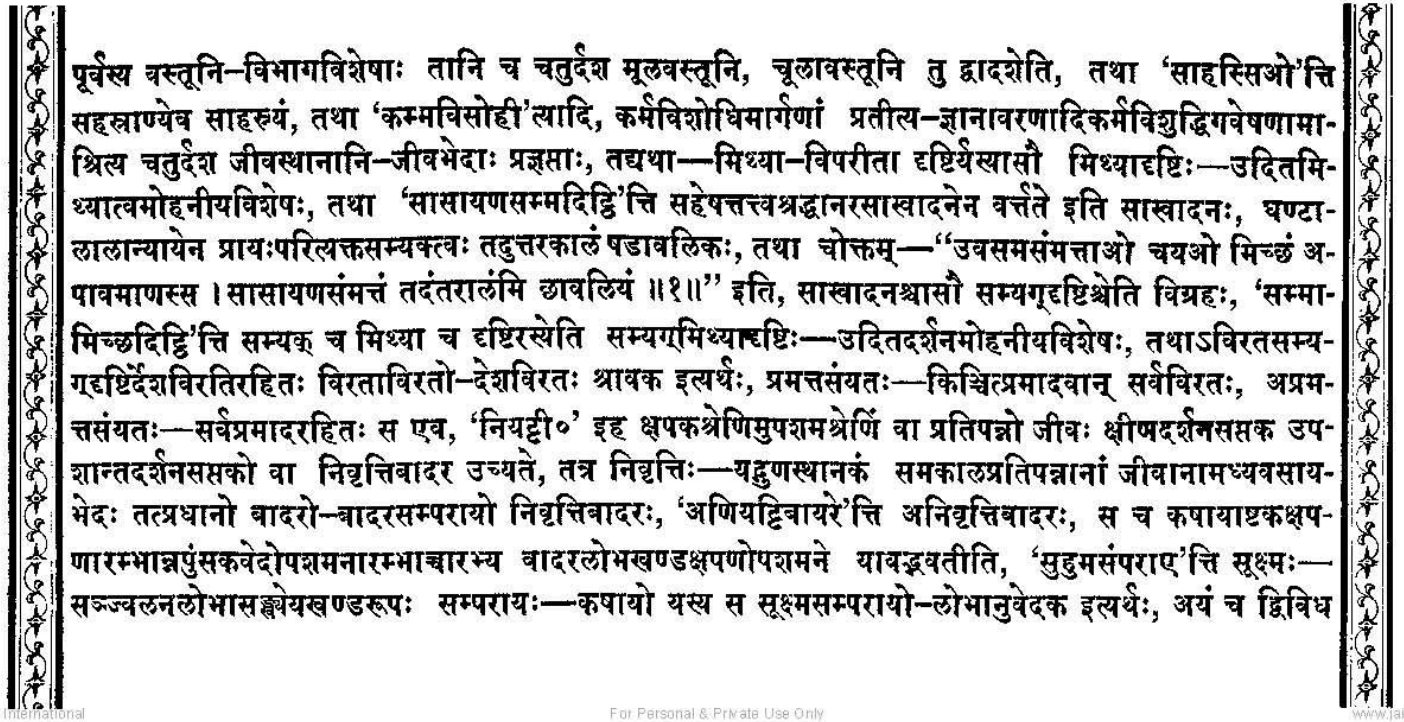
सय इति द्वितीयः, एवं बादरा बादरनामकर्मोदयात् पृथिव्यादय एव, तेऽपि पर्याप्तेतरभेदाद् द्विधा, एवं द्वीन्द्रियादयोऽपि, नवरं पञ्चेन्द्रियाः सञ्ज्ञिनो—मनःपर्याप्त्युपेता इतरे त्वसञ्ज्ञिन इति। तथा 'उप्पायपुव्वे'त्यादि गाथात्रयं, तथा 'उप्पायपुव्वमग्गेणियं च'त्ति यत्रोत्पादमाश्रित्य द्रव्यपर्यायाणां प्ररूपणा कृता तदुत्पादपूर्वं, यत्र तेषामेवाग्रं—परिमाणमाश्रित्य तदग्रेणीयं, 'तइयं च वीरियं पुव्वं'ति यत्र जीवादीनां वीर्यं प्रोच्यते—प्ररूप्यते तद्वीर्यप्रवादं 'अत्थीनत्थिपवायं'ति यद्यथा लोके अस्ति नास्ति च तद्यत्र तथोच्यते तदस्तिनास्तिप्रवादं 'तत्तो नाणप्पवायं च'त्ति यत्र ज्ञानं—मत्यादिकं स्वरूपभेदादिभिः प्रोच्यते तत् ज्ञानप्रवादमिति १। 'सच्चप्पवायपुव्वं'ति यत्र सत्यः-संयमः सत्यं वचनं वा सभेदं सप्रतिपक्षं च प्रोच्यते तत्सत्यप्रवादपूर्वं, ततः 'आयप्पवायपुव्वं च'त्ति यत्रात्मा—जीवोऽनेकनयैः प्रोच्यते तदात्मप्रवादमिति, 'कम्मप्पवायपुव्वं'ति यत्र ज्ञानावरणादि कर्म प्रोच्यते तत्कर्मप्रवादमिति, 'पच्चक्खाणं भवे नवमं'ति यत्र प्रत्याख्यानस्वरूपं वर्ण्यते तत्प्रत्याख्यानमिति २। 'विज्जाअणुप्पवायं'ति यत्रानेकविधा विद्यातिशया वर्ण्यन्ते तद्विद्यानुप्रवादं, 'अवंझपाणाउ बारसं पुव्वं'ति यत्र सम्यग्ज्ञानादयोऽवन्ध्याः—सफला वर्ण्यन्ते तदवन्ध्यमेकादशं, यत्र प्राणा—जीवा आयुश्चानेकधा वर्ण्यन्ते तत्प्राणायुरिति द्वादशं पूर्वं, 'तत्तो किरियविसालं'ति यत्र क्रियाः—कायिक्यादिकाः विशाला-विस्तीर्णाः सभेदत्वादभिधीयन्ते तत् क्रियाविशालं 'पुव्वं तह बिंदुसारं च' त्ति लोकशब्दोऽत्र लुप्तो द्रष्टव्यः, ततश्च लोकस्य बिन्दुरिवाक्षरस्य सारं—सर्वोत्तमं यत्तल्लोकबिन्दुसारमिति ३। तथा 'चोद्दस वत्थूणि'त्ति द्वितीय-

१४ समवायाध्य. ॥ २७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्दश-भूतग्रामानाम् वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१४] प्रत अनुक्रम [२७-३१]	पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः



पूर्वस्य वस्तूनि–विभागविशेषाः तानि च चतुर्दश मूलवस्तूनि, चूलावस्तूनि तु द्वादशेति, तथा 'साहस्सिओ'त्ति सहस्राण्येव साहस्रयं, तथा 'कम्मविसोही'त्यादि, कर्मविशोधिमार्गणां प्रतीत्य–ज्ञानावरणादिकर्मविशुद्धिगवेषणामाश्रित्य चतुर्दश जीवस्थानानि–जीवभेदाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मिथ्या–विपरीता दृष्टिर्यस्यासौ मिथ्यादृष्टिः—उदितमिथ्यात्वमोहनीयविशेषः, तथा 'सासायणसम्मदिट्ठि'त्ति सहेषत्तत्त्वश्रद्धानरसास्वादनेन वर्त्तते इति सास्वादनः, घण्टालालान्यायेन प्रायःपरित्यक्तसम्यक्त्वः तदुत्तरकालं षडावलिकः, तथा चोक्तम्—"उवसमसंमत्ताओ चयओ मिच्छं अपावमाणस्स । सासायणसंमत्तं तदंतरालंमि छावलियं ॥१॥" इति, सास्वादनश्चासौ सम्यग्दृष्टिश्चेति विग्रहः, 'सम्मामिच्छदिट्ठि'त्ति सम्यक् च मिथ्या च दृष्टिरस्येति सम्यग्मिथ्यादृष्टिः—उदितदर्शनमोहनीयविशेषः, तथाऽविरतसम्यग्दृष्टिर्देशविरतिरहितः विरताविरतो–देशविरतः श्रावक इत्यर्थः, प्रमत्तसंयतः—किञ्चित्प्रमादवान् सर्वविरतः, अप्रमत्तसंयतः—सर्वप्रमादरहितः स एव, 'नियट्टी०' इह क्षपकश्रेणिमुपशमश्रेणिं वा प्रतिपन्नो जीवः क्षीणदर्शनसप्तक उपशान्तदर्शनसप्तको वा निवृत्तिबादर उच्यते, तत्र निवृत्तिः—यद्गुणस्थानकं समकालप्रतिपन्नानां जीवानामध्यवसायभेदः तत्प्रधानो बादरो–बादरसम्परायो निवृत्तिबादरः, 'अणियट्टिबायरे'त्ति अनिवृत्तिबादरः, स च कषायाष्टकक्षपणारम्भान्नपुंसकवेदोपशमनारम्भाच्चारभ्य बादरलोभखण्डक्षपणोपशमने यावद्भवतीति, 'सुहुमसंपराए'त्ति सूक्ष्मः—सञ्ज्वलनलोभासङ्ख्येयखण्डरूपः सम्परायः—कषायो यस्य स सूक्ष्मसम्परायो–लोभानुवेदक इत्यर्थः, अयं च द्विविध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	चतुर्दश-जीव/गुण-स्थानानाम् वर्णनं

इत्याह—उपशमको वा—उपशमश्रेणीप्रतिपन्नः क्षपको वा—क्षपकश्रेणिप्रतिपन्न इति दशमं जीवस्थानमिति, तथा उपशान्तः—सर्वथानुदयावस्थो मोहो—मोहनीयं कर्म यस्य स उपशान्तमोहः, उपशमवीतराग इत्यर्थः, अयं चोपशमश्रेणिसमाप्तावन्तर्मुहूर्तं भवति, ततः प्रच्यवत एवेति, तथा क्षीणो—निःसत्ताकीभूतो मोहो यस्य स तथा, क्षयवीतराग इत्यर्थः, अयमप्यन्तर्मुहूर्त्तमेवेति, तथा सयोगी केवली—मनःप्रभृतिव्यापारवान् केवलज्ञानीति, तथाऽयोगी केवली—निरुद्धमनःप्रभृतियोगः शैलेशीगतो ह्रस्वपञ्चाक्षरोद्गिरणमात्रं कालं यावदिति चतुर्दशं जीवस्थानमिति, 'भरहे' इत्यादि, भरतैरावतयोर्जीवा, इह भरतमैरवतं चारोपितगुणकोदण्डाकारं यतस्त(तस्त)योर्जीवे भवतः, तत्र भरतस्य हिमवतोऽर्वागनन्तरप्रदेशश्रेणिर्जीवा ऐरावतस्य च शिखरिणः परतोऽनन्तरप्रदेशश्रेणीति भरतैरावतजीवा, 'चाउरंतचक्कवट्टिस्स'त्ति चत्वारोऽन्ता—विभागा यस्यां सा चतुरन्ता भूमिः तत्र भवः स्वामितयेति चातुरन्तः स चासौ चक्रवर्त्ती चेति विग्रहः, रत्नानि—स्वजातीयमध्ये समुत्कर्षवन्ति वस्तूनीति, यदाह—"रत्नं निगद्यते तज्जातौ जातौ यदुत्कृष्ट"मिति, 'गाहावइ'त्ति गृहपतिः—कोष्ठागारिकः 'पुरोहिय'त्ति पुरोहितः—शान्तिकर्मादिकारी 'वड्ढइ'त्ति वर्द्धकिः—रथादिनिर्मापयिता मणिः—पृथिवीपरिणामः काकिणी—सुवर्णमयी अधिकरणीसंस्थानेति, इह सप्तापि पञ्चेन्द्रियाणि शेषाण्येकेन्द्रियाणीति, श्रीकान्तमित्यादीन्यष्टौ विमाननामानीति ॥ १४ ॥

पन्नरस परमाहम्मिआ प० तं०— 'अंबे अंबरिसी चेव, सामे सबलेत्ति आवरे । रुद्दोवरुद्दकालेअ, महाकालेत्ति आवरे ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्दश-जीव/गुण-स्थानानाम् वर्णनं

प्रत सूत्रांक [१५]

प्रत अनुक्रम [३२-३७]



असिपत्ते धणु कुम्भे, वालुए वेअरणीति अ। खरस्सरे महाघोसे, एते पन्नरसाहिआ ॥२॥ णमी णं अरहा पन्नरस धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, धुवराहू णं बहुलपक्खस्स पडिवए पन्नरसभागं पन्नरसभागेणं चंदस्स लेसं आवरेत्ताणं चिट्ठति, तंजहा–पढमाए पढमं भागं बीआए दुभागं तइआए तिभागं चउत्थीए चउभागं पञ्चमीए पञ्चभागं छट्ठीए छभागं सत्तमीए सत्तभागं अट्ठमीए अट्ठभागं नवमीए नवभागं दसमीए दसभागं एक्कारसीए एक्कारसभागं बारसीए बारसभागं तेरसीए तेरसभागं चउद्दसीए चउद्दसभागं पन्नरसेसु पन्नरसभागं, तं चेव सुक्कपक्खस्स य उवदंसेमाणे उवदंसेमाणे चिट्ठति, तंजहा–पढमाए पढमं भागं जाव पन्नरसेसु पन्नरसभागं, छ णक्खत्ता पन्नरसमुहुत्तसंजुत्ता प० तं०—सतभिसय भरणि अद्दा असलेसा साई तहा जेट्ठा। एते छण्णक्खत्ता पन्नरसमुहुत्तसंजुत्ता ॥१॥ चेत्तासोएसु णं मासेसु पन्नरसमुहुत्तो दिवसो भवति, एवं चेत्तमासेसु पण्णरसमुहुत्ता राई भवति, विज्जाअणुप्पवायस्स णं पुव्वस्स पन्नरस वत्थू पण्णत्ता, मणूसाणं पण्णरसविहे पओगे प० तं०–सच्चमणपओगे मोसमणपओगे सच्चमोसमणपओगे असच्चामोसमणपओगे सच्चवइपओगे मोसवइपओगे सच्चमोसवइपओगे असच्चामोसवइपओगे ओरालिअसरीरकायपओगे ओरालिअमीससरीरकायपओगे वेउव्वियसरीरकायपओगे वेउव्विअमीससरीरकायपओगे आहारयसरीरकायप्पओगे आहारयमीससरीरकायप्पओगे कम्मयसरीरकायपओगे, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइआणं पण्णरस पलिओवमाइं ठिई प०, पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइआणं पण्णरस सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं पण्णरस पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइआणं देवाणं पण्णरस पलिओवमाइं ठिई प०, महासुक्के कप्पे अत्थेगइआणं देवाणं पण्णरस सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५]

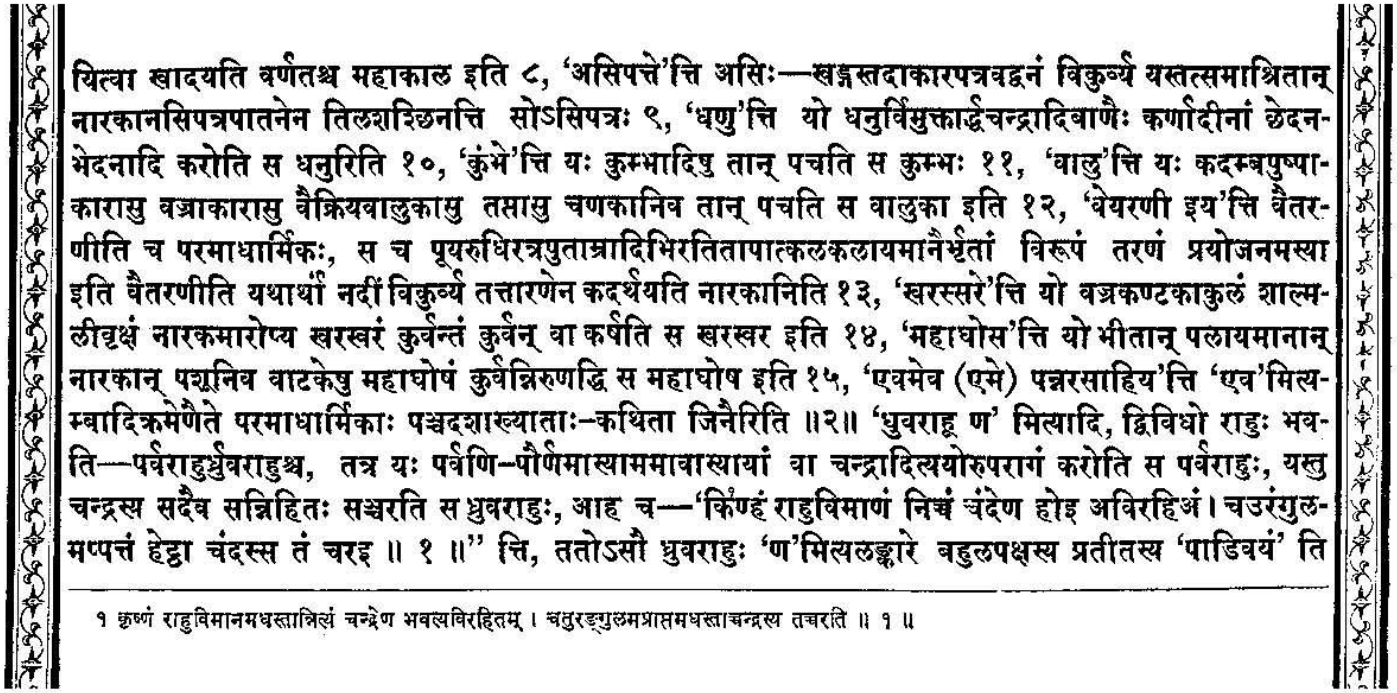
प्रत अनुक्रम [३२-३७]

णंदं सुणंदं णंदावत्तं णंदप्पभं णंदकंतं णंदवण्णं णंदलेसं णंदज्झयं णंदसिगं णंदसिट्ठं णंदकूडं णंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं पण्णरस सागरोवमाइं ठिई प० ते णं देवा पण्णरसण्हं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा तेसि णं देवाणं पण्णरसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइआ भवसिद्धिआ जीवा जे पन्नरसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं १५ ॥

अथ पञ्चदशस्थानके सुगमेऽपि किञ्चिल्लिख्यते, इह स्थितेरर्वाक् सप्त सूत्राणि, तत्र परमाश्च तेऽधार्मिकाश्च संक्लिष्टपरिणामत्वात्परमाधार्मिकाः—असुरविशेषाः, ये तिसृषु पृथिवीषु नारकान् कदर्थयन्तीति, तत्रांबेत्यादि श्लोकद्वयं, एते च व्यापारभेदेन पञ्चदश भवन्ति, तत्र 'अंबे' त्ति यः परमाधार्मिकदेवो नारकान् हन्ति पातयति बध्नाति नीत्वा चाम्बरतले विमुञ्चति सोऽम्ब इत्यभिधीयते १, 'अम्बरिसी चेव' त्ति यस्तु नारकान्निहतान् कल्पनिकाभिः खण्डशः कल्पयित्वा भ्राष्ट्रपाकयोग्यान् करोति सोऽम्बरिषीति २, 'सामे' त्ति यस्तु रज्जुहस्तप्रहारादिना शातनपातनादि करोति वर्णतश्च श्यामः स श्याम इति ३, 'सबलेत्ति यावरे' त्ति शबल इति चापरः परमाधार्मिक इति प्रक्रमः, स चान्त्रवसाहृदयकालेयकादीन्युत्पाटयति वर्णतश्च शबलः कर्बुर इत्यर्थः ४, 'रुद्दोवरुद्दे' त्ति यः शक्तिकुन्तादिषु नारकान् प्रोतयति स रौद्रत्वाद्रौद्र इति ५, यस्तु तेषामङ्गोपाङ्गानि भनक्ति सोऽत्यन्तरौद्रत्वादुपरौद्र इति ६, 'काले' त्ति यः कण्ड्वादिषु पचति वर्णतः कालश्च स कालः ७, महाकाल इति चापरः परमाधार्मिक इति प्रक्रमः, स च श्लक्ष्णमांसानि खण्ड-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परमाधार्मिकानाम् देवानाम् वर्णनं

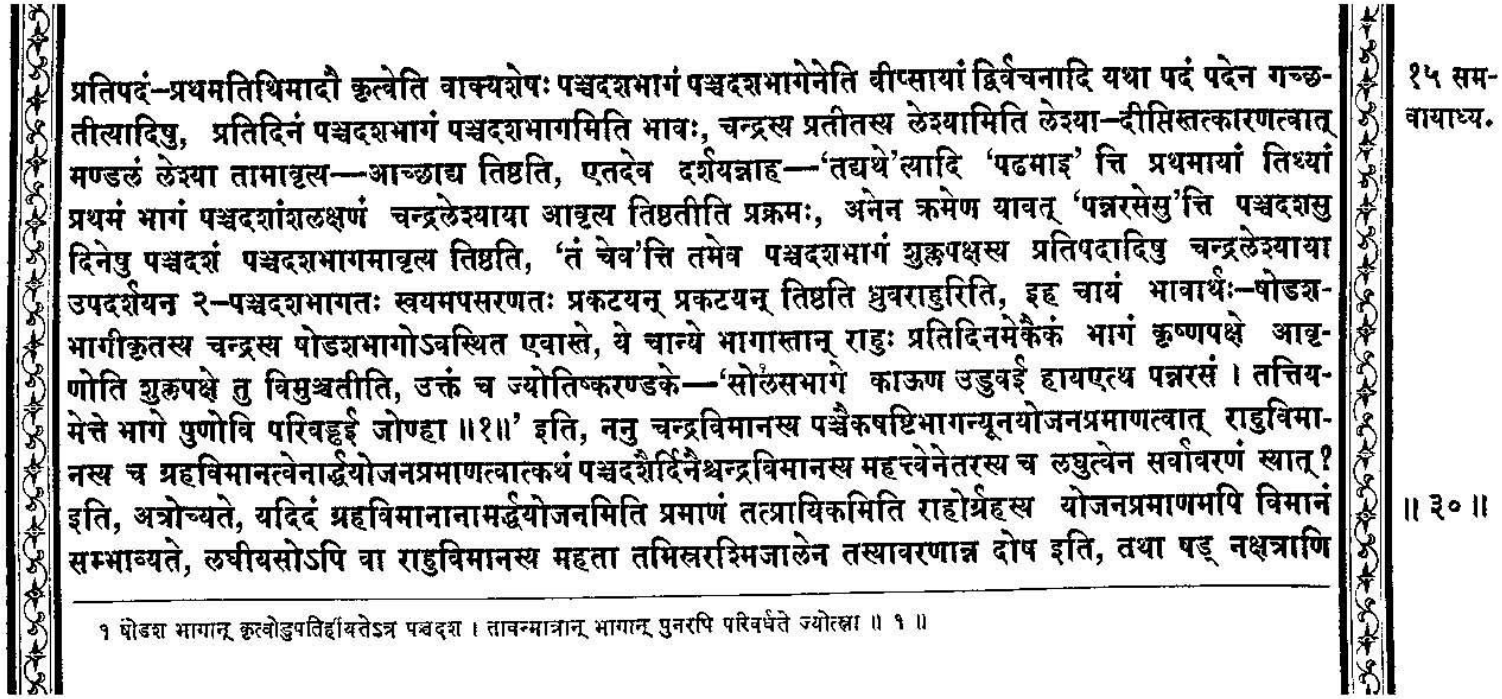


यित्वा खादयति वर्णतश्च महाकाल इति ८, 'असिपत्ते'त्ति असिः—खड्गस्तदाकारपत्रवद्वनं विकुर्व्य यस्तत्समाश्रितान् नारकानसिपत्रपातनेन तिलशश्छिनत्ति सोऽसिपत्रः ९, 'धणु'त्ति यो धनुर्विमुक्तार्द्धचन्द्रादिबाणैः कर्णादीनां छेदन-भेदनादि करोति स धनुरिति १०, 'कुंभे'त्ति यः कुम्भादिषु तान् पचति स कुम्भः ११, 'वालु'त्ति यः कदम्बपुष्पा-कारासु वज्राकारासु वैक्रियवालुकासु तप्तासु चणकानिव तान् पचति स वालुका इति १२, 'वेयरणी इय'त्ति वैतर-णीति च परमाधार्मिकः, स च पूयरुधिरत्रपुताम्रादिभिरतितापात्कलकलायमानैर्भृतां विरूपं तरणं प्रयोजनमस्या इति वैतरणीति यथार्थां नदीं विकुर्व्य तत्तारणेन कदर्थयति नारकानिति १३, 'खरस्सरे'त्ति यो वज्रकण्टकाकुलं शाल्म-लीवृक्षं नारकमारोप्य खरस्वरं कुर्वन्तं कुर्वन् वा कर्षति स खरस्वर इति १४, 'महाघोस'त्ति यो भीतान् पलायमानान् नारकान् पशूनिव वाटकेषु महाघोषं कुर्वन्निरुणद्धि स महाघोष इति १५, 'एवमेव (एमे) पन्नरसाहिय'त्ति 'एव'मित्य-म्बादिक्रमेणैते परमाधार्मिकाः पञ्चदशाख्याताः–कथिता जिनैरिति ॥२॥ 'धुवराहू ण' मित्यादि, द्विविधो राहुः भव-ति—पर्वराहुर्ध्रुवराहुश्च, तत्र यः पर्वणि–पौर्णमास्याममावास्यायां वा चन्द्रादित्ययोरुपरागं करोति स पर्वराहुः, यस्तु चन्द्रस्य सदैव सन्निहितः सञ्चरति स ध्रुवराहुः, आह च—'किण्हं राहुविमाणं निच्चं चंदेण होइ अविरहिअं। चउरंगुल-मप्पत्तं हेट्ठा चंदस्स तं चरइ ॥ १ ॥" त्ति, ततोऽसौ ध्रुवराहुः 'ण'मित्यलङ्कारे बहुलपक्षस्य प्रतीतस्य 'पाडिवयं' ति

१ कृष्णं राहुविमानमधस्तान्नित्यं चन्द्रेण भवत्यविरहितम् । चतुरङ्गुलमप्राप्तमधस्ताच्चन्द्रस्य तच्चरति ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	परमाधार्मिकानाम् देवानाम् वर्णनं



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ३० ॥

प्रतिपदं–प्रथमतिथिमादौ कृत्वेति वाक्यशेषः पञ्चदशभागं पञ्चदशभागेनेति वीप्सायां द्विर्वचनादि यथा पदं पदेन गच्छतीत्यादिषु, प्रतिदिनं पञ्चदशभागं पञ्चदशभागमिति भावः, चन्द्रस्य प्रतीतस्य लेश्यामिति लेश्या–दीप्तिस्तत्कारणत्वात् मण्डलं लेश्या तामावृत्य—आच्छाद्य तिष्ठति, एतदेव दर्शयन्नाह—'तद्यथे'त्यादि 'पढमाइ' त्ति प्रथमायां तिथ्यां प्रथमं भागं पञ्चदशांशलक्षणं चन्द्रलेश्याया आवृत्य तिष्ठतीति प्रक्रमः, अनेन क्रमेण यावत् 'पन्नरसेसु'त्ति पञ्चदशसु दिनेषु पञ्चदशं पञ्चदशभागमावृत्य तिष्ठति, 'तं चेव'त्ति तमेव पञ्चदशभागं शुक्लपक्षस्य प्रतिपदादिषु चन्द्रलेश्यायाः उपदर्शयन २–पञ्चदशभागतः स्वयमपसरणतः प्रकटयन् प्रकटयन् तिष्ठति ध्रुवराहुरिति, इह चायं भावार्थः–षोडशभागीकृतस्य चन्द्रस्य षोडशभागोऽवस्थित एवास्ते, ये चान्ये भागास्तान् राहुः प्रतिदिनमेकैकं भागं कृष्णपक्षे आवृणोति शुक्लपक्षे तु विमुञ्चतीति, उक्तं च ज्योतिष्करण्डके—'सोलसभागे काऊण उडुवई हायएत्थ पन्नरसं । तत्तियमेत्ते भागे पुणोवि परिवड्ढई जोण्हा ॥१॥' इति, ननु चन्द्रविमानस्य पञ्चैकषष्टिभागन्यूनयोजनप्रमाणत्वात् राहुविमानस्य च ग्रहविमानत्वेनार्द्धयोजनप्रमाणत्वात्कथं पञ्चदशैर्दिनैश्चन्द्रविमानस्य महत्त्वेनेतरस्य च लघुत्वेन सर्वावरणं स्यात्? इति, अत्रोच्यते, यदिदं ग्रहविमानानामर्द्धयोजनमिति प्रमाणं तत्प्रायिकमिति राहोर्ग्रहस्य योजनप्रमाणमपि विमानं सम्भाव्यते, लघीयसोऽपि वा राहुविमानस्य महता तमिस्ररश्मिजालेन तस्यावरणान्न दोष इति, तथा षड् नक्षत्राणि

१ षोडश भागान् कृत्वोडुपतिर्हीयतेऽत्र पञ्चदश । तावन्मात्रान् भागान् पुनरपि परिवर्धते ज्योत्स्ना ॥ १ ॥

१५ समवायाध्य. ॥ ३० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चदश मुहूर्त्तान् यावच्चन्द्रेण सह संयोगो येषा तानि पञ्चदशमुहूर्त्तसंयोगानि, तद्यथा–'सयभिसया भरणीओ अद्दा अस्सेस साइ जेट्ठा य । एए छन्नक्खत्ता पन्नरसमुहुत्तसंजुत्ता ॥१॥' संयुक्तं संयोग इति, तथा 'चेत्तासोएसु मासेसु'–त्ति, स्थूलन्यायमाश्रित्य चैत्रेऽश्वयुजि च मासे पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति रात्रिश्च, निश्चयतस्तु मेषसङ्क्रान्तिदिने तुलासंक्रान्तिदिने चैवं दृश्यमिति । 'पओगे'त्ति प्रयोजनं प्रयोगः सपरिस्पन्द आत्मनः क्रियापरिणामो व्यापार इत्यर्थः, अथवा प्रकर्षेण युज्यते–संयुज्यते सम्बध्यतेऽनेन क्रियापरिणामेन कर्मणा सहात्मेति प्रयोगः, तत्र सत्यार्थालोचननिबन्धनं मनः सत्यमनस्तस्य प्रयोगो–व्यापारः सत्यमनःप्रयोगः, एवं शेषेष्वपि, नवरमौदारिकशरीरकायप्रयोग औदारिकशरीरमेव पुद्गलस्कन्धसमुदायरूपत्वेनोपचीयमानत्वात् कायस्तस्य प्रयोग इति विग्रहः, अयं च पर्याप्तकस्यैव वेदितव्यः, तथौदारिकमिश्रकायप्रयोगः अयं चापर्याप्तकस्येति, इह चोत्पत्तिमाश्रित्यौदारिकस्य प्रारब्धस्य प्रधानत्वादौदारिकः कार्मणेन मिश्रः, यदा तु मनुष्यः पञ्चेन्द्रियतिर्यङ् बादरवायुकायिको वा वैक्रियं करोति तदौदारिकस्य प्रारम्भकत्वेन प्रधानत्वादौदारिको वैक्रियेण मिश्रो यावद्वैक्रियपर्याप्त्या न पर्याप्तिं गच्छति, एवमाहारकेणाप्यौदारिकस्य मिश्रताऽवसेयेति, तथा वैक्रियशरीरकायप्रयोगो वैक्रियपर्याप्तकस्य, तथा वैक्रियमिश्रशरीरकायप्रयोगस्तदपर्याप्तकस्य देवस्य नारकस्य वा कार्मणेनैव लब्धिवैक्रियपरित्यागे वा औदारिकप्रवेशाद्धायामौदारिकोपादानाय प्रवृत्तेर्वैक्रियप्राधान्यादौदारिकेणापि मिश्रतेत्येके, तथा आहारकशरीरकायप्रयोगस्तदभिनिर्वृत्तौ सत्यां तस्यैव प्रधानत्वात्, तथा आ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हारकमिश्रशरीरकायप्रयोगः औदारिकेण सहाहारकपरित्यागेनेतरग्रहणायोद्यतस्य, एतदुक्तं भवति–यदाहारकशरीरीभूत्वा कृतकार्यः पुनरप्यौदारिकं गृह्णाति तदाऽऽहारकस्य प्रधानत्वादौदारिकप्रवेशं प्रति व्यापारभावाद्यावत् सर्वथैव न परित्यजत्याहारकं तावदौदारिकेण सह मिश्रतेति, आह–न तत्तेन सर्वथा मुक्तं पूर्वनिर्वर्त्तितं तिष्ठत्येव तत्कथं गृह्णाति ?, सत्यं, तथाप्यौदारिकशरीरोपादानार्थं प्रवृत्त इति गृह्णात्येव, तथा कार्मणशरीरकायप्रयोगो विग्रहे समुद्घातगतस्य च केवलिनस्तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु भवतीति ॥ १५ ॥

सोलस य गाहासोलसगा पं० तं०–समए वेयालिए उवसग्गपरिन्ना इत्थीपरिण्णा निरयविभत्ती महावीरथुई कुसीलपरिभासिए वीरिए धम्मे समाही मग्गे समोसरणे आहातहिए गंथे जमईए गाहासोलसमे सोलसगे, सोलस कसाया पं० तं०–अणंताणुबंधी कोहे अणंताणुबंधी माणे अणंताणुबंधी माया अणंताणुबंधी लोभे अपच्चक्खाणकसाए कोहे अपच्चक्खाणकसाए माणे अपच्चक्खाणकसाए माया अपच्चक्खाणकसाए लोभे पच्चक्खाणावरणे कोहे पच्चक्खाणावरणे माणे पच्चाक्खाणावरणा माया पच्चक्खाणावरणे लोभे संजलणे कोहे संजलणे माणे संजलणे माया संजलणे लोभे, मंदरस्स णं पव्वयस्स सोलस नामधेया पं० तं-मंदरे मेरुमणोरमे सुदंसणे सयंपभे य गिरिराया । रयणुच्चयं पियदंसणे मज्झेलोगस्सनाभी य ॥१॥ अत्थे अं सूरिआवत्ते सूरिआवरणेत्ति अ । उत्तरे अं दिसाई अं, वडिंसे इअ सोलसमे ॥ २ ॥ पासस्स णं अरहतो पुरिसादाणीयस्स सोलस समणसाहस्सीओ उक्कोसिआ समण संपदा होत्था, आयप्पवायस्स णं पुव्वस्स णं सोलस वत्थू प०, चमरबलीणं उवारियालेणे सोलस जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प०, लवणे णं समुद्दे सोलस जोयणसहस्साइं उस्सेहपरिवुड्ढीए प०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सोलस पलिओवमाइं ठिई प०, पंचमाए पुढविए अत्थेगइयाणं देवाणं सोलस सागरोवमाठिती प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सोलस पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सोलस पलिओवमाइं ठिई प०, महासुक्के कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं सोलस सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा आवत्तं विआवत्तं नंदिआवत्तं महाणंदिआवत्तं अंकुसं अंकुसपलंबं भद्दं सुभद्दं महाभद्दं सव्वओभद्दं भद्दुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं सोलस सागरोवमाइं ठिई प० ते णं देवा सोलसहिं अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा तेसि णं देवाणं सोलसवाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइआ भवसिद्धिआ जीवा जे सोलसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतंकरिस्संति ॥ सूत्रं १६ ॥

अथ षोडशस्थानकमुच्यते सुगमं चेदं, नवरं गाथाषोडशकादीनि स्थितिसूत्रेभ्य आरात्सप्त सूत्राणि, तत्र सूत्रकृताङ्गस्य प्रथमश्रुतस्कन्धे षोडशाध्ययनानि तेषां च गाथाभिधानं षोडशमिति गाथाभिधानमध्ययनं षोडशं येषां तानि गाथाषोडशकानि, तत्र 'समए'त्ति नास्तिकादिसमयप्रतिपादनपरमध्ययनं समय एवोच्यते, वैतालीयच्छन्दोजातिबद्धं वैतालीयम्, एवं शेषाणां यथाभिधेयं नामानि, 'समोसरणे'त्ति समवसरणं त्रयाणां त्रिषष्ट्यधिकानां प्रवादिशतानां मतपिण्डनरूपं, 'अहातहिए'त्ति यथा वस्तु तथा प्रतिपाद्यते यत्र तद्यथातथिकं, ग्रन्थाभिधायकं ग्रन्थः, 'जम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१६]

प्रत अनुक्रम [३८-४१]

इए'त्ति यमकीयं यमकनिबद्धसूत्रं 'गाहे'ति प्राक्तनपञ्चदशाध्ययनार्थस्य गानाद्गाथा गाथा वा तत्प्रतिष्ठाभूतत्वादिति, मेरुनामसूत्रे गाथा श्लोकश्च 'मज्झेलोगस्सनाभी य'त्ति लोकमध्ये लोकनाभिश्चेत्यर्थः ।१। 'उत्तरे य'त्ति भरतादीनामुत्तरदिग्वर्त्तित्वाद्, यदाह–'सव्वेसिं उत्तरो मेरु'त्ति [सर्वेषामुत्तरो मेरुः] 'दिसाइ य' त्ति दिशामादिर्दिगादिरित्यर्थः 'वडिंसे इय'त्ति अवतंसः–शेखरः स इवावतंस इति, 'पुरिसादाणीय'त्ति पुरुषाणां मध्ये आदेयस्येत्यर्थः, तथा आत्मप्रवादपूर्वस्य सप्तमस्य, तथा चमरबल्योर्दक्षिणोत्तरयोरसुरकुमारराजयोः, 'उवारियालेणे'त्ति चमरचञ्चाबलीचञ्चाभिधानराजधान्योर्मध्यभागे तद्भवनयोर्मध्योन्नताऽवतरत्पार्श्वपीठरूपे आवतारिकलयने षोडश योजनसहस्राण्यायामविष्कम्भाभ्यां वृत्तत्वात्तयोरिति, तथा लवणसमुद्रे मध्यमेषु दशसु सहस्रेषु नगरप्राकार इव जलमूर्ध्वं गतं तस्य चोत्सेधवृद्धिः षोडश सहस्राणि अत उच्यते–लवणसमुद्रः षोडश योजनसहस्राण्युत्सेधपरिवृद्ध्या प्रज्ञप्त इति, आवर्त्तादीन्येकादश विमाननामानि ॥ १६ ॥

सत्तरसविहे असंजमे प० तं०—पुढविकायअसंजमे आउकायअसंजमे तेउकायअसंजमे वाउकायअसंजमे वणस्सइकायअसंजमे बेइंदिअसंजमे तेइंदियअसंजमे चउरिंदियअसंजमे पंचिंदिअसंजमे अजीवकायअसंजमे पेहाअसंजमे उवेहाअसंजमे अवहट्टुअसंजमे अप्पमज्जणाअसंजमे मणअसंजमे वइअसंजमे कायअसंजमे, सत्तरसविहे संजमे प० तं०—पुढवीकायसंजमे आउकायसंजमे तेउकायसंजमे वाउकायसंजमे वणस्सइकायसंजमे बेइंदिअसंजमे तेइंदिअसंजमे चउरिंदिअसंजमे पंचिंदिअसंजमे अजीवकायसंजमे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

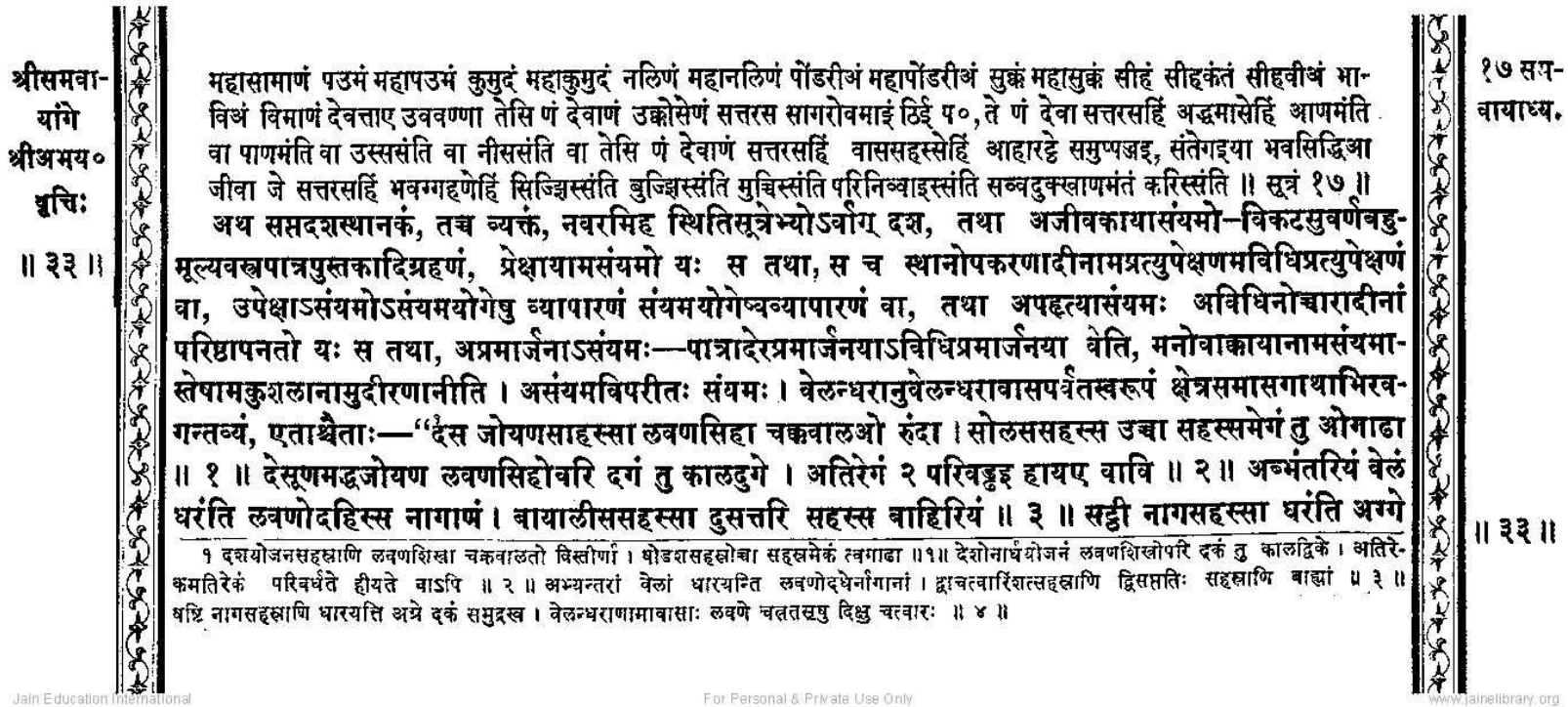
पेहासंजमे उवेहासंजमे अवहट्टुसंजमे पमज्जणासंजमे मणसंजमे वइसंजमे कायसंजमे, माणुसत्तरे णं पव्वए सत्तरसएक्कवीसे जोयणसए उड्ढं उच्चत्तेणं प०, सव्वेसिंपि णं वेलंधरअणुवेलंधरणागराईणं आवासपव्वया सत्तरसएक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, लवणे णं समुद्दे सत्तरस जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं प०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सातिरेगाइं सत्तरस जोयणसहस्साइं उड्ढं उप्पतित्ता ततो पच्छा चारणाणं तिरिआ गती पवत्तति, चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो तिगिंछिकूडे उप्पायपव्वए सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, बलिस्स णं असुरिंदस्स रुअगिंदे उप्पायपव्वए सत्तरस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, सत्तरसविहे मरणे प०–आवीईमरणे ओहिमरणे आयंतियमरणे वलायमरणे वसट्टमरणे अंतोसल्लमरणे तब्भवमरणे बालमरणे पंडितमरणे बालपंडितमरणे छउमत्थमरणे केवलिमरणे वेहाणसमरणे गिद्धपिट्ठमरणे भत्तपच्चक्खाणमरणे इंगिणिमरणे पाओवगमणमरणे, सुहुमसंपराए णं भगवं सुहुमसंपरायभावे वट्टमाणे सत्तरस कम्मपगडीओ णिबंधति तं०–आभिणिबोहियणाणावरणे सुयणाणावरणे ओहिणाणावरणे मणपज्जवणाणावरणे केवलणाणावरणे चक्खुदंसणावरणे अचक्खुदंसणावरणे ओहीदंसणावरणे केवलदंसणावरणे सायावेयणिज्जं जसोकित्तिनामं उच्चागोयं दाणंतरायं लाभंतरायं भोगंतरायं उवभोगंतरायं वीरिअंतरायं, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाणं सत्तरस पलिओवमाइं ठिई प०, पंचमीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई प०, छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइआणं जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइआणं सत्तरस पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइआणं देवाणं सत्तरस पलिओवमाइं ठिई प०, महासुक्के कप्पे देवाणं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई प०, सहस्सारे कप्पे देवाणं जहण्णेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा सामाणं सुसामाणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१७]

प्रत अनुक्रम [४२]



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ३३ ॥

महासामाणं पउमं महापउमं कुमुदं महाकुमुदं नलिणं महानलिणं पोंडरीअं महापोंडरीअं सुक्कं महासुक्कं सीहं सीहकंतं सीहवीअं भाविअं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं सत्तरस सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा सत्तरसहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा तेसि णं देवाणं सत्तरसहिं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिआ जीवा जे सत्तरसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं १७ ॥

अथ सप्तदशस्थानकं, तच्च व्यक्तं, नवरमिह स्थितिसूत्रेभ्योऽर्वाग् दश, तथा अजीवकायासंयमो–विकटसुवर्णबहुमूल्यवस्त्रपात्रपुस्तकादिग्रहणं, प्रेक्षायामसंयमो यः स तथा, स च स्थानोपकरणादीनामप्रत्युपेक्षणमविधिप्रत्युपेक्षणं वा, उपेक्षाऽसंयमोऽसंयमयोगेषु व्यापारणं संयमयोगेष्वव्यापारणं वा, तथा अपहृत्यासंयमः अविधिनोच्चारादीनां परिष्ठापनतो यः स तथा, अप्रमार्जनाऽसंयमः—पात्रादेरप्रमार्जनयाऽविधिप्रमार्जनया वेति, मनोवाक्कायानामसंयमास्तेषामकुशलानामुदीरणानीति । असंयमविपरीतः संयमः । वेलन्धरानुवेलन्धरावासपर्वतस्वरूपं क्षेत्रसमासगाथाभिरवगन्तव्यं, एताश्चैताः—"दस जोयणसाहस्सा लवणसिहा चक्कवालओ रुंदा । सोलससहस्स उच्चा सहस्समेगं तु ओगाढा ॥ १ ॥ देसूणमद्धजोयण लवणसिहोवरि दगं तु कालदुगे । अतिरेगं २ परिवड्ढइ हायए वावि ॥ २ ॥ अब्भंतरियं वेलं धरंति लवणोदहिस्स नागाणं । बायालीससहस्सा दुसत्तरि सहस्स बाहिरियं ॥ ३ ॥ सट्ठी नागसहस्सा धरंति अग्गे

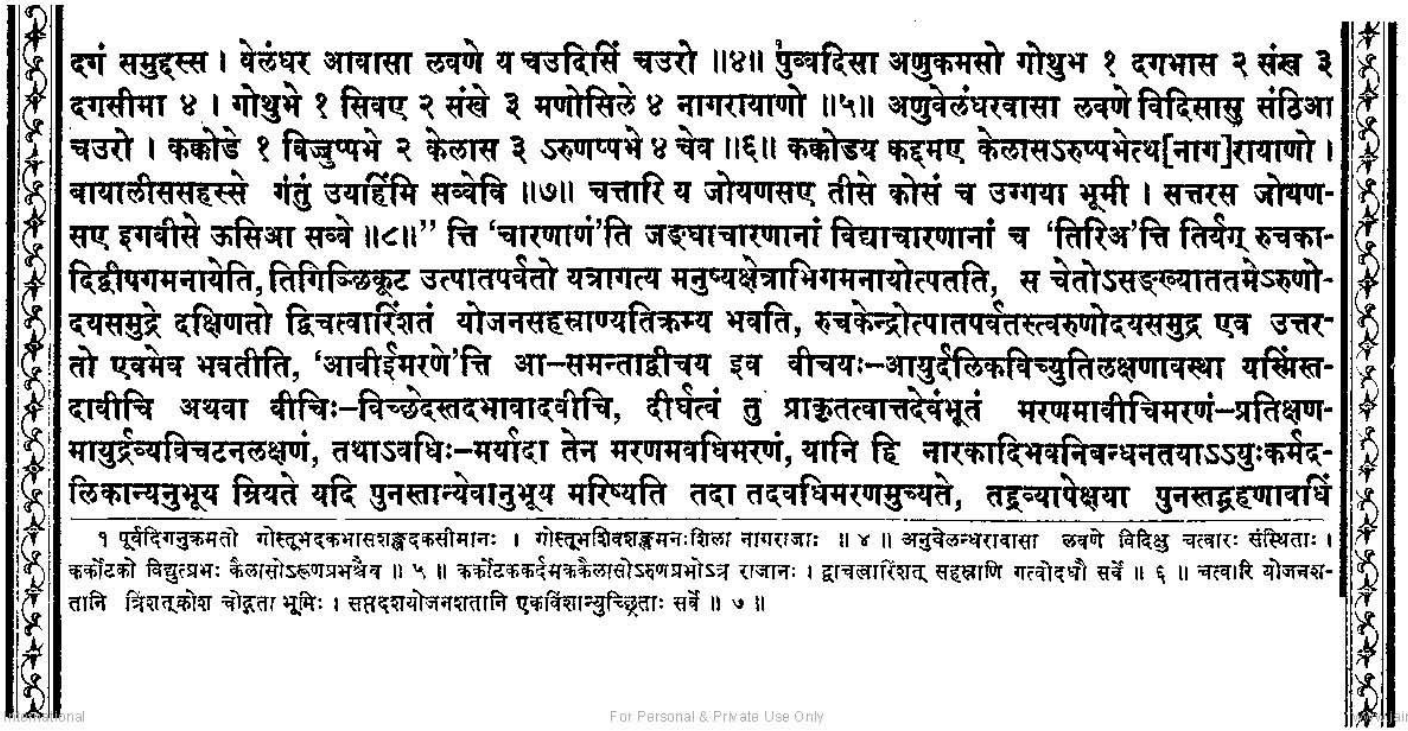
१ दशयोजनसहस्राणि लवणशिखा चक्रवालतो विस्तीर्णा । षोडशसहस्रोच्चा सहस्रमेकं त्वगाढा ॥१॥ देशोनार्धयोजनं लवणशिखोपरि दकं तु कालद्विके । अतिरेकमतिरेकं परिवर्धते हीयते वाऽपि ॥ २ ॥ अभ्यन्तरां वेलां धारयन्ति लवणोदधेर्नागानां । द्वाचत्वारिंशत्सहस्राणि द्विसप्ततिः सहस्राणि बाह्यां ॥ ३ ॥ षष्टि नागसहस्राणि धारयति अग्रे दकं समुद्रस्य । वेलन्धराणामावासाः लवणे चतसृषु दिक्षु चत्वारः ॥ ४ ॥

१७ सप्तदशाध्य.

॥ ३३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'असंयम'स्य सप्तदश भेदाः



दगं समुद्दस्स । वेलंधर आवासा लवणे य चउदिसिं चउरो ॥४॥ पुव्वदिसा अणुकमसो गोथुभ १ दगभास २ संख ३ दगसीमा ४ । गोथुभे १ सिवए २ संखे ३ मणोसिले ४ नागरायाणो ॥५॥ अणुवेलंधरवासा लवणे विदिसासु संठिआ चउरो । ककोडे १ विज्जुप्पभे २ केलास ३ ऽरुणप्पभे ४ चेव ॥६॥ ककोडय कद्दमए केलासऽरुप्पभेत्थ[नाग]रायाणो । बायालीससहस्से गंतुं उयहिंमि सव्वेवि ॥७॥ चत्तारि य जोयणसए तीसे कोसं च उग्गया भूमी । सत्तरस जोयणसए इगवीसे ऊसिआ सव्वे ॥८॥" त्ति 'चारणाणं'ति जङ्घाचारणानां विद्याचारणानां च 'तिरिअ'त्ति तिर्यग् रुचकादिद्वीपगमनायेति, तिगिञ्छिकूट उत्पातपर्वतो यत्रागत्य मनुष्यक्षेत्राभिगमनायोत्पतति, स चेतोऽसङ्ख्यातमेऽरुणोदयसमुद्रे दक्षिणतो द्विचत्वारिंशतं योजनसहस्राण्यतिक्रम्य भवति, रुचकेन्द्रोत्पातपर्वतस्त्वरुणोदयसमुद्र एव उत्तरतो एवमेव भवतीति, 'आवीईमरणे'त्ति आ–समन्ताद्वीचय इव वीचयः–आयुर्दलिकविच्युतिलक्षणावस्था यस्मिंस्तदावीचि अथवा वीचिः–विच्छेदस्तदभावादवीचि, दीर्घत्वं तु प्राकृतत्वात्तदेवंभूतं मरणमावीचिमरणं–प्रतिक्षणमायुर्द्रव्यविचटनलक्षणं, तथाऽवधिः–मर्यादा तेन मरणमवधिमरणं, यानि हि नारकादिभवनिबन्धनतयाऽऽयुःकर्मदलिकान्यनुभूय म्रियते यदि पुनस्तान्येवानुभूय मरिष्यति तदा तदवधिमरणमुच्यते, तद्द्रव्यापेक्षया पुनस्तद्ग्रहणावधिं

१ पूर्वदिगनुक्रमतो गोस्तूभदकभासशङ्खदकसीमानः । गोस्तूभशिवशङ्खमनःशिला नागराजाः ॥ ४ ॥ अनुवेलन्धरावासा लवणे विदिक्षु चत्वारः संस्थिताः । ककोटको विद्युत्प्रभः कैलासोऽरूणप्रभश्चैव ॥ ५ ॥ ककोटककर्दमककैलासोऽरुणप्रभोऽत्र राजानः । द्वाचत्वारिंशत् सहस्राणि गत्वोदधौ सर्वे ॥ ६ ॥ चत्वारि योजनशतानि त्रिंशत्कोश चोद्गता भूमिः । सप्तदशयोजनशतानि एकविंशान्युच्छ्रिताः सर्वे ॥ ७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१७]

प्रत अनुक्रम [४२]

यावज्जीवस्य मृतत्वादिति, तथा 'आयंतियमरणे'त्ति आत्यन्तिकमरणं यानि नारकाद्यायुष्कतया कर्मदलिकान्यनुभूय म्रियते मृतश्च न पुनस्तान्यनुभूय मरिष्यतीति, एवं यन्मरणं तद्द्रव्यापेक्षया अत्यन्तभावित्वादात्यन्तिकमिति, 'वलायमरणे'त्ति संयमयोगेभ्यो वलतां–भग्नव्रतपरिणतीनां व्रतिनां मरणं वलन्मरणं तथा वशेन–इन्द्रियविषयपारतन्त्र्येण ऋता–बाधिता वशार्त्ताः स्निग्धदीपकलिकावलोकनात् शलभवत् तथाऽन्तः–मध्ये मनसीत्यर्थः शल्यमिव शल्यमपराधपदं यस्य सोऽन्तःशल्यो—लज्जाभिमानादिभिरनालोचितातीचारस्तस्य मरणम् अन्तःशल्यमरणं, तथा यस्मिन् भवे–तिर्यग्मनुष्यभवलक्षणे वर्त्तते जन्तुस्तद्भवयोग्यमेवायुर्बद्ध्वा पुनः तत्क्षयेण म्रियमाणस्य यद्भवति तत्तद्भवमरणं, एतच्च तिर्यग्मनुष्याणामेव न देवनारकाणां, तेषां तेष्वेवोत्पादाभावादिति, तथा बाला इव बालाः–अविरतास्तेषां मरणं बालमरण, तथा पण्डिताः–सर्वविरतास्तेषां मरणं पण्डितमरणम्, बालपण्डिताः—देशविरतास्तेषां मरणं बालपण्डितमरणं, तथा छद्मस्थमरणम्–अकेवलिमरणं, केवलिमरणं तु प्रतीतं, 'वेहासमरणं'ति विहायसि–व्योमनि भवं वैहायसं, विहायोभवत्वं च तस्य वृक्षशाखाद्युद्बद्धत्वे सति भावात्, तथा गृद्धैः–पक्षिविशेषैरुपलक्षणत्वाच्छकुनिकाशिवादिभिश्च स्पृष्टं–स्पर्शनं यस्मिंस्तद्गृध्रस्पृष्टम् अथवा गृध्राणां भक्ष्यं पृष्ठमुपलक्षणत्वादुदरादि यत्र तद्गृध्रपृष्ठम्, इदं च करिकरभादिशरीरमध्यपातादिना गृध्रादिभिरात्मानं भक्षयतो महासत्त्वस्य भवति, तथा भक्तस्य–भोजनस्य यावज्जीवं प्रत्याख्यानं यस्मिंस्तत्तथा, इदं च त्रिविधाहारस्य चतुर्विधाहारस्य वा नियमरूपं सप्रतिकर्म च भक्तपरिज्ञेति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मरणस्य सप्तदश भेदा:

प्रत सूत्रांक [१७]

प्रत अनुक्रम [४२]

यद्रूढम्, तथा इङ्ग्यते प्रतिनियतदेश एव चेष्यतेऽस्यामनशनक्रियायामितीङ्गिनी तया मरणमिङ्गिनीमरणम्, तद्धि चतुर्विधाहारप्रत्याख्यातुर्निष्प्रतिकर्मशरीरस्येङ्गितदेशाभ्यन्तरवर्त्तिन एवेति, तथा पादपस्येवोपगमनम्–अवस्थानं यस्मिन् तत्पादपोपगमनं तदेव मरणमिति विग्रहः, इदं च यथा पादपः क्वचित् कथञ्चिद् निपतितः सममसममिति चाविभावयन्निश्चलमेवास्ते तथा यो वर्त्तते तस्य तद्भवतीति। तथा सूक्ष्मसम्परायः उपशमकः क्षपको वा सूक्ष्मलोभकषायकिट्टिकावेदको भगवान्—पूज्यत्वात् सूक्ष्मसम्परायभावे वर्त्तमानः-तत्रैव गुणस्थानकेऽवस्थितः नातीतानागतसूक्ष्मसम्परायपरिणाम इत्यर्थः सप्तदश कर्मप्रकृतीर्निबध्नाति विंशत्युत्तरे बन्धप्रकृतिशतेऽन्या न बध्नातीत्यर्थः, पूर्वतरगुणस्थानकेषु बन्धं प्रतीत्य तासां व्यवच्छिन्नत्वात्, तथोक्तानां सप्तदशानां मध्यादेका सातप्रकृतिरुपशान्तमोहादिषु बन्धमाश्रित्यानुयाति, शेषाः षोडशैव व्यवच्छिद्यन्ते, यदाह–"नाणं ५ तराय १० दसगं दंसण चत्तारि १४ उच्च १५ जसकित्ती १६। एया सोलसपयडी सुहुमकसायंमि वोच्छिन्ना ॥ १ ॥" सूक्ष्मसम्परायात्परे न बध्नन्तीत्यर्थः, सामानादीनि सप्तदश विमानानां नामानीति ॥ १७ ॥

अट्ठारसविहे बंभे पं० तं०—ओरालिए कामभोगे णेव सयं मणेणं सेवइ नोवि अण्णं मणेणं सेवावेइ मणेणं सेवंतं पि अण्णं न समणुजाणाइ ओरालिए कामभोगे णेव सयं वायाए सेवइ नोवि अण्णं वायाए सेवावेइ वायाए सेवंतंपि अण्णं न समणुजाणाइ ओरालिए कामभोगे णेव सयं कायेणं सेवइ णोवि यऽण्णं काएणं सेवावेइ काएणं सेवंतंपि अण्णं न स मणुजाणाइ, दिव्वे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मरणस्य सप्तदश भेदाः

प्रत सूत्रांक [१८]

प्रत अनुक्रम [४३-४५]

कामभोगे णेव सेयं मणेणं सेवइ णोवि अण्णं मणेणं सेवावेइ मणेणं सेवंतंपि अण्णं न समणुजाणाइ दिव्वे कामभोगे णेव सयं वायाए सेवइ णोवि अण्णं वायाए सेवावेइ वायाए सेवंतंपि अण्णं न समणुजाणाइ दिव्वे कामभोगे णेव सयं काएणं सेवइ णोवि अण्णं काएणं सेवावेइ काएणं सेवंतंपि अण्णं न समणुजाणाइ, अरहतो णं अरिट्ठनेमिस्स अट्ठारस समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था, समणेणं भगवया महावीरेणं समणाणं णिग्गंथाणं सखुड्डयविअत्ताणं अट्ठारस ठाणा प० तं–वयछक्कं ६ कायछक्कं १२, अकप्पो १३ गिहिभायणं १४ । पलियंक १५ निसिज्जा १६ य, सिणाणं १७ सोभवज्जणं १८ ॥१॥ आयारस्स णं भगवतो सचूलिआगस्स अट्ठारस पयसहस्साइं पयग्गेणं प०, बंभीए णं लिवीए अट्ठारसविहे लेखविहाणे प० तं०–बंभी[1] जवणी[2] दोसा[3] खरोट्टिआ[4] खरसाविआ[5] पहाराइया[6] उच्चत्तरिआ[7] अक्खरपुट्ठिया[8] भोगवयता[9] वेणतिया[10] णिण्हइया[11] अंकलिवि[12] गणिअलिवी[13] गंधव्वलिवी[14] भूयलिवि[15] आदंसलिवी[16] माहेसरीलिवी[17] दामिलिवी[18] बोलिंदिलिवी[19], अत्थिनत्थिप्पवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठारस वत्थू प०, धूमप्पभाए णं पुढवीए अट्ठारसुत्तरं जोयणसयसहस्सं बाहल्लेणं प०, पोसासाढेसु णं मासेसु सइ उक्कोसेणं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ सइ उक्कोसेणं अट्ठारसमुहुत्ता राती भवइ, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठारस पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइआणं देवाणं अट्ठारस पलिओवमाइं ठिई प०, सहस्सारे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई प०, आणए कप्पे देवाणं अत्थेगइयाणं जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा कालं सुकालं महाकालं अंजणं रिट्ठं सालं समाणं दुमं महादुमं विसालं सुसालं पउमं पउमगुम्मं कुमुदं कुमुदगुम्मं नलिणं नलिणगुम्मं पुंडरीअं पुंडरीयगुम्मं सहस्सारवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं अट्ठारस सागरोवमाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ठिई प० ते णं देवा णं अद्धारसेहिं अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा तेसि णं देवाणं अट्ठारस-वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइआ भवसिद्धिया जे अट्ठारसहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परि-निव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं १८ ॥

अथाष्टादशस्थानकम्, इह चाष्टौ सूत्राणि स्थितिसूत्रेभ्योऽर्वाक् सुगमानि च, नवरं 'बंभे'त्ति ब्रह्मचर्यं यथौदारिक-कामभोगान्–मनुष्यतिर्यक्सम्बन्धिविषयान् तथा दिव्यकामभोगान्–देवसम्बन्धिन इत्यर्थः । तथा 'सखुड्डगवियत्ताणं'ति सह क्षुद्रकैर्व्यक्तैश्च ये ते सक्षुद्रकव्यक्ताः तेषां, तत्र क्षुद्रका–वयसा श्रुतेन वाऽव्यक्ताः, व्यक्तास्तु ये वयःश्रुताभ्यां परिणताः, स्थानानि–परिहारसेवाश्रयवस्तूनि 'व्रतषट्कं' महाव्रतानि रात्रिभोजनविरतिश्च 'कायषट्कं' पृथिवीकायादि, अकल्पः–अकल्पनीयपिण्डशय्यावस्त्रपात्ररूपः पदार्थः, 'गृहिभाजनं'स्थाल्यादिः पर्यङ्को–मञ्चकादि निषद्या–स्त्रिया सहासनं 'स्नानं' शरीरक्षालनं 'शोभावर्जनं' प्रतीतं। तथा 'आचारस्य' प्रथमाङ्गस्य सचूलिकाकस्य–चूडासमन्वितस्य, तस्य पिण्डैषणाद्याः पञ्च चूलाः द्वितीयश्रुतस्कन्धात्मिकाः स च नवब्रह्मचर्याभिधानाध्ययनात्मकप्रथमश्रुतस्कन्ध-रूपः, तस्यैव चेदं पदप्रमाणं न चूलानां, यदाह–"नवबंभचेरमइओ अट्ठारस पयसहस्सीओ वेओ । हवइ य सपंचचूलो बहुबहुतरओ पयग्गेणं ॥१॥" त्ति, यच्च सचूलिकाकस्येति विशेषणं तत्तस्य चूलिकासत्ताप्रतिपादनार्थं, न तु पदप्रमा-

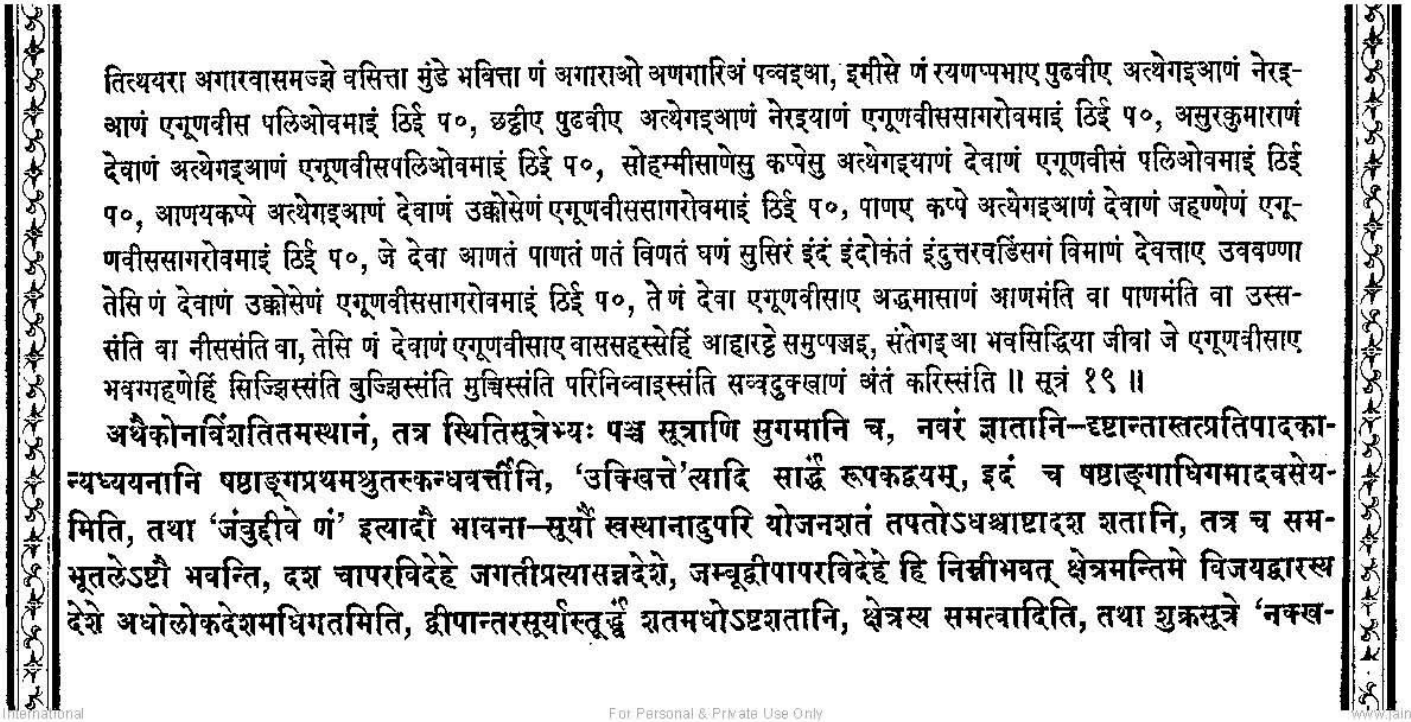
१ नवब्रह्मचर्यमयोऽष्टादशपदसाहस्रिको वेदः । भवति च सपञ्चचूलो बहुबहुतरकः पदाग्रेण ॥ १ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णाभिधानार्थं, यतोऽवाचि नन्दीटीकाकृता–'अट्ठारसपयसहस्साणि पुण पढमसुयखंधस्स नवबंभचेरमइयस्स पमाणं, विचित्तत्थाणि य सुत्ताणि गुरूवएसओ तेसिं अत्थो जाणियव्वो'त्ति, पदसहस्राणीह यत्रार्थोपलब्धिस्तत्पदं, 'पदाग्रेणे'–ति पदपरिमाणेनेति, तथा 'बंभि'त्ति ब्राह्मी—आदिदेवस्य भगवतो दुहिता ब्राह्मी वा—संस्कृतादिभेदा वाणी तामाश्रित्य तेनैव या दर्शिता अक्षरलेखनप्रक्रिया सा ब्राह्मीलिपिः अतस्तस्या ब्राह्म्या लिपेः 'ण' मित्यलङ्कारे लेखो–लेखनं तस्या विधानं–भेदो लेखविधानं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—बंभीत्यादि, एतत्स्वरूपं न दृष्टमिति न दर्शितं। तथा यल्लोके यथास्ति यथा वा नास्ति अथवा स्याद्वादाभिप्रायस्तत्तदेवास्ति नास्ति वेत्येवं प्रवदंतीत्यस्तिनास्तिप्रवादं, तच्च चतुर्थं पूर्वं तस्य, तथा धूमप्रभा पञ्चमी अष्टादशोत्तरं अष्टादशयोजनसहस्राधिकमित्यर्थः, 'बाहल्येन' पिण्डेन, 'पोसासाढे'त्यादेरेवं योजना–आषाढमासे 'सइ' इति सकृदेकदा कर्कसङ्क्रान्ताविति यावत्, उत्कर्षेण–उत्कर्षतोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, षट्त्रिंशद्घटिका इत्यर्थः, तथा पौषमासे सकृदिति–मकरसङ्क्रान्तौ रात्रिश्चैवंविधेति, कालसुकालादीनि विंशतिर्विमानानि ॥१८॥

एगूणवीसं णायज्झयणा पं० तं०–उक्खित्तणाए[1] संघाडे[2], अंडे[3] कुम्मे अ[4] सेलए[5] । तुंबे अ[6] रोहिणी[7] मल्ली[8], मागंदी[9] चंदिमाति अ[10] ॥ १ ॥ दावद्दवे[11] उदगणाए[12], मंडुक्के[13] तेत्तली[14] इअ। नंदिफले[15] अवरकंका[16], आइण्णे[17] सुंसुमा[18] इअ ॥२॥ अवरे अ पोण्डरीए, णाए[19] एगूणवीसमे। जंबूदीवे णं दीवे सूरिआ उक्कोसेणं एगूणवीस जोयणसयाइं उड्ढमहो तवयंति, सुक्केणं महग्गहे अवरेणं उदिए समाणे एगूणवीसं णक्खत्ताइं समं चारं चरित्ता अवरेणं अत्थमणं उवागच्छइ, जंबुदीवस्स णं दीवस्स कलाओ एगूणवीसं छेअणाओ प०, एगूणवीसं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



तित्थयरा अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता णं अगाराओ अणगारिअं पव्वइआ, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइआणं एगूणवीस पलिओवमाइं ठिई प०, छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाणं एगूणवीससागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइआणं एगूणवीसपलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एगूणवीसं पलिओवमाइं ठिई प०, आणयकप्पे अत्थेगइआणं देवाणं उक्कोसेणं एगूणवीससागरोवमाइं ठिई प०, पाणए कप्पे अत्थेगइआणं देवाणं जहण्णेणं एगूणवीससागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा आणतं पाणतं णतं विणतं घणं सुसिरं इंदं इंदोकंतं इंदुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं एगूणवीससागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा एगूणवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा, तेसि णं देवाणं एगूणवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइआ भवसिद्धिया जीवा जे एगूणवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणं अंतं करिस्संति ॥ सूत्रं १९ ॥

अथैकोनविंशतितमस्थानं, तत्र स्थितिसूत्रेभ्यः पञ्च सूत्राणि सुगमानि च, नवरं ज्ञातानि–दृष्टान्तास्तत्प्रतिपादकान्यध्ययनानि षष्ठाङ्गप्रथमश्रुतस्कन्धवर्त्तीनि, 'उक्खित्ते'त्यादि सार्द्धं रूपकद्वयम्, इदं च षष्ठाङ्गाधिगमादवसेयमिति, तथा 'जंबुद्दीवे णं' इत्यादौ भावना–सूर्यौ स्वस्थानादुपरि योजनशतं तपतोऽधश्चाष्टादश शतानि, तत्र च समभूतलेऽष्टौ भवन्ति, दश चापरविदेहे जगतीप्रत्यासन्नदेशे, जम्बूद्वीपापरविदेहे हि निम्नीभवत् क्षेत्रमन्तिमे विजयद्वारस्य देशे अधोलोकदेशमधिगतमिति, द्वीपान्तरसूर्यास्तूर्द्ध्वं शतमधोऽष्टशतानि, क्षेत्रस्य समत्वादिति, तथा शुक्रसूत्रे 'नक्ख-

७ स०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ३७ ॥

त्ताइं'ति विभक्तिपरिणामान्नक्षत्रैः समं सह चारं–चरणं चरित्वा–विधायेति, तथा 'कलाओ'त्ति 'पंचसए छब्बीसे छच्च कला वित्थडं भरहवास'मित्यादिषु जम्बूद्वीपगणितेषु याः कला उच्यन्ते ता योजनस्यैकोनविंशतिभागच्छेदनाः, एकोनविंशतिभागरूपा इति भावः, 'अगारमज्झे वसित्त'त्ति अगारं–गेहं अधिकं–आधिक्येन चिरकालं राज्यपरिपालनतः आ–मर्यादया नीत्या वसित्वा–उषित्वा तत्र वासं विधायेति, अभ्येष्टया प्रव्रजिताः, शेषास्तु पञ्च कुमारभाव एवेत्याह च–"वीरं अरिट्ठनेमिं पासं मल्लिं च वासुपुज्जं च । एए मोत्तूण जिणे अवसेसा आसि रायाणो॥१॥"त्ति ॥

वीसं असमाहिठाणा पं० तं०–दवदवचारि यावि भवइ अपमज्जियचारि आवि भवइ दुप्पमज्जियचारि आवि भवइ अतिरित्तसज्जासणिए रातिणिअपरिभासी थेरोवघाइए भूओवघाइए संजलणे कोहणे पिट्ठिमंसिए अभिक्खणं २ ओहारइत्ता भवइ णवाणं अधिकरणाणं अणुप्पण्णाणं उप्पाएत्ता भवइ पोराणाणं अधिकरणाणं खामिअविउसविआणं पुणोदीरेत्ता भवइ ससरक्खपाणिपाए अकालसज्झायकारए यावि भवइ कलहकरे सद्दकरे झंझकरे सूरप्पमाणभोई एसणाऽसमिते आवि भवइ, मुणिसुव्वए णं अरहा वीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, सव्वेविअ णं घणोदही वीसं जोयणसहस्साइं बाहल्लेणं प०, पाणयस्स णं देविंदस्स देवरण्णो वीसं सामाणिअसाहस्सीओ प०, णपुंसयवेयणिज्जस्स णं कम्मस्स वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ बंधओ बंधठिई प०, पच्चक्खाणस्स णं पुव्वस्स वीसं वत्थू, उस्सप्पिणिओसप्पिणिमंडले वीसं सागरोवमकोडाकोडीओ कालो प०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं वीसं पलिओवमाइं ठिई प०, छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं वीसं सागरोवमाइं ठिई प०,

१९ समवायाध्य. ॥ ३७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२०]

प्रत अनुक्रम [५०]

असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं वीसं पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं वीसं पलिओवमाइं ठिई प०, पाणते कप्पे देवाणं उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं ठिई प०, आरणे कप्पे देवाणं जहण्णेणं वीसं सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा सायं विसायं सुविसायं सिद्धत्थं उप्पलं भित्तिलं तिगिच्छं दिसासोवत्थियं पलंबं रुइलं पुप्फं सुपुप्फं पुप्फावत्तं पुप्फपभं पुप्फकंतं पुप्फवण्णं पुप्फलेसं पुप्फज्झयं पुप्फसिंगं पुप्फसिद्धं पुप्फुत्तरवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं वीसं सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा वीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा, तेसि णं देवाणं वीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइआ भवसिद्धिआ जीवा जे वीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिणिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं २० ॥

अथ विंशतितमस्थाने किञ्चिल्लिख्यते, तत्र स्थितिसूत्रेभ्योऽर्वाक् सप्त सूत्राणि, तत्र समाधानं समाधिः—चेतसः स्वास्थ्यं मोक्षमार्गेऽवस्थानमित्यर्थः न समाधिरसमाधिस्तस्याः स्थानानि–आश्रयभेदाः पर्याया वा असमाधिस्थानानि, तत्र 'दवदवचारि'त्ति यो हि द्रुतं द्रुतं चरति-गच्छति सोऽनुकरणशब्दतो दवदवचारीत्युच्यते, चापीत्युत्तरासमाधिस्थानापेक्षया समुच्चयार्थः, भवतीति प्रसिद्धं, स च द्रुतं द्रुतं संयमात्मनिरपेक्षो व्रजन्नात्मानं प्रपतनादिभिरसमाधौ योजयति अन्यांश्च सत्त्वान् घ्नन्नसमाधौ योजयति, सत्त्ववधजनितेन च कर्म्मणा परलोकेऽप्यात्मानमसमाधौ योजयति, अतो द्रुतगन्तृत्वमसमाधिकारणत्वादसमाधिस्थानम्, एवमन्यत्रापि यथायोगमवसेयं १, तथा अप्रमार्जि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असमाधेः विंशति स्थानानि

प्रत सूत्रांक [२०]

प्रत अनुक्रम [५०]

तचारी २ दुष्प्रमार्जितचारी च ३ स्थाननिषीदनत्वग्वर्तनादिष्वात्मादिविराधनां लभते, तथाऽतिरिक्ता–अतिप्रमाणा शय्या–वसतिरासनानि च–पीठकादीनि यस्य सन्ति सोऽतिरिक्तशय्यासनिकः, स च अतिरिक्तायां शय्यायां षड्यशालादिरूपायामन्येऽपि कार्पटिकादय आवसन्ति इति तैः सहाधिकरणसम्भवादात्मपरावसमाधौ योजयतीति, एवमासनाधिक्येनापि वाच्यमिति ४, तथा 'राब्रिकपरीभाषी' आचार्यादिपूज्यपुरुषपराभवकारी, स चात्मानमन्यांश्चासमाधौ योजयत्येव ५, तथा स्थविरा–आचार्यादिगुरवः तानाचारदोषेण शीलदोषेण च ज्ञानादिभिर्योपहन्तीत्येवंशीलः स एव चेति स्थविरोपघातिकः ६, तथा भूतानि–एकेन्द्रियास्तानर्थत उपहन्तीति भूतोपघातिकः ७, तथा सञ्ज्वलतीति सञ्ज्वलनः–प्रतिक्षणरोषणः ८, तथा क्रोधनः–सकृत् क्रुद्धोऽत्यन्तक्रुद्धो भवति ९, तथा पृष्ठिमांसाशिकः–पराङ्मुखस्य परस्यावर्णवादकारी १०, 'अभिक्खणं अभिक्खणं ओहारयित्त'त्ति अभीक्ष्णमभीक्ष्णमवधारयिता–शङ्कितस्याप्यर्थस्य निःशङ्कितस्यैवमेवायमित्येवं वक्ता, अथवाऽवहारयिता–परगुणानामपहारकारी, यथा अदासादिकमपि परं भणति–दासस्त्वं चौरस्त्वमित्यादि ११, तथाऽधिकरणानां-कलहानां यत्रादीनां वोत्पादयिता १२, 'पोराणाणं'ति पुरातनानां कलहानां क्षमितव्यवशमितानां–मर्षितत्वेनोपशान्तानां पुनरुदीरयिता भवति १३, तथा 'सरजस्कपाणिपादो' यः सचेतनादिरजोगुण्डितेन हस्तेन दीयमानां भिक्षां गृह्णाति, तथा योऽस्थण्डिलादेः स्थण्डिलादौ सङ्क्रामन्न पादौ प्रमार्ष्टि अथवा यस्तथाविधे कारणे (ऽसति) सचित्तादिपृथिव्यां कल्पादिनाऽनन्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असमाधेः विंशति स्थानानि

प्रत सूत्रांक [२०]

प्रत अनुक्रम [५०]

रितायामासनादि करोति स सरजस्कपाणिपाद इति १४, तथा अकालस्वाध्यायादिकारकः प्रतीतः १५, तथा 'कलहकरः' कलहहेतुभूतकर्तव्यकारी १६, तथा 'शब्दकरः' रात्रौ महता शब्देनोल्लापस्वाध्यायादिकारको गृहस्थभाषाभाषको वा १७, तथा 'झञ्झाकरो' येन येन गणस्य भेदो भवति तत्तत्करो, येन वा गणस्य मनोदुःखं समुत्पद्यते तद्भाषी १८, तथा 'सूरप्रमाणभोजी' सूर्योदयादस्तमयं यावदशनपानाद्यभ्यवहारी १९, एषणाअसमितश्चापि भवति–अनेषणां न परिहरति, प्रेरितश्चासौ साधुभिः कलहायते, तथाऽनेषणीयमपरिहरन् जीवोपरोधे वर्त्तते, एवं चात्मपरयोरसमाधिकरणादसमाधिस्थानमिदं विंशतितममिति २० । तथा घनोदधयः–सप्तपृथिवीप्रतिष्ठानभूताः, सामानिकाः–इन्द्रसमानर्द्धयः साहस्रयः–सहस्राणि, बन्धतो–बन्धसमयादारभ्य बन्धस्थितिः स्थितिबन्ध इत्यर्थः, प्रत्याख्याननामकं पूर्वं नवमं, सातादीनि चैकविंशतिर्विमाननामानीति ॥ २० ॥

एक्कवीसं सबला पण्णत्ता, तंजहा–हत्थकम्मं करेमाणे सबले मेहुणं पडिसेवमाणे सबले राइभोअणं भुंजमाणे सबले आहाकम्मं भुंजमाणे सबले सागारियं पिंडं भुंजमाणे सबले उद्देसियं कीयं आहट्टु दिज्जमाणं भुंजमाणे सबले अभिक्खणं पडियाइक्खेत्ता णं भुंजमाणे सबले अंतो छण्हं मासाणं गणाओ गणं संकममाणे सबले अंतो मासस्स तओ दगलेवे करेमाणे सबले अंतो मासस्स तओ माईठाणे सेवमाणे सबले रायपिंडं भुंजमाणे सबले आउट्टिआए पाणाइवायं करेमाणे सबले आउट्टिआए मुसावायं वदमाणे सबले आउट्टिआए अदिण्णादाणं गिण्हमाणे सबले आउट्टिआए अणंतरहिआए पुढवीए ठाणं वा निसीहियं वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असमाधेः विंशति स्थानानि

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२१]

प्रत अनुक्रम [५१]

चेतेमाणे सबेंले एवं आउट्टिआ चित्तमंताए पुढवीए एवं आउट्टिआ चित्तमंताए सिलाए कोलावासंसि वा दारुए ठाणं वा सिजं वा निसीहियं वा चेतेमाणे सबेंले जीवपइट्ठिए सपाणे सबीए सहरिए सउत्तिंगे पणगदगमट्टीमक्कडासंताणए तहप्पगारे ठाणं वा सिजं वा निसीहियं वा चेतेमाणे सबेंले आउट्टिआए मूलभोअणं वा कंदभोअणं वा तयाभोयणं वा पवालभोयणं वा पुप्फभोयणं वा फलभोयणं हरियभोयणं वा भुंजमाणे सबेंले अंतो संवच्छरस्स दस दगलेवे करेमाणे सबेंले अंतो संवच्छरस्स दस माइठाणाइ सेवमाणे सबेंले अभिक्खणं २ सीतोदयवियडवग्घारियपाणिणा असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा पडिगाहित्ता भुंजमाणे सबेंले । णिअट्टिबादरस्स णं खवितसत्तयस्स मोहणिजस्स कम्मस्स एक्कवीस कम्मंसा संतकम्मा प० तं०–अपचक्खाणकसाए कोहे अपचक्खाणकसाए माणे अपचक्खाणकसाए माया अपचक्खाणकसाए लोभे पचक्खाणावरणकसाए कोहे पचक्खाणावरणकसाए माणे पचक्खाणावरणकसाए माया पचक्खाणावरणकसाए लोभे इत्थिवेदे पुंवेदे णपुंवेदे हासे अरति रति भय सोग दुगुंछा । एकमेक्काए णं ओसप्पिणीए पंचमछट्ठाओ समाओ एक्कवीसं एक्कवीसं वाससहस्साइं कालेणं प०तं०–दूसमा दूसमदूसमा, एगमेगाए णं उस्सप्पिणीए पढमबितिआओ समाओ एकवीसं एकवीसं वाससहस्साइं कालेणं प० तं–दूसमदूसमाए दूसमाए य, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एकवीसपलिओवमाइं ठिई प०, छट्ठीए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एकवीस सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगवीसपलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कवीसं पलिओवमाइं ठिई प०, आरणे कप्पे देवाणं उक्कोसेणं एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई प०, अचुते कप्पे देवाणं जहण्णेणं एक्कवीस सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा सिरिवच्छं सिरिदामकंडं मल्लं किट्टं चावोण्णतं अरण्णवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२१]

प्रत अनुक्रम [५१]

एक्कवीसं सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा एक्कवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा, तेसि णं देवा एक्कवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिआ जीवा जे एक्कवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं २१ ॥

अथैकविंशतितमस्थानकं, तत्र चत्वारि सूत्राणि स्थितिसूत्रैर्विना सुगमानि, नवरं शबलं–कर्बुरं चारित्रं यैः क्रियाविशेषैर्भवति ते शबलास्तद्योगात्साधवोऽपि, ते एवं–तत्र हस्तकर्म–वेदविकारविशेषं कुर्वन्नुपलक्षणत्वात्कारयन् वा शबलो भवत्येकः १ एवं मैथुनं प्रतिसेवमानोऽतिक्रमादिभिस्त्रिभिः प्रकारैः २ तथा रात्रिभोजनं दिवागृहीतं दिवाभुक्तमित्यादिभिश्चतुर्भिर्भङ्गकैरतिक्रमादिभिश्च भुञ्जानः ३ तथा आधाकर्म ४ सागारिकः–स्थानदाता तत्पिण्डं ५ औद्देशिकं क्रीतमाहृत्य दीयमानं(च) भुञ्जानः उपलक्षणत्वात्पामिच्चाच्छेद्यानिसृष्टप्रहृणमपीह द्रष्टव्यमिति ६, यावत्करणोपात्तपदान्येवमर्थतोऽवगन्तव्यानि, अभीक्ष्णं २ प्रत्याख्यायाशनादि भुञ्जानः ७ अन्तः षण्णां मासानामेकतो गणाद्गणमन्यं सङ्क्रामन् ८ अन्तर्मासस्य त्रीनुदकलेपान् कुर्वन्, उदकलेपश्च नाभिप्रमाणजलावगाहनमिति, ९, अन्तर्मासस्य त्रीणि मायास्थानानि, स्थानमिति–भेदः १०, राजपिण्डं भुञ्जानः ११, आकुट्या प्राणातिपातं कुर्वन्, उपेत्य पृथिव्यादिकं हिंसन्नित्यर्थः १२, आकुट्या मृषावादं वदन् १३, अदत्तादानं गृह्णन् १४, आकुट्यैवानन्तर्हितायां पृथिव्यां स्थानं वा नैषेधिकं वा चेतयन् कायोत्सर्गं स्वाध्यायभूमिं वा कुर्वन्नित्यर्थः १५ एवमाकुट्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शबलस्य एकविंशति भेदाया: व्याख्या:

प्रत सूत्रांक [२१]

प्रत अनुक्रम [५१]

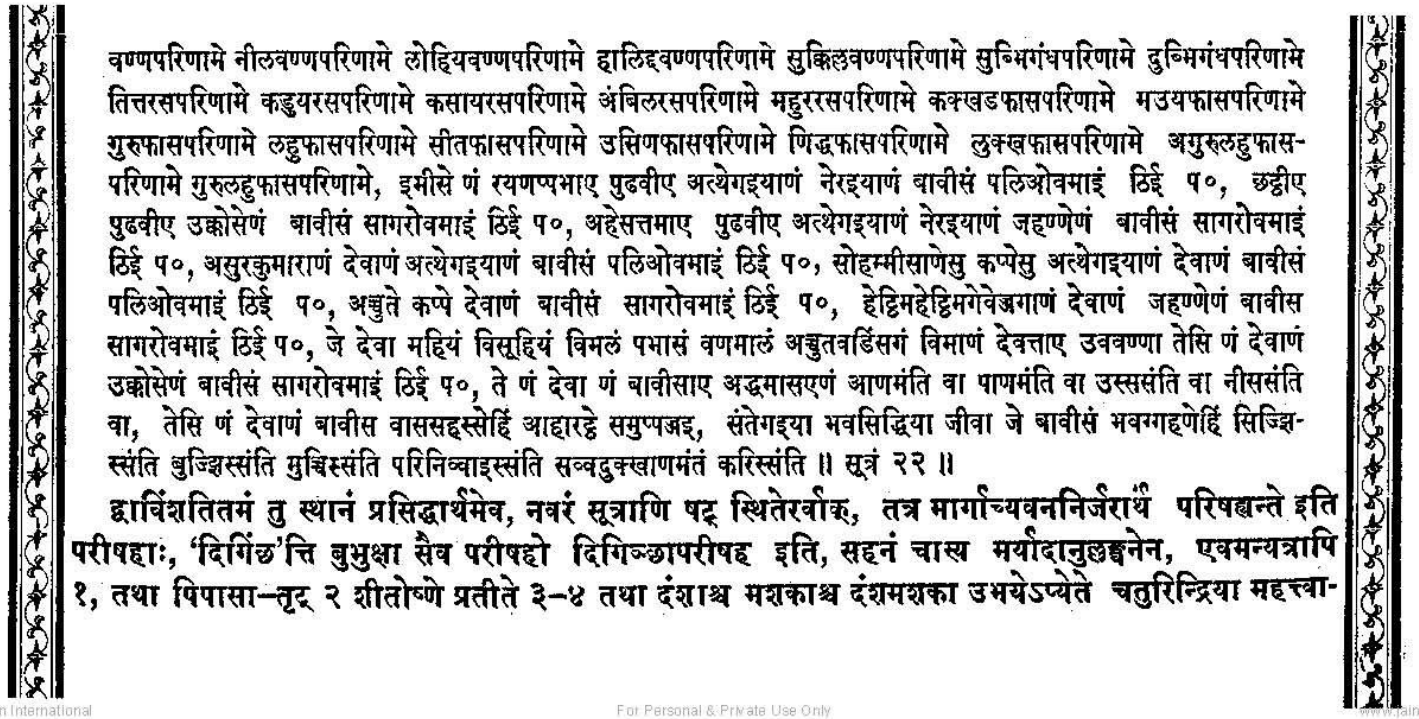
सस्निग्धसरजस्कायां पृथिव्यां सचित्तवत्यां शिलायां लेष्टौ वा कोलावासे दारुणि, कोला–घुणाः तेषामावासः १६ अन्यस्मिंश्च तथाप्रकारे सप्राणे सबीजादौ स्थानादि कुर्वन् १७ आकुट्टया मूलकन्दादि भुञ्जानः १८ अन्तः संवत्सरस्य दशोदकलेपान् कुर्वन् १९ तथाऽन्तः संवत्सरस्य दश मायास्थानानि च २० तथा अभीक्ष्णं–पौनःपुन्येन शीतोदकलक्षणं यद्विकटं–जलं तेन व्यापारितो–व्याप्तो यः पाणिः–हस्तः स तथा तेनाशनं प्रगृह्य भुञ्जानः शबलः इत्येकविंशतितमः २१। तथा निवृत्तिबादरस्य–अपूर्वकरणस्याष्टमगुणस्थानवर्त्तिन इत्यर्थः, णं वाक्यालङ्कारे, क्षीणं सप्तकम्–अनन्तानुबन्धिचतुष्टयदर्शनत्रयलक्षणं यस्य स तथा, तस्य मोहनीयस्य कर्मणः एकविंशतिः कर्मांशा–अप्रत्याख्यानादिकषायद्वादशनोकषायनवकरूपा उत्तरप्रकृतयः सत्कर्म–सत्तावस्थं कर्म प्रज्ञप्तमिति, तथा श्रीवत्सं श्रीदामगण्डं माल्यं कृष्टिं चापोन्नतं आरणावतंसकं चेति षड् विमाननामानीति ॥ २१ ॥

बावीस परीसहा प० तं०–दिगिंगछापरीसहे पिवासापरीसहे[3] सीतपरीसहे उसिणपरीसहे दंसमसगपरीसहे अचेलपरीसहे[7] अरइपरीसहे इत्थीपरीसहे चरिआपरीसहे निसीहियापरीसहे सिज्जापरीसहे[11] अक्कोसपरीसहे[12] वहपरीसहे[13] जायणापरीसहे[14] अलाभपरीसहे[15] रोगपरीसहे[16] तणफासपरीसहे[17] जल्लपरीसहे[18] सक्कारपुरक्कारपरीसहे[19] पण्णापरीसहे[20] अण्णाणपरीसहे[21] दंसणपरीसहे[22], दिट्ठिवायस्स णं बावीसं सुत्ताइं छिन्नछेयणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए बावीसं सुत्ताइं अछिन्नछेयणइयाइं आजीवियसुत्तपरिवाडीए बावीसं सुत्ताइं तिकणइयाइं तेरासिअसुत्तपरिवाडीए बावीसं सुत्ताइं चउक्कणइयाइं समयसुत्तपरिवाडीए, बावीसविहे पोग्गलपरिणामे प० तं०–काल-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२२]

प्रत अनुक्रम [५२]



वण्णपरिणामे नीलवण्णपरिणामे लोहियवण्णपरिणामे हालिद्दवण्णपरिणामे सुक्किलवण्णपरिणामे सुब्भिगंधपरिणामे दुब्भिगंधपरिणामे तित्तरसपरिणामे कडुयरसपरिणामे कसायरसपरिणामे अंबिलरसपरिणामे महुररसपरिणामे कक्खडफासपरिणामे मउयफासपरिणामे गुरुफासपरिणामे लहुफासपरिणामे सीतफासपरिणामे उसिणफासपरिणामे णिद्धफासपरिणामे लुक्खफासपरिणामे अगुरुलहुफास-परिणामे गुरुलहुफासपरिणामे, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बावीसं पलिओवमाइं ठिई प०, छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई प०, अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं बावीसं पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं बावीसं पलिओवमाइं ठिई प०, अच्चुते कप्पे देवाणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई प०, हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जगाणं देवाणं जहण्णेणं बावीस सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा महियं विसूहियं विमलं पभासं वणमालं अच्चुतवडिंसगं विमाणं देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा णं बावीसाए अद्धमासएणं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा, तेसि णं देवाणं बावीस वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे बावीसं भवग्गहणेहिं सिज्झि-स्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं २२ ॥

द्वाविंशतितमं तु स्थानं प्रसिद्धार्थमेव, नवरं सूत्राणि षट् स्थितेरर्वाक्, तत्र मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषह्यन्ते इति परीषहाः, 'दिगिंछ'त्ति बुभुक्षा सैव परीषहो दिगिञ्छापरीषह इति, सहनं चास्य मर्यादानुल्लङ्घनेन, एवमन्यत्रापि १, तथा पिपासा–तृट् २ शीतोष्णे प्रतीते ३–४ तथा दंशाश्च मशकाश्च दंशमशका उभयेऽप्येते चतुरिन्द्रिया महत्त्वा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वाविंशति परिषहा: भेदा: एवं व्याख्या;

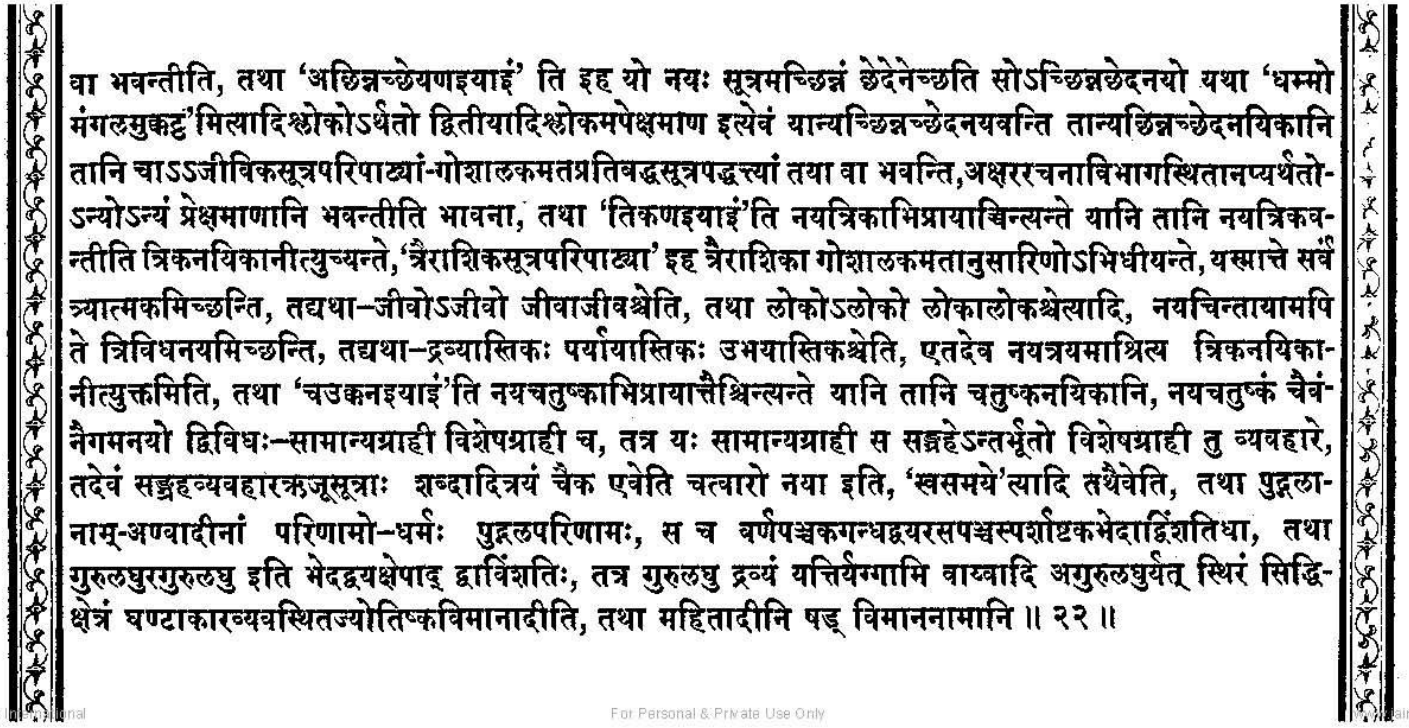
प्रत सूत्रांक [२२]

प्रत अनुक्रम [५२]

महत्वकृतश्चैषां विशेषोऽथवा दंशो–दंशनं भक्षणमित्यर्थः, तत्प्रधाना मशका दंशमशकाः, एते च यूकामत्कुणमत्कोटकमक्षिकादीनामुपलक्षणमिति ५ तथा चेलानां–वस्त्राणां बहुधननवीनावदातसुप्रमाणानां सर्वेषां वाऽभावः अचेलत्वमित्यर्थः ६ अरतिः मानसो विकारः ७ स्त्री प्रतीता ८ 'चर्या' ग्रामादिष्वनियतविहारित्वं ९ 'नैषेधिकी' सोपद्रवेतरा च स्वाध्यायभूमिः १० 'शय्या' मनोज्ञामनोज्ञवसतिः संस्तारको वा ११ 'आक्रोशो' दुर्वचनं १२ 'वधो' यष्ट्यादिताडनं १३ 'याचना' भिक्षणं तथाविधे प्रयोजने मार्गणं वा १४ अलाभरोगौ प्रतीतौ १६ तृणस्पर्शः संस्तारकाभावे तृणेषु शयानस्य १७ 'जल्लः' शरीरवस्त्रादिमलः १८ सत्कारपुरस्कारौ च वस्त्रादिपूजनाभ्युत्थानादिसंपादनेन सत्कारेण वा पुरस्करणं–सन्माननं सत्कारपुरस्कारः १९ ज्ञानं–सामान्येन मत्यादि क्वचिदज्ञानमिति श्रूयते २० दर्शनं–सम्यग्दर्शनं, सहनं चास्य क्रियादिवादिनां विचित्रमतश्रवणेऽपि निश्चलचित्ततया धारणं २१ 'प्रज्ञा' स्वयं विमर्शपूर्वको वस्तुपरिच्छेदो मतिज्ञानविशेषभूत इति २२। 'दृष्टिवादो' द्वादशाङ्गः, स च पञ्चधा–परिकर्म १ सूत्र २ पूर्वगत ३ प्रथमानुयोग ४ चूलिका ५ भेदात्, तत्र दृष्टिवादस्य द्वितीये प्रस्थाने द्वाविंशतिः सूत्राणि, तत्र [सर्व]द्रव्यपर्यायनयाद्यर्थसूचनात् सूत्राणि, 'छिन्नच्छेयणइयाइं'ति इह यो नयः सूत्रं छिन्नं छेदेनेच्छति स छिन्नछेदनयः यथा 'धम्मो मंगलमुक्कट्ठ'मित्यादिश्लोकः सूत्रार्थतः छेदनयस्थितो न द्वितीयादिश्लोकानपेक्षते, इत्येवं यानि सूत्राणि छिन्नछेदनयवन्ति तानि छिन्नछेदनयिकानि, तानि च स्वसमया–जिनमताश्रिता या सूत्राणां परिपाटिः–पद्धतिस्तस्यां स्वसमयपरिपाट्यां भवन्ति तया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वाविंशति परिषहाः भेदाः एवं व्याख्या;



वा भवन्तीति, तथा 'अछिन्नच्छेयणइयाइं' ति इह यो नयः सूत्रमच्छिन्नं छेदेनेच्छति सोऽच्छिन्नछेदनयो यथा 'धम्मो मंगलमुक्कट्ठ'मित्यादिश्लोकोऽर्थतो द्वितीयादिश्लोकमपेक्षमाण इत्येवं यान्यच्छिन्नच्छेदनयवन्ति तान्यच्छिन्नच्छेदनयिकानि तानि चाऽऽजीविकसूत्रपरिपाट्यां-गोशालकमतप्रतिबद्धसूत्रपद्धत्यां तथा वा भवन्ति,अक्षररचनाविभागस्थितानप्यर्थतोऽन्योऽन्यं प्रेक्षमाणानि भवन्तीति भावना, तथा 'तिकणइयाइं'ति नयत्रिकाभिप्रायाचिन्त्यन्ते यानि तानि नयत्रिकवन्तीति त्रिकनयिकानीत्युच्यन्ते,'त्रैराशिकसूत्रपरिपाट्यां' इह त्रैराशिका गोशालकमतानुसारिणोऽभिधीयन्ते, यस्मात्ते सर्वं त्र्यात्मकमिच्छन्ति, तद्यथा–जीवोऽजीवो जीवाजीवश्चेति, तथा लोकोऽलोको लोकालोकश्चेत्यादि, नयचिन्तायामपि ते त्रिविधनयमिच्छन्ति, तद्यथा–द्रव्यास्तिकः पर्यायास्तिकः उभयास्तिकश्चेति, एतदेव नयत्रयमाश्रित्य त्रिकनयिकानीत्युक्तमिति, तथा 'चउक्कनइयाइं'ति नयचतुष्काभिप्रायात्तैश्चिन्त्यन्ते यानि तानि चतुष्कनयिकानि, नयचतुष्कं चैवं-नैगमनयो द्विविधः–सामान्यग्राही विशेषग्राही च, तत्र यः सामान्यग्राही स सङ्ग्रहेऽन्तर्भूतो विशेषग्राही तु व्यवहारे, तदेवं सङ्ग्रहव्यवहारऋजूसूत्राः शब्दादित्रयं चैक एवेति चत्वारो नया इति, 'स्वसमये'त्यादि तथैवेति, तथा पुद्गलानाम्-अण्वादीनां परिणामो–धर्मः पुद्गलपरिणामः, स च वर्णपञ्चकगन्धद्वयरसपञ्चस्पर्शाष्टकभेदाद्विंशतिधा, तथा गुरुलघुरगुरुलघु इति भेदद्वयक्षेपाद् द्वाविंशतिः, तत्र गुरुलघु द्रव्यं यत्तिर्यग्गामि वाय्वादि अगुरुलघुर्यत् स्थिरं सिद्धिक्षेत्रं घण्टाकारव्यवस्थितज्योतिष्कविमानादीति, तथा महितादीनि षड् विमाननामानि ॥ २२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२३]

प्रत अनुक्रम [५३]

तेवीसं सुयगडज्झयणा प०, तं०–समए[1] वेतालिए[2] उवसग्गपरिण्णा[3] थीपरिण्णा[4] नरयविभत्ती महावीरथुई[5] कुसील-परिभासिए[6] विरिए[7] धम्मे[8] समाही[9] मग्गे[10] समोसरणे[11] आहत्तहिए[12] गंथे[13] जमईए[14] गाथा[15] पुंडरीए[16] किरियाठाणे[17] आहारपरिण्णा[18] अपच्चक्खाणकिरिआ[19] अणगारसुयं[20] अद्दइज्जं[21] णालंदइज्जं[22], जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए तेवीसाए जिणाणं सूरुग्गमणमुहुत्तंसि केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे, जंबुद्दीवे णं दीवे इमीसे णं ओसप्पिणीए तेवीसं तित्थकरा पुव्वभवे एक्कारसंगिणो होत्था तं०–अजित संभव अभिणंदण सुमई जाव पासो वद्धमाणो य, उसभे णं अरहा कोसलिए चोद्दसपुव्वी होत्था, जंबुद्दीवे णं दीवे इमीसे ओसप्पिणीए तेवीसं तित्थंकरा पुव्वभवे मंडलिरायाणो होत्था तं०–अजित संभव अभिणंदण जाव पासो वद्धमाणो य, उसभे णं अरहा कोसलिए पुव्वभवे चक्कवट्टी होत्था, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई प०, अहेसत्तमाए णं पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तेवीसं सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणाणं देवाणं अत्थेगइयाणं तेवीसं पलिओवमाइं ठिई प०, हेट्ठिममज्झिमगेविज्जाणं देवाणं जहण्णेणं तेवीसं सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा हेट्ठिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तेवीसं सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा तेवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा, तेसि णं देवाणं तेवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइआ भवसिद्धिया जीवा जे तेवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं २३ ॥

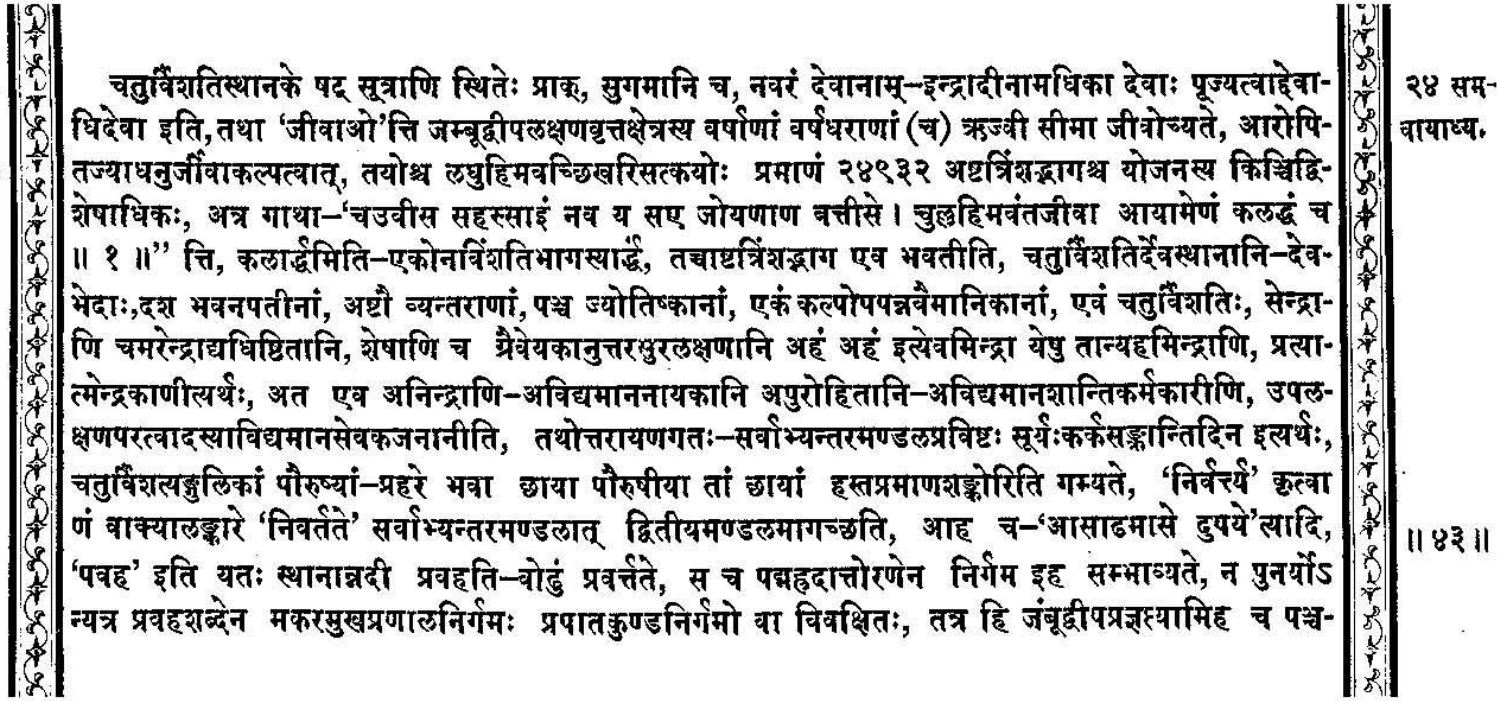
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्रयोविंशतिस्थानकं सुगममेव, नवरं चत्वारि सूत्राणि अर्वाक् स्थितिसूत्रेभ्यः, तत्र सूत्रकृताङ्गस्य प्रथमे श्रुतस्कन्धे षोडशाध्ययनानि द्वितीये सप्त, तेषां चान्वर्थस्तदधिगमाधिगम्य इति ॥ २३ ॥

चउव्वीसं देवाहिदेवा प० तं०–उसभअजितसंभवअभिणंदणसुमइपउमप्पहसुपासचंदप्पहसुविधिसीअलसिज्जंसवासुपुज्जविमलअणंतधम्मसंतिकुंथुअरमल्लीमुणिसुव्वयनमिनेमीपासवद्धमाणा, चुल्लहिमवंतसिहरीणं वासहरपव्वयाणं जीवाओ चउव्वीसं चउव्वीसं जोयणसहस्साइं णववत्तीसे जोयणसए एगं अट्ठत्तीसइभागं जोयणस्स किंचिविसेसाहिआओ आयामेणं प०, चउवीसं देवठाणा सइंदया प०, सेसा अहमिंदा अनिंदा अपुरोहिआ, उत्तरायणगते णं सूरिए चउवीसंगुलिए पोरिसीछायं णिव्वत्तइत्ता णं णिअट्टति, गंगासिंधूओ णं महाणदीओ पवाहे सातिरेगेणं चउवीसं कोसे वित्थारेणं प०, रत्तारत्तवतीओ णं महाणदीओ पवाहे सातिरेगे चउवीसं कोसे वित्थारेणं पन्नत्ता, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थे० चउवीसं पलिओवमाइं० अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं चउवीसं सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं चउवीसं पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणे णं देवाणं अत्थेगइयाणं चउवीसं पलिओवमाइं ठिई प०, हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जाणं देवाणं जहण्णेणं चउवीसं सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा हेट्ठिममज्झिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं चउवीसं सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा चउवीसाए अद्धमासाणं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा णीससंति वा, तेसि णं देवाणं चउवीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे चउवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ २४ ॥

प्रत सूत्रांक [२४]

प्रत अनुक्रम [५४]



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ४३ ॥

चतुर्विंशतिस्थानके षट् सूत्राणि स्थितेः प्राक्, सुगमानि च, नवरं देवानाम्–इन्द्रादीनामधिका देवाः पूज्यत्वाद्देवाधिदेवा इति, तथा 'जीवाओ'त्ति जम्बूद्वीपलक्षणवृत्तक्षेत्रस्य वर्षाणां वर्षधराणां (च) ऋज्वी सीमा जीवोच्यते, आरोपितज्याधनुर्जीवाकल्पत्वात्, तयोश्च लघुहिमवच्छिखरिसत्कयोः प्रमाणं २४९३२ अष्टत्रिंशद्भागश्च योजनस्य किञ्चिद्विशेषाधिकः, अत्र गाथा–'चउवीस सहस्साइं नव य सए जोयणाण बत्तीसे। चुल्लहिमवंतजीवा आयामेणं कलद्धं च ॥ १ ॥'' त्ति, कलार्द्धमिति–एकोनविंशतिभागस्यार्द्धं, तच्चाष्टत्रिंशद्भाग एव भवतीति, चतुर्विंशतिर्देवस्थानानि–देवभेदाः,दश भवनपतीनां, अष्टौ व्यन्तराणां, पञ्च ज्योतिष्कानां, एकं कल्पोपपन्नवैमानिकानां, एवं चतुर्विंशतिः, सेन्द्राणि चमरेन्द्राद्यधिष्ठितानि, शेषाणि च ग्रैवेयकानुत्तरसुरलक्षणानि अहं अहं इत्येवमिन्द्रा येषु तान्यहमिन्द्राणि, प्रत्यात्मेन्द्रकाणीत्यर्थः, अत एव अनिन्द्राणि–अविद्यमाननायकानि अपुरोहितानि–अविद्यमानशान्तिकर्मकारीणि, उपलक्षणपरत्वादस्याविद्यमानसेवकजनानीति, तथोत्तरायणगतः–सर्वाभ्यन्तरमण्डलप्रविष्टः सूर्यःकर्कसङ्क्रान्तिदिन इत्यर्थः, चतुर्विंशत्यङ्गुलिकां पौरुष्यां–प्रहरे भवा छाया पौरुषीया तां छायां हस्तप्रमाणशङ्कोरिति गम्यते, 'निर्वर्त्य' कृत्वा णं वाक्यालङ्कारे 'निवर्तते' सर्वाभ्यन्तरमण्डलात् द्वितीयमण्डलमागच्छति, आह च–'आसाढमासे दुपये'त्यादि, 'पवह' इति यतः स्थानान्नदी प्रवहति–वोढुं प्रवर्त्तते, स च पद्महदात्तोरणेन निर्गम इह सम्भाव्यते, न पुनर्योऽन्यत्र प्रवहशब्देन मकरमुखप्रणालनिर्गमः प्रपातकुण्डनिर्गमो वा विवक्षितः, तत्र हि जंबूद्वीपप्रज्ञप्त्यामिह च पञ्च-

२४ समवायाध्य. ॥ ४३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवानाम् चतुर्विंशति भेदाः

विंशतिक्रोशप्रमाणा गङ्गादिनद्यो विस्तारतोऽभिहिताः ॥ २४ ॥

पुरिमपच्छिमगाणं तित्थगराणं पंचजामस्स पणवीसं भावणाओ पण्णत्ता, तंजहा–ईरिआसमिई मणगुत्ती वयगुत्ती आलोय-भायणभोयणं आदाणभंडमत्तनिक्खेवणासमिई ५ अणुवीतिभासणया कोहविवेगे लोभविवेगे भयविवेगे हासविवेगे ५ उग्गहअणुण्णवणया उग्गहसीमजाणणया सयमेव उग्गहं अणुगिण्हणया साहम्मियउग्गहं अणुण्णविय परिभुंजणया साहार-णभत्तपाणं अणुण्णविय पडिभुंजणया ५ इत्थीपसुपंडगसंसत्तगसयणासणवज्जणया इत्थीकहविवज्जणया इत्थीणं इंदियाण-मालोयणवज्जणया पुव्वरयपुव्वकीलिआणं अणणुसरणया पणीताहारविवज्जणया ५ सोइंदियरागोवरई चक्खिंदियरागोवरई घाणिंदियरागोवरई जिब्भिंदियरागोवरई फासिंदियरागोवरई ५, मल्ली णं अरहा पणवीसं धणु उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, सव्वे-वि दीहवेयड्ढपव्वया पणवीसं जोयणाणि उड्ढं उच्चत्तेणं प० पणवीसं पणवीसं गाऊआणि उव्विद्धेणं प०, दोच्चाए णं पुढवीए पणवीसं णिरयावाससयसहस्सा प० [आयारस्स णं भगवओ सचूलिआयस्स पणवीसं अज्झयणा प० तं०— सत्थपरिण्णा लोगविजओ सीओसणीअ सम्मत्तं । आवंति धुयविमोहं उवहाणसुयं महपरिण्णा ॥ १ ॥ पिंडेसणा सिज्जी-रिआ भासज्झयणा य वत्थ पाएसा । उग्गहपडिमा सत्तिक्कसत्तया भावणा विमुत्ती ॥ २ ॥ निसीहज्झयणं पणवीसइमं । मिच्छा-दिट्ठिविगलिंदिए णं अपज्जत्तए णं संकिलिट्ठपरिणामे णामस्स कम्मस्स पणवीसं उत्तरपयडीओ णिबंधति–तिरियगतिनामं विगलिं-दियजातिनामं ओरालिअसरीरणामं तेअगसरीरणामं कम्मणसरीरनामं हुंडगसंठाणनामं ओरालिअसरीरंगोवंगणामं छेवट्ठसंघयण-नामं वण्णनामं गंधणामं रसणामं फासणामं तिरिआणुपुव्विनामं अगुरुलहुनामं उवघायनामं तसनामं बादरणामं अपज्जत्तयणामं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

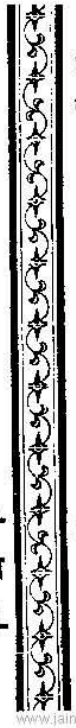
प्रत सूत्रांक [२५]

प्रत अनुक्रम [५५-५९]



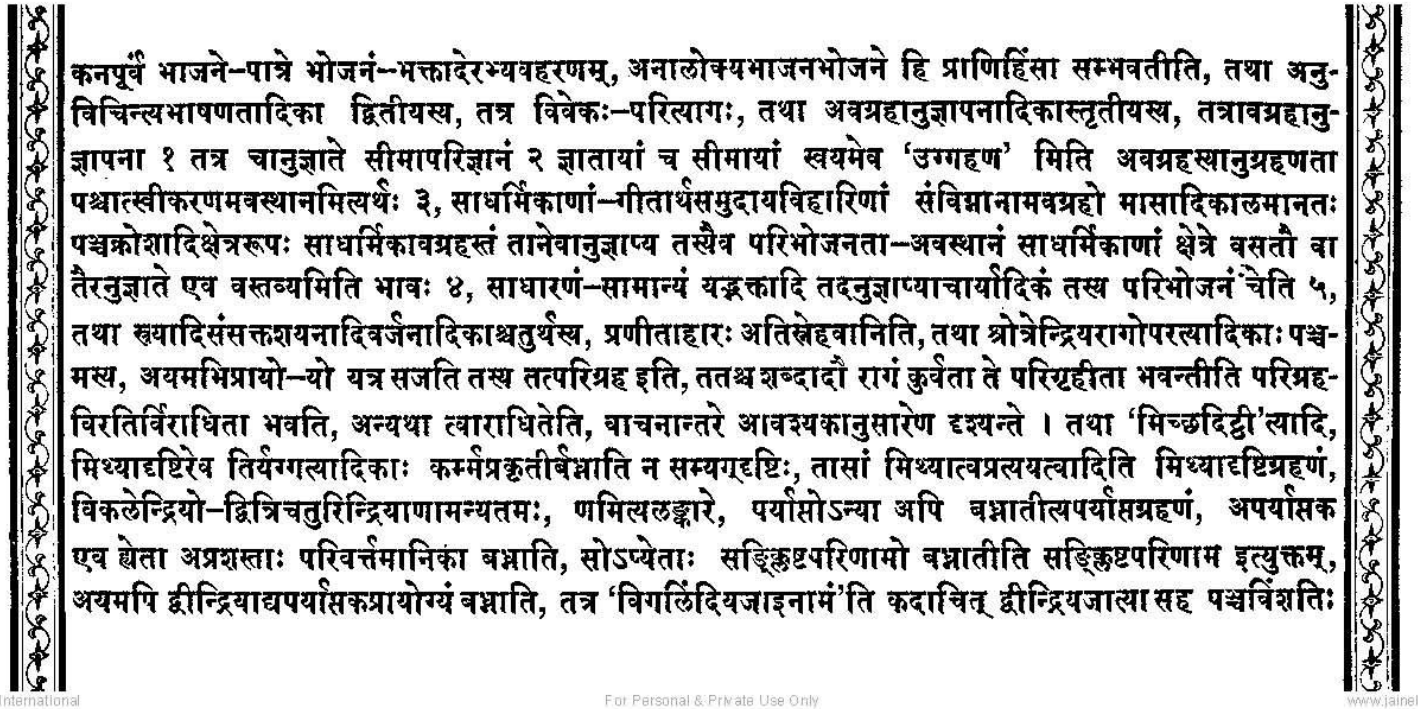
पत्तेयसरीरणामं अथिरणामं असुभणामं दुभगणामं अणादेज्जनामं अजसोकित्तिनामं निम्माणनामं २५, गंगासिंधूओ णं महाणदीओ पणवीसं गाऊयाणि पुहुत्तेणं दुहओ घडमुहपवित्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं पवातेण पडंति, रत्तारत्तवईओ णं महाणदीओ पणवीसं गाऊयाणि पुहुत्तेणं मकरमुहपवित्तिएणं मुत्तावलिहारसंठिएणं पवातेण पडंति, लोगबिंदुसारस्स णं पुव्वस्स पणवीसं वत्थू प०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई प०, अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइआणं नेरइयाणं पणवीसं सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं पणवीसं पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणे णं देवाणं अत्थेगइआणं पणवीस पलिओवमाइं ठिई प०, मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जाणं देवाणं जहण्णेणं पणवीसं सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा हेट्ठिमउवरिमगेवेज्जगविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं पणवीसं सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा पणवीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीस्ससंति वा, तेसि णं देवाणं पणवीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे पणवीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ २५ ॥

पञ्चविंशतिस्थानकमपि सुबोधं, नवरमिह स्थितेरवोंग् नव सूत्राणि, तत्र "पंचजामस्स"त्ति पञ्चानां यामानां–महाव्रतानां समाहारः पञ्चयामं तस्य 'भावणाओ'त्ति प्राणातिपातादिनिवृत्तिलक्षणमहाव्रतसंरक्षणाय भाव्यन्ते इति भावनास्ताश्च प्रतिमहाव्रतं पञ्च पञ्चेति, तत्रेर्यासमित्याद्याः पञ्च प्रथमस्य महाव्रतस्य, तत्रालोकभाजनभोजनं–आलो-



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चविंशति-भावनायाः वर्णनं



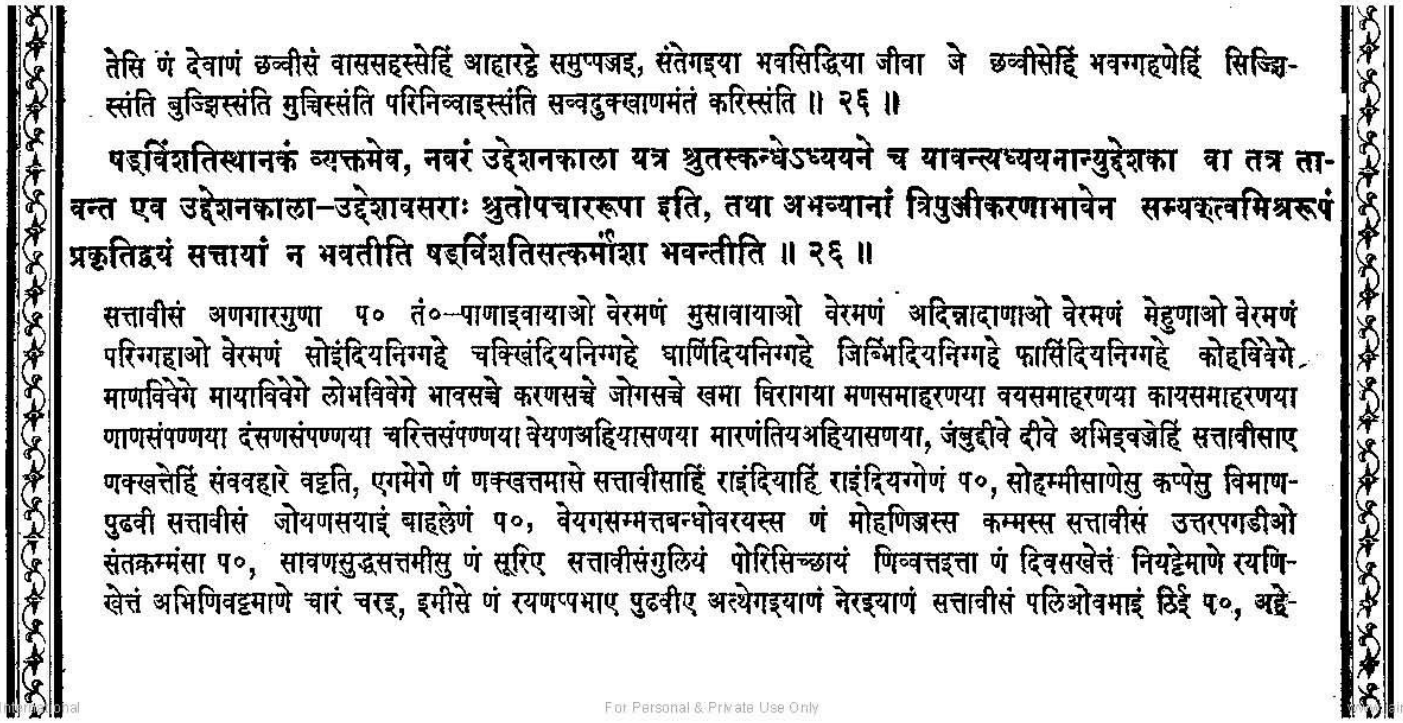
कनपूर्वं भाजने–पात्रे भोजनं–भक्तादेरभ्यवहरणम्, अनालोक्यभाजनभोजने हि प्राणिहिंसा सम्भवतीति, तथा अनुविचिन्त्यभाषणतादिका द्वितीयस्य, तत्र विवेकः–परित्यागः, तथा अवग्रहानुज्ञापनादिकास्तृतीयस्य, तत्रावग्रहानुज्ञापना १ तत्र चानुज्ञाते सीमापरिज्ञानं २ ज्ञातायां च सीमायां स्वयमेव 'उग्गहण' मिति अवग्रहस्यानुग्रहणता पश्चात्स्वीकरणमवस्थानमित्यर्थः ३, साधर्मिकाणां–गीतार्थसमुदायविहारिणां संविग्नानामवग्रहो मासादिकालमानतः पञ्चक्रोशादिक्षेत्ररूपः साधर्मिकावग्रहस्तं तानेवानुज्ञाप्य तस्यैव परिभोजनता–अवस्थानं साधर्मिकाणां क्षेत्रे वसतौ वा तैरनुज्ञाते एव वस्तव्यमिति भावः ४, साधारणं–सामान्यं यद्भक्तादि तदनुज्ञाप्याचार्यादिकं तस्य परिभोजनं चेति ५, तथा स्त्र्यादिसंसक्तशयनादिवर्जनादिकाश्चतुर्थस्य, प्रणीताहारः अतिस्नेहवानिति, तथा श्रोत्रेन्द्रियरागोपरत्यादिकाः पञ्चमस्य, अयमभिप्रायो–यो यत्र सजति तस्य तत्परिग्रह इति, ततश्च शब्दादौ रागं कुर्वता ते परिगृहीता भवन्तीति परिग्रहविरतिर्विराधिता भवति, अन्यथा त्वाराधितेति, वाचनान्तरे आवश्यकानुसारेण दृश्यन्ते । तथा 'मिच्छदिट्ठी'त्यादि, मिथ्यादृष्टिरेव तिर्यग्गत्यादिकाः कर्म्मप्रकृतीर्बध्नाति न सम्यग्दृष्टिः, तासां मिथ्यात्वप्रत्ययत्वादिति मिथ्यादृष्टिग्रहणं, विकलेन्द्रियो–द्वित्रिचतुरिन्द्रियाणामन्यतमः, णमित्यलङ्कारे, पर्याप्तोऽन्या अपि बध्नातीत्यपर्याप्तग्रहणं, अपर्याप्तक एव ह्येता अप्रशस्ताः परिवर्त्तमानिका बध्नाति, सोऽप्येताः सङ्क्लिष्टपरिणामो बध्नातीति सङ्क्लिष्टपरिणाम इत्युक्तम्, अयमपि द्वीन्द्रियाद्यपर्याप्तकप्रायोग्यं बध्नाति, तत्र 'विगलिंदियजाइनामं'ति कदाचित् द्वीन्द्रियजात्या सह पञ्चविंशतिः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कदाचिद् त्रीन्द्रियजात्या एवमितरथाऽपीति, 'गंगा' इत्यादि पञ्चविंशतिगव्यूतानि पृथुत्वेन यः प्रपातस्तेनेति शेषः, 'दुहओ'त्ति द्वयोर्दिशोः पूर्वतो गङ्गा अपरतः सिन्धुरित्यर्थः, पद्महदाद्विनिर्गते पञ्च २ योजनशतानि पर्वतोपरि गत्वा दक्षिणाभिमुखे प्रवृत्ते 'घडमुहपवित्तिएणं'ति घटमुखादिव पञ्चविंशतिक्रोशपृथुलजिह्विकात् मकरमुखप्रणालात् प्रवृत्तेन मुक्तावलीनां मुक्तासरीणां यो हारस्तत्संस्थितेन प्रपातेन–प्रपतज्जलसंतानेन योजनशतोच्छ्रितस्य हिमवतोऽधोवर्त्तिनोः स्वकीययोः प्रपातकुण्डयोः प्रपततः, एवं रक्तारक्तवत्यौ, नवरं शिखरिवर्षधरोपरिप्रतिष्ठितपुण्डरीकहृदात्प्रपतत इति, तथा लोकबिन्दुसारं-चतुर्दशपूर्वमिति ॥ २५ ॥

छव्वीसं दसकप्पववहाराणं उद्देसणकाला प० तं०–दस दसाणं छ कप्पस्स दस ववहारस्स, अभवसिद्धियाणं जीवाणं मोहणिज्जस्स कम्मस्स छव्वीसं कम्मंसा संतकम्मा प० तं०–मिच्छत्तमोहणिज्जं सोलस कसाया इत्थीवेदे पुरिसवेदे नपुंसकवेदे हासं अरति रति भयं सोगं दुगुंछा, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई प०, अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं छव्वीसं सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणे णं देवाणं अत्थेगइयाणं छव्वीसं पलिओवमाइं ठिई प०, मज्झिममज्झिमगेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं छव्वीसं सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा मज्झिमहेट्ठिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं छव्वीसं सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा छव्वीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



तेसि णं देवाणं छव्वीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे छव्वीसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ २६ ॥

षड्विंशतिस्थानकं व्यक्तमेव, नवरं उद्देशनकाला यत्र श्रुतस्कन्धेऽध्ययने च यावन्त्यध्ययनान्युद्देशका वा तत्र तावन्त एव उद्देशनकाला–उद्देशावसराः श्रुतोपचाररूपा इति, तथा अभव्यानां त्रिपुञ्जीकरणाभावेन सम्यक्त्वमिश्ररूपं प्रकृतिद्वयं सत्तायां न भवतीति षड्विंशतिसत्कर्मांशा भवन्तीति ॥ २६ ॥

सत्तावीसं अणगारगुणा प० तं०–पाणाइवायाओ वेरमणं मुसावायाओ वेरमणं अदिन्नादाणाओ वेरमणं मेहुणाओ वेरमणं परिग्गहाओ वेरमणं सोइंदियनिग्गहे चक्खिंदियनिग्गहे घाणिंदियनिग्गहे जिब्भिंदियनिग्गहे फासिंदियनिग्गहे कोहविवेगे माणविवेगे मायाविवेगे लोभविवेगे भावसच्चे करणसच्चे जोगसच्चे खमा विरागया मणसमाहरणया वयसमाहरणया कायसमाहरणया णाणसंपण्णया दंसणसंपण्णया चरित्तसंपण्णया वेयणअहियासणया मारणंतियअहियासणया, जंबुद्दीवे दीवे अभिइवज्जेहिं सत्तावीसाए णक्खत्तेहिं संववहारे वट्टति, एगमेगे णं णक्खत्तमासे सत्तावीसाहिं राइंदियाहिं राइंदियग्गेणं प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाणपुढवी सत्तावीसं जोयणसयाइं बाहल्लेणं प०, वेयगसम्मत्तबन्धोवरयस्स णं मोहणिज्जस्स कम्मस्स सत्तावीसं उत्तरपगडीओ संतकम्मंसा प०, सावणसुद्धसत्तमीसु णं सूरिए सत्तावीसंगुलियं पोरिसिच्छायं णिव्वत्तइत्ता णं दिवसखेत्तं नियट्टेमाणे रयणिखेत्तं अभिणिवट्टमाणे चारं चरइ, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सत्तावीसं पलिओवमाइं ठिई प०, अहे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२७]

प्रत अनुक्रम [६१]

सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं सत्तावीसं सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं सत्तावीसं पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं सत्तावीसं पलिओवमाइं ठिई प०, मज्झिमउवरिमगेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा मज्झिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं सत्तावीसं सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा सत्तावीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा, तेसिणं देवाणं सत्तावीस वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे सत्तावीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ २७ ॥

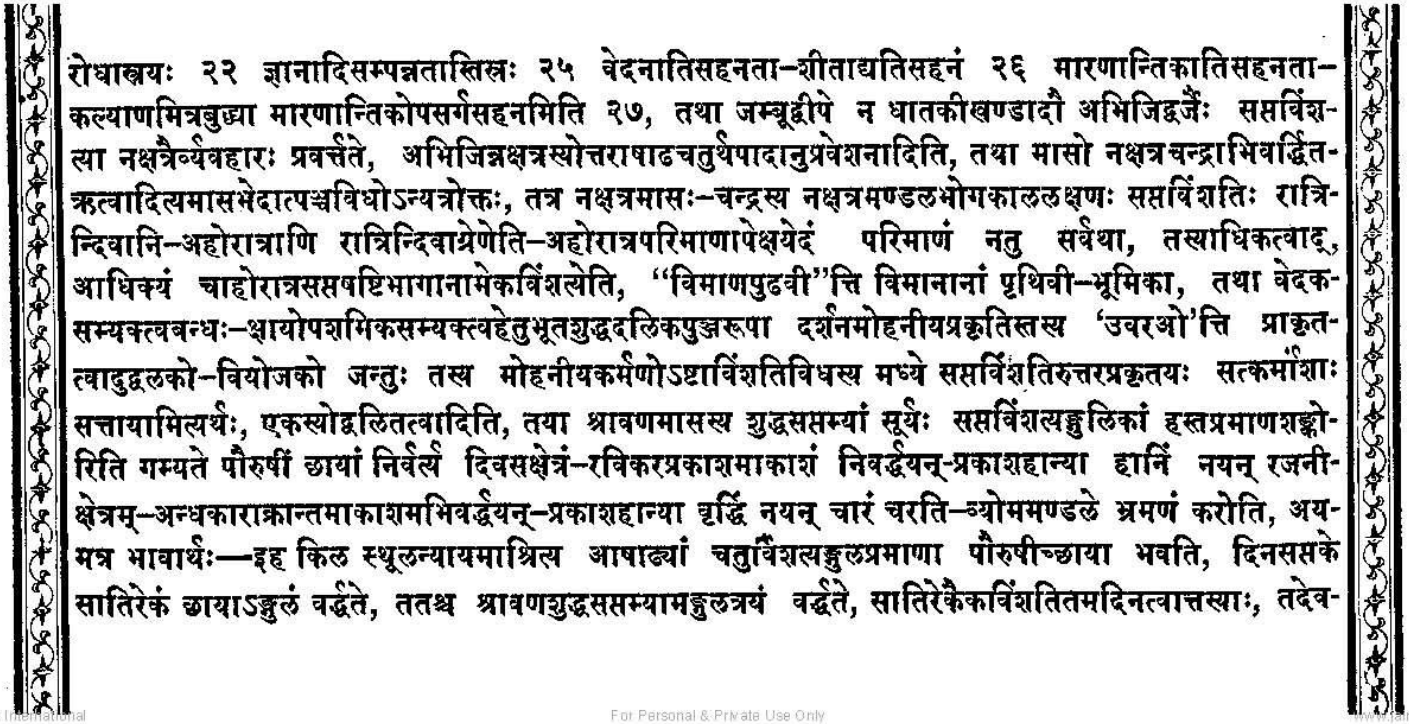
सप्तविंशतिस्थानमपि व्यक्तमेव, केवलं षट् सूत्राणि स्थितेरर्वाक्, तत्र अनगाराणां–साधूनां गुणाः–चारित्रविशेषरूपाः अनगारगुणाः, तत्र महाव्रतानि पञ्चेन्द्रियनिग्रहाश्च पञ्च क्रोधादिविवेकाश्चत्वारः सत्यानि त्रीणि, तत्र भावसत्यं–शुद्धान्तरात्मता करणसत्यं–यत्प्रतिलेखनाक्रियां यथोक्तां सम्यगुपयुक्तः कुरुते योगसत्यं–योगानां–मनःप्रभृतीनामवितथत्वं १७ क्षमा–अनभिव्यक्तक्रोधमानस्वरूपस्य द्वेषसञ्ज्ञितस्याप्रीतिमात्रस्याभावः, अथवा क्रोधमानयोरुदयनिरोधः, क्रोधमानविवेकशब्दाभ्यां तदुदयप्राप्तयोस्तयोर्निरोधः प्रागेवाभिहित इति न पुनरुक्ताऽपीति १८ विरागताअभिष्वङ्गमात्रस्याभावः, अथवा मायालोभयोरनुदयो, मायालोभविवेकशब्दाभ्यां तूदयप्राप्तयोस्तयोर्निरोधः प्रागभिहित इतीहापि न पुनरुक्तेति १९, मनोवाक्कायानां समाहरणता, पाठान्तरतः समन्वाहरणता–अकुशलानां नि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनागाराणाम् सप्तविंशति गुणानाम् वर्णनं

प्रत सूत्रांक [२७]

प्रत अनुक्रम [६१]



रोधाख्यः २२ ज्ञानादिसम्पन्नतास्तिस्रः २५ वेदनातिसहनता–शीताद्यतिसहनं २६ मारणान्तिकातिसहनता–कल्याणमित्रबुद्ध्या मारणान्तिकोपसर्गसहनमिति २७, तथा जम्बूद्वीपे न धातकीखण्डादौ अभिजिद्वर्जैः सप्तविंशत्या नक्षत्रैर्व्यवहारः प्रवर्त्तते, अभिजिन्नक्षत्रस्योत्तराषाढचतुर्थपादानुप्रवेशनादिति, तथा मासो नक्षत्रचन्द्राभिवर्द्धितऋत्वादित्यमासभेदात्पञ्चविधोऽन्यत्रोक्तः, तत्र नक्षत्रमासः–चन्द्रस्य नक्षत्रमण्डलभोगकाललक्षणः सप्तविंशतिः रात्रिन्दिवानि–अहोरात्राणि रात्रिन्दिवाग्रेणेति–अहोरात्रपरिमाणापेक्षयेदं परिमाणं नतु सर्वथा, तस्याधिकत्वाद्, आधिक्यं चाहोरात्रसप्तषष्टिभागानामेकविंशत्येति, "विमाणपुढवी"त्ति विमानानां पृथिवी–भूमिका, तथा वेदकसम्यक्त्वबन्धः–क्षायोपशमिकसम्यक्त्वहेतुभूतशुद्धदलिकपुञ्जरूपा दर्शनमोहनीयप्रकृतिस्तस्य 'उवरओ'त्ति प्राकृतत्वादुद्वलको–वियोजको जन्तुः तस्य मोहनीयकर्मणोऽष्टाविंशतिविधस्य मध्ये सप्तविंशतिरुत्तरप्रकृतयः सत्कर्मांशाः सत्तायामित्यर्थः, एकस्योद्वलितत्वादिति, तथा श्रावणमासस्य शुद्धसप्तम्यां सूर्यः सप्तविंशत्यङ्गुलिकां हस्तप्रमाणशङ्कोरिति गम्यते पौरुषीं छायां निर्वर्त्य दिवसक्षेत्रं–रविकरप्रकाशमाकाशं निवर्द्धयन्-प्रकाशहान्या हानिं नयन् रजनीक्षेत्रम्–अन्धकाराक्रान्तमाकाशमभिवर्द्धयन्–प्रकाशहान्या वृद्धिं नयन् चारं चरति–ज्योममण्डले भ्रमणं करोति, अयमत्र भावार्थः—इह किल स्थूलन्यायमाश्रित्य आषाढ्यां चतुर्विंशत्यङ्गुलप्रमाणा पौरुषीच्छाया भवति, दिनसप्तके सातिरेकं छायाऽङ्गुलं वर्द्धते, ततश्च श्रावणशुद्धसप्तम्यामङ्गुलत्रयं वर्द्धते, सातिरेकैकविंशतितमदिनत्वात्तस्याः, तदेव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनागाराणाम् सप्तविंशति गुणानाम् वर्णनं

प्रत सूत्रांक [२७]

प्रत अनुक्रम [६१]

मापाद्याः सत्कैरङ्गुलैः सह सप्तविंशतिरङ्गुलानि भवन्ति, निश्चयतस्तु कर्कसङ्क्रान्तेरारभ्य यत्सातिरेकैकविंशतितमं दिनं तत्रोक्तरूपा पौरुषीच्छाया भवति ॥ २७ ॥

अट्ठावीसविहे आयारपकप्पे प० तं०–मासिआ आरोवणा सपंचराईमासिया आरोवणा सदसराइमासिआ आरोवणा एवं चेव दोमासिआ आरोवणा सपंचराईदोमासिया आरोवणा एवं तिमासिआ आरोवणा चउमासिया आरोवणा उवघाइया आरोवणा अणुवघाइया आरोवणा कसिणा आरोवणा अकसिणा आरोवणा एतावता आयारपकप्पे एताव ताव आयरियव्वे, भवसिद्धियाणं जीवाणं अत्थेगइयाणं मोहणिज्जस्स कम्मस्स अट्ठावीसं कम्मंसा संतकम्मा प० तं०–सम्मत्तवेअणिज्जं मिच्छत्तवेयणिज्जं सम्ममिच्छत्तवेयणिज्जं सोलस कसाया णव णोकसाया, आभिणिबोहियणाणे अट्ठावीसइविहे प० तं०–सोइंदियअत्थावग्गहे चक्खिंदियअत्थावग्गहे घाणिंदियअत्थावग्गहे जिब्भिंदियअत्थावग्गहे फासिंदियअत्थावग्गहे णोइंदियअत्थावग्गहे सोइंदियवंजणोग्गहे घाणिंदियवंजणोग्गहे जिब्भिंदियवंजणोग्गहे फासिंदियवंजणोग्गहे सोतिंदियईहा चक्खिंदियईहा घाणिंदियईहा जिब्भिंदियईहा फासिंदियईहा णोइंदियईहा सोतिंदियावाए चक्खिंदियावाए घाणिंदियावाए जिब्भिंदियावाए फासिंदियावाए णोइंदियावाए सोइंदिअधारणा चक्खिंदियधारणा घाणिंदियधारणा जिब्भिंदियधारणा फासिंदियधारणा णोइंदियधारणा, ईसाणे णं कप्पे अट्ठावीसं विमाणावाससयसहस्सा प०, जीवे णं देवगइम्मि बंधमाणे नामस्स कम्मस्स अट्ठावीसं उत्तरपगडीओ णिबंधति, तं०–देवगतिनामं पंचिंदियजातिनामं वेउव्वियसरीरनामं तेयगसरीरनामं कम्मणसरीरनामं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समचउरंससंठाणणामं वेउव्वियसरीरंगोवंगणामं वण्णणामं गंधणामं रसणामं फासनामं देवाणुपुव्विणामं अगुरुलहुनामं उवघायनामं पराघायनामं उस्सासनामं पसत्थविहायोगइणामं तसनामं बायरणामं पज्जत्तनामं पत्तेयसरीरनामं थिराथिराणं सुभासुभाणं आएज्जाणाएज्जाणं दोण्हं अण्णयरं एगं नामं णिबंधइ जसोकित्तिनामं निम्माणनामं, एवं चेव नेरइआवि, णाणत्तं अप्पसत्थविहायोगइणामं हुंडगसंठाणणामं अथिरणामं दुब्भगणामं असुभनामं दुस्सरनामं अणादिज्जणामं अजसोकित्तीणामं निम्माणनामं, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइं ठिई प०, अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवाणं अत्थेगइयाणं अट्ठावीसं पलिओवमाइं ठिई प०, उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा मज्झिमउवरिमगेवेज्जएसु विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं अट्ठावीसं सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा अट्ठावीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा, तेसि णं देवाणं अट्ठावीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे अट्ठावीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ २८ ॥

अष्टाविंशतिस्थानकमपि व्यक्तं, नवरमिह पञ्च स्थितेः प्राक् सूत्राणि, तत्र आचारः–प्रथमाङ्गं तस्य प्रकल्पः-अध्ययनविशेषो निशीथमित्यपराभिधानं आचारस्य वा–साध्वाचारस्य ज्ञानादिविषयस्य प्रकल्पो–व्यवस्थापनमित्या-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२८]

प्रत अनुक्रम [६२]

चारप्रकल्पः, तत्र क्वचिद् ज्ञानाद्याचारविषये अपराधमापन्नस्य कस्यचित् प्रायश्चित्तं दत्तं, पुनरन्यमपराधविशेषमापन्नस्ततस्तत्रैव प्राक्तने प्रायश्चित्ते मासवहनयोग्यं मासिकं प्रायश्चित्तमारोपितमित्येवं मासिक्यारोपणा भवति, तथा पञ्चरात्रिकशुद्धियोग्यं मासिकशुद्धियोग्यं चापराधद्वयमापन्नस्ततः पूर्वदत्ते प्रायश्चित्ते सपञ्चरात्रिमासिकप्रायश्चित्तारोपणात्सपञ्चरात्रमासिक्यारोपणा भवति, एवं मासिक्यारोपणाः षट् ६ एवं द्विमासिक्यः ६ त्रिमासिक्यः ६ चतुर्मासिक्योऽपि ६ चतुर्विंशतिरारोपणाः, तथा सार्द्धदिनद्वयस्य पक्षस्य चोपघातनेन लघूनां मासादीनां प्राचीनप्रायश्चित्ते आरोपणा उपघातिकारोपणा, यदाह–"अद्धेण छिन्नसेसं पुवद्धेणं तु संजुयं काउं। देज्जा य लहुयदाणं गुरुदाणं तत्तियं चेव ॥ १ ॥" त्ति, यथा–मासार्द्धे १५ पञ्चविंशतिकार्द्धे च सार्द्धद्वादश सर्वमीलने सार्द्धसप्तविंशतिरिति लघुमासः, तथा मासद्वयार्द्धं मासो मासिकस्यार्द्धं पक्ष उभयमीलने साद्धों मास इति लघुद्विमासिकं २५ तथा तेषामेव सार्द्धदिनद्वयाद्यनुद्घातनेन गुरूणामारोपणा अनुद्घातिकारोपणा २६, तथा यावतोऽपराधानापन्नस्तावतीनां तच्छुद्धीनामारोपणा कृत्स्नारोपणा २७ तथा बहूनपराधानापन्नस्य षण्मासान्तं तप इतिकृत्वा षण्मासाधिकं तपःकर्म तेष्वेवान्तर्भाव्य शेषमारोप्यते यत्र सा अकृत्स्नारोपणेत्यष्टाविंशतिः २८, एतच्च सम्यग् निशीथविंशतितमोद्देशकादवगम्यम्, अत्रैव निगमनमाह–एतावांस्तावदाचारप्रकल्पः, इह स्थानके आरोपणामाश्रित्य विवक्षितोऽन्यथा तद्व्यतिरेकेणापि तस्योद्घातिकानुद्घातिकरूपस्य भावात्, अथवैतावानेवायं तावदाचारप्रकल्पः, शेषस्यात्रैवान्तर्भा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [२८]

प्रत अनुक्रम [६२]

वात्, तथा एतावत्तावदाचरितव्यमित्यपि, तथैव देवगतिसूत्रे स्थिरास्थिरयोः शुभाशुभयोरादेयानादेययोश्च परस्परं विरोधित्वेनैकदा बन्धाभावादन्यदन्यतरद्बध्नातीत्युक्तं, तत्र चैकशब्दग्रहणं भाषामात्र एवावसेयमिति, नारकसूत्रे विंशतिस्तावा एव प्रकृतयोऽष्टानां तु स्थाने अष्टावन्या बध्नाति, एतदेवाह–'एवं चेवे'त्यादि, नानात्वं–विशेषः ॥ २८ ॥

एगूणतीसइविहे पावसुयपसंगे णं प० तं०–भोमे उप्पाए सुमिणे अंतरिक्खे अंगे सरे वंजणे लक्खणे, भोमे तिविहे प० तं०–सुत्ते वित्ती वत्तिए, एवं एक्केक्कं तिविहं, विकहाणुजोगे विज्जाणुजोगे मंताणुजोगे जोगाणुजोगे अण्णतित्थियपवत्ताणुजोगे, आसाढे णं मासे एगूणतीसराइंदिआइं राइंदियग्गेणं प०, (एवं चेव) भद्दवए णं मासे कत्तिए णं मासे पोसे णं मासे फग्गुणे णं मासे वइसाहे णं मासे, चंददिणे णं एगूणतीसं मुहुत्ते सातिरेगे मुहुत्तग्गेणं प०, जीवे णं पसत्थज्झवसाणजुत्ते भविए सम्मदिट्ठी तित्थकरनामसहिआओ णामस्स णियमा एगूणतीसं उत्तरपगडीओ निबंधित्ता वेमाणिएसु देवेसु देवत्ताए उववज्जइ, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगूणतीसं पलिओवमाइं ठिई प०, अहे सत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एगूणतीसं सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एगूणतीसं पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवाणं अत्थेगइयाणं एगूणतीसं पलिओवमाइं ठिई प०, उवरिममज्झिमगेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं एगूणतीसं सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा एगूणतीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा ऊससंति वा नीससंति वा तेसि णं देवाणं एगूणतीसं वाससहस्से-

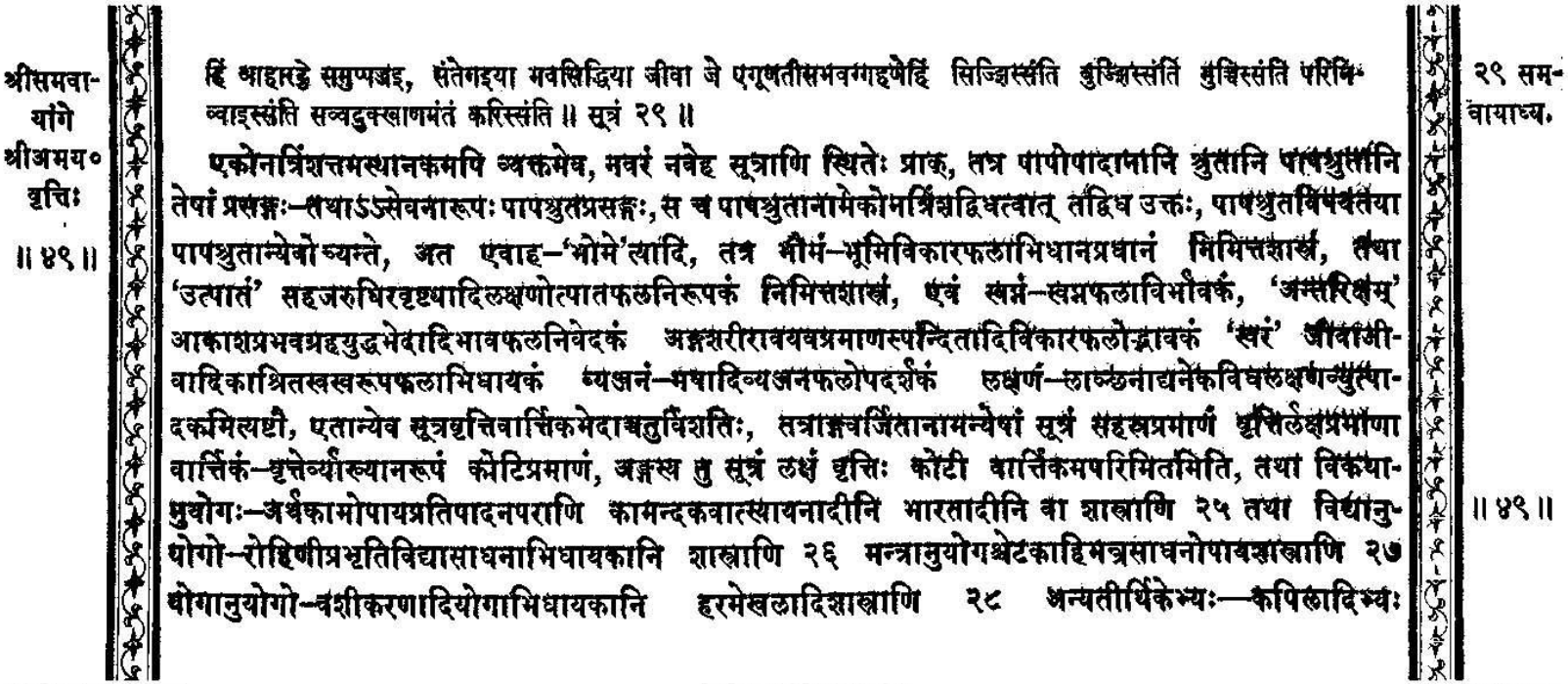
१ सम०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२९]

प्रत अनुक्रम [६३]



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ४९ ॥

हिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एगूणतीसभवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं २९ ॥

एकोनत्रिंशत्तमस्थानकमपि व्यक्तमेव, नवरं नवेह सूत्राणि स्थितेः प्राक्, तत्र पापोपादानानि श्रुतानि पापश्रुतानि तेषां प्रसङ्गः–तथाऽऽसेवनारूपः पापश्रुतप्रसङ्गः, स च पापश्रुतानामेकोनत्रिंशद्विधत्वात् तद्विध उक्तः, पापश्रुतविषयतया पापश्रुतान्येवोच्यन्ते, अत एवाह–'भोमे'त्यादि, तत्र भौमं–भूमिविकारफलाभिधानप्रधानं निमित्तशास्त्रं, तथा 'उत्पातं' सहजरुधिरवृष्ट्यादिलक्षणोत्पातफलनिरूपकं निमित्तशास्त्रं, एवं स्वप्नं–स्वप्नफलाविर्भावकं, 'अन्तरिक्षम्' आकाशप्रभवग्रहयुद्धभेदादिभावफलनिवेदकं अङ्गशरीरावयवप्रमाणस्पन्दितादिविकारफलोद्भावकं 'स्वरं' जीवाजीवादिकाश्रितस्वस्वरूपफलाभिधायकं व्यञ्जनं–मषादिव्यञ्जनफलोपदर्शकं लक्षणं–स्वस्तिकनन्द्यावर्तादिकमिलक्षणं, एतान्येव सूत्रवृत्तिवार्त्तिकभेदाच्चतुर्विंशतिः, तत्राङ्गवर्जितानामन्येषां सूत्रं सहस्रप्रमाणं वृत्तिर्लक्षप्रमाणा वार्त्तिकं–वृत्तेर्व्याख्यानरूपं कोटिप्रमाणं, अङ्गस्य तु सूत्रं लक्षं वृत्तिः कोटी वार्त्तिकमपरिमितमिति, तथा विकथानुयोगः–अर्थकामोपायप्रतिपादनपराणि कामन्दकवात्स्यायनादीनि भारतादीनि वा शास्त्राणि २५ तथा विद्यानुयोगो–रोहिणीप्रभृतिविद्यासाधनाभिधायकानि शास्त्राणि २६ मन्त्रानुयोगश्चेटकादिमन्त्रसाधनोपायशास्त्राणि २७ योगानुयोगो–वशीकरणादियोगाभिधायकानि हरमेखलादिशास्त्राणि २८ अन्यतीर्थिकेभ्यः—कपिलादिभ्यः

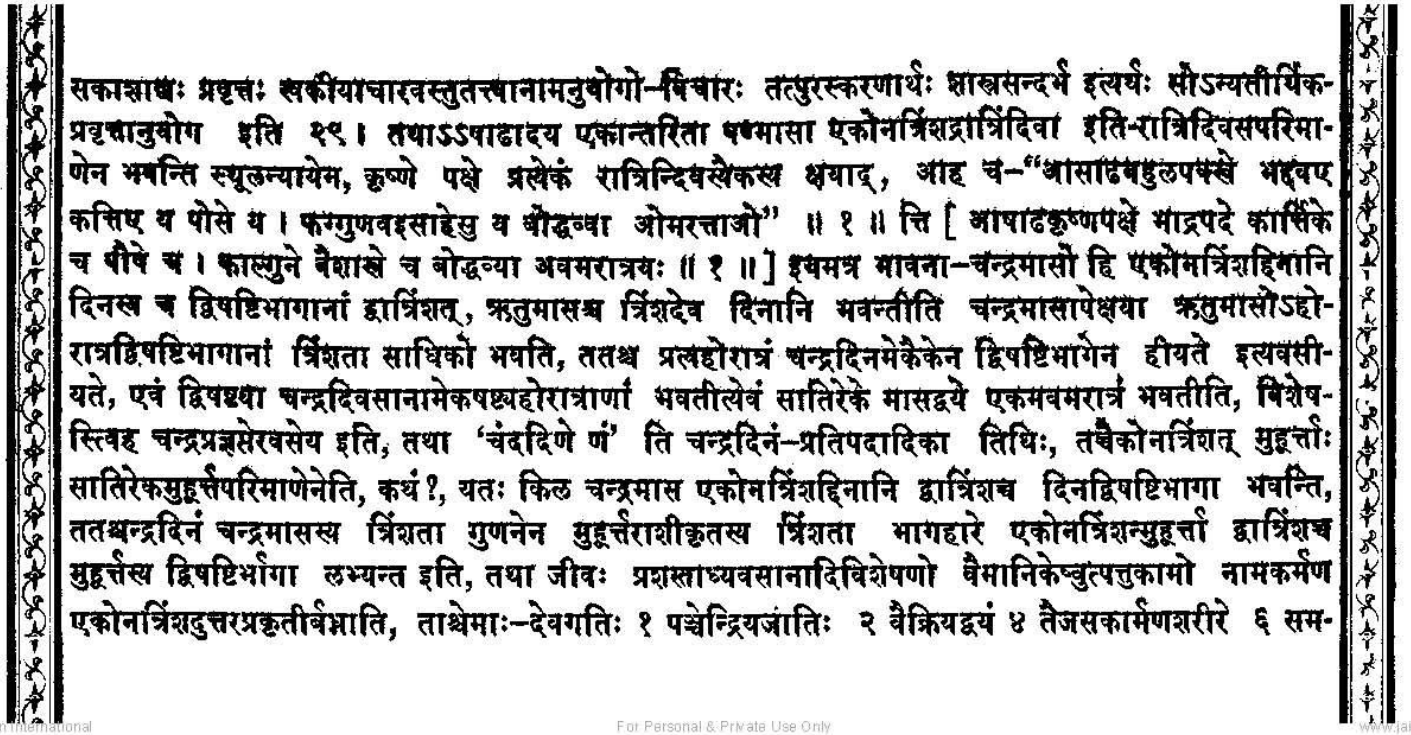
२९ समवायाध्य. ॥ ४९ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पापश्रुत-प्रसङ्गानां एकोनत्रिंशत भेदाया: वर्णनं

प्रत सूत्रांक [२९]

प्रत अनुक्रम [६३]



सकाशाद्यः प्रवृत्तः स्वकीयाचारवस्तुतत्त्वानामनुयोगो-विचारः तत्पुरस्करणार्थः शास्त्रसन्दर्भ इत्यर्थः सोऽन्यतीर्थिक-प्रवृत्तानुयोग इति २९। तथाऽऽषाढादय एकान्तरिता षण्मासा एकोनत्रिंशद्रात्रिंदिवा इति-रात्रिंदिवसपरिमा-णेन भवन्ति स्थूलन्यायेन, कृष्णे पक्षे प्रत्येकं रात्रिन्दिवस्यैकस्य क्षयाद्, आह च-"आसाढबहुलपक्खे भद्दवए कत्तिए य पोसे य। फग्गुणवइसाहेसु य बोद्धव्वा ओमरत्ताओ" ॥ १ ॥ त्ति [आषाढकृष्णपक्षे भाद्रपदे कार्त्तिके च पौषे च। फाल्गुने वैशाखे च बोद्धव्या अवमरात्रयः ॥ १ ॥] इयमत्र भावना-चन्द्रमासो हि एकोनत्रिंशदहानि दिनस्य च द्विषष्टिभागानां द्वात्रिंशत्, ऋतुमासश्च त्रिंशदेव दिनानि भवन्तीति चन्द्रमासापेक्षया ऋतुमासोऽहो-रात्रद्विषष्टिभागानां त्रिंशता साधिको भवति, ततश्च प्रत्यहोरात्रं चन्द्रदिनमेकैकेन द्विषष्टिभागेन हीयते इत्यवसी-यते, एवं द्विषष्ट्या चन्द्रदिवसानामेकषष्ट्यहोरात्राणां भवतीत्येवं सातिरेके मासद्वये एकमवमरात्रं भवतीति, विशेष-स्त्विह चन्द्रप्रज्ञप्तेरवसेय इति, तथा 'चंददिणे णं' ति चन्द्रदिनं-प्रतिपदादिका तिथिः, तच्चैकोनत्रिंशत् मुहूर्त्ताः सातिरेकमुहूर्त्तपरिमाणेनेति, कथं?, यतः किल चन्द्रमास एकोनत्रिंशदहानि द्वात्रिंशच्च दिनद्विषष्टिभागा भवन्ति, ततश्चन्द्रदिनं चन्द्रमासस्य त्रिंशता गुणनेन मुहूर्त्तराशीकृतस्य त्रिंशता भागहारे एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ता द्वात्रिंशच्च मुहूर्त्तस्य द्विषष्टिभागा लभ्यन्त इति, तथा जीवः प्रशस्ताध्यवसानादिविशेषणो वैमानिकेष्वुत्पत्तुकामो नामकर्मण एकोनत्रिंशदुत्तरप्रकृतीर्बध्नाति, ताश्चेमाः-देवगतिः १ पञ्चेन्द्रियजातिः २ वैक्रियद्वयं ४ तैजसकार्मणशरीरे ६ सम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पापश्रुत-प्रसङ्गानां एकोनत्रिंशत भेदाया: वर्णनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [२९]

प्रत अनुक्रम [६३]

चतुरस्रं संस्थानं ७ वर्णादिचतुष्कं ११ देवानुपूर्वी १२ अगुरुलघु १३ उपघातं १४ पराघातं १५ उच्छ्वासं १६ प्रशस्तविहायोगतिः १७ त्रसं १८ बादरं १९ पर्याप्तं २० प्रत्येकं २१ स्थिरास्थिरयोरन्यतरत् २२ शुभाशुभयोरन्यतरत् २३ सुभगं २४ सुस्वरं २५ आदेयानादेययोरन्यतरत् २६ यशःकीर्त्ययशकीर्त्त्योरेकतरं २७ निर्माणं २८ तीर्थकरश्चेति ॥२९॥

तीसं मोहणीयठाणा पं० तं–जे यावि तसे पाणे, वारिमज्झे विगाहिआ । उदएण कम्मा मारेई, महामोहं पकुव्वइ ॥ १ ॥ सीसावेढेण जे केई, आवेढेइ अभिक्खणं । तिव्वासुभसमायारे, महामोहं पकुव्वइ ॥ २ ॥ पाणिणा संपिहित्ताणं, सोयमावरिय पाणिणं । अंतोनदंतं मारेई, महामोहं पकुव्वइ ॥३॥ जायतेयं समारब्भ, बहुं ओरुंभिया जणं । अंतोधूमेण मारेई(ज्ञा), महामोहं पकुव्वइ ॥ ४ ॥ सिस्सम्मि जे पहणइ, उत्तमंगम्मि चेयसा । विभज्ज मत्थयं फाले, महामोहं पकुव्वइ ॥ ५ ॥ पुणो पुणो पणिधिए, हरित्ता उवहसे जणं । फलेणं अदुवा दण्डेणं, महामोहं पकुव्वइ ॥ ६ ॥ गूढायारी निगूहिज्जा, मायं मायाएँ छायए । असच्चवाई णिण्हाई, महामोहं पकुव्वइ ॥ ७ ॥ धंसेइ जो अभूएणं, अकम्मं अत्तकम्मुणा । अदुवा तुम कासित्ति, महामोहं पकुव्वइ ॥ ८ ॥ जाणमाणो परिसओ, सच्चामोसाणि भासइ । अक्खीणझंझे पुरिसे, महामोहं पकुव्वइ ॥ ९ ॥ अणायगस्स नयवं, दारे तस्सेव धंसिया । विउलं विक्खोभइत्ताणं, किच्चा णं पडिबाहिरं ॥ १० ॥ उवगसंतंपि झंपित्ता; पडिलोमाहिं वग्गुहिं । भोगभोगे वियारेई, महामोहं पकुव्वइ ॥ ११ ॥ अकुमारभूए जे केई, कुमारभूएत्तिहं वए । इत्थीहिं गिद्धे वसए, महामोहं पकुव्वइ ॥ १२ ॥ अबंभयारी जे केई, बंभयारीत्तिहं वए । गद्दहेव्व गवां मज्झे, विस्सरं नयई नदं ॥ १३ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्पणो अहिए बाले, मायामोसं बहुं भसे । इत्थीविसयगेहीए, महामोहं पकुव्वइ ॥ १४ ॥ १२ ॥ जं निस्सिए उव्वहइ, जससाहिगमेण वा । तस्स लुब्भइ वित्तम्मि, महामोहं पकुव्वइ ॥ १५ ॥ १३ ॥ ईसरेण अदुवा गामेणं, अणिसरे ईसरीकए । तस्स संपयहीणस्स, सिरी अतुलमागया ॥ १६ ॥ ईसादोसेण आविट्ठे, कलुसाविलचेयसे । जे अंतराभं चेएइ, महामोहं पकुव्वइ ॥ १७ ॥ १४ ॥ सप्पी जहा अंडउडं, भत्तारं जो विहिंसइ । सेणावइं पसत्थारं, महामोहं पकुव्वइ ॥ १८ ॥ १५ ॥ जे नायगं च रट्ठस्स, नेयारं निगमस्स वा । सेट्ठिं बहुरवं हंता, महामोहं पकुव्वइ ॥ १९ ॥ १६ ॥ बहुजणस्स णेयारं, दीवं ताणं च पाणिणं । एयारिसं नरं हंता, महामोहं पकुव्वइ ॥ २० ॥ १७ ॥ उवट्ठियं पडिविरयं, संजयं सुतवस्सियं । वुक्कम्म धम्माओ भंसेइ, महामोहं पकुव्वइ ॥ २१ ॥ १८ ॥ तहेवाणंतणाणीणं, जिणाणं वरदंसिणं । तेसिं अवण्णवं बाले, महामोहं पकुव्वइ ॥ २२ ॥ १९ ॥ नेयाइअस्स मग्गस्स, दुट्ठे अवयरई बहुं । तं तिप्पयंतो भावेइ, महामोहं पकुव्वइ ॥ २३ ॥ २० ॥ आयरियउवज्झाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए । ते चेव खिंसई बाले, महामोहं पकुव्वइ ॥ २४ ॥ २१ ॥ आयरियउवज्झायाणं, सम्मं नो पडितप्पइ । अप्पडिपूयए थद्धे, महामोहं पकुव्वइ ॥ २५ ॥ २२ ॥ अबहुस्सुए य जे केई, सुएणं पविकत्थई । सज्झायवायं वयइ, महामोहं पकुव्वइ ॥ २६ ॥ २३ ॥ अतवस्सीए य जे केई, तवेण पविकत्थइ । सव्वलोयपरे तेणे, महामोहं पकुव्वइ ॥ २७ ॥ २४ ॥ साहारणट्ठा जे केई, गिलाणम्मि उवट्ठिए । पभू ण कुणई किच्चं, मज्झंपि से न कुव्वइ ॥ २८ ॥ सढे नियडीपण्णाणे, कलुसाउलचेयसे । अप्पणो य अबोहीय, महामोहं पकुव्वइ ॥ २९ ॥ २५ ॥ जे कहाहिगरणाइं, संपउंजे पुणो पुणो । सव्वतित्थाण भेयाणं, महामोहं पकुव्वइ ॥ ३० ॥ २६ ॥ जे अ आहम्मिए जोए, संपओजे पुणो पुणो । सहाहेउं

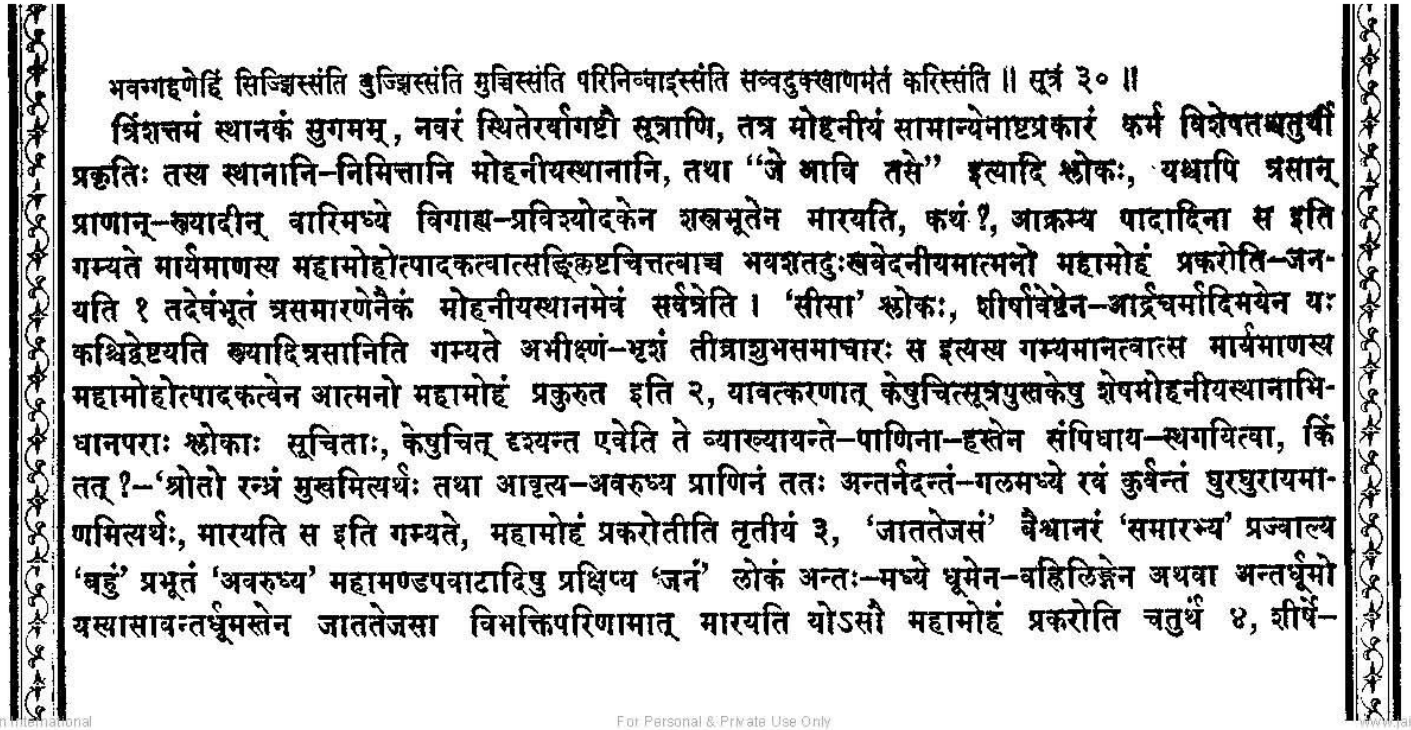
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सहीहेउं, महामोहं पकुव्वइ ॥ ३१ ॥ २७ ॥ जे अ माणुस्सए भोए, अदुवा पारलोइए । तेऽतिप्पयंतो आसयइ, महामोहं पकुव्वइ ॥ ३२ ॥ २८ ॥ इड्ढी जुई जसो वण्णो, देवाणं बलवीरियं । तेसिं अवण्णवं बाले, महामोहं पकुव्वइ ॥ ३३ ॥ २९ ॥ अपस्समाणो पस्सामि, देवे जक्खे य गुज्झगे । अण्णाणी जिणपूयट्ठी, महामोहं पकुव्वइ ॥ ३४ ॥ ३० ॥ थेरे णं मंडियपुत्ते तीसं वासाइं सामण्णपरियायं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, एगमेगे णं अहोरत्ते तीसमुहुत्ते मुहुत्तग्गेणं प०, एएसि णं तीसाए मुहुत्ताणं तीसं नामधेज्जा प० तं०–रोद्दे सत्ते मित्ते वाऊ सुपीए ५ अभिचंदे माहिंदे पलंबे बंभे सच्चे १० आणंदे विजए विस्ससेणे पायावच्चे उवसमे १५ ईसाणे तट्ठे भाविअप्पा वेसमणे वरुणे २० सतरिसभे गंधव्वे अग्गिवेसायणे आतवे आवत्ते२५ तट्ठवे भूमहे रिसभे सव्वट्ठसिद्धे रक्खसे ३०, अरे णं अरहा तीसं धणुइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, सहस्सारस्स णं देविंदस्स देवरण्णो तीसं सामाणियसाहस्सीओ प०, पासे णं अरहा तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, समणे भगवं महावीरे तीसं वासाइं अगारवासमज्झे वसित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, रयणप्पभाए णं पुढवीए तीसं निरयावाससयसहस्सा प०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तीसं पलिओवमाइं ठिई प०, अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं तीसं सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं तीसं पलिओवमाइं ठिई प०, उवरिमउवरिमगेवेज्जयाणं देवाणं जहण्णेणं तीसं सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा उवरिमहेट्ठिमगेवेज्जएसु विमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं तीसं सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा तीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा, तेसि णं देवाणं तीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तीसाए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०]

प्रत अनुक्रम [६४-९९]



भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं ३० ॥

त्रिंशत्तमं स्थानकं सुगमम्, नवरं स्थितेरर्वागष्टौ सूत्राणि, तत्र मोहनीयं सामान्येनाष्टप्रकारं कर्म विशेषतश्चतुर्थी प्रकृतिः तस्य स्थानानि–निमित्तानि मोहनीयस्थानानि, तथा "जे आवि तसे" इत्यादि श्लोकः, यश्चापि त्रसान् प्राणान्–द्वयादीन् वारिमध्ये विगाह्य–प्रविश्योदकेन शस्त्रभूतेन मारयति, कथं ?, आक्रम्य पादादिना स इति गम्यते मार्यमाणस्य महामोहोत्पादकत्वात्सङ्क्लिष्टचित्तत्वाच्च भयशतदुःखवेदनीयमात्मनो महामोहं प्रकरोति–जनयति १ तदेवंभूतं त्रसमारणेनैकं मोहनीयस्थानमेवं सर्वत्रेति । 'सीसा' श्लोकः, शीर्षावेष्टेन–आर्द्रचर्मादिमयेन यः कश्चिद्वेष्टयति द्वयादित्रसानिति गम्यते अभीक्ष्णं–भृशं तीव्राशुभसमाचारः स इत्यस्य गम्यमानत्वात्स मार्यमाणस्य महामोहोत्पादकत्वेन आत्मनो महामोहं प्रकुरुत इति २, यावत्करणात् केषुचित्सूत्रपुस्तकेषु शेषमोहनीयस्थानाभिधानपराः श्लोकाः सूचिताः, केषुचित् दृश्यन्त एवेति ते व्याख्यायन्ते–पाणिना–हस्तेन संपिधाय–स्थगयित्वा, किं तत् ?–'श्रोतो रन्ध्रं मुखमित्यर्थः तथा आवृत्य–अवरुध्य प्राणिनं ततः अन्तर्नदन्तं–गलमध्ये रवं कुर्वन्तं घुरघुरायमाणमित्यर्थः, मारयति स इति गम्यते, महामोहं प्रकरोतीति तृतीयं ३, 'जाततेजसं' वैश्वानरं 'समारभ्य' प्रज्वाल्य 'बहुं' प्रभूतं 'अवरुध्य' महामण्डपवाटादिषु प्रक्षिप्य 'जनं' लोकं अन्तः–मध्ये धूमेन–वह्निलिङ्गेन अथवा अन्तर्धूमो यस्यासावन्तर्धूमस्तेन जाततेजसा विभक्तिपरिणामात् मारयति योऽसौ महामोहं प्रकरोति चतुर्थं ४, शीर्षे–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय-स्थानानाम् त्रिंशत् भेदानाम् व्याख्याः

प्रत सूत्रांक [३०]

प्रत अनुक्रम [६४-९९]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ५२ ॥

शिरसि यः प्रहन्ति–खड्गमुद्गरादिना प्रहरति प्राणिनमिति गम्यते, किंभूते स्वभावतः शिरसि ?–'उत्तमाङ्गे' सर्वावयवानां प्रधानावयवे तद्विघातेऽवश्यं मरणात् चेतसा–सङ्क्लिष्टेन मनसा न यथाकथञ्चिदित्यर्थः तथा विभज्य मस्तकं प्रकृष्टप्रहारदानेन स्फोटयति–विदारयति ग्रीवादिकं कायमपीति गम्यते, स इत्यस्य गम्यमानत्वात् महामोहं प्रकरोतीति पञ्चमं ५। पौनःपुन्येन प्रणिधिना–मायया यथा वाणिजकादिवेषं विधाय गलकर्त्तकाः पथि गच्छता सह गत्वा विजने मारयति तथा हत्वा–विनाश्य इति गम्यते उपहसेत् आनन्दातिरेकात् 'जनं' मूर्खलोकं हन्यमानं, केन हत्वा ?–'फलेन' योगभावितेन मातुलिङ्गादिना 'अदुवा' अथवा दण्डेन प्रसिद्धेन स इति गम्यते, महामोहं प्रकरोतीति षष्ठम् ६। 'गूहाचारी' प्रच्छन्नाचारवान् निगूहयेत–गोपयेत्, स्वकीयं प्रच्छन्नं दुष्टमाचारं तथा मायां परकीयां मायया स्वकीयया छादयेत्–जयेत्, यथा शकुनिमारकाश्छदैरात्मानमावृत्य शकुनीन् गृह्णन्तः स्वकीयमायया शकुनिमायां छादयन्ति, तथा असत्यवादी 'निह्नवी' अपलापकः स्वकीयाया मूलगुणोत्तरगुणप्रतिसेवायाः सूत्रार्थयोर्वा महामोहं प्रकरोतीति सप्तमं ७। ध्वंसयति–छायया भ्रंशयति इति यः पुरुषोऽभूतेन–असद्भूतेन, कं ?–अकर्मकं–अविद्यमानदुश्चेष्टितं आत्मकर्मणा–आत्मकृतऋषिघातादिना दुष्टव्यापारेण 'अदुवा' अथवा यदन्येन कृतं तदाश्रित्य परस्य समक्षमेवं त्वमकार्षीरेतन्महापापमिति वदति, वदिक्रियायाः गम्यमानत्वात्स इत्यस्यापि गम्यमानत्वात् महामोहं प्रकरोतीत्यष्टमं ८। जानानः यथा अनृतमेतत्परिषदः-सभायां बहुजनमध्ये इत्यर्थः, सत्यामृषाणि-किञ्चित्सत्यानि बहुसत्यानि वस्तूनि वा-

३० समवायाध्य. ॥ ५२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय-स्थानानाम् त्रिंशत् भेदानाम् व्याख्या:

प्रत सूत्रांक [३०]

प्रत अनुक्रम [६४-९९]

क्यानि वा भाषते 'अक्षीणझञ्झः' अनुपरतकलहः यः स इति गम्यते, महामोहं प्रकरोतीति नवमं ९। अनायकः-अविद्यमाननायको राजा तस्य नयवान्–नीतिमानमात्यः स तस्यैव राज्ञो 'दारान्' कलत्रं द्वारं वा–अर्थागमस्योपायं ध्वंसयित्वा भोगभोगान् विदारयतीति सम्बन्धः, किं कृत्वा?–'विपुलं' प्रचुरमित्यर्थः, 'विक्षोभ्य' सामन्तादिपरिकरभेदेन संक्षोभ्य नायकं तस्य क्षोभं जनयित्वेत्यर्थः, 'कृत्वा' विधाय णमित्यलङ्कारे प्रतिवाद्यं–अनधिकारिणं दारेभ्योऽर्थागमद्वारेभ्यो वा, दारान् राज्यं वा स्वयमधिष्ठायेत्यर्थः १०। तथा 'उपकसन्तमपि' समीपमागच्छन्तमपि, सर्वस्वापहारे कृते प्राभृतेनानुलोमैः करुणैश्च वचनैरनुकूलयितुमुपस्थितमित्यर्थः, झम्पयित्वा–अनिष्टवचनावकाशं कृत्वा प्रतिलोमाभिः-तस्य प्रतिकूलाभिर्वाग्भिः–वचनैरेतादृशस्तादृशस्त्वमित्यादिभिरित्यर्थः, 'भोगभोगान्' विशिष्टान् शब्दादीन् विदारयति योऽसौ महामोहं प्रकरोतीति दशमं १०। अकुमारभूतः अकुमारब्रह्मचारी सन् यः कश्चित् कुमारभूतोऽहं कुमारब्रह्मचारी अहमिति वदति, अथ च स्त्रीषु गृद्धो–वशकश्च स्त्रीणामेवायत्त इत्यर्थः, अथवा 'वसति' आस्ते स महामोहं प्रकरोतीत्येकादशं ११। अब्रह्मचारी मैथुनादनिवृत्तो यः कश्चित्तत्काल एवासेव्याब्रह्मचर्यं ब्रह्मचारी साम्प्रतमहमित्यतिधूर्त्ततया परप्रवञ्चनाय वदति, तथा य एवमशोभावहं सतामनादेयं भणन् गर्दभ इव गवां मध्ये विस्वरं न वृषभवन्मनोज्ञं नदति–मुञ्चति नदं–नादं शब्दमित्यर्थः, तथा य एवं भणन्नात्मनोऽहितो–न हितकारी बालो-मूढो मायामृषा बहुशः–अनृतं प्रभूतं भाषते, यश्चैवं निन्दितं भाषते, कया?–स्त्रीविषयगृद्ध्या हेतुभूतया स इत्थंभूतो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय-स्थानानाम् त्रिंशत् भेदानाम् व्याख्या:

प्रत सूत्रांक [३०]

प्रत अनुक्रम [६४-९९]

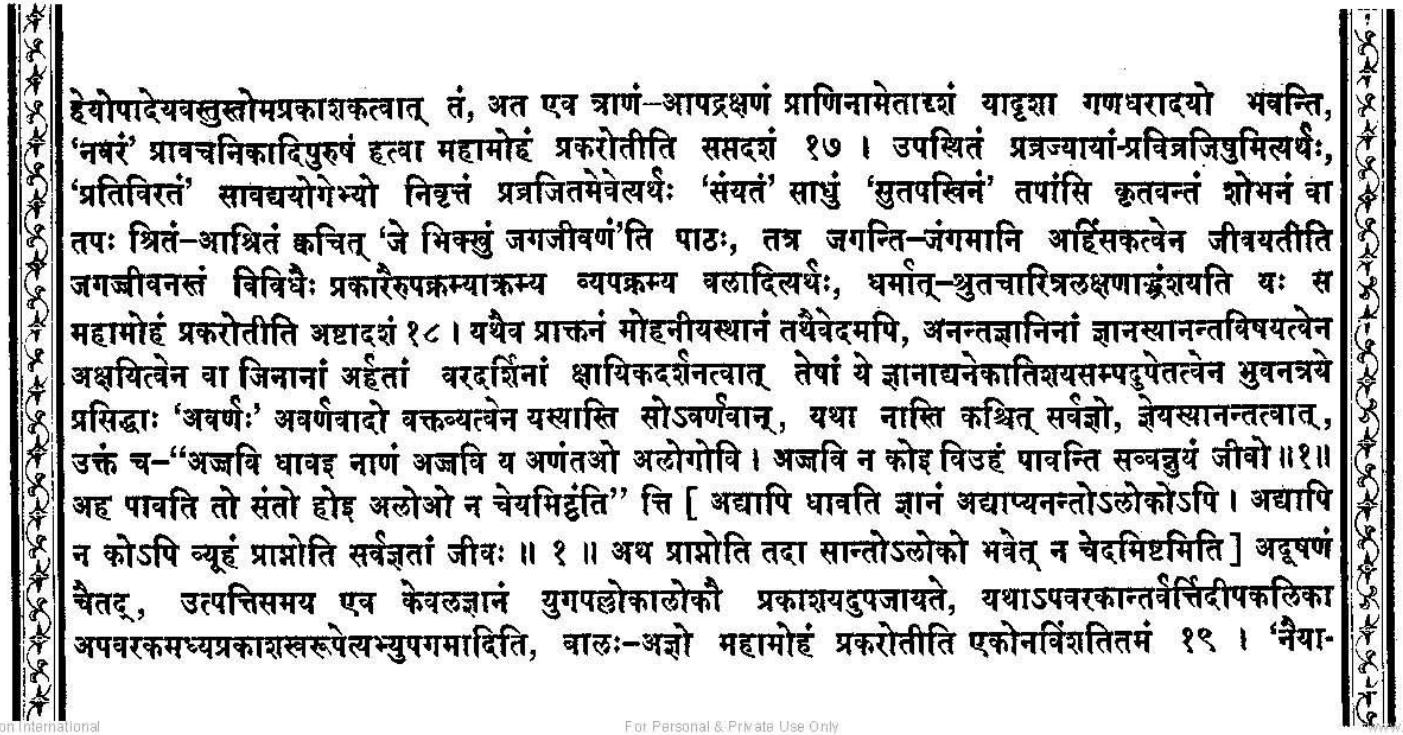
महामोहं प्रकरोतीति द्वादशम् १२। यं राजानं राजामात्यादिकं वा निश्रितं–आश्रितं उद्वहते–जीविकालाभेनात्मानं धारयति, कथं ?–यशसा तस्य राजादेः सत्कोऽयमिति प्रसिद्धया अभिगमनेन वा–सेवया आश्रितराजादेस्तस्य निर्वाहकारणस्य राजादेर्लुभ्यति 'वित्ते' द्रव्ये यः स महामोहं प्रकरोतीति त्रयोदशं १३। 'ईश्वरेण' प्रभुणा 'अदुवा' अथवा 'ग्रामेण' जनसमूहेन अनीश्वर ईश्वरीकृतः तस्य पूर्वावस्थायामनीश्वरस्य सम्प्रगृहीतस्य पुरस्कृतस्य प्रभ्वादिना श्रीः–लक्ष्मीरतुला–असाधारणा आगता–प्राप्ता अतुलं वा यथा भवतीत्येवं श्रीः समागता आगतश्रीकश्च प्रभ्वाद्युपकारकविषये ईर्ष्यादोषेणाविष्टो–युक्तः कलुषेण–द्वेषलोभादिलक्षणपापेनाविलं–गडुलमाकुलं वा चेतो यस्य स तथा योऽन्तरायं–व्यवच्छेदं जीवितश्रीभोगानां 'चेतयते' करोति प्रभुत्वादेरसौ महामोहं प्रकरोतीति चतुर्दशं १४। 'सर्प्पी' नागी यथा 'अण्डउडं' अण्डककूटं स्वकीयमण्डकसमूहमित्यर्थः, अण्डस्य वा पुटं–सम्बन्धदलद्वयरूपं हिनस्ति, एवं भर्त्तारं–पोषयितारं यो विहिनस्ति सेनापतिं-राजानं प्रशास्तारं–अमात्यं धर्मपाठकं वा स महामोहं प्रकरोतीति, तन्मरणे बहुजनदुःस्थता भवतीति पञ्चदशं १५। यो नायकं वा–प्रभुं राष्ट्रस्य राष्ट्रमहत्तरादिकमिति भावः, तथा 'नेतारं' प्रवर्तयितारं प्रयोजनेषु निगमस्य–वाणिजकसमूहस्य, कं ?–श्रेष्ठिनं' श्रीदेवताङ्कितपट्टबद्धं, किंभूतं ?–'बहुरवं' भूरिशब्दं प्रचुरयशसमित्यर्थः हत्वा महामोहं प्रकुरुत इति षोडशं १६। 'बहुजनस्य' पञ्चषादीनां लोकानां 'नेतारं' नायकं द्वीप इव द्वीपः–संसारसागरगतानामाश्वासस्थानं अथवा दीप इव दीपोऽज्ञानान्धकाराबृतबुद्धिदृष्टिप्रसराणां शरीरिणां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय-स्थानानाम् त्रिंशत् भेदानाम् व्याख्या:

प्रत सूत्रांक [३०]

प्रत अनुक्रम [६४-९९]



हेयोपादेयवस्तुस्तोमप्रकाशकत्वात् तं, अत एव त्राणं–आपद्रक्षणं प्राणिनामेतादृशं यादृशा गणधरादयो भवन्ति, 'नवरं' प्रावचनिकादिपुरुषं हत्वा महामोहं प्रकरोतीति सप्तदशं १७ । उपस्थितं प्रव्रज्यायां-प्रवित्रजिषुमित्यर्थः, 'प्रतिविरतं' सावद्ययोगेभ्यो निवृत्तं प्रव्रजितमेवेत्यर्थः 'संयतं' साधुं 'सुतपस्विनं' तपांसि कृतवन्तं शोभनं वा तपः श्रितं–आश्रितं क्वचित् 'जे भिक्खुं जगजीवणं'ति पाठः, तत्र जगन्ति–जंगमानि अहिंसकत्वेन जीवयतीति जगज्जीवनस्तं विविधैः प्रकारैरुपक्रम्याक्रम्य व्यपक्रम्य बलादित्यर्थः, धर्मात्–श्रुतचारित्रलक्षणाद्भ्रंशयति यः स महामोहं प्रकरोतीति अष्टादशं १८ । यथैव प्राक्तनं मोहनीयस्थानं तथैवेदमपि, अनन्तज्ञानिनां ज्ञानस्यानन्तविषयत्वेन अक्षयित्वेन वा जिनानां अर्हतां वरदर्शिनां क्षायिकदर्शनत्वात् तेषां ये ज्ञानाद्यनेकातिशयसम्पदुपेतत्वेन भुवनत्रये प्रसिद्धाः 'अवर्णः' अवर्णवादो वक्तव्यत्वेन यस्यास्ति सोऽवर्णवान्, यथा नास्ति कश्चित् सर्वज्ञो, ज्ञेयस्यानन्तत्वात्, उक्तं च–"अज्जवि धावइ नाणं अज्जवि य अणंतओ अलोगोवि । अज्जवि न कोइ विउहं पावन्ति सव्वन्नुयं जीवो ॥१॥ अह पावति तो संतो होइ अलोओ न चेयमिट्ठंति" त्ति [अद्यापि धावति ज्ञानं अद्याप्यनन्तोऽलोकोऽपि । अद्यापि न कोऽपि व्यूहं प्राप्नोति सर्वज्ञतां जीवः ॥ १ ॥ अथ प्राप्नोति तदा सान्तोऽलोको भवेत् न चेदमिष्टमिति] अदूषणं चैतद्, उत्पत्तिसमय एव केवलज्ञानं युगपल्लोकालोकौ प्रकाशयदुपजायते, यथाऽपवरकान्तर्वर्त्तिदीपकलिका अपवरकमध्यप्रकाशस्वरूपेत्यभ्युपगमादिति, बालः–अज्ञो महामोहं प्रकरोतीति एकोनविंशतितमं १९ । 'नैया-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय-स्थानानाम् त्रिंशत् भेदानाम् व्याख्या:

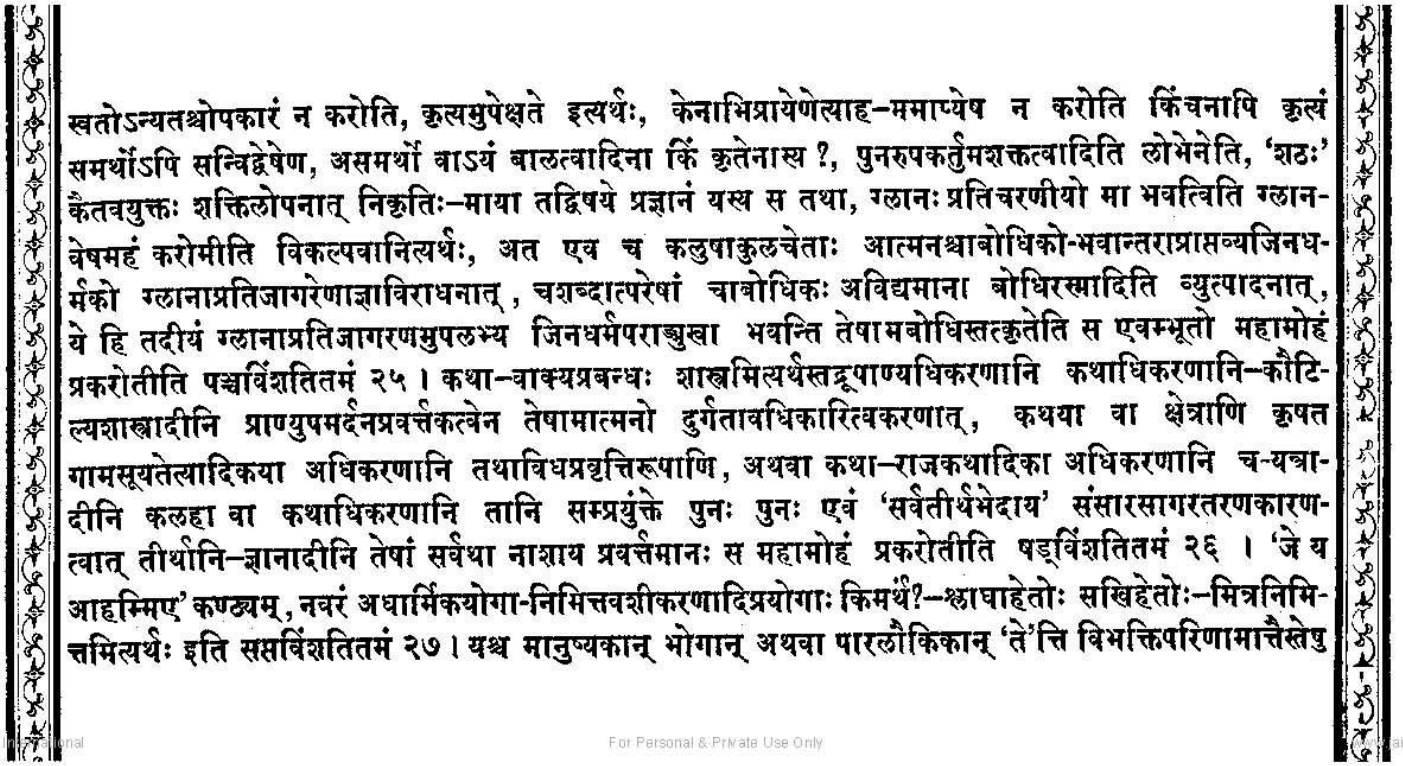
प्रत सूत्रांक [३०]

प्रत अनुक्रम [६४-९९]

यिकस्य' न्यायमनतिक्रान्तस्य 'मार्गस्य' सम्यग्दर्शनादेः मोक्षपथस्य दुष्टो द्विष्टो वा 'अपकरोति' अपकारं करोतीति, 'बहु' अत्यर्थं पाठान्तरेणापहरति बहुजनं विपरिणमयतीति भावः, तं मार्गं 'तिप्पयंतो'त्ति निन्दयन् भावयति–निन्दया द्वेषेण वा वासयति आत्मानं परं च यः स महामोहं प्रकरोतीति विंशतितमं २० । आचार्योपाध्यायैर्यः श्रुतं–स्वाध्यायं विनयं च–चारित्रं 'ग्राहितः' शिक्षितः तानेव 'खिंसति' निन्दति-अल्पश्रुता एते इत्यादि ज्ञानतः अन्यतीर्थिकसंसर्गकारिण इत्यादि दर्शनतः मन्दधर्माणः पार्श्वस्थादिस्थानवर्त्तिन इत्यादि चारित्रतः, यः स एवंभूतो बालो महामोहं प्रकरोतीत्येकविंशतितमं २१ । आचार्यादीन् श्रुतदानग्लानावस्थाप्रतिचरणादिभिस्तर्प्पितवतः–उपकृतवतः सम्यक् न तान् प्रति 'तर्प्पयति' विनयाहारोपध्यादिभिर्न प्रत्युपकरोतीति, तथा अप्रतिपूजको–न पूजाकारी तथा 'स्तब्धो' मानवान् स महामोहं प्रकरोतीति द्वाविंशतितमं २२ । अबहुश्रुतश्च यः कश्चित् श्रुतेन 'प्रविकत्थते' आत्मानं श्लाघते श्रुतवानहमनुयोगधरोऽहमित्येवं, अथवा कस्मिंश्चित्त्वमनुयोगाचार्यो वाचकोवेति पृच्छति प्रतिभणति आमं, स्वाध्यायवादं वदति विशुद्धपाठकोऽहमित्यादिकं यः स महामोहं–श्रुतालाभहेतुं प्रकरोतीति त्रयोविंशतितमं २३ । 'अतवस्सीए' सुगमं, पूर्वार्द्धे पूर्ववत्, नवरं 'सर्वलोकात्' सर्वजनात् सकाशात्परः–प्रकृष्टः स्तेनः-चौरो भावचौरत्वात् महामोहं अतपस्विताहेतुं प्रकरोतीति चतुर्विंशतितमं २४ । साधारणार्थमुपकारार्थं यः कश्चिदाचार्यादिग्लाने–रोगवति 'उपस्थिते' प्रत्यासन्नीभूते 'प्रभुः' समर्थ उपदेशेनौषधादिदानेन च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय-स्थानानाम् त्रिंशत् भेदानाम् व्याख्या:



स्वतोऽन्यतश्चोपकारं न करोति, कृत्यमुपेक्षते इत्यर्थः, केनाभिप्रायेणेत्याह–ममाप्येष न करोति किंचनापि कृत्यं समर्थोऽपि सन्विद्वेषेण, असमर्थो वाऽयं बालत्वादिना किं कृतेनास्य ?, पुनरुपकर्तुमशक्तत्वादिति लोभेनेति, 'शठः' कैतवयुक्तः शक्तिलोपनात् निकृतिः–माया तद्विषये प्रज्ञानं यस्य स तथा, ग्लानः प्रतिचरणीयो मा भवत्विति ग्लान-वेषमहं करोमीति विकल्पवानित्यर्थः, अत एव च कलुषाकुलचेताः आत्मनश्चाबोधिको-भवान्तराप्राप्तव्यजिनधर्मको ग्लानाप्रतिजागरेणाज्ञाविराधनात्, चशब्दात्परेषां चाबोधिकः अविद्यमाना बोधिरस्यादिति व्युत्पादनात्, ये हि तदीयं ग्लानाप्रतिजागरणमुपलभ्य जिनधर्मपराङ्मुखा भवन्ति तेषामबोधिस्तत्कृतेति स एवम्भूतो महामोहं प्रकरोतीति पञ्चविंशतितमं २५। कथा–वाक्यप्रबन्धः शास्त्रमित्यर्थस्तद्रूपाण्यधिकरणानि कथाधिकरणानि–कौटिल्यशास्त्रादीनि प्राण्युपमर्दनप्रवर्त्तकत्वेन तेषामात्मनो दुर्गतावधिकारित्वकरणात्, कथया वा क्षेत्राणि कृषत गामसूयतेत्यादिकया अधिकरणानि तथाविधप्रवृत्तिरूपाणि, अथवा कथा–राजकथादिका अधिकरणानि च-यत्रादीनि कलहा वा कथाधिकरणानि तानि सम्प्रयुंक्ते पुनः पुनः एवं 'सर्वतीर्थभेदाय' संसारसागरतरणकारणत्वात् तीर्थानि–ज्ञानादीनि तेषां सर्वथा नाशाय प्रवर्त्तमानः स महामोहं प्रकरोतीति षड्विंशतितमं २६। 'जे य आहम्मिए' कण्ठ्यम्, नवरं अधार्मिकयोगा-निमित्तवशीकरणादिप्रयोगाः किमर्थं?–श्लाघाहेतोः सखिहेतोः–मित्रनिमित्तमित्यर्थः इति सप्तविंशतितमं २७। यश्च मानुष्यकान् भोगान् अथवा पारलौकिकान् 'ते'त्ति विभक्तिपरिणामात्तैस्तेषु

१० सम०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३०]

प्रत अनुक्रम [६४-९९]

वा अतृप्यन्–तृप्तिमगच्छन् 'आस्वादते' अभिलषति आश्रयति वा स महामोहं प्रकरोतीति अष्टाविंशतितमं २८। ऋद्धिः–विमानादिसम्पत् द्युतिः–शरीराभरणदीप्तिः यशः–कीर्तिः वर्णः–शुक्लादिः शरीरसम्बन्धी देवानां वैमानिकादीनां बलं–शारीरं वीर्यं जीवप्रभवं अस्तीत्यध्याहारः, तेषामिह अपेर्गम्यमानत्वात् तेषामपि देवानामनेकातिशायिगुणवतामवर्णवान्–अश्लाघाकारी अथवा 'अवर्णवान्' केनोल्लापेन देवानामृद्धिर्देवानां द्युतिरित्यादि काक्वा व्याख्येयं, न किञ्चिद्देवानामृद्ध्यादिकमस्तीत्यवर्णवादवाक्यभावार्थः, य एवम्भूतः स महामोहं प्रकरोतीति एकोनत्रिंशत्तमं २९। अपश्यन्नपि यो ब्रूते पश्यामि देवानित्यादिस्वरूपेण, अज्ञानी जिनस्येव पूजामर्थयते यः स जिनपूजार्थी, गोशालकवत्, स महामोहं प्रकरोतीति त्रिंशत्तमम् ३०। रौद्रादयो मुहूर्त्ताश्चादित्योदयादारभ्य क्रमेण भवन्ति, एतेषां च मध्ये मध्यमाः षट् कदाचिद्दिनेऽन्तर्भवन्ति कदाचिद्रात्राविति ॥ ३० ॥

एक्कतीसं सिद्धाइगुणा प० तंजहा–खीणे आभिणिबोहियणाणावरणे खीणे सुयणाणावरणे खीणे ओहिणाणावरणे खीणे मणपज्जवणाणावरणे खीणे केवलणाणावरणे खीणे चक्खुदंसणावरणे खीणे अचक्खुदंसणावरणे खीणे ओहिदंसणावरणे खीणे केवलदंसणावरणे खीणे निद्दा खीणे णिद्दाणिद्दा खीणे पयला खीणे पयलापयला खीणे थीणद्धी खीणे सायावेयणिज्जे खीणे असायावेयणिज्जे खीणे दंसणमोहणिज्जे खीणे चरित्तमोहणिज्जे खीणे नेरइआउए खीणे तिरिआउए खीणे मणुस्साउए खीणे देवाउए खीणे उच्चागोए खीणे निच्चागोए खीणे सुभणामे खीणे असुभणामे खीणे दाणंतराए खीणे लाभंतराए खीणे भोगांतराए खीणे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय-स्थानानाम् त्रिंशत् भेदानाम् व्याख्या:

प्रत सूत्रांक [३१]

प्रत अनुक्रम [१००--१०१]

उवभोगंतराए खीणे वीरिअंतराए ३१, मंदरे णं पव्वए धरणितले एक्कतीसं जोयणसहस्साइं छच्चेव तेवीसे जोयणसए किंचिदेसूणा परिक्खेवेणं प०, जया णं सूरिए सव्वबाहिरियं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं इहगयस्स मणुस्सस्स एक्कतीसाए जोयणसहस्सेहिं अट्ठहि अ एक्कतीसेहिं जोयणसएहिं तीसाए सट्ठिभागे जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ, अभिवड्ढिए णं मासे एक्कतीसं सातिरेगाइं राइंदियाइं राइंदियग्गेणं प०, आइच्चे णं मासे एक्कतीसं राइंदियाइं किंचि विसेसूणाइं राइंदियग्गेणं प०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कतीसं पलिओवमाइं ठिई प०, अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं एक्कतीसं सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं एक्कतीसं पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु अत्थेगइयाणं देवाणं एक्कतीसं पलिओवमाइं ठिई प०, विजयवेजयंतजयंतअपराजिआणं देवाणं जहण्णेणं एक्कतीसं पलिओवमाइं ठिई प०, जे देवा उवरिमउवरिमगेवेज्जयविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं उक्कोसेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा एक्कतीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा निस्ससंति वा, तेसि णं देवाणं एक्कतीसं वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे एक्कतीसेहिं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं ३१ ॥

एकत्रिंशत्तमं स्थानकं सुगमं, नवरं सिद्धानामादौ–सिद्धत्वप्रथमसमय एव गुणाः सिद्धादिगुणाः, ते चाभिनिबोधिकावरणादिक्षयस्वरूपा इति । मन्दरो-मेरुः, स च धरणीतले दशसहस्रविष्कम्भ इतिकृत्वा यथोक्तपरिधिप्रमाणो भवतीति ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३१]

प्रत अनुक्रम [१००--१०१]

"जया णं सूरिए" इत्यादि, किल सूर्यस्य चतुरशीत्यधिकं मण्डलशतं भवति, मण्डलं च ज्योतिष्कमार्गोऽभिधीयते, तत्र जम्बूद्वीपस्यान्तः अशीत्यधिके योजनशते पञ्चषष्टिः सूर्यमण्डलानि भवन्ति, तथा लवणसमुद्रे त्रीणि त्रिंशदधिकानि योजनशतान्यवगाह्यैकोनविंशत्यधिकं सूर्यमण्डलशतं भवति, तत्र सर्वबाह्यं–समुद्रान्तर्गतमण्डलानां पर्यन्तिमं, तस्य चायामविष्कम्भो लक्षं षट् शतानि च योजनानां षष्ट्यधिकानि, परिधिस्तु वृत्तक्षेत्रगणितन्यायेन त्रीणि लक्षाणि अष्टादश सहस्राणि त्रीणि शतानि पञ्चदशोत्तराणि ३१८३१५, एतावत्क्षेत्रमादित्योऽहोरात्रद्वयेन गच्छति, तत्र च षष्टिर्मुहूर्त्ता भवन्तीति षष्ट्या भागापहारे यल्लब्धं तन्मुहूर्त्तगम्यक्षेत्रप्रमाणं भवति, तच्च पञ्च सहस्राणि त्रीणि च पञ्चोत्तराणि शतानि पञ्चदश योजनषष्टिभागाः ५३०५।$\frac{15}{60}$, एतच्च दिवसार्द्धेन गुण्यते, यदा च सर्वबाह्ये मण्डले सूर्यश्चरति तदा दिनप्रमाणं द्वादश मुहूर्त्ताः, तदर्द्धं च षट्, अतः षड्भिर्मुहूर्त्तैर्गुणितं मुहूर्त्तगतिप्रमाणं चक्षुःस्पर्शगतिप्रमाणं भवति, तत्र एकत्रिंशत्सहस्राणि अष्टौ च शतान्येकत्रिंशदधिकानि त्रिंशच्च योजनषष्टिभागाः ३१८३१।$\frac{30}{60}$ अभिवर्द्धितमासः–अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य चतुश्चत्वारिंशदहोरात्रद्विषष्टिभागाधिकत्र्यशीत्यधिकशतत्रयरूपस्य ३८३।$\frac{44}{62}$ द्वादशो भागः, अभिवर्द्धितसंवत्सरश्चासौ यत्राधिकमासको भवति, तत्र त्रयोदशचन्द्रमासात्मकत्वाच्चन्द्रमासश्च एकोनत्रिंशता दिनानां द्वात्रिंशता च दिनद्विषष्टिभागानां भवतीति, 'साइरेगाइं' ति अहोरात्रस्य चतुर्विंशत्युत्तरशतभागानामेकविंशत्युत्तरशतेनाधिकानीति, आदित्यमासो येन कालेनादित्यो राशिं भुङ्क्ते 'किंचिविसेसूणाइं' ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहोरात्रार्द्धेन न्यूनानीति ॥ ३१ ॥

बत्तीसं जोगसंगहा प०, तंजहा-आलोयण १ निरवलावे २, आवईसु दढधम्मया ३ । अणिस्सिओवहाणे ४ य, सिक्खा ५ निप्पडिकम्मया ६ ॥ १ ॥ अण्णायया अलोभे ८ य, तितिक्खा ९ अज्जवे १० सुई ११ । सम्मदिट्ठी १२ समाही १३ य, आयारे १४ विणओवए १५ ॥ २ ॥ धिईमई १६ य संवेगे १७, पणिही १८ सुविहि १९ संवरे २० । अत्तदोसोवसंहारे २१, सव्वकामविरत्तया २२ ॥ ३ ॥ पच्चक्खाणे २३--२४ विउस्सग्गे २५, अप्पमादे २६ लवालवे २७ । झाणसंवरजोगे २८ य, उदए मारणंतिए २९ ॥ ४ ॥ संगाणं च परिण्णाया ३०, पायच्छित्तकरणेऽवि य ३१ । आराहणा य मरणंते ३२, बत्तीसं जोगसंगहा ॥ ५ ॥ बत्तीसं देविंदा प० तं०--चमरे बली धरणे भूआणंदे जाव घोसे महाघोसे चंदे सूरे सक्के ईसाणे सणंकुमारे जाव पाणए अच्चुए, कुंथुस्स णं अरहओ बत्तीसहिया बत्तीसं जिणसया होत्था, सोहम्मे कप्पे बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा णं प०, रेवइणक्खत्ते बत्तीसइतारे प०, बत्तीसतिविहे णट्टे प०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बत्तीसं पलिओवमाइं ठिई प०, अहेसत्तमाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरइयाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं देवाणं अत्थेगइयाणं बत्तीसं पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु देवाणं अत्थेगइयाणं बत्तीसं पलिओवमाइं ठिई प०, जे देवा विजयवेजयन्तजयन्तअपराजियविमाणेसु देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं अत्थेगइयाणं बत्तीसं सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा बत्तीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा नीससंति वा, तेसि णं देवाणं बत्तीसवाससहस्सेहिं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३२] + गाथा: प्रत अनुक्रम [१०२--१०८]

आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे बत्तीसाए भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति परिनिव्वाइस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं ३२ ॥

द्वात्रिंशतं स्थानकमपि व्यक्तं, नवरं युज्यन्ते इति योगाः–मनोवाक्कायव्यापाराः ते चेह प्रशस्ता एव विवक्षितास्तेषां शिष्याचार्यगतानामालोचनानिरपलापादिना प्रकारेण सङ्ग्रहणानि सङ्ग्रहाः प्रशस्तयोगसंग्रहाः प्रशस्तयोगसङ्ग्रहनिमित्तत्वादालोचनादय एव तथोच्यन्ते, ते च द्वात्रिंशद्भवन्ति, तदुपदर्शकं श्लोकपञ्चकं 'आलोयणे' त्यादि, अस्य गमनिका–तत्र'आलोयण'त्ति मोक्षसाधनयोगसङ्ग्रहाय शिष्येणाचार्यायालोचना दातव्या १ 'निरवलावे'त्ति आचार्योऽपि मोक्षसाधकयोगसङ्ग्रहायैव दत्तायामालोचनायां निरपलापः स्यात्, नान्यस्मै कथयेदित्यर्थः २, 'आवईसु दढधम्मय'त्ति प्रशस्तयोगसङ्ग्रहाय साधुनाऽऽपत्सु–द्रव्यादिभेदासु दृढधर्मता कार्या, सुतरां तासु दृढधर्मिणा भाव्यमित्यर्थः ३, 'अणिस्सिओवहाणे य'त्ति शुभयोगसङ्ग्रहायैवानिश्रितं च–तदन्यनिरपेक्षमुपधानं च–तपोऽनिश्रितोपधानं परसाहाय्यानपेक्षं तपो विधेयमित्यर्थः ४, 'सिक्ख'त्ति योगसङ्ग्रहाय शिक्षाऽऽसेवितव्या, सा च सूत्रार्थग्रहणरूपा प्रत्युपेक्षाद्यासेवनात्मिका चेति द्विधा, ५, 'निप्पडिकम्मय'त्ति तथैव निष्प्रतिकर्मता शरीरस्य विधेया ६ ॥ १ ॥ 'अण्णायय'त्ति तपसोऽज्ञातता कार्या, यशःपूजाद्यर्थित्वेनाप्रकाशयद्भिस्तपः कार्यमित्यर्थः ७, 'अलोभे य'त्ति अलोभता विधेया ८, 'तितिक्ख'त्ति तितिक्षा परीषहादिजयः ९, 'अज्जवे'त्ति आर्जवः–ऋजुभावः १०, 'सुइ'त्ति शुचिः सत्यं संयम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'योग' शब्दस्य व्याख्या एवं द्वात्रिंशत 'योगसंग्रहानाम्' व्याख्या:

प्रत सूत्रांक [३२] + गाथा: प्रत अनुक्रम [१०२--१०८]

इत्यर्थः ११ 'सम्मदिट्ठि'त्ति सम्यग्दृष्टिः–सम्यग्दर्शनशुद्धिः १२, 'समाही य'त्ति समाधिश्च–चेतःस्वास्थ्यं १३, 'आयारे विणओवए'त्ति द्वारद्वयं तत्राचारोपगतः स्यात् न मायां कुर्यादित्यर्थः १४, विनयोपगतो भवेत् न मानं कुर्यादित्यर्थः १५ ॥ २ ॥ 'धिइमई य'त्ति धृतिप्रधाना मतिर्धृतिमतिः–अदैन्यं १६ 'संवेगो'त्ति संवेगः–संसाराद्भयं मोक्षाभिलाषो वा १७ 'पणिहि'त्ति प्रणिधिः–मायाशल्यं न कार्यमित्यर्थः १८ 'सुविहि'त्ति 'सुविहि' सदनुष्ठानं १९ संवरश्च–आश्रवनिरोधः २० 'अत्तदोसोवसंहारे'त्ति स्वकीयदोषस्य निरोधः २१ 'सव्वकामविरत्तय'त्ति समस्तविषयवैमुख्यं २२॥३॥ 'पच्चक्खाणे'त्ति प्रत्याख्यानं मूलगुणविषयं २३ उत्तरगुणविषयं च २४ 'विउस्सग्गे'त्ति व्युत्सर्गो द्रव्यभावभेदभिन्नः २५ 'अप्पमाए'त्ति प्रमादवर्जनं २६ 'लवालवे'त्ति कालोपलक्षणं तेन क्षणे क्षणे सामाचार्य्यनुष्ठानं कार्यं २७ 'झाणसंवरजोगे'त्ति ध्यानमेव संवरयोगो ध्यानसंवरयोगः २८ 'उदए मारणंतिए'त्ति मारणान्तिकेऽपि वेदनोदये न क्षोभः कार्यः २९॥४॥ 'संगाणं च परिण्णाय' त्ति सङ्गानां च ज्ञपरिज्ञाप्रत्याख्यानपरिज्ञाभेदभिन्ना परिज्ञा कार्या ३० 'पायच्छित्तकरणे' इति प्रायश्चित्तकरणं च कार्यं ३१ 'आराहणा य मरणंते'त्ति आराधना 'मरणान्ते' मरणरूपोऽन्तो मरणान्तस्तत्रेत्येते द्वात्रिंशद्योगसङ्ग्रहा इति ३२ ॥ ५ ॥ इन्द्रसूत्रे यावत्करणात् "वेणुदेवे वेणुदाली हरिकंते हरिस्सहे अग्गिसीहे अग्गिमाणवे पुण्णे वसिट्ठे जलकंते जलप्पहे अमियगई अमियवाहणे वेलंबे पहंजणे" इति दृश्यं, पुनः यावत्करणात् "माहिंदे बंभे लंतए सुक्के सहस्सारे"त्ति द्रष्टव्यं, इह च षोडशानां व्यन्तरेन्द्राणां षोडशा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

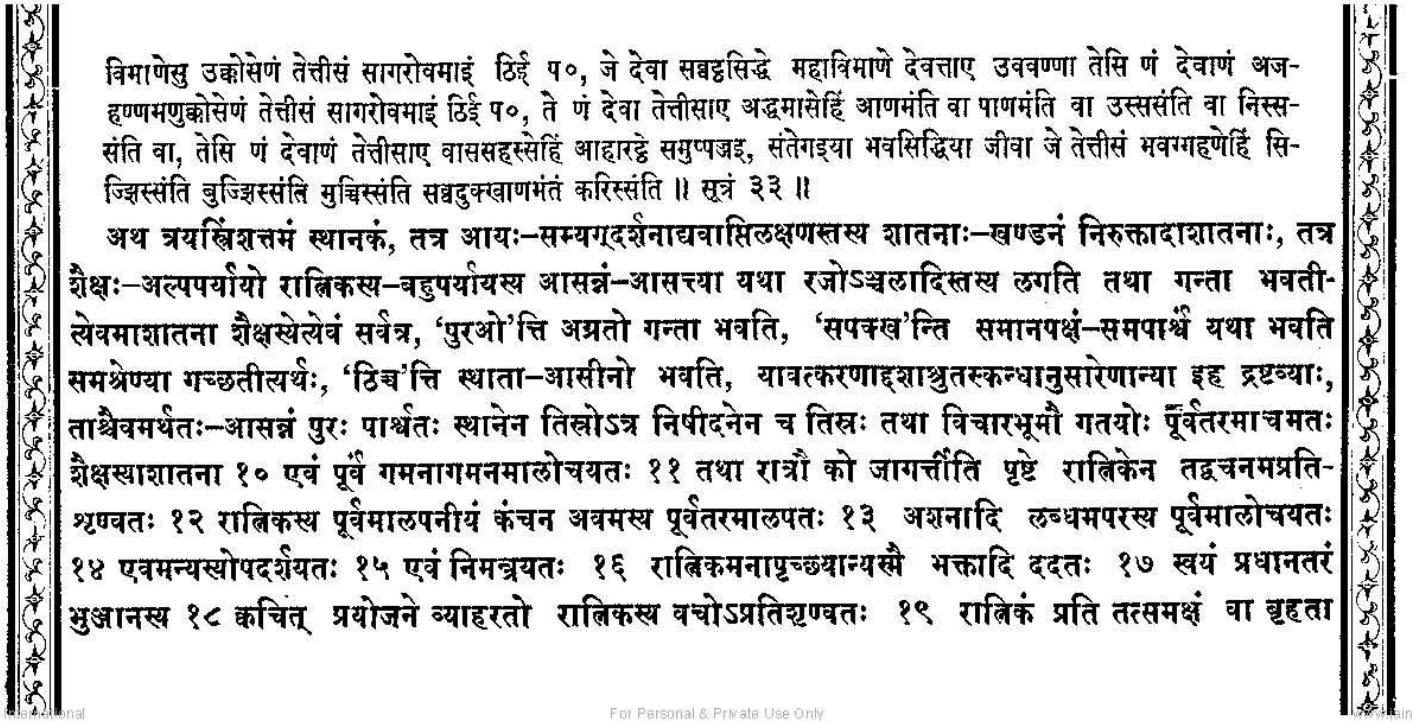
'योग' शब्दस्य व्याख्या एवं द्वात्रिंशत 'योगसंग्रहानाम्' व्याख्या:

प्रत सूत्रांक [३२] + गाथा: प्रत अनुक्रम [१०२--१०८]

नामेव चाणपण्णीकादीन्द्राणामल्पर्द्धिकत्वेनाविवक्षितत्वादसङ्ख्यातानामपि चंद्रसूर्याणां जातिग्रहणेन द्वयोरेव विवक्षितत्वाद्वात्रिंशदुक्ता इति, कुन्थुनाथस्य द्वात्रिंशदधिकानि द्वात्रिंशत् केवलिशतान्यभूवन्, द्वात्रिंशद्विधं नाट्यमभिनयविषयवस्तुभेदाद्यथा राजप्रश्नकृताभिधानद्वितीयोपाङ्ग इति सम्भाव्यते, द्वात्रिंशत्पात्रप्रतिबद्धमिति केचित् ॥ ३२ ॥

तेत्तीसं आसायणाओ प०, तं०-सेहे राइणियस्स आसन्नं गंता भवइ आसायणा सेहस्स १ सेहे राइणियस्स पुरओ गंता भवइ आसायणा सेहस्स २ सेहे राइणियस्स सपक्खं गंता भवइ आसायणा सेहस्स ३ सेहे राइणियस्स आसन्नं ठिच्चा भवइ आसायणा सेहस्स ४ जाव सेहे राइणियस्स आलवमाणस्स तत्थगए चेव पडिसुणित्ता भवइ आसायणा सेहस्स ३३ । चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो चमरचंचाए रायहाणीए एक्कमेक्कवाराए तेत्तीसं तेत्तीसं भोमा प०, महाविदेहे णं वासे तेत्तीसं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं विक्खंभेणं प०, जया णं सूरिए बाहिराणंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता णं चारं चरइ तया णं इहगयस्स पुरिसस्स तेत्तीसाए जोयणसहस्सेहिं किंचिविसेसूणेहिं चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अत्थेगइयाणं नेरयाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई (प०), अहेसत्तमाए पुढवीए कालमहाकालरोरुयमहारोरुएसु नेरइयाणं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई (प०), अप्पइट्ठाणनरए नेरइयाणं अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई प०, असुरकुमाराणं अत्थेगइयाणं देवाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई प०, सोहम्मीसाणेसु अत्थेगइयाणं देवाणं तेत्तीसं पलिओवमाइं ठिई प०, विजयवेजयन्तजयंतअपराजिएसु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



विमाणेसु उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई प०, जे देवा सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववण्णा तेसि णं देवाणं अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई प०, ते णं देवा तेत्तीसाए अद्धमासेहिं आणमंति वा पाणमंति वा उस्ससंति वा निस्ससंति वा, तेसि णं देवाणं तेत्तीसाए वाससहस्सेहिं आहारट्ठे समुप्पज्जइ, संतेगइया भवसिद्धिया जीवा जे तेत्तीसं भवग्गहणेहिं सिज्झिस्संति बुज्झिस्संति मुच्चिस्संति सव्वदुक्खाणमंतं करिस्संति ॥ सूत्रं ३३ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशत्तमं स्थानकं, तत्र आयः–सम्यग्दर्शनाद्यवाप्तिलक्षणस्तस्य शातनाः–खण्डनं निरुक्तादाशातनाः, तत्र शैक्षः–अल्पपर्यायो रात्निकस्य–बहुपर्यायस्य आसन्नं–आसत्त्या यथा रजोऽञ्चलादिस्तस्य लगति तथा गन्ता भवतीत्येवमाशातना शैक्षस्येत्येवं सर्वत्र, 'पुरओ'त्ति अग्रतो गन्ता भवति, 'सपक्ख'न्ति समानपक्षं–समपार्श्वं यथा भवति समश्रेण्या गच्छतीत्यर्थः, 'ठिच्च'त्ति स्थाता–आसीनो भवति, यावत्करणाद्दशाश्रुतस्कन्धानुसारेणान्या इह द्रष्टव्याः, ताश्चैवमर्थतः–आसन्नं पुरः पार्श्वतः स्थानेन तिस्रोऽत्र निषीदनेन च तिस्रः तथा विचारभूमौ गतयोः पूर्वतरमाचमतः शैक्षस्याशातना १० एवं पूर्वं गमनागमनमालोचयतः ११ तथा रात्रौ को जागर्त्तीति पृष्टे रात्निकेन तद्वचनमप्रतिशृण्वतः १२ रात्निकस्य पूर्वमालपनीयं कंचन अवमस्य पूर्वतरमालपतः १३ अशनादि लब्धमपरस्य पूर्वमालोचयतः १४ एवमन्यस्योपदर्शयतः १५ एवं निमन्त्रयतः १६ रात्निकमनापृच्छ्यान्यस्मै भक्तादि ददतः १७ स्वयं प्रधानतरं भुञ्जानस्य १८ क्वचित् प्रयोजने व्याहरतो रात्निकस्य वचोऽप्रतिशृण्वतः १९ रात्निकं प्रति तत्समक्षं वा बृहता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्रयस्त्रिंशत-आशातनाया: व्याख्या:

शब्देन बहुधा भाषमाणस्य २० व्याहतेन मस्तकेन वन्दे इति वक्तव्ये किं भणसीति ब्रुवाणस्य २१ प्रेरयति रात्निके कस्त्वं प्रेरणायामिति वदतः २२ आर्य! ग्लानं किं न प्रतिचरसीत्याद्युक्ते त्वं किं न तं प्रतिचरसीत्यादि भणतः २३ धर्मं कथयति गुरावन्यमनस्कतां भजतोऽननुमोदयत इत्यर्थः २४ कथयति गुरौ न स्मरसीति वदतः २५ धर्मकथामाच्छिन्दतः २६ भिक्षावेला वर्त्तते इत्यादिवचनतः पर्षदं भिन्दानस्य २७ गुरुपर्षदोऽनुत्थितायास्तथैव व्यवस्थिताया धर्मं कथयतः २८ गुरोः संस्तारकं पादेन घट्टयतः २९ गुरुसंस्तारके निषीदतः ३० उच्चासने निषीदतः ३१ समासनेऽप्येवं ३२ त्रयस्त्रिंशत्तमा सूत्रोक्तैव, रात्निकस्यालपतस्तत्रगत एव–आसनादिस्थित एव प्रतिशृणोति, आगत्य हि प्रत्युत्तरं देयमिति शैक्षस्याशातनेति ३३। 'तेत्तीसं तेत्तीसं भोम'त्ति भौमानि–नगराकाराणि, विशिष्टस्थानानीत्यन्ये, तथा 'जया णं सूरिए' इत्यादि, इह सूर्यस्य मण्डलयोरन्तरे द्वे द्वे योजनेऽष्टचत्वारिंशच्चैकषष्टिभागाः, एतद्विगुणं पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागाः, एतावता हीनविष्कम्भं सर्वबाह्यमण्डलाद्वितीयं मण्डलं भवति, ततश्च वृत्तक्षेत्रपरिधिगणितन्यायेन परिधितः सप्तदशभिर्योजनैरष्टत्रिंशता चैकषष्टिभागैर्न्यूनं द्वितीयमण्डलं सर्वबाह्यमण्डलाद्भवति, एवं तृतीयमण्डले एतद्विगुणेन हीनं भवति, तथाहि–तद्विष्कम्भस्तत एकादशभिर्योजनैर्नवभिश्चैकषष्टिभागैः पर्यन्तिमाद्धीनं भवति, परिधितस्तु पञ्चत्रिंशता योजनैः पञ्चदशभिश्चैकषष्टिभागैर्न्यूनं भवति, तच्च त्रीणि लक्षाणि अष्टादश सहस्राणि द्वे शते एकोनाशीत्युत्तरे षट्चत्वारिंशच्चैकषष्टिभागा इति, तथा अन्तिममण्डलान्मण्डले मण्डले द्वाभ्यां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्रयस्त्रिंशत-आशातनायाः व्याख्याः

मुहूर्त्तस्यैकषष्टिभागाभ्यां दिनवृद्धिर्भवति, तथा च तृतीये मण्डले यदा सूर्यश्चरति तदा द्वादश मुहूर्त्ताश्चत्वारश्चैकषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य दिनप्रमाणं भवति, तदर्द्धं चैकषष्टिभागीकृतेनाष्टषष्ट्यधिकशतत्रयलक्षणेन, स्थूलगणितस्य विवक्षितत्वात् परित्यक्तांशाः ३१८२७९। तृतीयमण्डलपरिधौ गुणिते सति एकषष्ट्या च षष्टिगुणितया भागे हृते यल्लभ्यते तत्तृतीयमण्डले चक्षुःस्पर्शप्रमाणं भवति, तच्च द्वात्रिंशत्सहस्राण्येकोत्तराणि ३२००१ अंशानामेकषष्ट्या भागे हृते लब्धाश्चैकोनपञ्चाशत्षष्टिभागा योजनस्य $\frac{६०}{६१}$ त्रयोविंशतिश्चैकषष्टिभागा योजनषष्टिभागस्य $\frac{२३}{६१}$ एतत्तृतीयमण्डले चक्षुःस्पर्शस्य प्रमाणं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यामुपलभ्यते, इह तु यदुक्तं त्रयस्त्रिंशतिकिञ्चिन्यूना, तत्र सातिरेकयोजनस्यापि न्यूनसहस्रता विवक्षितेति सम्भाव्यते, पञ्चदश मण्डले पुनरिदं यथोक्तमेव प्रमाणं भवति, प्रतिमण्डलं योजनस्य चतुरशीत्याः साधिकायाः प्रथममण्डलमाने प्रक्षेपणादिति ॥ ३३ ॥

चोत्तीसं बुद्धाइसेसा प०, तं०–अवट्ठिए केसमंसुरोमनहे १ निरामया निरुवलेवा गायलट्ठी १ गोक्खीरपंडुरे मंससोणिए ३ पउमुप्पलगंधिए उस्सासनिस्सासे ४ पच्छन्ने आहारनीहारे अदिस्से मंसचक्खुणा ५ आगासगयं चक्कं ६ आगासगयं छत्तं ७ आगासगयाओ सेयवरचामराओ ८ आगासफालिआमयं सपायपीढं सीहासणं ९ आगासगओ कुडभीसहस्सपरिमंडिआभिरामो इंदज्झओ पुरओ गच्छइ १० जत्थ जत्थवि य णं अरहंता भगवन्तो चिट्ठंति वा निसीयंति वा तत्थ तत्थवि य णं जक्खा देवा संछन्नपत्तपुप्फपल्लवसमाउलो सच्छत्तो सज्झओ सघंटो सपडागो असोगवरपायवो अभिसंजायइ ११ ईसिं पिट्ठओ मउडठाणंमि तेयमंडलं

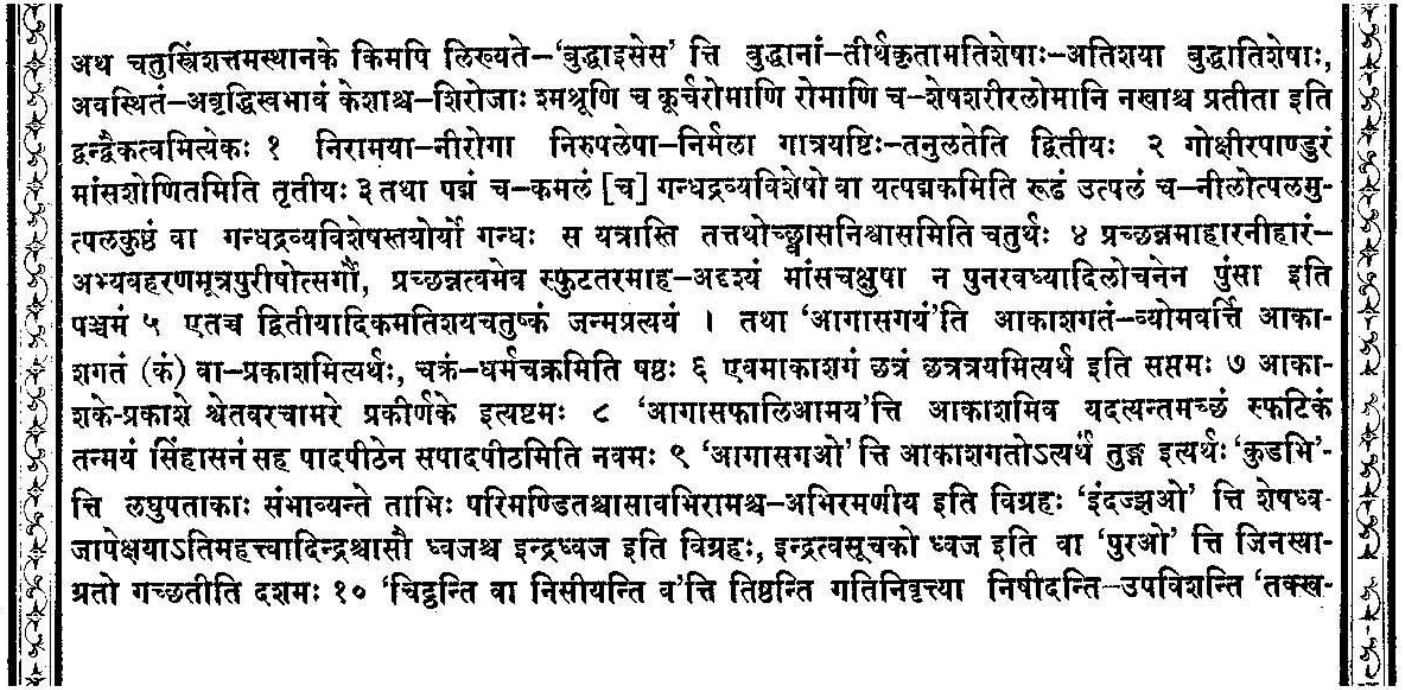
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभिसंजायइ अंधकारेवि य णं दस दिसाओ पभासेइ १२ बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे १३ अहोसिरा कंटया जायंति १५ उऊविवरीया सुहफासा भवंति १५ सीयलेणं सुहफासेणं सुरभिणा मारुएणं जोयणपरिमंडलं सव्वओ समंता संपमज्जिज्जइ १६ जुत्तफुसिएणं मेहेण य निहयरयरेणूयं किज्जइ १७ जलथलयभासुरपभूतेणं बिंटट्ठाइणा दसद्धवण्णेणं कुसुमेणं जाणुस्सेहप्पमाणमित्ते पुप्फोवयारे किज्जइ १८ अमणुण्णाणं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं अवकरिसो भवइ १९ मणुण्णाणं सद्दफरिसरसरूवगंधाणं पाउब्भावो भवइ २० पच्चाहरओवि य णं हियगमणीओ जोयणनीहारी सरो २१ भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ २२ सावि य णं अद्धमागही भासा भासिज्जमाणी तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं दुप्पयचउप्पअमियपसुपक्खिसरीसिवाणं अप्पणो हियसिवसुहयभासत्ताए परिणमइ २३ पुव्ववद्धवेरावि य णं देवासुरनागसुवण्णजक्खरक्खसकिंनरकिंपुरिसगरुलगंधव्वमहोरगा अरहओ पायमूले पसंतचित्तमाणसा धम्मं निसामंति २४ अण्णउत्थियपावयणियावि य णमागया वंदंति २५ आगया समाणा अरहओ पायमूले निप्पलिवयणा हवंति २६ जओ जओवि य णं अरहंतो भगवंतो विहरंति तओ तओवि य णं जोयणपणवीसाएणं ईती न भवइ २१ मारी न भवइ २८ सचक्कं न भवइ २९ परचक्कं न भवइ ३० अइवुट्ठी न भवइ ३१ अणावुट्ठी न भवइ ३२ दुब्भिक्खं न भवइ ३३ पुव्वुप्पण्णावि य णं उप्पाइया वाही खिप्पमिव उवसमंति ३४ जंबुद्दीवे णं दीवे चउत्तीसं चक्कवट्टिविजया प० तं०–बत्तीसं महाविदेहे दो भरहे एरवए, जंबुद्दीवे णं दीवे चोत्तीसं दीहवेयड्ढा प०, जंबुद्दीवे णं दीवे उक्कोसयए चोत्तीसं तित्थंकरा समुप्पज्जंति, चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो चोत्तीसं भवणावाससयसहस्सा प०, पढमपंचमछट्ठीसत्तमासु चउसु पुढवीसु चोत्तीसं निरयावाससयसहस्सा प० ॥ सूत्रं ३४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३४]

प्रत अनुक्रम [११०]



११ सम०

अथ चतुस्त्रिंशत्तमस्थानके किमपि लिख्यते–'बुद्धाइसेस' त्ति बुद्धानां–तीर्थकृतामतिशेषाः–अतिशया बुद्धातिशेषाः, अवस्थितं–अवृद्धिस्वभावं केशाश्च–शिरोजाः श्मश्रूणि च कूर्चरोमाणि रोमाणि च–शेषशरीरलोमानि नखाश्च प्रतीता इति द्वन्द्वैकत्वमित्येकः १ निरामया–नीरोगा निरुपलेपा–निर्मला गात्रयष्टिः–तनुलतेति द्वितीयः २ गोक्षीरपाण्डुरं मांसशोणितमिति तृतीयः ३ तथा पद्मं च–कमलं [च] गन्धद्रव्यविशेषो वा यत्पद्मकमिति रूढं उत्पलं च–नीलोत्पलमुत्पलकुष्ठं वा गन्धद्रव्यविशेषस्तयोर्यो गन्धः स यत्रास्ति तत्तथोच्छ्वासनिश्वासमिति चतुर्थः ४ प्रच्छन्नमाहारनीहारं–अभ्यवहरणमूत्रपुरीषोत्सर्गौ, प्रच्छन्नत्वमेव स्फुटतरमाह–अदृश्यं मांसचक्षुषा न पुनरवध्यादिलोचनेन पुंसा इति पञ्चमं ५ एतच्च द्वितीयादिकमतिशयचतुष्कं जन्मप्रत्ययं । तथा 'आगासगयं'ति आकाशगतं–व्योमवर्त्ति आकाशगतं (कं) वा–प्रकाशमित्यर्थः, चक्रं–धर्मचक्रमिति षष्ठः ६ एवमाकाशगं छत्रं छत्रत्रयमित्यर्थ इति सप्तमः ७ आकाशके-प्रकाशे श्वेतवरचामरे प्रकीर्णके इत्यष्टमः ८ 'आगासफालिआमय'त्ति आकाशमिव यदत्यन्तमच्छं स्फटिकं तन्मयं सिंहासनं सह पादपीठेन सपादपीठमिति नवमः ९ 'आगासगओ' त्ति आकाशगतोऽत्यर्थं तुङ्ग इत्यर्थः 'कुडभि'त्ति लघुपताकाः संभाव्यन्ते ताभिः परिमण्डितश्चासावभिरामश्च–अभिरमणीय इति विग्रहः 'इंदज्झओ' त्ति शेषध्वजापेक्षयाऽतिमहत्त्वादिन्द्रश्चासौ ध्वजश्च इन्द्रध्वज इति विग्रहः, इन्द्रत्वसूचको ध्वज इति वा 'पुरओ' त्ति जिनस्याग्रतो गच्छतीति दशमः १० 'चिट्ठन्ति वा निसीयन्ति व'त्ति तिष्ठन्ति गतिनिवृत्त्या निषीदन्ति–उपविशन्ति 'तक्ख-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थकरस्य चतुस्त्रिंशत-अतिशया:

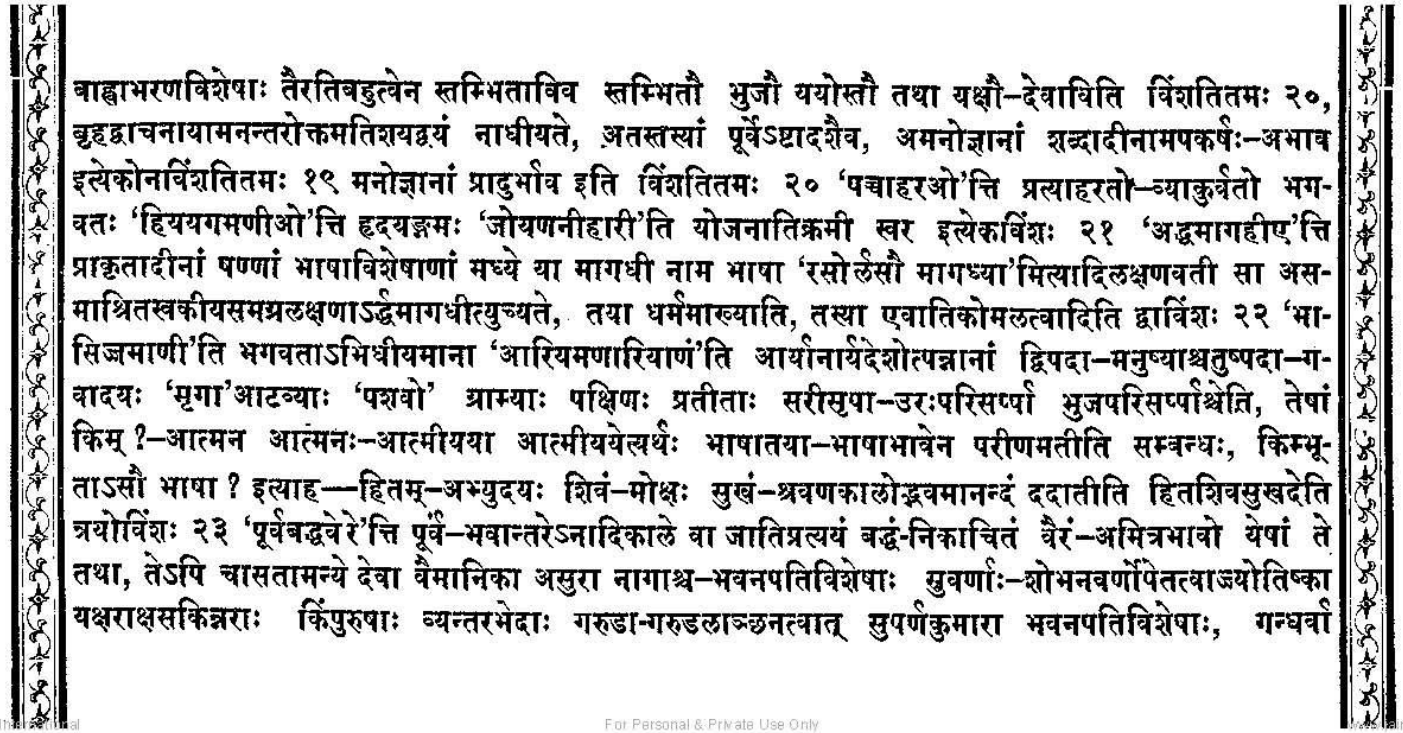
प्रत सूत्रांक [३४]

प्रत अनुक्रम [११०]

णादेव'त्ति तत्क्षणमेव अकालहीनमित्यर्थः, पत्रैः संछन्नः पत्रसंछन्नः पत्रसंछन्न इति वक्तव्ये प्राकृतत्वात् संछन्नपत्र इत्युक्तं स चासौ पुष्पपल्लवसमाकुलश्चेति विग्रहः, पल्लवाः–अङ्कुराः, सच्छत्रः सध्वजः सघण्टः सपताकोऽशोकवरपादप इत्येकादशः ११ 'ईसि' त्ति ईषद्–अल्पं 'पिट्ठओ'त्ति पृष्ठतः पश्चाद्भागे 'मउडठाणंमि'त्ति मस्तकप्रदेशे तेजोमण्डलं–प्रभापटलमिति द्वादशः १२ बहुसमरमणीयो भूमिभाग इति त्रयोदशः १३ 'अहोसिर'त्ति अधोमुखाः कण्टका भवन्तीति चतुर्दशः १४ ऋतवोऽविपरीताः कथमित्याह–सुखस्पर्शा भवन्तीति पञ्चदशः १५ योजनं यावत् क्षेत्रशुद्धिः संवर्त्तकवातेनेति षोडशः १६ 'जुत्तफुसिएणं'ति उचितबिन्दुपातेन 'निहयरयरेणुयं'ति वातोत्खातमाकाशवर्त्ति रजो भूवर्ती तु रेणुरिति गन्धोदकवर्षाभिधानः सप्तदशः १७ जलस्थलजं यद्भास्वरं प्रभूतं च कुसुमं तेन वृन्तस्थायिना–ऊर्द्धमुखेन दशार्द्धवर्णेन–पञ्चवर्णेन जानुनोरुत्सेधस्य–उच्चत्वस्य यत्प्रमाणं तदेव प्रमाणं यस्य स जानूत्सेधप्रमाणमात्रः पुष्पोपचारः–पुष्पप्रकर इत्यष्टादशः १८ तथा 'कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगन्धुद्धुयाभिरामे भवइ' त्ति कालागुरुश्च–गन्धद्रव्यविशेषः प्रवरकुन्दुरुकं च–चीडाभिधानं गन्धद्रव्यं तुरुकं च–शिल्हकाभिधानं गन्धद्रव्यमिति द्वन्द्वस्तत एतल्लक्षणो यो धूपस्तस्य मघमघायमानो–बहुलसौरभ्यो यो गन्ध उद्धुतः–उद्भूतस्तेनाभिरामं–अभिरमणीयं यत्तत्तथा स्थानं–निषीदनस्थानमिति प्रक्रम इत्येकोनविंशतितमः १९ तथा "उभयो पासिं च णं अरहंताणं भगवंताणं दुवे जक्खा कडयतुडियथंभियभुया चामरुक्खेवणं करंति"त्ति कटकानि–प्रकोष्ठाभरणविशेषाः त्रुटितानि–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थकरस्य चतुस्त्रिंशत-अतिशयाः



बाह्याभरणविशेषाः तैरतिबहुत्वेन स्तम्भिताविव स्तम्भितौ भुजौ ययोस्तौ तथा यक्षौ–देवाधिति विंशतितमः २०, बृहद्वाचनायामनन्तरोक्तमतिशयद्वयं नाधीयते, अतस्तस्यां पूर्वेऽष्टादशैव, अमनोज्ञानां शब्दादीनामपकर्षः–अभाव इत्येकोनविंशतितमः १९ मनोज्ञानां प्रादुर्भाव इति विंशतितमः २० 'पच्चाहरओ'त्ति प्रत्याहरतो–व्याकुर्वतो भगवतः 'हिययगमणीओ'त्ति हृदयङ्गमः 'जोयणनीहारी'ति योजनातिक्रमी स्वर इत्येकविंशः २१ 'अद्धमागहीए'त्ति प्राकृतादीनां षण्णां भाषाविशेषाणां मध्ये या मागधी नाम भाषा 'रसोर्लसौ मागध्या'मित्यादिलक्षणवती सा असमाश्रितस्वकीयसमग्रलक्षणाऽर्द्धमागधीत्युच्यते, तया धर्ममाख्याति, तस्या एवातिकोमलत्वादिति द्वाविंशः २२ 'भासिज्जमाणी'ति भगवताऽभिधीयमाना 'आरियमणारियाणं'ति आर्यानार्यदेशोत्पन्नानां द्विपदा–मनुष्याश्चतुष्पदा–गवादयः 'मृगा'आटव्याः 'पशवो' ग्राम्याः पक्षिणः प्रतीताः सरीसृपा–उरःपरिसर्प्पा भुजपरिसर्प्पाश्चेति, तेषां किम् ?–आत्मन आत्मनः–आत्मीयया आत्मीययेत्यर्थः भाषातया–भाषाभावेन परीणमतीति सम्बन्धः, किम्भूताऽसौ भाषा ? इत्याह—हितम्–अभ्युदयः शिवं–मोक्षः सुखं–श्रवणकालोद्भवमानन्दं ददातीति हितशिवसुखदेति त्रयोविंशः २३ 'पूर्ववद्धवेरे'त्ति पूर्वं–भवान्तरेऽनादिकाले वा जातिप्रत्ययं बद्धं-निकाचितं वैरं–अमित्रभावो येषां ते तथा, तेऽपि चासतामन्ये देवा वैमानिका असुरा नागाश्च–भवनपतिविशेषाः सुवर्णाः–शोभनवर्णोपेतत्वाज्ज्योतिष्का यक्षराक्षसकिन्नराः किंपुरुषाः व्यन्तरभेदाः गरुडा-गरुडलाञ्छनत्वात् सुपर्णकुमारा भवनपतिविशेषाः, गन्धर्वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	तीर्थंकरस्य चतुस्त्रिंशत-अतिशयाः

प्रत सूत्रांक [३४]

प्रत अनुक्रम [११०]

महारगाश्च व्यन्तरविशेषा एव, एतेषा द्वन्द्वः, 'पसंतचित्तमाणसा' प्रशान्तानि–शमं गतानि चित्राणि–रागद्वेषाद्यनेकविधविकारयुक्ततया विविधानि मानसानि–अन्तःकरणानि येषां ते प्रशान्तचित्तमानसा धर्मं निशमयन्ति इति चतुर्विंशः २४ बृहद्वाचनायामिदमन्यदतिशयद्वयमधीयते, यदुत–अन्यतीर्थिकप्रावचनिका अपि च णं वन्दन्ते भगवन्तमिति गम्यते इति पञ्चविंशः २५ आगताः सन्तोऽर्हतः पादमूले निष्प्रतिवचना भवन्ति इति षड्विंशः २६ 'जओ जओऽवि य णं'ति यत्र यत्रापि च देशे 'तओ तओ'त्ति तत्र तत्रापि च पञ्चविंशतौ योजनेषु ईतिः–धान्यादुपद्रवकारी प्रचुरमूषकादिप्राणिगण इति सप्तविंशः २७ मारिः–जनमरक इत्यष्टाविंशः २८ स्वचक्रं–स्वकीयराजसैन्यं तदुपद्रवकारि न भवतीति एकोनत्रिंशः २९ एवं परचक्रं–परराजसैन्यमिति त्रिंशः ३० अतिवृष्टिः–अधिकवर्षं इत्येकत्रिंशः ३१ अनावृष्टिः–वर्षणाभाव इति द्वात्रिंशः ३२ दुर्भिक्षं–दुष्काल इति त्रयस्त्रिंशः ३३ 'उप्पाइया वाहि'त्ति उत्पाताः–अनिष्टसूचका रुधिरवृष्ट्यादयस्तद्धेतुका येऽनर्थास्ते औत्पातिकास्तथा व्याधयो–ज्वराद्यास्तदुपशमः–अभाव इति चतुस्त्रिंशत्तमः ३४ । अन्यच्च 'पच्चाहरओ' इत आरभ्य येऽभिहितास्ते प्रभामण्डलं च कर्मक्षयकृताः, शेषा भवप्रत्ययेभ्योऽन्ये देवकृता इति, एते च यदन्यथापि दृश्यन्ते तन्मतान्तरमवगन्तव्यमिति । 'चक्कवट्टिविजय'त्ति चक्रवर्त्तिविजेतव्यानि क्षेत्रखण्डानि 'उक्कोसपए चोत्तीसं तित्थगरा समुप्पज्जंति'त्ति समुत्पद्यन्ते सम्भवन्तीत्यर्थः न त्वेकसमये जायन्ते, चतुर्णामेवैकदा जन्मसम्भवात्, तथाहि–मेरौ पूर्वापरशिलातलयोर्द्वे द्वे सिंहासने भवतोऽतो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकरस्य चतुस्त्रिंशत-अतिशया:

प्रत सूत्रांक [३४]

प्रत अनुक्रम [११०]

द्वौ द्वावेवाभिषिच्येते अतो द्वयोर्द्वयोरेव जन्मेति, दक्षिणोत्तरयोस्तु क्षेत्रयोस्तदानीं दिवससद्भावात् न भरतैरावतयोर्जिनोत्पत्तिरर्द्धरात्र एव जिनोत्पत्तेरिति, 'पढमे'त्यादि प्रथमायां पृथिव्यां त्रिंशन्नरकावासानां लक्षाणि, पञ्चम्यां त्रीणि षष्ठ्या पञ्चोनं लक्षं सप्तम्यां पञ्च नरकाः, एवं सर्वमीलने चतुस्त्रिंशल्लक्षाणि भवन्तीति ॥ ३४ ॥

पणतीसं सच्चवयणाइसेसा प०, कुंथू णं अरहा पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, दत्ते णं वासुदेवे पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, नंदणे णं बलदेवे पणतीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, सोहम्मे कप्पे सुहम्माए सभाए माणवए चेइयक्खंभे हेट्ठा उवरिं च अद्धतेरस अद्धतेरस जोयणाणि वज्जेत्ता मज्झे पणतीस जोयणेसु वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु जिणसकहाओ प०, बितियचउत्थीसु दोसु पुढवीसु पणतीसं निरयावाससयसहस्सा प० ॥ सूत्रं ३५ ॥

पञ्चत्रिंशत्तमस्थानकं सुगमं, नवरं सत्यवचनातिशया आगमे न दृष्टाः, एते तु ग्रन्थान्तरदृष्टाः सम्भाविताः, वचनं हि गुणवद्वक्तव्यं, तद्यथा–संस्कारवत् १ उदात्तं २ उपचारोपेतं ३ गम्भीरशब्दं ४ अनुनादि ५ दक्षिणं ६ उपनीतरागं ७ महार्थं ८ अव्याहतपौर्वापर्यं ९ शिष्टं १० असन्दिग्धं ११ अपहृतान्योत्तरं १२ हृदयग्राहि १३ देशकालाव्यतीतं १४ तत्त्वानुरूपं १५ अप्रकीर्णप्रसृतं १६ अन्योऽन्यप्रगृहीतं १७ अभिजातं १८ अतिस्निग्धमधुरं १९ अपरमर्मविद्धं २० अर्थधर्माभ्यासानपेतं २१ उदारं २२ परनिन्दात्मोत्कर्षविप्रयुक्तं २३ उपगतश्लाघं २४ अनपनीतं २५ उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलं २६ अद्भुतं २७ अनतिविलम्बितं २८ विभ्रमविक्षेपकिलिकिञ्चितादिविमुक्तं २९

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्य-वचनस्य पञ्चत्रिंशत अतिशया;

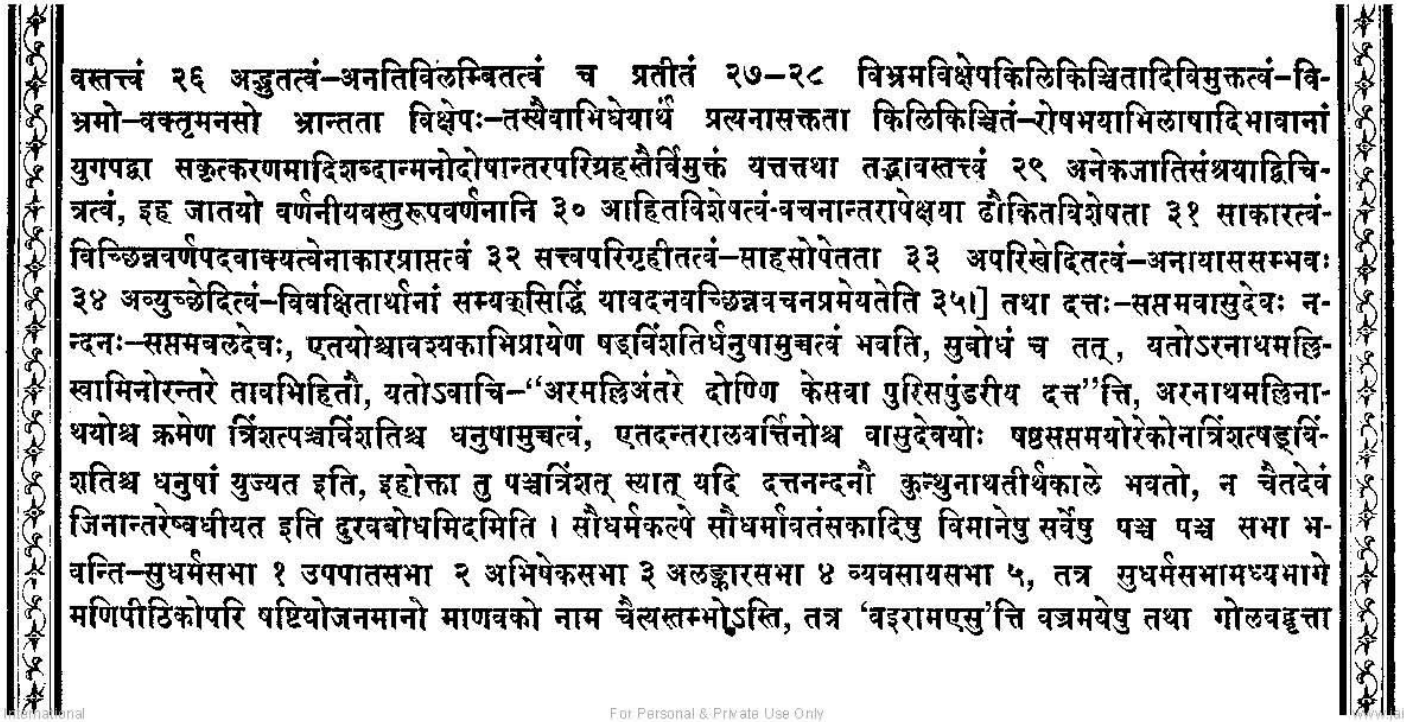
अनेकजातिसंश्रयाद्विचित्रं ३० आहितविशेषं ३१ साकारं ३२ सत्त्वपरिग्रहं ३३ अपरिखेदितं ३४ अव्युच्छेदं ३५ चेति वचनं महानुभावैर्वक्तव्यमिति, [तत्र संस्कारवत्त्वं–संस्कृतादिलक्षणयुक्तत्वं १ उदात्तत्वं–उच्चैर्वृत्तिता २ उपचारोपेतत्वं–अग्राम्यता ३ गम्भीरशब्दं मेघस्येव ४ अनुनादित्वं–प्रतिरवोपेतता ५ दक्षिणत्वं–सरलत्वं ६ उपनीतरागत्वं–मालकोशादि ग्रामरागयुक्तता ७ एते सप्त शब्दापेक्षा अतिशयाः, अन्ये त्वर्थाश्रयाः, तत्र महार्थत्वं–बृहदभिधेयता ८ अव्याहतपौर्वापर्यत्वं–पूर्वापरवाक्याविरोधः ९ शिष्टत्वं–अभिमतसिद्धान्तोक्तार्थता वक्तुः शिष्टतासूचकत्वं वा १० असन्दिग्धत्वं–असंशयकारिता ११ अपहृतान्योत्तरत्वं–परदूषणाविषयता १२ हृदयग्राहित्वं–श्रोतृमनोहरता १३ देशकालाव्यतीतत्वं–प्रस्तावोचितता १४ तत्त्वानुरूपत्वं–विवक्षितवस्तुस्वरूपानुसारिता १५ अप्रकीर्णप्रसृतत्वं–सुसम्बन्धस्य सतः प्रसरणं अथवाऽसम्बन्धानधिकारित्वातिविस्तरयोरभावः १६ अन्योऽन्यप्रगृहीतत्वं–परस्परेण पदानां वाक्यानां वा सापेक्षता १७ अभिजातत्वं–वक्तुः प्रतिपाद्यस्य वा भूमिकानुसारिता १८ अतिस्निग्धमधुरत्वं–अमृतगुडादिवत् सुखकारित्वं १९ अपरमर्मवेधित्वं–परमर्मानुद्घट्टनस्वरूपत्वं २० अर्थधर्माभ्यासानपेतत्वं–अर्थधर्मप्रतिबद्धत्वं २१ उदारत्वं–अभिधेयार्थस्यातुच्छत्वं गुम्फगुणविशेषो वा २२ परनिन्दात्मोत्कर्षविप्रयुक्तत्वमिति प्रतीतमेव २३ उपगतश्लाघत्वं–उक्तगुणयोगात्प्राप्तश्लाघता २४ अनपनीतत्वं–कारककालवचनलिङ्गादिव्यत्ययरूपवचनदोषापेतता २५ उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलत्वं–स्वविषये श्रोतॄणां जनितमविच्छिन्नं कौतुकं येन तत्तथा तद्भा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्य-वचनस्य पञ्चत्रिंशत अतिशयाः / लक्षणाः

प्रत सूत्रांक [३५]

प्रत अनुक्रम [१११]



वस्तुत्वं २६ अद्भुतत्वं–अनतिविलम्बितत्वं च प्रतीतं २७–२८ विभ्रमविक्षेपकिलिकिञ्चितादिविमुक्तत्वं–विभ्रमो–वक्तृमनसो भ्रान्तता विक्षेपः–तस्यैवाभिधेयार्थे प्रत्यनासक्तता किलिकिञ्चितं–रोषभयाभिलाषादिभावानां युगपद्वा सङ्करकरणमादिशब्दान्मनोदोषान्तरपरिग्रहस्तैर्विमुक्तं यत्तत्तथा तद्भावस्तत्त्वं २९ अनेकजातिसंश्रयाद्विचित्रत्वं, इह जातयो वर्णनीयवस्तुरूपवर्णनानि ३० आहितविशेषत्वं-वचनान्तरापेक्षया ढौकितविशेषता ३१ साकारत्वं-विच्छिन्नवर्णपदवाक्यत्वेनाकारप्राप्तत्वं ३२ सत्त्वपरिगृहीतत्वं–साहसोपेतता ३३ अपरिखेदितत्वं–अनायाससम्भवः ३४ अव्युच्छेदित्वं–विवक्षितार्थानां सम्यक्सिद्धिं यावदनवच्छिन्नवचनप्रमेयतेति ३५।] तथा दत्तः–सप्तमवासुदेवः नन्दनः–सप्तमबलदेवः, एतयोश्चावश्यकाभिप्रायेण षड्विंशतिर्धनुषामुच्चत्वं भवति, सुबोधं च तत्, यतोऽरनाथमल्लिस्वामिनोरन्तरे तावभिहितौ, यतोऽवाचि–"अरमल्लिअंतरे दोण्णि केसवा पुरिसपुंडरीय दत्त"त्ति, अरनाथमल्लिनाथयोश्च क्रमेण त्रिंशत्पञ्चविंशतिश्च धनुषामुच्चत्वं, एतदन्तरालवर्त्तिनोश्च वासुदेवयोः षष्ठसप्तमयोरेकोनत्रिंशत्षड्विंशतिश्च धनुषां युज्यत इति, इहोक्ता तु पञ्चत्रिंशत् स्यात् यदि दत्तनन्दनौ कुन्थुनाथतीर्थकाले भवतो, न चैतदेवं जिनान्तरेष्वधीयत इति दुरवबोधमिदमिति । सौधर्मकल्पे सौधर्मावतंसकादिषु विमानेषु सर्वेषु पञ्च पञ्च सभा भवन्ति–सुधर्मसभा १ उपपातसभा २ अभिषेकसभा ३ अलङ्कारसभा ४ व्यवसायसभा ५, तत्र सुधर्मसभामध्यभागे मणिपीठिकोपरि षष्टियोजनमानो माणवको नाम चैत्यस्तम्भोऽस्ति, तत्र 'वइरामएसु'त्ति वज्रमयेषु तथा गोलवट्टा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्य-वचनस्य पञ्चत्रिंशत अतिशयाः / लक्षणाः

प्रत सूत्रांक [३५]

प्रत अनुक्रम [१११]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ६४ ॥

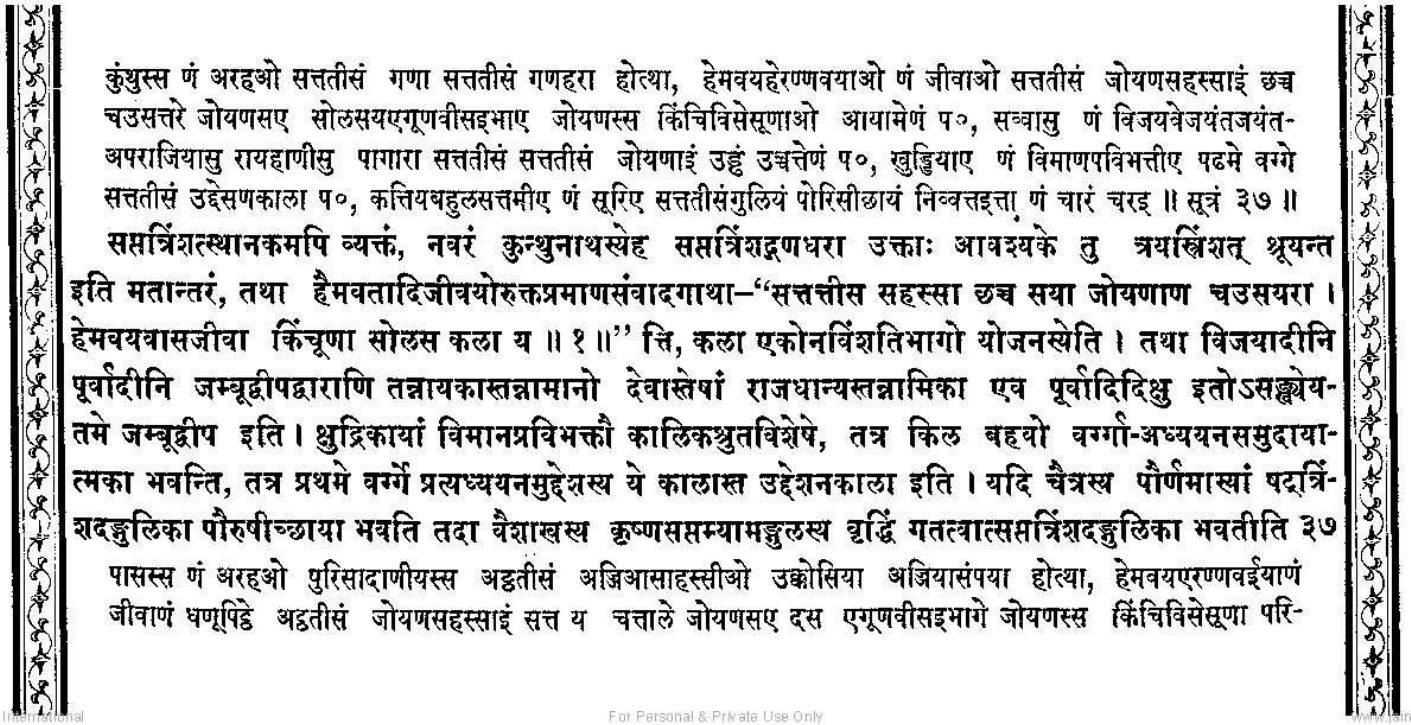
वर्तुला ये समुद्गका–भाजनविशेषास्तेषु 'जिणसकहाओ'त्ति जिनसक्थीनि तीर्थकराणां मनुजलोकनिर्वृतानां सक्थीनि-अस्थीनि प्रज्ञप्तानीति। 'बितियचउत्थी'त्यादि द्वितीयपृथिव्यां पञ्चविंशतिर्नरकलक्षाणि चतुर्थ्यां तु दशेति पञ्चत्रिंशत्तानीति ॥ ३५ ॥

छत्तीसं उत्तरज्झयणा प० तं०–विणयसुयं १ परीसहो २ चाउरंगिज्जं ३ असंखयं ४ अकाममरणिज्जं ५ पुरिसविज्जा ६ उरब्भिज्जं ७ काविलियं ८ नमिपव्वज्जा ९ दुमपत्तयं १० बहुसुयपूजा ११ हरिएसिज्जं १२ चित्तसंभूयं १३ उसुयारिज्जं १४ सभिक्खुगं १५ समाहिठाणाइं १६ पावसमणिज्जं १७ संजइज्जं १८ मियचारिया १९ अणाहपव्वज्जा २० समुद्दपालिज्जं २१ रहनेमिज्जं २२ गोयमकेसिज्जं २३ समितीओ २४ जन्नतिज्जं २५ सामायारी २६ खलुंकिज्जं २७ मोक्खमग्गगई २८ अप्पमाओ २९ तवोमग्गो ३० चरणविही ३१ पमायठाणाइं ३२ कम्मपयडी ३३ लेसज्झयणं ३४ अणगारमग्गे ३५ जीवाजीवविभत्ती य ३६, चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररण्णो सभा सुहम्मा छत्तीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, समणस्स णं भगवओ महावीरस्स छत्तीसं अज्जाणं साहस्सीओ होत्था, चेत्तासोएसु णं मासेसु सइ छत्तीसंगुलियं सूरिए पोरिसीछायं निव्वत्तइ ॥ सूत्रं ३६ ॥

षट्त्रिंशत्स्थानकं स्पष्टमेव, नवरं चैत्राश्वयुजोर्मासयोः सकृद्–एकदा पूर्णिमायामिति व्यवहारो निश्चयतस्तु मेषसङ्क्रान्तिदिने तुलासङ्क्रान्तिदिने चेत्यर्थः। षट्त्रिंशदङ्गुलिकां पदत्रयमानां, आह च—"चेत्तासोएसु मासेसु, तिपया होइ पोरिसी"ति [चैत्राश्वयुजोर्मासयोस्त्रिपदा पौरुषी भवति]॥ ३६ ॥

३६ समवायाध्य. ॥ ६४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



कुंथुस्स णं अरहओ सत्ततीसं गणा सत्ततीसं गणहरा होत्था, हेमवयहेरण्णवयाओ णं जीवाओ सत्ततीसं जोयणसहस्साइं छच्च चउसत्तरे जोयणसए सोलसयएगूणवीसइभाए जोयणस्स किंचिविसेसूणाओ आयामेणं प०, सव्वासु णं विजयवेजयंतजयंत-अपराजियासु रायहाणीसु पागारा सत्ततीसं सत्ततीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, खुड्डियाए णं विमाणपविभत्तीए पढमे वग्गे सत्ततीसं उद्देसणकाला प०, कत्तियबहुलसत्तमीए णं सूरिए सत्ततीसंगुलियं पोरिसीछायं निव्वत्तइत्ता णं चारं चरइ ॥ सूत्रं ३७ ॥

सप्तत्रिंशत्स्थानकमपि व्यक्तं, नवरं कुन्थुनाथस्येह सप्तत्रिंशद्गणधरा उक्ताः आवश्यके तु त्रयस्त्रिंशत् श्रूयन्त इति मतान्तरं, तथा हैमवतादिजीवयोरुक्तप्रमाणसंवादगाथा–"सत्तत्तीस सहस्सा छच्च सया जोयणाण चउसयरा। हेमवयवासजीवा किंचूणा सोलस कला य ॥ १ ॥" त्ति, कला एकोनविंशतिभागो योजनस्येति। तथा विजयादीनि पूर्वादीनि जम्बूद्वीपद्वाराणि तन्नायकास्तन्नामानो देवास्तेषां राजधान्यस्तन्नामिका एव पूर्वादिदिक्षु इतोऽसङ्ख्येय-तमे जम्बूद्वीप इति। क्षुद्रिकायां विमानप्रविभक्तौ कालिकश्रुतविशेषे, तत्र किल बहवो वर्गा-अध्ययनसमुदाया-त्मका भवन्ति, तत्र प्रथमे वर्गे प्रत्यध्ययनमुद्देशस्य ये कालास्त उद्देशनकाला इति। यदि चैत्रस्य पौर्णमास्यां षट्त्रिं-शदङ्गुलिका पौरुषीच्छाया भवति तदा वैशाखस्य कृष्णसप्तम्यामङ्गुलस्य वृद्धिं गतत्वात्सप्तत्रिंशदङ्गुलिका भवतीति ३७

पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अट्ठतीसं अज्जिआसाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था, हेमवयएरण्णवईयाणं जीवाणं धणूपिट्ठे अट्ठतीसं जोयणसहस्साइं सत्त य चत्ताले जोयणसए दस एगूणवीसइभागे जोयणस्स किंचिविसेसूणा परि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [३८]

प्रत अनुक्रम [११४]

क्खेवेणं प०, अत्थस्स णं पव्वयरण्णो बितिए कंडे अट्ठतीसं जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, खुड्डियाए णं विमाणपविभत्तीए बितिए वग्गे अट्ठतीसं उद्देसणकाला प० ॥ सूत्रं ३८ ॥

अष्टत्रिंशत्स्थानकं व्यक्तमेव, नवरं 'धणुपिट्ठं'ति जम्बूद्वीपलक्षणवृत्तक्षेत्रस्य हैमवतैरण्यवताभ्यां द्वितीयषष्ठवर्षाभ्यामवच्छिन्नस्यारोपितज्याधनुःपृष्ठाकारे परिधिखण्डे धनुःपृष्ठे इव धनुःपृष्ठे उच्येते तत्पर्यन्तभूते ऋजुप्रदेशपङ्क्ती तु जीवे इव जीवे इति, एतत्सूत्रसंवादिगाथार्द्धं "चत्तालीस सत्त सया अडतीस सहस्स दस कला य धणु" त्ति। तथा 'अत्थस्स'त्ति अस्तो–मेरुर्यतस्तेनान्तरितो रविरस्तं गत इति व्यपदिश्यते तस्य पर्वतराजस्य–गिरिप्रधानस्य द्वितीयं काण्डं–विभागोऽष्टत्रिंशद्योजनसहस्राण्युच्चत्वेन भवतीति, मतान्तरेण तु त्रिषष्टिः सहस्राणि, यदाह–"मेरुस्स तिन्नि कंडा पुढवोवलवइरसक्करा पढमं। रयए य जायरूवे अंके फलिहे य बीयं तु ॥ १ ॥ एक्कागारं तइयं तं पुण जंबूणयमयं होइ। जोयणसहस्स पढमं बाहल्लेणं च बितियं तु ॥ २ ॥ तेवट्ठिसहस्साइं तइयं छत्तीस जोयणसहस्सा। मेरुस्सुवरिं चूला उविद्धा जोयणदुवीसं ॥ ३ ॥ [मेरोस्त्रीणि काण्डानि पृथ्व्युपलवज्रशर्करामयं प्रथमं। राजतं जातरूपं आङ्कं स्फाटिकं च द्वितीयं ॥ १ ॥ एकाकारं तृतीयं तत् पुनर्जाम्बूनदमयं भवति। योजनसहस्रं प्रथमं बाहल्येन द्वितीयं तु ॥ २ ॥ त्रिषष्टिः सहस्राणि तृतीयं षट्त्रिंशत् सहस्राणि। मेरोरुपरि चूला उद्विद्धा योजनानि चत्वारिंशत् ॥ ३ ॥] ॥ ३८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नमिस्स णं अरहओ एगूणचत्तालीसं आहोहियसया होत्था, समयखेत्ते एगूणचत्तालीसं कुलपव्वया प० तं०–तीसं वासहरा पंच मंदरा चत्तारि उसुकारा, दोच्चचउत्थपंचमछट्ठसत्तमासु णं पंचसु पुढवीसु एगूणचत्तालीसं निरयावाससयसहस्सा प०, नाणावरणिज्जस्स मोहणिज्जस्स गोत्तस्स आउयस्स एयासि णं चउण्हं कम्मपगडीणं एगूणचत्तालीसं उत्तरपगडीओ प० ॥ सूत्रं ३९ ॥

एकोनचत्वारिंशत्स्थानकं व्यक्तमेव, नवरं 'आहोहिय'त्ति नियतक्षेत्रविषयावधिज्ञानिनस्तेषां शतानीति, 'कुलपव्वय'त्ति क्षेत्रमर्यादाकारित्वेन कुलकल्पाः पर्वताः कुलपर्वताः, कुलानि हि लोकानां मर्यादानिबन्धनानि भवन्तीतीह तैरुपमा कृता, तत्र वर्षधरास्त्रिंशद् जंबूद्वीपे धातकीखण्डपुष्करार्द्धपूर्वापरार्द्धेषु च प्रत्येकं हिमवदादीनां षण्णां षण्णां भावात् मन्दराः पञ्चेषुकारा धातकीखण्डपुष्करार्द्धयोः पूर्वेतरविभागकारिणश्चत्वारः, एवमेते एकोनचत्वारिंशदिति। 'दोच्चे'त्यादि द्वितीयायां पञ्चविंशतितश्चतुर्थ्यां दश पञ्चम्यां त्रीणि षष्ठ्यां पञ्चोनलक्षं सप्तम्यां पञ्चेति यथोक्ता संख्या नरकाणामिति। 'नाणावरणिज्जे'त्यादि, ज्ञानावरणीयस्य पञ्च मोहनीयस्याष्टाविंशतिः गोत्रस्य द्वे आयुषश्चतस्रः इत्येवमेकोनचत्वारिंशदिति ॥ ३९ ॥

अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स चत्तालीसं अज्जियासाहस्सीओ होत्था, मंदरचूलियाणं चत्तालीसं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, संती अरहा चत्तालीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था भूयाणंदस्स णं नागकुमारस्स नागरन्नो चत्तालीसं भवणावाससयसहस्सा प०, खुड्डियाए णं विमाणपविभत्तीए तइए वग्गे चत्तालीसं उद्देसणकाला प०, फग्गुणपुण्णिमासिणीए णं सूरिए चत्तालीसंगुलियं पोरि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४०]

प्रत अनुक्रम [११६]

सीछायं निव्वट्टइत्ता णं चारं चरइ, एवं कत्तियाएवि पुण्णिमाए, महासुक्के कप्पे चत्तालीसं विमाणावाससहस्सा प० ॥ सूत्रं ४० ॥

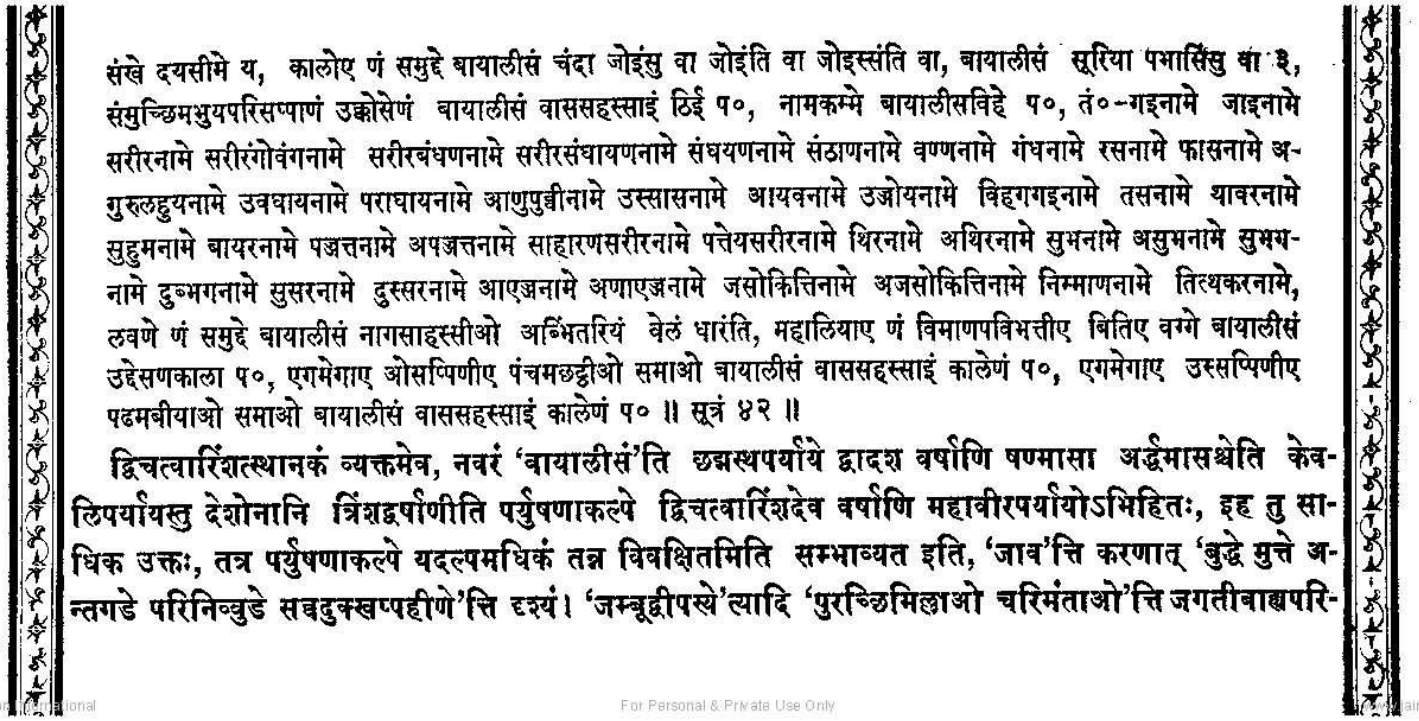
चत्वारिंशत्स्थानकं व्यक्तं, नवरं 'वइसाहपुण्णिमासिणीए'त्ति यत्केषुचित् पुस्तकेषु दृश्यते सोऽपपाठः, 'फग्गुणपुन्निमासिणीए'त्ति अत्राध्येयं, कथम्?, उच्यते, 'पोसे मासे चउप्पया' इति वचनात् पौषपूर्णिमास्यामष्टचत्वारिंशदङ्गुलिका सा भवति ततो माघे चत्वारि फाल्गुने च चत्वारि अङ्गुलानि पतितानीत्येवं फाल्गुनपौर्णमास्यां चत्वारिंशदङ्गुलिका पौरुषीच्छाया भवति, कार्त्तिक्यामप्येवमेव, यतः 'चेत्तासोएसु मासेसु, तिपया होइ पोरिसी' [चैत्राश्विनयोर्मासयोस्त्रिपदा भवति पौरुषी]त्युक्तं, ततः पदत्रयस्य षट्त्रिंशदङ्गुलप्रमाणस्य कार्त्तिकमासातिक्रमे चतुरङ्गुलवृद्धौ चत्वारिंशदङ्गुलिका सा भवतीति ॥ ४० ॥

नमिस्स णं अरहओ एकचत्तालीसं अज्जियासाहस्सीओ होत्था, चउसु पुढवीसु एक्कचत्तालीसं निरयावाससयसहस्सा प० तं०—रयणप्पभाए पंकप्पभाए तमाए तमतमाए, महालियाए णं विमाणपविभत्तीए पढमे वग्गे एकचत्तालीसं उद्देसणकाला प० ॥ सूत्रं ४१॥

एकचत्वारिंशत्स्थानकं सुगमं, नवरं 'चउसु' इत्यादिक्रमेण सूत्रोक्तासु चतसृषु प्रथमचतुर्थषष्ठसप्तमीषु पृथिवीषु त्रिंशतो दशानां च नरकलक्षाणां पञ्चोनस्य चैकस्य पञ्चानां च नरकाणां भावाद्यथोक्तसंख्यास्ते भवन्तीति ॥ ४१ ॥

समणे भगवं महावीरे बायालीसं वासाइं साहियाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता सिद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस णं बायालीसं जोयणसहस्साइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



संखे दयसीमे य, कालोए णं समुद्दे बायालीसं चंदा जोइंसु वा जोइंति वा जोइस्संति वा, बायालीसं सूरिया पभासिंसु वा ३, संमुच्छिमभुयपरिसप्पाणं उक्कोसेणं बायालीसं वाससहस्साइं ठिई प०, नामकम्मे बायालीसविहे प०, तं०-गइनामे जाइनामे सरीरनामे सरीरंगोवंगनामे सरीरबंधणनामे सरीरसंघायणनामे संघयणनामे संठाणनामे वण्णनामे गंधनामे रसनामे फासनामे अगुरुलहुयनामे उवघायनामे पराघायनामे आणुपुव्वीनामे उस्सासनामे आयवनामे उज्जोयनामे विहगगइनामे तसनामे थावरनामे सुहुमनामे बायरनामे पज्जत्तनामे अपज्जत्तनामे साहारणसरीरनामे पत्तेयसरीरनामे थिरनामे अथिरनामे सुभनामे असुभनामे सुभगनामे दुब्भगनामे सुसरनामे दुस्सरनामे आएज्जनामे अणाएज्जनामे जसोकित्तिनामे अजसोकित्तिनामे निम्माणनामे तित्थकरनामे, लवणे णं समुद्दे बायालीसं नागसाहस्सीओ अब्भितरियं वेलं धारंति, महालियाए णं विमाणपविभत्तीए बितिए वग्गे बायालीसं उद्देसणकाला प०, एगमेगाए ओसप्पिणीए पंचमछट्ठीओ समाओ बायालीसं वाससहस्साइं कालेणं प०, एगमेगाए उस्सप्पिणीए पढमबीयाओ समाओ बायालीसं वाससहस्साइं कालेणं प० ॥ सूत्रं ४२ ॥

द्विचत्वारिंशत्स्थानकं व्यक्तमेव, नवरं 'बायालीसं'ति छद्मस्थपर्याये द्वादश वर्षाणि षण्मासा अर्द्धमासश्चेति केवलिपर्यायस्तु देशोनानि त्रिंशद्वर्षाणीति पर्युषणाकल्पे द्विचत्वारिंशदेव वर्षाणि महावीरपर्यायोऽभिहितः, इह तु साधिक उक्तः, तत्र पर्युषणाकल्पे यदल्पमधिकं तन्न विवक्षितमिति सम्भाव्यत इति, 'जाव'त्ति करणात् 'बुद्धे मुत्ते अन्तगडे परिनिव्वुडे सव्वदुक्खप्पहीणे'त्ति दृश्यं। 'जम्बूद्वीपस्ये'त्यादि 'पुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ'त्ति जगतीबाह्यपरि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४२]

प्रत अनुक्रम [११८]

धेरपसृत्य गोस्तूभस्यावासपर्वतस्य वेलंधरनागराजसम्बन्धिनः पाश्चात्यचरमान्तः–चरमविभागो यावताऽन्तरेण भवति 'एस णं'ति एतदन्तरं द्विचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि प्रज्ञप्तं, अन्तरशब्देन विशेषोऽप्यभिधीयते इत्यत आह— 'अबाहाए'त्ति व्यवधानापेक्षया यदन्तरं तदित्यर्थः । 'कालोए ण'न्ति धातकीखण्डपरिवेष्टके कालोदाभिधाने समुद्रे । 'गइनामे'त्यादि, गतिनाम यदुदयान्नारकादित्वेन जीवो व्यपदिश्यते, जातिनाम यदुदयादेकेन्द्रियादिर्भवति, शरीरनाम यदुदयादौदारिकादिशरीरं करोति, यदुदयादङ्गानां–शिरःप्रभृतीनां उपाङ्गानां च–अङ्गुल्यादीनां विभागो भवति तच्छरीराङ्गोपाङ्गनाम, तथा औदारिकादिशरीरपुद्गलानां पूर्वबद्धानां बध्यमानानां च सम्बन्धकारणं शरीरबन्धननाम, तथा औदारिकादिशरीरपुद्गलानां गृहीतानां यदुदयाच्छरीररचना भवति तच्छरीरसङ्घातनाम, तथाऽस्थां यतस्तथाविधशक्तिनिमित्तभूतो रचनाविशेषो भवति तत्संहननंनाम, संस्थानं समचतुरस्रादिलक्षणं यतो भवति तत्संस्थाननाम, तथा यदुदयाद्वर्णादिविशेषवन्ति शरीराणि भवन्ति तद्वर्णादिनाम, तथा यदुदयादगुरुलघुत्वं स्वशरीरस्य जीवानां भवति तदगुरुलघुनाम, तथा यतोऽङ्गावयवः प्रतिजिह्विकादिरात्मोपघातको जायते तदुपघातनाम, तथा यतोऽङ्गावयव एव विषात्मको दंष्ट्रात्वगादि परेषामुपघातको भवति तत्पराघातनाम, तथा यदुदयादन्तरालगतौ जीवो याति तदानुपूर्वीनाम, तथा यदुदयादुच्छ्वासनिःश्वासनिष्पत्तिर्भवति तदुच्छ्वासनाम, तथा यदुदयाज्जीवस्तापवच्छरीरो भवति तदातपनाम, यथाऽऽदित्यबिम्बपृथिवीकायिकानां, तथा यतोऽनुष्णोद्योतवच्छरीरो भवति तदुद्योतनाम, तथा यतः शुभे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नामकर्मणः द्विचत्वारिन्शत् प्रकृतयः

प्रत सूत्रांक [४२]

प्रत अनुक्रम [११८]

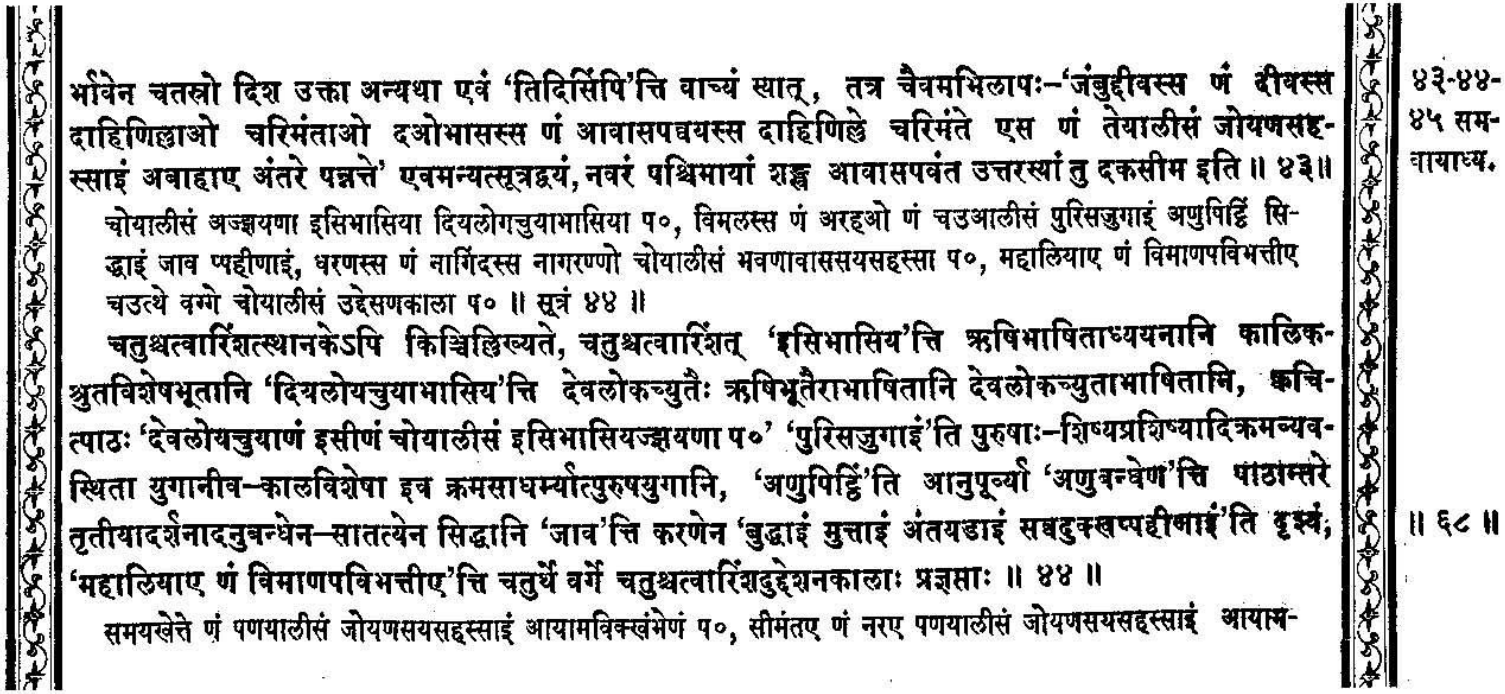
तरगमनयुक्तो भवति तद्विहायोगतिनाम, त्रसनामादीन्यष्टौ प्रतीतार्थानि, तथा यतः स्थिराणा दन्ताद्यवयवानां निष्पत्तिर्भवति तत्स्थिरनाम, यतश्च अजिह्वादीनामस्थिराणां निष्पत्तिर्भवति तदस्थिरनाम, तथा शिरःप्रभृतीनां शुभानां तच्छुभनाम, पादादीनामशुभानामशुभनाम इति, शेषाणि प्रतीतानि, नवरं यदुदयाज्जातौ जातौ जीवदेहेषु रूप्यादिलिङ्गाकारनियमो भवति तत्सूत्रधारसमानं निर्माणनामेति, 'पञ्चमछट्ठीओ समाओ'त्ति दुष्षमा एकान्तदुष्षमा चेत्यर्थः 'पढमबीयाउ'त्ति एकान्तदुष्षमा दुष्षमा चेति ॥ ४२ ॥

तेयालीसं कम्मविवागज्झयणा प०, पढमचउत्थपंचमासु पुढवीसु तेयालीसं निरयावाससयसहस्सा प०, जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं तेयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, एवं चउद्दिसिंपि दगभागे संखे दयसीमे, महालियाए णं विमाणपविभत्तीए तइये वग्गे तेयालीसं उद्देसणकाला प० ॥ सूत्रं ४३ ॥

त्रिचत्वारिंशत्स्थानकेऽपि किञ्चिल्लिख्यते, 'कम्मविवागज्झयण'त्ति कर्म्मणः–पुण्यपापात्मकस्य विपाकश्च–फलं तत्प्रतिपादकान्यध्ययनानि कर्मविपाकाध्ययनानि, एतानि च एकादशाङ्गद्वितीयाङ्गयोः संभाव्यन्त इति । 'जंबुद्दीवस्स ण'मित्यादि, जंबूद्वीपस्य पौरस्त्यान्ताद्वोस्तूभपर्वतो द्विचत्वारिंशद्योजनानां सहस्राणि तद्विष्कम्भश्च सहस्रं तदधिकाया द्वाविंशतेरल्पत्वेनाविवक्षणादेवं त्रिचत्वारिंशत्सहस्राणि भवन्तीति, एवं 'चउद्दिसिंपि'त्ति उक्तदिगन्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नामकर्मणः द्विचत्वारिन्शत् प्रकृतयः



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ६८ ॥

भावेन चतस्रो दिश उक्ता अन्यथा एवं 'तिदिसिंपि'त्ति वाच्यं स्यात्, तत्र चैवमभिलापः–'जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स दाहिणिल्लाओ चरिमंताओ दओभासस्स णं आवासपव्वयस्स दाहिणिल्ले चरिमंते एस णं तेयालीसं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पन्नत्ते' एवमन्यत्सूत्रद्वयं, नवरं पश्चिमायां शङ्ख आवासपर्वत उत्तरस्यां तु दकसीम इति ॥ ४३॥

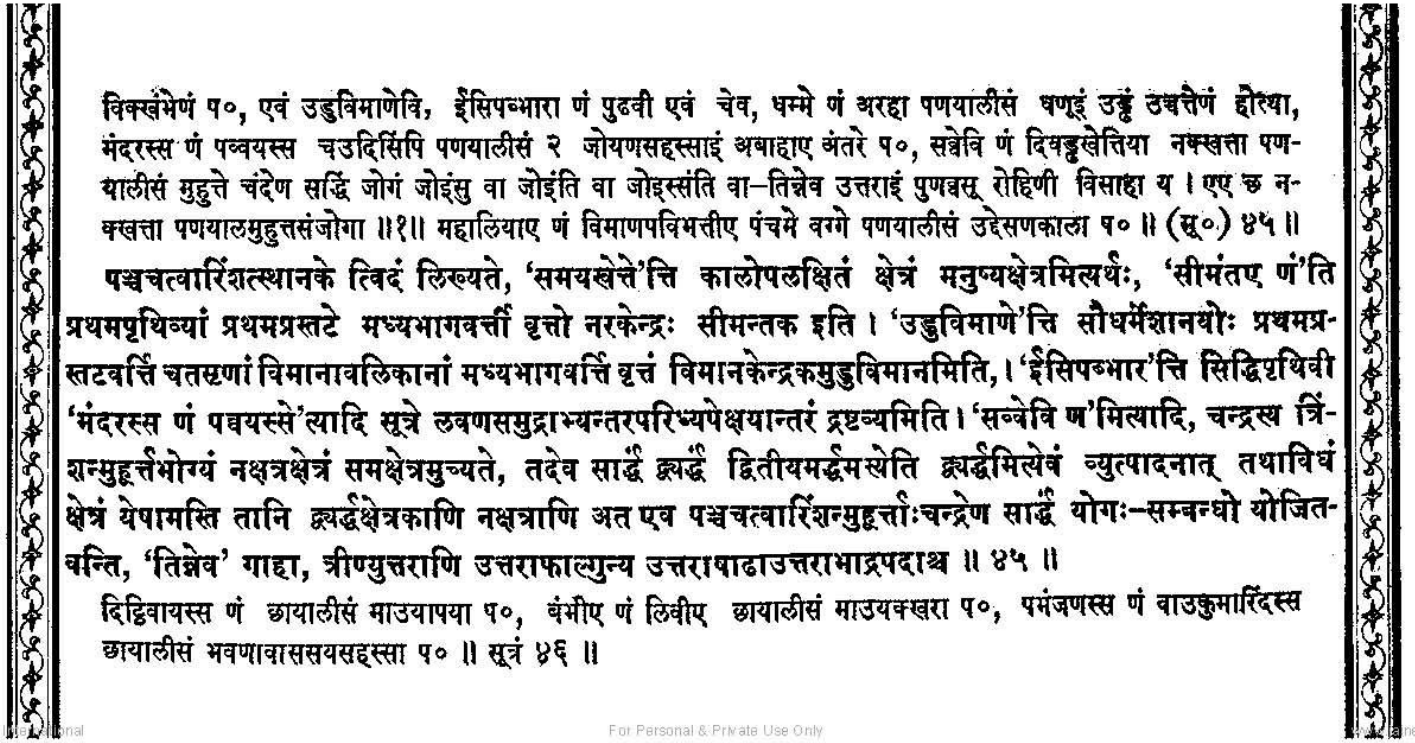
चोयालीसं अज्झयणा इसिभासिया दियलोगचुयाभासिया प०, विमलस्स णं अरहओ णं चउआलीसं पुरिसजुगाइं अणुपिट्ठिं सिद्धाइं जाव प्पहीणाइं, धरणस्स णं नागिंदस्स नागरण्णो चोयालीसं भवणावाससयसहस्सा प०, महालियाए णं विमाणपविभत्तीए चउत्थे वग्गे चोयालीसं उद्देसणकाला प० ॥ सूत्रं ४४ ॥

चतुश्चत्वारिंशत्स्थानकेऽपि किञ्चिल्लिख्यते, चतुश्चत्वारिंशत् 'इसिभासिय'त्ति ऋषिभाषिताध्ययनानि कालिकश्रुतविशेषभूतानि 'दियलोयचुयाभासिय'त्ति देवलोकच्युतैः ऋषिभूतैराभाषितानि देवलोकच्युताभाषितानि, क्वचित्पाठः 'देवलोयचुयाणं इसीणं चोयालीसं इसिभासियज्झयणा प०' 'पुरिसजुगाइं'ति पुरुषाः–शिष्यप्रशिष्यादिक्रमव्यवस्थिता युगानीव–कालविशेषा इव क्रमसाधर्म्यात्पुरुषयुगानि, 'अणुपिट्ठिं'ति आनुपूर्व्या 'अणुबन्धेण'त्ति पाठान्तरे तृतीयादर्शनादनुबन्धेन–सातत्येन सिद्धानि 'जाव'त्ति करणेन 'बुद्धाइं मुत्ताइं अंतयडाइं सव्वदुक्खप्पहीणाइं'ति दृश्यं; 'महालियाए णं विमाणपविभत्तीए'त्ति चतुर्थे वर्गे चतुश्चत्वारिंशदुद्देशनकालाः प्रज्ञप्ताः ॥ ४४ ॥

समयखेत्ते णं पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं प०, सीमंतए णं नरए पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयाम-

४३-४४-४५ समवायाध्य. ॥ ६८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



विक्खंभेणं प०, एवं उडुविमाणेवि, ईसिपब्भारा णं पुढवी एवं चेव, धम्मे णं अरहा पणयालीसं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, मंदरस्स णं पव्वयस्स चउदिसिंपि पणयालीसं २ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, सव्वेवि णं दिवड्ढखेत्तिया नक्खत्ता पणयालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोगं जोइंसु वा जोइंति वा जोइस्संति वा–तिन्नेव उत्तराइं पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य । एए छ नक्खत्ता पणयालमुहुत्तसंजोगा ॥१॥ महालियाए णं विमाणपविभत्तीए पंचमे वग्गे पणयालीसं उद्देसणकाला प० ॥ (सू०) ४५ ॥

पञ्चचत्वारिंशत्स्थानके त्विदं लिख्यते, 'समयखेत्ते'त्ति कालोपलक्षितं क्षेत्रं मनुष्यक्षेत्रमित्यर्थः, 'सीमंतए णं'ति प्रथमपृथिव्यां प्रथमप्रस्तटे मध्यभागवर्त्ती वृत्तो नरकेन्द्रः सीमन्तक इति । 'उडुविमाणे'त्ति सौधर्मेशानयोः प्रथमप्रस्तटवर्त्ति चतसृणां विमानावलिकानां मध्यभागवर्त्ति वृत्तं विमानकेन्द्रकमुडुविमानमिति, । 'ईसिपब्भार'त्ति सिद्धिपृथिवी 'मंदरस्स णं पव्वयस्से'त्यादि सूत्रे लवणसमुद्राभ्यन्तरपरिध्यपेक्षयान्तरं द्रष्टव्यमिति । 'सव्वेवि ण'मित्यादि, चन्द्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तभोग्यं नक्षत्रक्षेत्रं समक्षेत्रमुच्यते, तदेव सार्द्धं द्व्यर्द्धं द्वितीयमर्द्धमस्येति द्व्यर्द्धमित्येवं व्युत्पादनात् तथाविधं क्षेत्रं येषामस्ति तानि द्व्यर्द्धक्षेत्रकाणि नक्षत्राणि अत एव पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ताःचन्द्रेण सार्द्धं योगः–सम्बन्धो योजितवन्ति, 'तिन्नेव' गाहा, त्रीण्युत्तराणि उत्तराफाल्गुन्य उत्तराषाढाउत्तराभाद्रपदाश्च ॥ ४५ ॥

दिट्ठिवायस्स णं छायालीसं माउयापया प०, बंभीए णं लिवीए छायालीसं माउयक्खरा प०, पभंजणस्स णं वाउकुमारिंदस्स छायालीसं भवणावाससयसहस्सा प० ॥ सूत्रं ४६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ षट्चत्वारिंशत्स्थानके किञ्चिल्लिख्यते, 'दिट्ठिवायस्स'त्ति द्वादशाङ्गस्य 'माउयापय'त्ति सकलवाङ्मयस्य अकारादिमातृकापदानीव दृष्टिवादार्थप्रसवनिबन्धनत्वेन मातृकापदानि उत्पादविगमध्रौव्यलक्षणानि, तानि च सिद्धश्रेणिमनुष्यश्रेण्यादिना विषयभेदेन कथमपि भिद्यमानानि षट्चत्वारिंशद्भवन्तीति सम्भाव्यन्ते, तथा 'बंभीए णं लिवीए'त्ति लेख्यविधौ षट्चत्वारिंशन्मातृकाक्षराणि, तानि चाकारादीनि हकारान्तानि सक्षकाराणि ऋॠ ऌॡ ळ इत्येवं तदक्षरपञ्चकवर्जितानि सम्भाव्यन्ते, [स्वरचतुष्टयवर्जनात् विसर्गान्तानि द्वादश पञ्चविंशतिः स्पर्शाः चतस्रोऽन्तःस्थाः ऊष्माणश्चत्वारः क्षवर्णश्चेति षट्चत्वारिंशद्वर्णाः] तथा 'पभंजणस्स'त्ति औदीच्यस्येति ॥ ४६ ॥

जया णं सूरिए सव्वब्भिंतरमंडलं उवसङ्कमित्ता णं चारं चरइ तया णं इहगयस्स मणूसस्स सत्तचत्तालीसं जोयणसहस्सेहिं दोहि य तेवट्ठेहिं जोयणसएहिं एक्कवीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुफासं हव्वमागच्छइ, थेरे णं अग्गिभूई सत्तचालीसं वासाइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ सूत्रं ४७ ॥

अथ सप्तचत्वारिंशत्स्थानके किमप्युच्यते, 'जया ण'मित्यादि, इह लक्षप्रमाणस्य जम्बूद्वीपस्योभयतोऽशीत्युत्तरेऽशीत्युत्तरे योजनशते ३६० अपनीते सर्वाभ्यन्तरस्य सूर्यमण्डलस्य विष्कम्भो भवति ९९६४० तत्परिधिस्त्रीणि लक्षाणि पञ्चदश सहस्राणि एकोननवत्यधिकानि ३१५०८९, एतच्च सूर्यो मुहूर्त्तानां षष्ट्या गच्छतीति षष्ट्याऽस्य भागहारे मुहूर्त्तगतिर्लभ्यते, सा च पञ्च योजनसहस्राणि द्वे चैकपञ्चाशदुत्तरे योजनशते एकोनत्रिंशच्च षष्टिभागा योजनस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [४७]

प्रत अनुक्रम [१२५]

५२५१।३९/३८, यदा चाभ्यन्तरमण्डले सूर्यश्चरति तदाऽष्टादश मुहूर्त्ता दिवसप्रमाणं, तदर्द्धेन नवभिर्मुहूर्त्तैः मुहूर्त्तगतिर्गुण्यते, ततश्च यथोक्तं चक्षुःस्पर्शप्रमाणमागच्छतीति, 'अग्गिभूइ'त्ति वीरनाथस्य द्वितीयो गणधरस्तस्य चेह सप्तचत्वारिंशद्वर्षाण्यगारवास उक्तः, आवश्यके तु षट्चत्वारिंशत्, सप्तचत्वारिंशत्तमवर्षस्यासम्पूर्णत्वादविवक्षा, इह त्वसम्पूर्णस्यापि पूर्णत्वविवक्षेति सम्भावनया न विरोध इति ॥ ४७ ॥

एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स अडयालीसं पट्टणसहस्सा प०, धम्मस्स णं अरहओ अडयालीसं गणा अडयालीसं गणहरा होत्था, सूरमंडले णं अडयालीसं एकसट्ठिभागे जोयणस्स विक्खंभेणं प० ॥ सूत्रं ४८ ॥

अष्टचत्वारिंशत्स्थानके किमपि लिख्यते, 'पट्टण'त्ति विविधदेशपण्यान्यागत्य यत्र पतन्ति तत्पत्तनं–नगरविशेषः, पत्तनं रत्नभूमिरित्याहुरेके, 'धम्मस्स'त्ति पञ्चदशतीर्थङ्करस्य, इहाष्टचत्वारिंशद्गणा गणधराश्चोक्ताः आवश्यके तु त्रिचत्वारिंशत्पठ्यन्ते तदिदं मतान्तरमिति, 'सूरमंडले'त्ति सूर्यविमानं येषां भागानामेकषष्ट्या योजनं भवति तेषामष्टचत्वारिंशत् त्रयोदशभिस्तैर्न्यूनं योजनमित्यर्थः ॥ ४८ ॥

सत्त सत्तमियाए णं भिक्खुपडिमाए एगूणपन्नाए राइंदिएहिं छन्नउइभिक्खासएणं अहासुत्तं जाव आराहिया भवइ, देवकुरुउत्तरकुरु एसु णं मणुया एगूणपन्ना राइंदिएहिं संपन्नजोव्वणा भवंति, तेइंदियाणं उक्कोसेणं एगूणपन्ना राइंदिया ठिई प० ॥ सूत्रं ४९॥

अथैकोनपञ्चाशत्स्थानके लिख्यते, 'सत्तसत्तमियाए णं' सप्त सप्तमानि दिनानि यस्यां सा सप्तसप्तमिका–सप्त सप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिनानि भवन्ति सप्तसु सप्तकेषु अतः सा सप्तदिनसप्तकमयत्वादेकोनपञ्चाशता दिनैर्भवतीति, 'पडिम'त्ति अभिग्रहः 'छन्नउएणं भिक्खासएणं'ति प्रथमदिनसप्तके प्रतिदिनमेकोत्तरया भिक्षावृद्ध्या अष्टाविंशतिर्भिक्षा भवन्ति, एवं च सप्तस्वपि षण्णवतिभिक्षाशतं भवति, अथवा प्रतिसप्तमेकोत्तरया वृद्ध्या यथोक्तं भिक्षामानं भवति, तथाहि–प्रथमे सप्तके प्रतिदिनमेकैकभिक्षाग्रहणात् सप्त भिक्षा भवन्ति, द्वितीये द्वयो २ ग्रहणाच्चतुर्दश, एवं सप्तमे सप्तानां ग्रहणादेकोनपञ्चाशदित्येवं सर्वमीलने (सङ्कलने) यथोक्तमानं भवतीति, 'अहासुत्तं'ति यथासूत्रं-यथागमं सम्यक् कायेन स्पृष्टा भवतीति शेषो द्रष्टव्यः, 'सम्पन्नजोव्वणा भवंति'त्ति न मातापितृपरिपालनामपेक्षन्त इत्यर्थः, 'ठिइ'त्ति आयुष्कम् ॥ ४९ ॥

मुणिसुव्वयस्स णं अरहओ पंचासं अज्जियासाहस्सीओ होत्था, अणंते णं अरहा पन्नासं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, पुरिसुत्तमे णं वासुदेवे पन्नासं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, सव्वेवि णं दीहवेयड्ढा मूले पन्नासं २ जोयणाणि विक्खंभेणं प०, लंतए कप्पे पन्नासं विमाणावाससहस्सा प०, सव्वाओ णं तिमिस्सगुहाखंडगप्पवायगुहाओ पन्नासं २ जोयणाइं आयामेणं प०, सव्वेवि णं कंचणगपव्वया सिहरतले पन्नासं २ जोयणाइं विक्खंभेणं प० ॥ सूत्रं ५० ॥

अथ पञ्चाशत्स्थानकं, तत्र 'पुरिसोत्तम'त्ति चतुर्थो वासुदेवोऽनन्तजिज्जिनकालभावी, तथा 'कंचण'त्ति उत्तरकुरुषु नीलवदादीनां पञ्चानामानुपूर्व्याव्यवस्थितानां महाह्रदानां पूर्वापरपार्श्वयोः प्रत्येकं दश दश काञ्चनपर्वता भवन्ति, ते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

च सर्वे शतं, एवं देवकुरुषु निषधादीनां महाह्रदानां शतं भवति, सर्व एव च ते जम्बूद्वीपे द्विशतमाना भवन्ति, ते योजनशतोच्छ्रिताः शतमूलविष्कम्भास्तन्नामकदेवनिवासभूतभवनालङ्कृतशिखरतलाः ॥ ५० ॥

नवण्हं बंभचेराणं एकावन्नं उद्देसणकाला प०, चमरस्स णं असुरिंदस्स असुररन्नो सभा सुधम्मा एकावन्नखंभसयसंनिविट्ठा प०, एवं चेव बलिस्सवि, सुप्पभे णं बलदेवे एकावन्नं वाससयसहस्साइं परमाउं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, दंसणावरणनामाणं दोण्हं कम्माणं एकावन्नं उत्तरकम्मपगडीओ प० ॥ सूत्रं ५१ ॥

अथैकपञ्चाशत्स्थानकं, तत्र 'बंभचेराणं'ति आचारप्रथमश्रुतस्कन्धाध्ययनानां शस्त्रपरिज्ञादीनां, तत्र प्रथमे सप्तोद्देशका इति सप्तैवोद्देशनकालाः १ एवं द्वितीयादिषु क्रमेण षट् २ चत्वारः ३ चत्वारः ४ एवं षट् ५ पंच ६ अष्टमे चत्वारः ८ सप्तमे महापरिज्ञायाः सप्तोद्देशाः, व्युच्छिन्नं च तदिति प्रान्ते प्रागप्यध्ययनोल्लेखे उद्दिष्टं प्रान्त्य एवात्रोद्दिष्टा उद्देशा अपि तस्य क्रमापेक्षया सप्तमस्य चेत्येवमेकपञ्चाशदिति, 'सुप्पहे'त्ति चतुर्थो बलदेवः अनन्तजिज्जिननाथकालभावी, तस्येहैकपञ्चाशद्वर्षलक्षाण्यायुरुक्तमावश्यके तु पञ्चपञ्चाशदुच्यते तदिदं मतान्तरमिति, 'एकावन्नं उत्तरपगडीओ'त्ति दर्शनावरणस्य नव नाम्नो द्विचत्वारिंशदित्येकपञ्चाशदिति ॥ ५१ ॥

मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स बावन्नं नामधेज्जा प०, तं०–कोहे कोवे रोसे दोसे अखमा संजलणे कलहे चंडिक्के भंडणे विवाए १० माणे मदे दप्पे थंभे अत्तुक्कोसे गव्वे परपरिवाए अक्कोसे अवक्कोसे (परिभवे) उन्नए २० उन्नामे माया उवही नियडी वलए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५२]

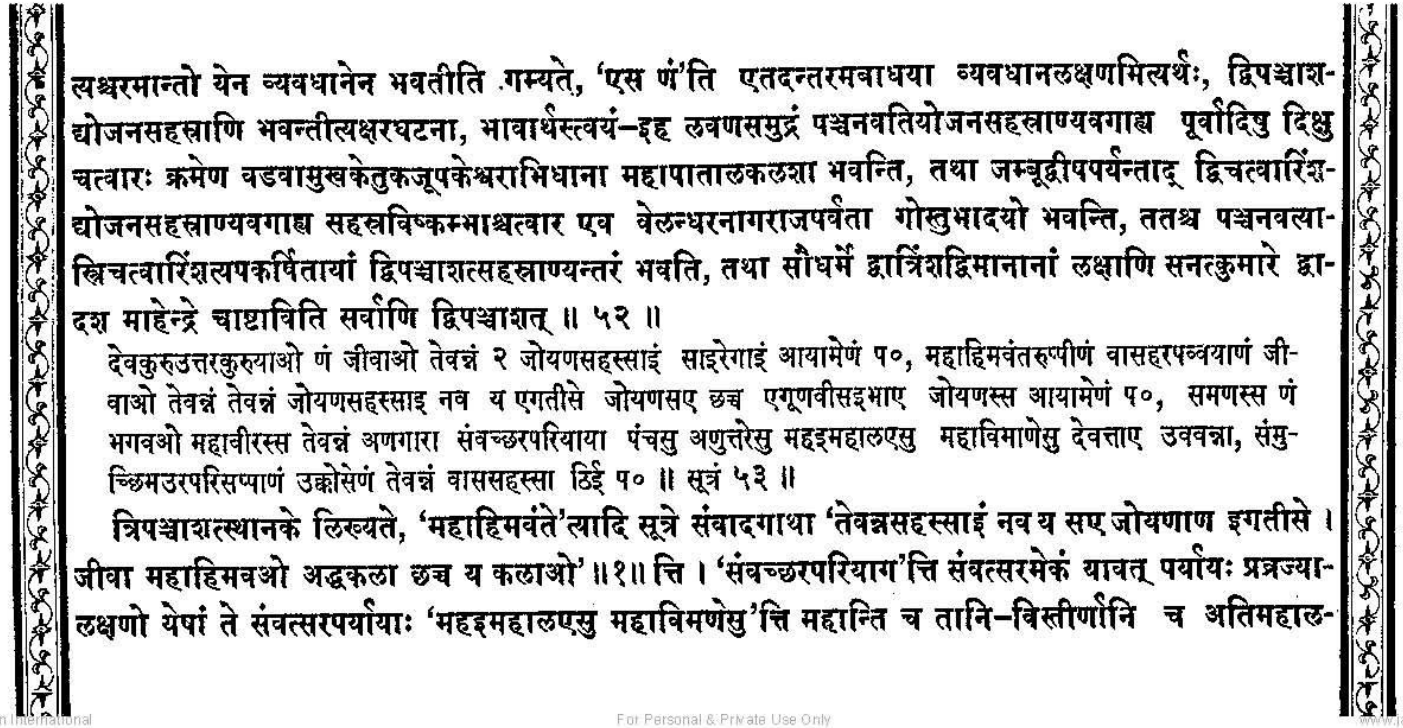
प्रत अनुक्रम [१३०]

गहणे णूमे कक्के कुरुए दंभे ३० कूडे जिम्हे किब्बिसे अणायरणया गूहणया वंचणया पलिकुंचणया सातिजोगे लोभे इच्छा ४० मुच्छा कंखा गेही तिण्हा भिज्जा अभिज्जा कामासा भोगासा जीवियासा मरणासा ५० नन्दी रागे ५२, गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस णं बावत्तं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, एवं दगभासस्स णं केउगस्स संखस्स जूयगस्स दगसीमस्स ईसरस्स, नाणावरणिज्जस्स नामस्स अंतरायस्स एतेसि णं तिण्हं कम्मपगडीणं बावत्तं उत्तरपयडीओ प०, सोहम्मसणंकुमारमाहिंदेसु तिसु कप्पेसु बावत्तं विमाणावाससयसहस्सा प० ॥ सूत्रं ५२

अथ द्विपञ्चाशत्स्थानकं, तत्र 'मोहणिज्जस्स कम्मस्स'त्ति इह मोहनीयकर्मणोऽवयवेषु चतुर्षु क्रोधादिकषायेषु मोहनीयत्वमुपचर्यावयवे समुदायोपचारन्यायेन मोहनीयस्येत्युक्तं, तत्रापि कषायसमुदायापेक्षया द्विपञ्चाशन्नामधेयानि न पुनरेकैकस्य कषायमात्रस्यैवेति, तत्र क्रोध इत्यादीनि दश नामानि क्रोधकषायस्य 'चंडिक्के'त्ति चाण्डिक्यं, तथा मानादीन्येकादश मानकषायस्य 'अत्तुक्कोसे'त्ति आत्मोत्कर्षः 'अवक्कोसे'त्ति अपकर्षः 'उन्नए'त्ति उन्नतः पाठान्तरेण 'उन्नामे'त्ति उन्नामः, तथा मायादीनि सप्तदश मायाकषायस्य 'णूमे'त्ति न्यवमं 'कक्के'त्ति कल्कं 'कुरुए'त्ति कुरुकं 'जिम्हे'त्ति जैह्मं, तथा लोभादीनि चतुर्दश लोभकषायस्य 'भिज्जा अभिज्ज'त्ति अभिध्यानमभिध्येत्यस्य तीतं पिधानमित्यादाविव वैकल्पिके अकारलोपे भिध्याऽभिध्या चेति शब्दभेदान्नामद्वयमिति, 'गोथूभे'त्यादि गोस्तुभस्य प्राच्यां लवणसमुद्रमध्यवर्त्तिनो वेलन्धरनागराजनिवासभूतपर्वतस्य पौरस्त्याच्चरमान्तादपसृत्य वडवामुखस्य महापातालकलशस्य पार्श्वा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीयकर्मण: द्विपंचाशत-पर्याय नामानि



त्यक्षरमान्तो येन व्यवधानेन भवतीति गम्यते, 'एस णं'ति एतदन्तरमबाधया व्यवधानलक्षणमित्यर्थः, द्विपञ्चाशद्योजनसहस्राणि भवन्तीत्यक्षरघटना, भावार्थस्त्वयं–इह लवणसमुद्रं पञ्चनवतियोजनसहस्राण्यवगाह्य पूर्वादिषु दिक्षु चत्वारः क्रमेण वडवामुखकेतुकजूपकेश्वराभिधाना महापातालकलशा भवन्ति, तथा जम्बूद्वीपपर्यन्ताद् द्विचत्वारिंशद्योजनसहस्राण्यवगाह्य सहस्रविष्कम्भाश्चत्वार एव वेलन्धरनागराजपर्वता गोस्तुभादयो भवन्ति, ततश्च पञ्चनवत्या-स्त्रिचत्वारिंशत्यपकर्षितायां द्विपञ्चाशत्सहस्राण्यन्तरं भवति, तथा सौधर्मे द्वात्रिंशद्विमानानां लक्षाणि सनत्कुमारे द्वादश माहेन्द्रे चाष्टाविति सर्वाणि द्विपञ्चाशत् ॥ ५२ ॥

देवकुरुउत्तरकुरुयाओ णं जीवाओ तेवन्नं २ जोयणसहस्साइं साइरेगाइं आयामेणं प०, महाहिमवंतरुप्पीणं वासहरपव्वयाणं जीवाओ तेवन्नं तेवन्नं जोयणसहस्साइ नव य एगतीसे जोयणसए छच्च एगूणवीसइभाए जोयणस्स आयामेणं प०, समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तेवन्नं अणगारा संवच्छरपरियाया पंचसु अणुत्तरेसु महइमहालएसु महाविमाणेसु देवत्ताए उववन्ना, संमुच्छिमउरपरिसप्पाणं उक्कोसेणं तेवन्नं वाससहस्सा ठिई प० ॥ सूत्रं ५३ ॥

त्रिपञ्चाशत्स्थानके लिख्यते, 'महाहिमवंते'त्यादि सूत्रे संवादगाथा 'तेवन्नसहस्साइं नव य सए जोयणाण इगतीसे । जीवा महाहिमवओ अद्धकला छच्च य कलाओ' ॥१॥ त्ति । 'संवच्छरपरियाग'त्ति संवत्सरमेकं यावत् पर्यायः प्रव्रज्यालक्षणो येषां ते संवत्सरपर्यायाः 'महइमहालएसु महाविमणेसु'त्ति महान्ति च तानि–विस्तीर्णानि च अतिमहाल-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५३]

प्रत अनुक्रम [१३१]

याश्च–अत्यन्तमुत्सवाश्रयभूतानि महातिमहालयास्तेषु महान्ति च तानि प्रशस्तानि विमानानि चेति विग्रहः एते चाप्रतीताः, अनुत्तरोपपातिकाङ्गे तु येऽधीयन्ते ते त्रयस्त्रिंशत् बहुवर्षपर्यायाश्चेति ॥ ५३ ॥

भरहेरवएसु णं वासेसु एगमेगाए उस्सप्पिणीए ओसप्पिणीए चउवन्नं २ उत्तमपुरिसा उप्पज्जिंसु वा ३, तं०–चउवीसं तित्थकरा बारस चक्कवट्टी नव बलदेवा नव वासुदेवा, अरहा णं अरिट्ठनेमी चउवन्नं राइंदियाइं छउमत्थपरियायं पाउणित्ता जिणे जाए केवली सव्वन्नू सव्वभावदरिसी, समणे भगवं महावीरे एगदिवसेणं एगनिसिज्जाए चउप्पन्नाइं वागरणाइं वागरित्था, अणंतस्स णं अरहओ चउपन्नं गणहरा होत्था ॥ सूत्रं ५४ ॥

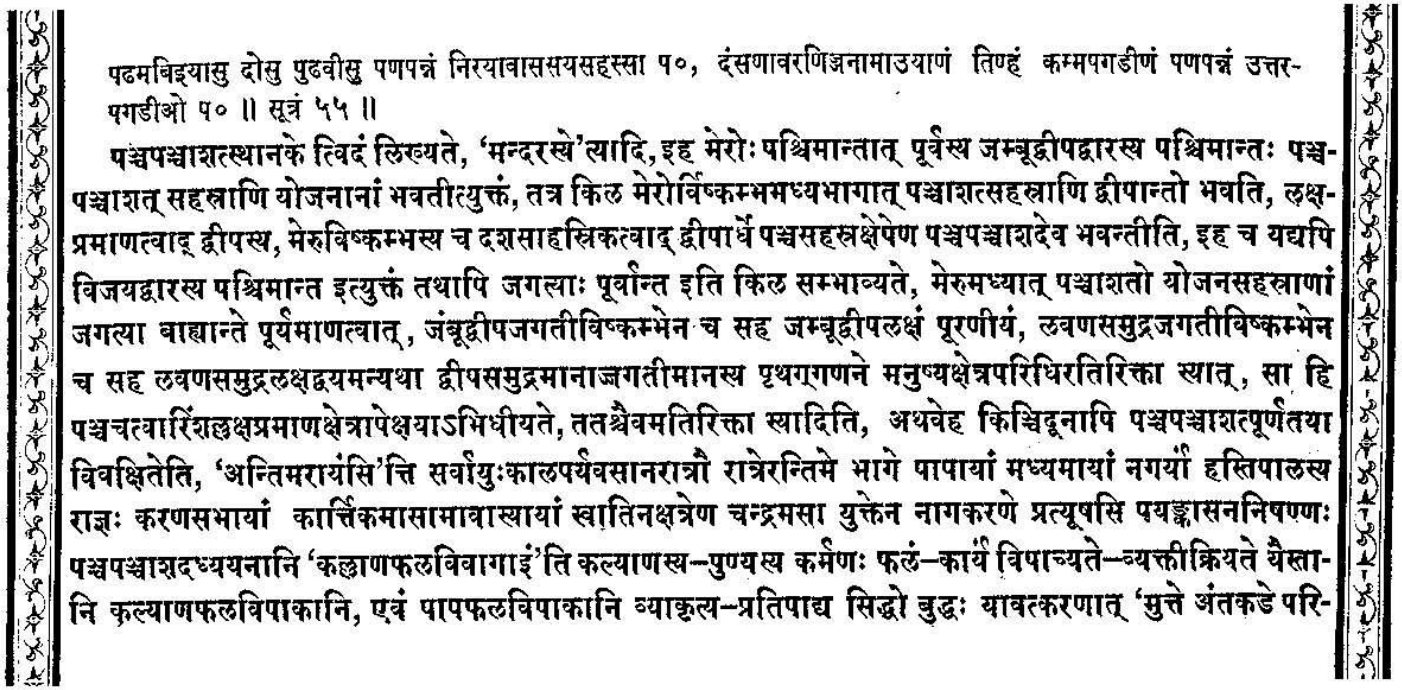
चतुष्पञ्चाशत्स्थानके लिख्यते, 'पाउणित्त'त्ति प्राप्य, 'एगणिसेज्जाए'त्ति एकेनासनपरिग्रहेण 'वागरणाइं'ति व्याक्रियन्ते–अभिधीयन्ते इति व्याकरणानि–प्रश्ने सति निर्वचनतयोच्यमानाः पदार्थाः 'वागरित्थ'त्ति व्याकृतवान् तानि चाप्रतीतानि, अनन्तनाथस्येह चतुष्पञ्चाशद्गणा गणधराश्चोक्ताः । आवश्यके तु पञ्चाशदुक्तास्तदिदं मतान्तरमिति ॥ ५४ ॥

मल्लिस्स णं अरहओ पणपन्नं वाससहस्साइं परमाउं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जावप्पहीणे, मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चच्छिमिल्लाओ चरमंताओ विजयदारस्स पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस णं पणपन्नं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, एवं चउद्दिसिंपि वेजयंतजयंतअपराजियंति, समणे भगवं महावीरे अंतिमराइयंसि पणपन्नं अज्झयणाइं कल्लाणफलविवागाइं पणपन्नं अज्झयणाइं पावफलविवागाइं वागरित्ता सिद्धे बुद्धे जावप्पहीणे ॥ सूत्रं ५५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५५]

प्रत अनुक्रम [१३३]



१३ सम०

पढमबिइयासु दोसु पुढवीसु पणपन्नं निरयावाससयसहस्सा प०, दंसणावरणिज्जनामाउयाणं तिण्हं कम्मपगडीणं पणपन्नं उत्तरपगडीओ प० ॥ सूत्रं ५५ ॥

पञ्चपञ्चाशत्स्थानके त्विदं लिख्यते, 'मन्दरस्से'त्यादि, इह मेरोः पश्चिमान्तात् पूर्वस्य जम्बूद्वीपद्वारस्य पश्चिमान्तः पञ्चपञ्चाशत् सहस्राणि योजनानां भवतीत्युक्तं, तत्र किल मेरोर्विष्कम्भमध्यभागात् पञ्चाशत्सहस्राणि द्वीपान्तो भवति, लक्षप्रमाणत्वाद् द्वीपस्य, मेरुविष्कम्भस्य च दशसाहस्रिकत्वाद् द्वीपार्धे पञ्चसहस्रक्षेपेण पञ्चपञ्चाशदेव भवन्तीति, इह च यद्यपि विजयद्वारस्य पश्चिमान्त इत्युक्तं तथापि जगत्याः पूर्वान्त इति किल सम्भाव्यते, मेरुमध्यात् पञ्चाशतो योजनसहस्राणां जगत्या बाह्यान्ते पूर्यमाणत्वात्, जंबूद्वीपजगतीविष्कम्भेन च सह जम्बूद्वीपलक्षं पूरणीयं, लवणसमुद्रजगतीविष्कम्भेन च सह लवणसमुद्रलक्षद्वयमन्यथा द्वीपसमुद्रमानाज्जगतीमानस्य पृथग्गणने मनुष्यक्षेत्रपरिधिरतिरिक्ता स्यात्, सा हि पञ्चचत्वारिंशल्लक्षप्रमाणक्षेत्रापेक्षयाऽभिधीयते, ततश्चैवमतिरिक्ता स्यादिति, अथवेह किञ्चिदूनापि पञ्चपञ्चाशत्पूर्णतया विवक्षितेति, 'अन्तिमरायंसि'त्ति सर्वायुःकालपर्यवसानरात्रौ रात्रेरन्तिमे भागे पापायां मध्यमायां नगर्यां हस्तिपालस्य राज्ञः करणसभायां कार्त्तिकमासामावास्यायां स्वातिनक्षत्रेण चन्द्रमसा युक्तेन नागकरणे प्रत्यूषसि पर्यङ्कासननिषण्णः पञ्चपञ्चाशदध्ययनानि 'कल्लाणफलविवागाइं'ति कल्याणस्य–पुण्यस्य कर्मणः फलं–कार्यं विपाच्यते–व्यक्तीक्रियते यैस्तानि कल्याणफलविपाकानि, एवं पापफलविपाकानि व्याकृत्य–प्रतिपाद्य सिद्धो बुद्धः यावत्करणात् 'मुत्ते अंतकडे परि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५५]

प्रत अनुक्रम [१३३]

निवुडे सव्वदुक्खप्पहीणे'त्ति दृश्यं। 'पढमे'त्यादि, प्रथमायां त्रिंशन्नरकलक्षाणि द्वितीयायां पञ्चविंशतिरिति पञ्चपञ्चाशत्। 'दंसणे'त्यादि, दर्शनावरणीयस्य नव प्रकृतयो नाम्नो द्विचत्वारिंशत् आयुषश्चतस्र इत्येवं पञ्चपञ्चाशदिति ॥ ५५ ॥

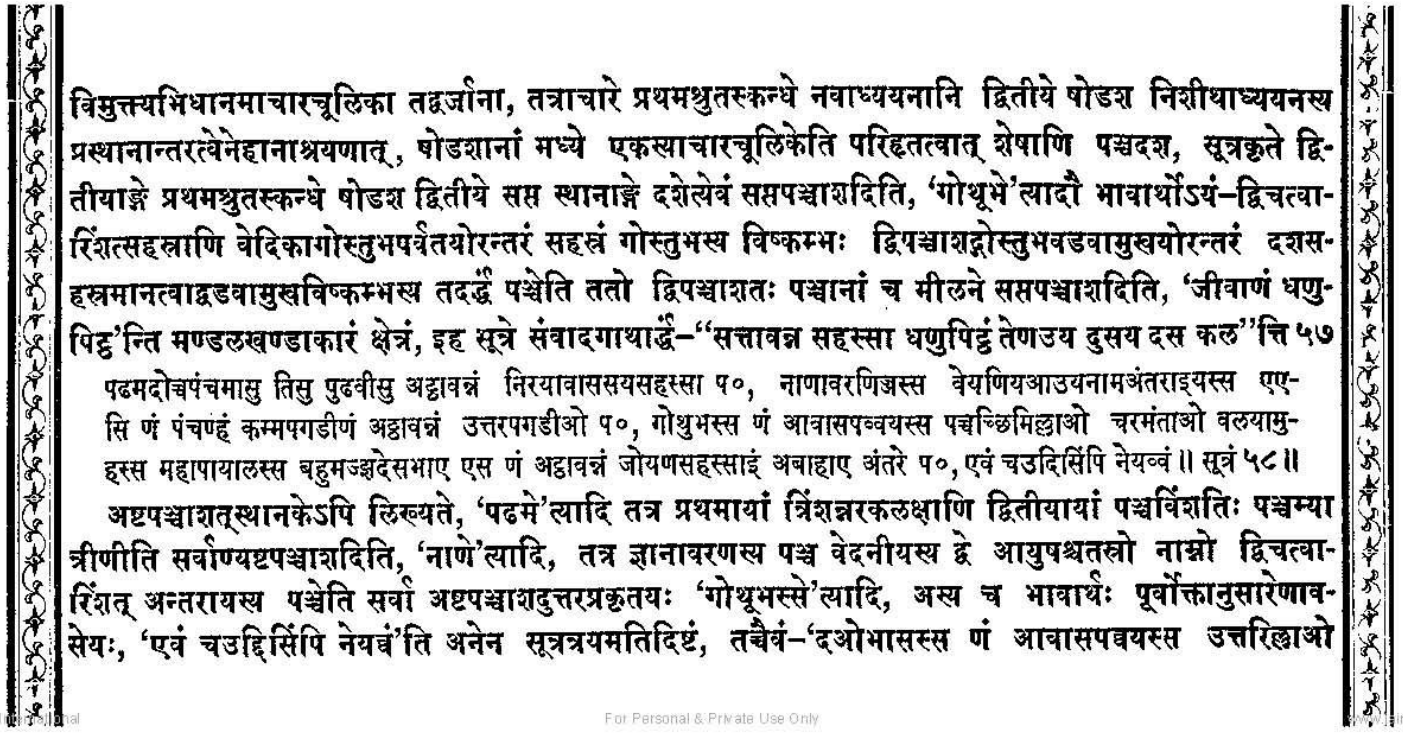
जंबुद्दीवे णं दीवे छप्पन्नं नक्खत्ता चंदेण सद्धिं जोगं जोइंसु वा ३, विमलस्स णं अरहओ छप्पन्नं गणा छप्पन्नं गणहरा होत्था ॥ सूत्रं ५६ ॥

अथ षट्पञ्चाशत्स्थानके लिख्यते, 'जम्बुद्दीवे'इत्यादि, तत्र चन्द्रद्वयस्य प्रत्येकमष्टाविंशतेर्भावात् षट्पञ्चाशन्नक्षत्राणि भवन्ति, विमलस्येह षट्पञ्चाशद्गणा गणधराश्चोक्ताः आवश्यके तु सप्तपञ्चाशदुच्यते तदिदं मतान्तरमिति ॥ ५६ ॥

तिण्हं गणिपिडगाणं आयारचूलियावज्जाण सत्तावन्नं अज्झयणा प० तं–आयारे सूयगडे ठाणे, गोथूभस्स णं आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं सत्तावन्नं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, एवं दगभासस्स केउयस्स य संखस्स य जूयस्स य दयसीमस्स ईसरस्स य, मल्लिस्स णं अरहओ सत्तावन्नं मणपज्जवनाणिसया होत्था, महाहिमवंतरूप्पीणं वासहरपव्वयाणं जीवाणं धणुपिट्ठं सत्तावन्नं २ जोयणसहस्साइं दोन्नि य तेणउए जोयणसए दस य एगूणवीसइभाए जोयणस्स परिक्खेवेणं प० ॥ सूत्रं ५७ ॥

अथ सप्तपञ्चाशत्स्थानके किमपि लिख्यते, 'गणिपिडगाणं'ति गणिनः–आचार्यस्य पिटकानीव पिटकानि सर्वस्वभाजनानीति गम्यते गणपिटकानि तेषां आचारस्य श्रुतस्कन्धद्वयरूपस्य प्रथमाङ्गस्य चूलिका–सर्वान्तिममध्ययनं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



विमुक्त्यभिधानमाचारचूलिका तद्वर्जाना, तत्राचारे प्रथमश्रुतस्कन्धे नवाध्ययनानि द्वितीये षोडश निशीथाध्ययनस्य प्रस्थानान्तरत्वेनेहानाश्रयणात्, षोडशानां मध्ये एकस्याचारचूलिकेति परिहृतत्वात् शेषाणि पञ्चदश, सूत्रकृते द्वितीयाङ्गे प्रथमश्रुतस्कन्धे षोडश द्वितीये सप्त स्थानाङ्गे दशेत्येवं सप्तपञ्चाशदिति, 'गोथूभे'त्यादौ भावार्थोऽयं–द्विचत्वारिंशत्सहस्राणि वेदिकागोस्तुभपर्वतयोरन्तरं सहस्रं गोस्तुभस्य विष्कम्भः द्विपञ्चाशद्गोस्तुभवडवामुखयोरन्तरं दशसहस्रमानत्वाद्वडवामुखविष्कम्भस्य तदर्द्धं पञ्चेति ततो द्विपञ्चाशतः पञ्चानां च मीलने सप्तपञ्चाशदिति, 'जीवाणं धणुपिट्ठ'न्ति मण्डलखण्डाकारं क्षेत्रं, इह सूत्रे संवादगाथार्द्धं–"सत्तावन्न सहस्सा धणुपिट्ठं तेणउय दुसय दस कल"त्ति ५७

पढमदोचपंचमासु तिसु पुढवीसु अट्ठावन्नं निरयावाससयसहस्सा प०, नाणावरणिज्जस्स वेयणियआउयनामअंतराइयस्स एसि णं पंचण्हं कम्मपगडीणं अट्ठावन्नं उत्तरपगडीओ प०, गोथुभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चच्छिमिल्लाओ चरमंताओ वलयामुहस्स महापायालस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं अट्ठावन्नं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, एवं चउदिसिंपि नेयव्वं ॥ सूत्रं ५८ ॥

अष्टपञ्चाशत्स्थानकेऽपि लिख्यते, 'पढमे'त्यादि तत्र प्रथमायां त्रिंशन्नरकलक्षाणि द्वितीयायां पञ्चविंशतिः पञ्चम्यां त्रीणीति सर्वाण्यष्टपञ्चाशदिति, 'नाणे'त्यादि, तत्र ज्ञानावरणस्य पञ्च वेदनीयस्य द्वे आयुषश्चतस्रो नाम्नो द्विचत्वारिंशत् अन्तरायस्य पञ्चेति सर्वा अष्टपञ्चाशदुत्तरप्रकृतयः 'गोथूभस्से'त्यादि, अस्य च भावार्थः पूर्वोक्तानुसारेणावसेयः, 'एवं चउद्दिसिंपि नेयव्वं'ति अनेन सूत्रत्रयमतिदिष्टं, तच्चैवं–'दओभासस्स णं आवासपव्वयस्स उत्तरिल्लाओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [५८]

प्रत अनुक्रम [१३६]

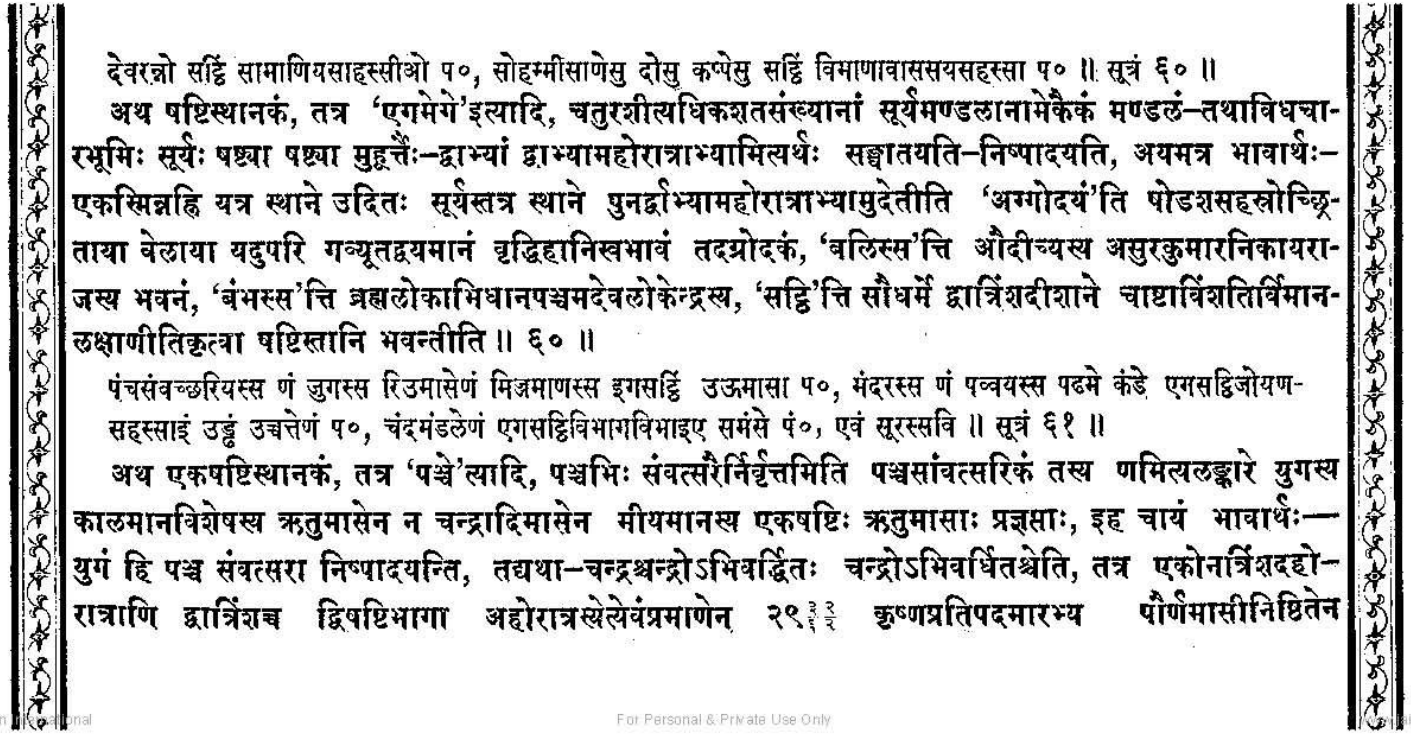
चरिमंताओ केउगस्स महापायालस्स बहुमज्झदेसभागे एस णं अट्ठावन्नं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे पन्नत्ते, एवं संखस्स आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरिमंताओ जूयगस्स महापातालस्स, एवं दगसीमस्स आवासपव्वयस्स दाहिणिल्लाओ चरिमंताओ ईसरस्स महापायालस्स'त्ति ॥ ५८ ॥

चंदस्स णं संवच्छरस्स एगमेगे उऊ एगूणसट्ठिं राइंदियाइं राइंदियग्गेणं प०, संभवे णं अरहा एगूणसट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं आगारमज्झे वसित्ता मुंडे जाव पव्वइए, मल्लिस्स णं अरहओ एगूणसट्ठिं ओहिनाणिसया होत्था ॥ सूत्रं ५९ ॥

अथैकोनषष्टिस्थानके लिख्यते, 'चंदस्स ण'मित्यादि, संवत्सरो ह्यनेकविधः स्थानाङ्गादिषूक्तः, तत्र यश्चन्द्रगतिमङ्गीकृत्य संवत्सरो विवक्ष्यते स चन्द्र एव, तत्र च द्वादश मासाः षट् च ऋतवो भवन्ति, तत्र चैकैक ऋतुरेकोनषष्टिरात्रिन्दिवानां रात्रिन्दिवाग्रेण भवति, कथं?, एकोनत्रिंशद्रात्रिंदिवानि द्वात्रिंशच्च षष्टिभागा अहोरात्रस्येत्येवंप्रमाणः कृष्णप्रतिपदमारभ्य पौर्णमासीपरिनिष्ठितः चन्द्रमासो भवति, द्वाभ्यां च ताभ्यामृतुर्भवति, तत एकोनषष्टिः अहोरात्राण्यसौ भवति, यच्चेह द्विषष्टिभागद्वयमधिकं तन्न विवक्षितं, सम्भवस्यैकोनषष्टिः पूर्वलक्षाणि गृहस्थपर्याय इहोक्तः, आवश्यके तु चतुःपूर्वाङ्गाधिका सोक्तेति ॥ ५९ ॥

एगमेगे णं मंडले सूरिए सट्ठिए सट्ठिए मुहुत्तेहिं संघाइए, लवणस्स णं समुद्दस्स सट्ठिं नागसाहस्सीओ अग्गोदयं धारंति, विमले णं अरहा सट्ठिं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, बलिस्स णं वइरोयणिंदस्स सट्ठिं सामाणियसाहस्सीओ प०, बंभस्स णं देविंदस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



देवरन्नो सट्ठिं सामाणियसाहस्सीओ प०, सोहम्मीसाणेसु दोसु कप्पेसु सट्ठिं विमाणावाससयसहस्सा प० ॥ सूत्रं ६० ॥

अथ षष्टिस्थानकं, तत्र 'एगमेगे'इत्यादि, चतुरशीत्यधिकशतसंख्यानां सूर्यमण्डलानामेकैकं मण्डलं–तथाविधचारभूमिः सूर्यः षष्ट्या षष्ट्या मुहूर्त्तैः–द्वाभ्यां द्वाभ्यामहोरात्राभ्यामित्यर्थः सङ्घातयति–निष्पादयति, अयमत्र भावार्थः–एकस्मिन्नहि यत्र स्थाने उदितः सूर्यस्तत्र स्थाने पुनर्द्वाभ्यामहोरात्राभ्यामुदेतीति 'अग्गोदयं'ति षोडशसहस्रोच्छ्रिताया वेलाया यदुपरि गव्यूतद्वयमानं वृद्धिहानिस्वभावं तदग्रोदकं, 'बलिस्स'त्ति औदीच्यस्य असुरकुमारनिकायराजस्य भवनं, 'बंभस्स'त्ति ब्रह्मलोकाभिधानपञ्चमदेवलोकेन्द्रस्य, 'सट्ठि'त्ति सौधर्मे द्वात्रिंशदीशाने चाष्टाविंशतिर्विमानलक्षाणीतिकृत्वा षष्टिस्तानि भवन्तीति ॥ ६० ॥

पंचसंवच्छरियस्स णं जुगस्स रिउमासेणं मिज्जमाणस्स इगसट्ठिं उऊमासा प०, मंदरस्स णं पव्वयस्स पढमे कंडे एगसट्ठिजोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, चंदमंडलेणं एगसट्ठिविभागविभाइए समंसे पं०, एवं सूरस्सवि ॥ सूत्रं ६१ ॥

अथ एकषष्टिस्थानकं, तत्र 'पञ्चे'त्यादि, पञ्चभिः संवत्सरैर्निर्वृत्तमिति पञ्चसांवत्सरिकं तस्य णमित्यलङ्कारे युगस्य कालमानविशेषस्य ऋतुमासेन न चन्द्रादिमासेन मीयमानस्य एकषष्टिः ऋतुमासाः प्रज्ञप्ताः, इह चायं भावार्थः—युगं हि पञ्च संवत्सरा निष्पादयन्ति, तद्यथा–चन्द्रश्चन्द्रोऽभिवर्द्धितः चन्द्रोऽभिवर्धितश्चेति, तत्र एकोनत्रिंशदहोरात्राणि द्वात्रिंशच्च द्विषष्टिभागा अहोरात्रस्येत्येवंप्रमाणेन २९$\frac{३२}{६२}$ कृष्णप्रतिपदमारभ्य पौर्णमासीनिष्ठितेन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रमासेन द्वादशमासपरिमाणश्चन्द्रसंवत्सरस्तस्य च प्रमाणमिदं–त्रीणि शतान्यहां चतुष्पञ्चाशदुत्तराणि द्वादश च द्विषष्टिभागा दिवसस्य ३५४$\frac{१२}{६२}$, तथा एकत्रिंशदहां एकविंशत्युत्तरं च शतं चतुर्विंशत्युत्तरशतभागानां दिवसस्येत्येवंप्रमाणोऽभिवर्द्धितमासो भवति, ३१$\frac{१२१}{१२४}$, एतेन च मासेन द्वादशमासप्रमाणोऽभिवर्द्धितसंवत्सरो भवति, स च प्रमाणेन त्रीणि शतान्यहां त्र्यशीत्यधिकानि चतुश्चत्वारिंशच्च द्विषष्टिभागा दिवसस्य ३८३$\frac{४४}{६२}$। तदेवं त्रयाणां चन्द्रसंवत्सराणां द्वयोश्चाभिवर्द्धितसंवत्सरयोरेकीकरणे जातानि [दिनानां] अष्टादश शतानि त्रिंशदुत्तराणि अहोरात्राणां १८३०, ऋतुमासश्च त्रिंशताऽहोरात्रैर्भवतीति त्रिंशता भागहारे लब्धा एकषष्टिः ऋतुमासा इति। 'मंदरस्से'त्यादि, इह मेरुर्नवनवतियोजनसहस्रप्रमाणो द्विधा विभक्तः, तत्र प्रथमो भाग एकषष्टिः सहस्राण्युक्तः द्वितीयस्तु अष्टत्रिंशत्स्थानकेऽष्टत्रिंशदिति प्रोक्तः, क्षेत्रसमासे तु कन्देन सह लक्षप्रमाणस्त्रिधा विभक्तः, तत्र प्रथमकाण्डं सहस्रं द्वितीयं त्रिषष्टिस्तृतीयं षट्त्रिंशदिति। 'चन्द्रमण्डले' चन्द्रविमानं णमित्यलङ्कृतौ 'एगसट्ठि'त्ति योजनस्यैकषष्टितमैर्भागैर्विभाजितं–विभागैर्व्यवस्थापितं समांशं–समविभागं प्रज्ञप्तं, न विषमांशं, योजनस्यैकषष्टिभागानां षट्पञ्चाशद्भागप्रमाणत्वात्तस्यावशिष्टस्य च भागस्याविद्यमानत्वादिति, 'एवं सूरस्सवि'त्ति एवं सूर्यस्यापि मण्डलं वाच्यं, अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागमात्रं हि तत् न चापरमंशान्तरं तस्याप्यस्तीति समांशतेति ॥ ६१ ॥

पंचसंवच्छरिए णं जुगे बासट्ठिं पुन्निमाओ बावट्ठिं अमावसाओ प०, वासुपुज्जस्स णं अरहओ बासट्ठिं गणा बासट्ठिं गणहरा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६२]

प्रत अनुक्रम [१४०]

होत्था, सुक्कपक्खस्स णं चंदे बासट्ठिं भागे दिवसे दिवसे परिवड्ढइ, ते चेव बहुलपक्खे दिवसे दिवसे परिहायइ, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु पढमे पत्थडे पढमावलियाए एगमेगाए दिसाए बासट्ठिं विमाणा प०, सव्वे वेमाणियाणं बासट्ठि विमाणपत्थडा पत्थडग्गेणं प० ॥ सूत्रं ६२ ॥

अथ द्विषष्टिस्थानकं, 'पञ्चे'त्यादि, तत्र युगे त्रयश्चन्द्रसंवत्सरा भवन्ति तेषु षट्त्रिंशत् पौर्णमास्यो भवन्ति, द्वौ चाभिवर्द्धितसंवत्सरौ भवतः, तत्र चाभिवर्द्धितसंवत्सरत्रयोदशभिश्चन्द्रमासैर्भवतीति तयोः षड्विंशतिः पौर्णमास्य इत्येवं द्विषष्टिस्ता भवन्ति इत्येवममावास्या अपीति । वासुपूज्यस्येह द्विषष्टिर्गणा गणधराश्चोक्ता आवश्यके तु षट्षष्टिरुक्तेति मतान्तरमिदमपीति, 'सुक्कपक्खस्से'त्यादि, शुक्लपक्षस्य सम्बन्धी चन्द्रो द्विषष्टिभागान् प्रतिदिनं वर्द्धते, एवं कृष्णपक्षे चन्द्रः परिहीयते, अयं चार्थः सूर्यप्रज्ञप्त्यामप्युक्तः, तथाहि–"किण्हं राहुविमाणं निच्चं चंदेण होइ अविरहियं । चउरंगुलमप्पत्तं हेट्ठा चंदस्स तं चरइ ॥ १ ॥ बावट्ठिं बावट्ठिं दिवसे २ य सुक्कपक्खस्स । जं परिवड्ढइ चंदो खवेइ तं चेव कालेण ॥ २ ॥ पन्नरसयभागेण य चंदं पन्नरसमेव तं चरइ । पण्णरसयभागेण य पुणोवि तं चेववक्कमइ ॥ ३ ॥ एवं वड्ढइ चंदो परिहाणी एव होइ चंदस्स । कालो वा जोण्हा वा एयणुभावेण चंदस्स ॥ ४ ॥ [कृष्णं राहुविमानं नित्यं चन्द्रेण भवत्यविरहितं । चतुरङ्गुलमप्राप्तमधस्ताच्चन्द्रस्य तच्चरति ॥ १ ॥ द्वाषष्टिं २ दिवसे २ च शुक्लपक्षस्य । परिवर्धते चन्द्रः क्षपयति तावदेव कृष्णेन ॥ २ ॥ पञ्चदशभागेन च चन्द्रं पञ्चदशमेव तत्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रस्य चारः वर्णनं

प्रत सूत्रांक [६२]

प्रत अनुक्रम [१४०]

चरति । पञ्चदशभागेन च पुनरपि तावदेवाक्रामति ॥३॥ एवं वर्धते चन्द्रः परिहाणिरेवं भवति चन्द्रस्य । कृष्णता वा ज्योत्स्ना वैतदनुभावेन चन्द्रस्य ॥ ४ ॥] तथा तत्रैवोक्तम्—"सोलसभागे काऊण उडुवई हायएत्थ पन्नरसं । तत्तियमेत्ते भागे पुणोवि परिवड्ढए जोण्हा ॥ १ ॥" इति । [षोडशभागान् कृत्वोडुपतिर्हीयतेऽथ पञ्चदश । तावन्मात्रान् भागान् पुनरपि परिवर्धते ज्योत्स्ना ॥ १ ॥] तदेवं भणितद्वयानुसारेणानुमीयते यथा चन्द्रमण्डलस्य एकत्रिंशदुत्तरनवशतभागविकल्पितस्य एकांशोऽवस्थित एवास्ते, शेषाः प्रतिदिवसं द्विषष्टिं द्विषष्टिं कृत्वा वर्द्धन्ते, ततः पञ्चदशे चन्द्रदिने सर्वे समुदिता भवन्ति, पुनस्तथैव हीयन्ते पञ्चदशे दिने एकावशेषा भवन्तीति वचनद्वयसामर्थ्यलभ्यं व्याख्यानमेतत्, जीवाभिगमे तु 'बावट्ठिं २' गाहा तथा 'पन्नरसतिभागेण' गाथा, एते गाथे एवं व्याख्याते–'बावट्ठिं' २ इत्यत्र द्विषष्टि २ र्भागानां दिवसे २ च प्रत्यहमित्यर्थः, शुक्लपक्षस्य सम्बन्धिनि यत् परिवर्द्धते चन्द्रश्चतुरः साधिकान् द्विषष्टिभागान् क्षपयति तदेव कालेनैतदेवाह–'पन्नरस' इत्यादिना, चन्द्रविमानं द्विषष्टिभागान् क्रियते ततः पञ्चदशभिर्भागोऽपह्रियते ततश्चत्वारो भागाः समधिका द्विषष्टिभागानां पञ्चदशभागेन लभ्यन्ते, अत उच्यते–पञ्चदशभागेन चोक्तलक्षणेन चन्द्रमधिकृत्य पञ्चदशैव दिवसांस्तद्राहुविमानं चरति, एवमपक्रामतीत्यपि भावनीयमिति, अत्रास्माभिर्यथादृष्टे लिखिते उपनीते बहुश्रुतैर्निर्णयः कार्य इति । [१ यद्येकमंशं दर्शयश्चन्द्रश्चरति एकमेव चांशं राहुश्चरति तदा प्रत्यहं द्वावंशावाच्छादनीयौ जायेते पञ्चदशभिश्च दिनैराच्छादितोऽप्यंशद्वयमवतिष्ठते तस्याप्यर्ध-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रस्य चारः वर्णनं

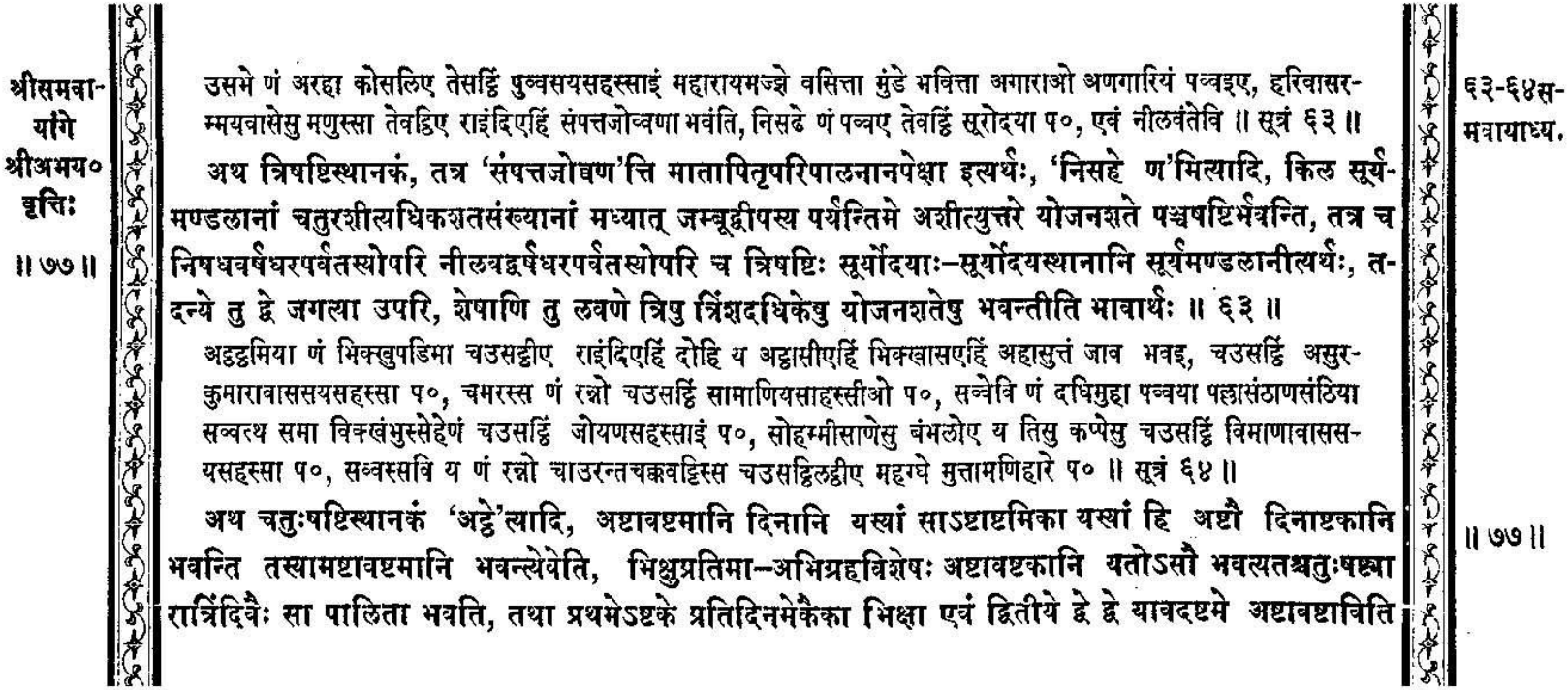
प्रत सूत्रांक [६२]

प्रत अनुक्रम [१४०]

माच्छादनीयमेकैकेनेति भाग एक आच्छाद्य इति द्विषष्टिभागीकरणं] 'सोहम्मी'त्यादि, तत्र सौधर्मेशानयोस्त्रयोदश विमानप्रस्तटा भवन्ति, सनत्कुमारमाहेन्द्रयोर्द्वादश ब्रह्मलोके षट् लान्तके पञ्च शुक्रे चत्वार एवं सहस्रारे आनतप्राणतयोश्चत्वार एवमारणाच्युतयोः ग्रैवेयकेष्वधस्तनमध्यमोपरिमेषु त्रयः २ अनुत्तरेष्वेक इति द्विषष्टिस्ते भवन्ति, एतेषां च मध्यभागे प्रत्येकमुडुविमानादिकाः सर्वार्थसिद्धविमानान्ता वृत्तविमानरूपा द्विषष्टिरेव विमानेन्द्रका भवन्ति, ततूपार्श्वतश्च पूर्वादिषु दिक्षु त्र्यस्रचतुरस्रवृत्तविमानक्रमेण विमानानामावलिका भवन्ति, तदेवं सौधर्मेशानयोः कल्पयोः प्रथमे प्रस्तटे–सर्वाधस्तन इत्यर्थः 'पढमावलियाए'त्ति प्रथमा उत्तरोत्तरावलिकापेक्षया आद्याश्चतस्र आवलिका यस्मिन् स प्रथमावलिकाकस्तत्र, अथवा प्रथमात् मूलभूताद्विमानेन्द्रकादारभ्य याऽसावावलिका–विमानानुपूर्वी तया अथवोत्तरोत्तरावलिकापेक्षया एकैकस्यां दिशि या प्रथमा–आद्यावलिका तस्यां 'पढमावलिय'त्ति पाठान्तरे तु उत्तरोत्तरावलिकापेक्षया एकैकस्यां दिशि या प्रथमावलिका सा द्विषष्टिर्द्विषष्टिर्विमानप्रमाणेन प्रज्ञप्तेति, 'एगमेगाए'त्ति उडुविमानाभिधानदेवेन्द्रकापेक्षया एकैकस्यां पूर्वादिकायां दिशि द्विषष्टिर्द्विषष्टिर्विमानानि प्रज्ञप्तानि, द्वितीयादिषु पुनः प्रस्तटेषु एकैकहान्या विमानानि भवन्ति यावद्विषष्टितमेऽनुत्तरसुरप्रस्तटे सर्वार्थसिद्धदेवेन्द्रकः पार्श्वे तदेकैकमेव भवतीति, तथा 'सव्वे'त्ति सर्वे वैमानिकानां देवविशेषाणां सम्बन्धिनो द्विषष्टिर्विमानप्रस्तटा-विमानप्रस्तराः प्रस्तटाग्रेण–प्रस्तटपरिमाणेन प्रज्ञप्ता इति ॥ ६२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चन्द्रस्य चारः वर्णनं



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ७७ ॥

उसभे णं अरहा कोसलिए तेसट्ठिं पुव्वसयसहस्साइं महारायमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, हरिवासरम्मयवासेसु मणुस्सा तेवट्ठिए राइंदिएहिं संपत्तजोव्वणा भवंति, निसढे णं पव्वए तेवट्ठिं सूरोदया प०, एवं नीलवंतेवि ॥ सूत्रं ६३ ॥

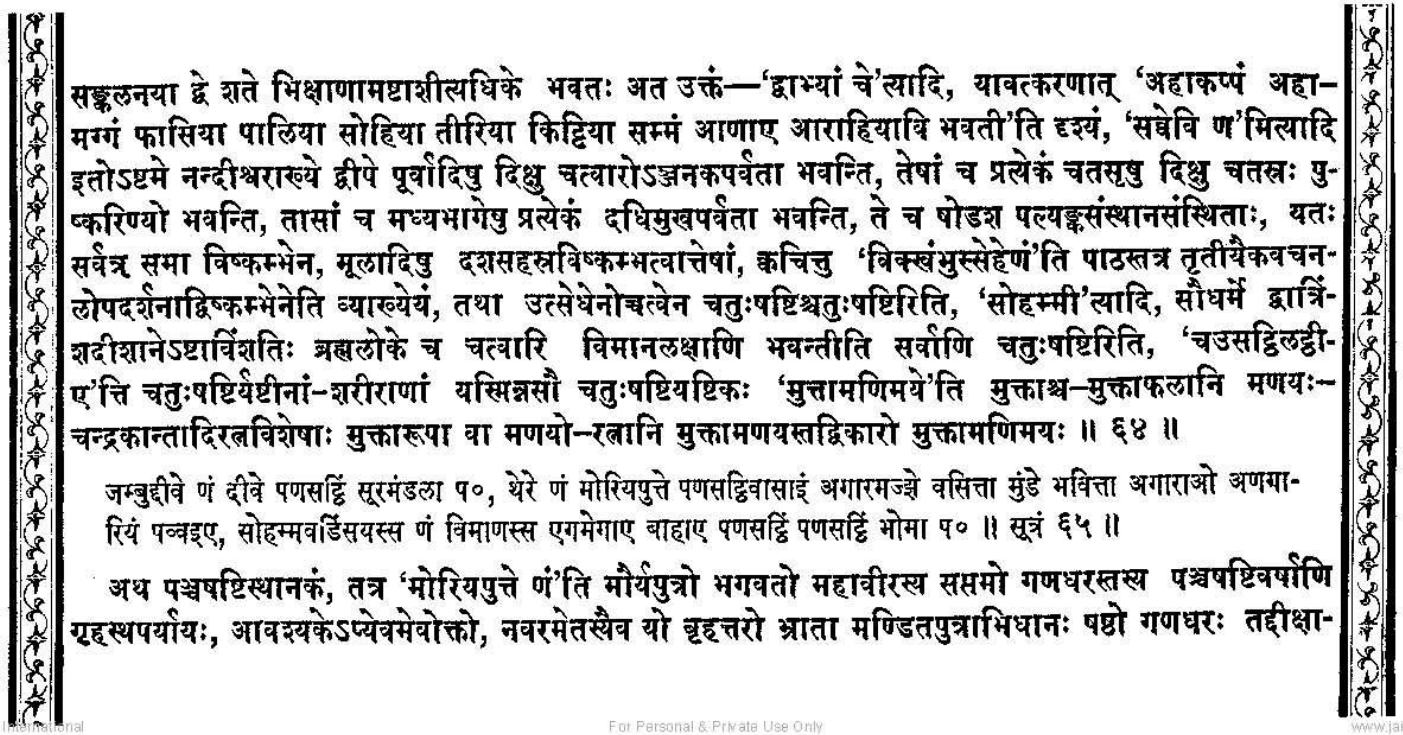
अथ त्रिषष्टिस्थानकं, तत्र 'संपत्तजोव्वण'त्ति मातापितृपरिपालनानपेक्षा इत्यर्थः, 'निसहे ण'मित्यादि, किल सूर्यमण्डलानां चतुरशीत्यधिकशतसंख्यानां मध्यात् जम्बूद्वीपस्य पर्यन्तिमे अशीत्युत्तरे योजनशते पञ्चषष्टिर्भवन्ति, तत्र च निषधवर्षधरपर्वतस्योपरि नीलवद्वर्षधरपर्वतस्योपरि च त्रिषष्टिः सूर्योदयाः–सूर्योदयस्थानानि सूर्यमण्डलानीत्यर्थः, तदन्ये तु द्वे जगत्या उपरि, शेषाणि तु लवणे त्रिषु त्रिंशदधिकेषु योजनशतेषु भवन्तीति भावार्थः ॥ ६३ ॥

अट्ठट्ठमिया णं भिक्खुपडिमा चउसट्ठीए राइंदिएहिं दोहि य अट्ठासीएहिं भिक्खासएहिं अहासुत्तं जाव भवइ, चउसट्ठिं असुरकुमारावाससयसहस्सा प०, चमरस्स णं रन्नो चउसट्ठिं सामाणियसाहस्सीओ प०, सव्वेवि णं दधिमुहा पव्वया पल्लासंठाणसंठिया सव्वत्थ समा विक्खंभुस्सेहेणं चउसट्ठिं जोयणसहस्साइं प०, सोहम्मीसाणेसु बंभलोए य तिसु कप्पेसु चउसट्ठिं विमाणावाससयसहस्सा प०, सव्वस्सवि य णं रन्नो चाउरन्तचक्कवट्टिस्स चउसट्ठिलट्ठीए महग्घे मुत्तामणिहारे प० ॥ सूत्रं ६४ ॥

अथ चतुःषष्टिस्थानकं 'अट्ठे'त्यादि, अष्टावष्टमानि दिनानि यस्यां साऽष्टाष्टमिका यस्यां हि अष्टौ दिनाष्टकानि भवन्ति तस्यामष्टावष्टमानि भवन्त्येवेति, भिक्षुप्रतिमा–अभिग्रहविशेषः अष्टावष्टकानि यतोऽसौ भवत्यतश्चतुःषष्ट्या रात्रिंदिवैः सा पालिता भवति, तथा प्रथमेऽष्टके प्रतिदिनमेकैका भिक्षा एवं द्वितीये द्वे द्वे यावदष्टमे अष्टावष्टाविति

६३-६४स-मवायाध्य. ॥ ७७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

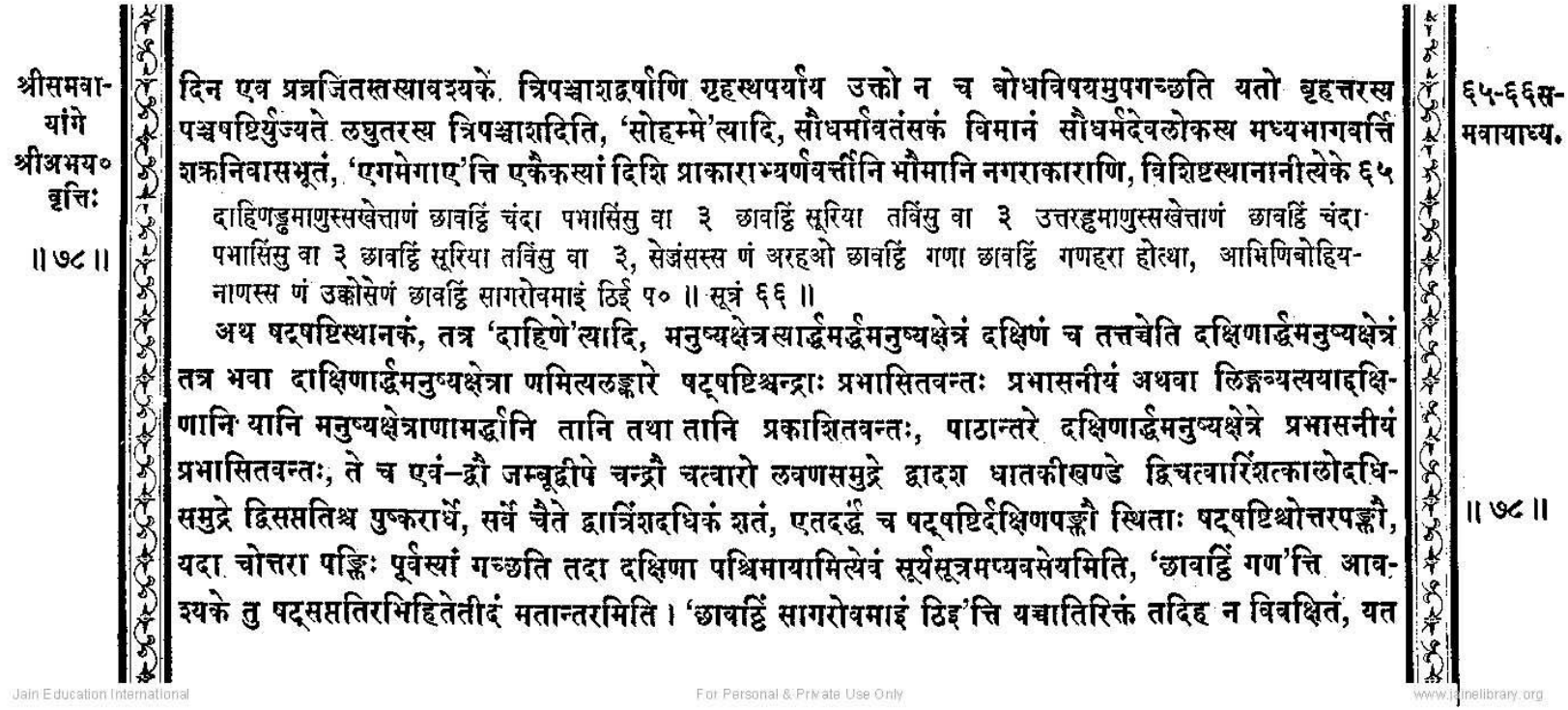


सङ्कलनया द्वे शते भिक्षाणामष्टाशीत्यधिके भवतः अत उक्तं—'द्वाभ्यां चे'त्यादि, यावत्करणात् 'अहाकप्पं अहामग्गं फासिया पालिया सोहिया तीरिया किट्टिया सम्मं आणाए आराहियावि भवती'ति दृश्यं, 'सव्वेवि ण'मित्यादि इतोऽष्टमे नन्दीश्वराख्ये द्वीपे पूर्वादिषु दिक्षु चत्वारोऽञ्जनकपर्वता भवन्ति, तेषां च प्रत्येकं चतसृषु दिक्षु चतस्रः पुष्करिण्यो भवन्ति, तासां च मध्यभागेषु प्रत्येकं दधिमुखपर्वता भवन्ति, ते च षोडश पल्यङ्कसंस्थानसंस्थिताः, यतः सर्वत्र समा विष्कम्भेन, मूलादिषु दशसहस्रविष्कम्भत्वात्तेषां, क्वचित्तु 'विक्खंभुस्सेहेणं'ति पाठस्तत्र तृतीयैकवचनलोपदर्शनाद्विष्कम्भेनेति व्याख्येयं, तथा उत्सेधेनोच्चत्वेन चतुःषष्टिश्चतुःषष्टिरिति, 'सोहम्मी'त्यादि, सौधर्मे द्वात्रिंशदीशानेऽष्टाविंशतिः ब्रह्मलोके च चत्वारि विमानलक्षाणि भवन्तीति सर्वाणि चतुःषष्टिरिति, 'चउसट्ठिलट्ठीए'त्ति चतुःषष्टिर्यष्टीनां-शरीराणां यस्मिन्नसौ चतुःषष्टियष्टिकः 'मुत्तामणिमये'ति मुक्ताश्च-मुक्ताफलानि मणयः-चन्द्रकान्तादिरत्नविशेषाः मुक्तारूपा वा मणयो-रत्नानि मुक्तामणयस्तद्विकारो मुक्तामणिमयः ॥ ६४ ॥

जम्बुद्दीवे णं दीवे पणसट्ठिं सूरमंडला प०, थेरे णं मोरियपुत्ते पणसट्ठिवासाइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, सोहम्मवडिंसयस्स णं विमाणस्स एगमेगाए बाहाए पणसट्ठिं पणसट्ठिं भोमा प० ॥ सूत्रं ६५ ॥

अथ पञ्चषष्टिस्थानकं, तत्र 'मोरियपुत्ते णं'ति मौर्यपुत्रो भगवतो महावीरस्य सप्तमो गणधरस्तस्य पञ्चषष्टिवर्षाणि गृहस्थपर्यायः, आवश्यकेऽप्येवमेवोक्तो, नवरमेतस्यैव यो बृहत्तरो भ्राता मण्डितपुत्राभिधानः षष्ठो गणधरः तद्दीक्षा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ७८ ॥

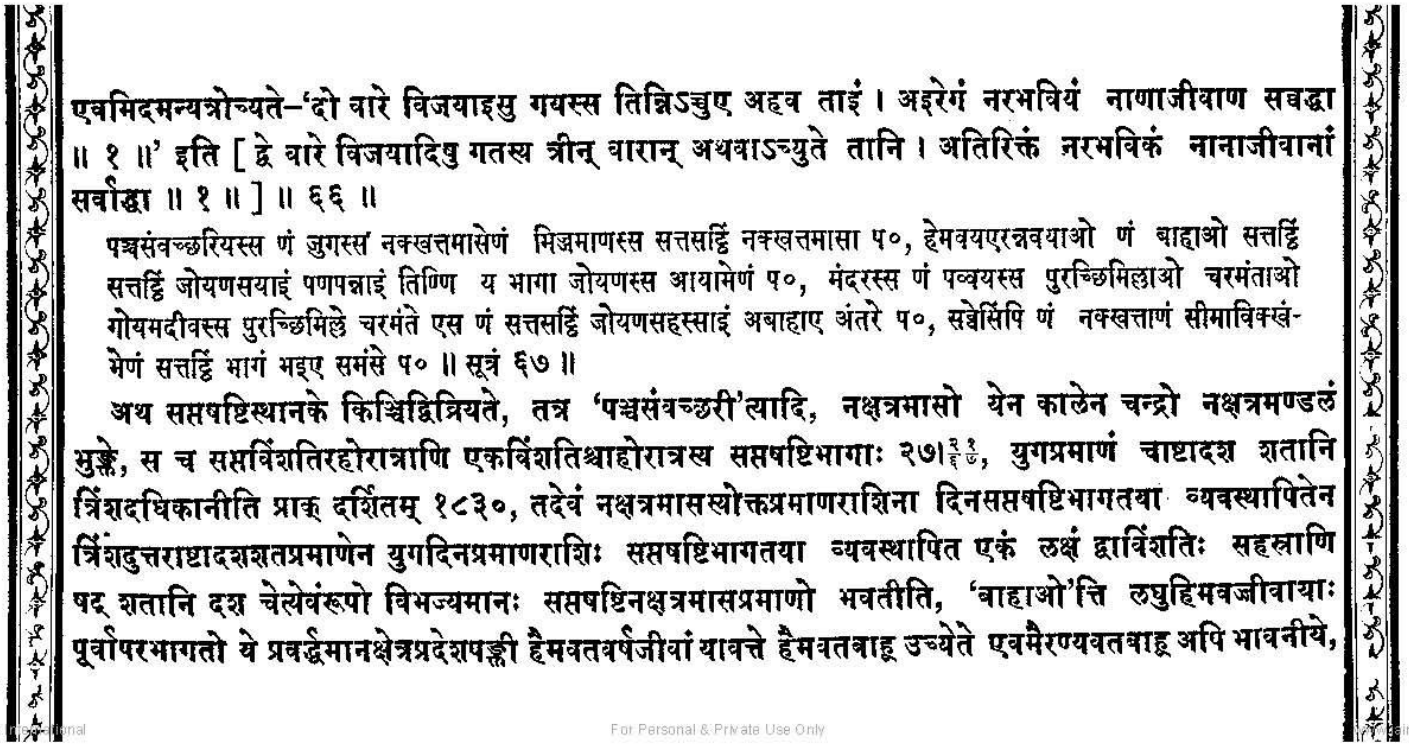
दिन एव प्रव्रजितस्तस्यावश्यके त्रिपञ्चाशद्वर्षाणि गृहस्थपर्याय उक्तो न च बोधविषयमुपगच्छति यतो बृहत्तरस्य पञ्चषष्टिर्युज्यते लघुतरस्य त्रिपञ्चाशदिति, 'सोहम्मे'त्यादि, सौधर्मावतंसकं विमानं सौधर्मदेवलोकस्य मध्यभागवर्त्ति शक्रनिवासभूतं, 'एगमेगाए'त्ति एकैकस्यां दिशि प्राकाराभ्यर्णवर्त्तीनि भौमानि नगराकाराणि, विशिष्टस्थानानीत्येके ६५

दाहिणड्ढमाणुस्सखेत्ताणं छावट्ठिं चंदा पभासिंसु वा ३ छावट्ठिं सूरिया तविंसु वा ३ उत्तरड्ढमाणुस्सखेत्ताणं छावट्ठिं चंदा पभासिंसु वा ३ छावट्ठिं सूरिया तविंसु वा ३, सेज्जंसस्स णं अरहओ छावट्ठिं गणा छावट्ठिं गणहरा होत्था, आभिणिबोहियनाणस्स णं उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं ठिई प० ॥ सूत्रं ६६ ॥

अथ षट्षष्टिस्थानकं, तत्र 'दाहिणे'त्यादि, मनुष्यक्षेत्रस्यार्द्धमर्द्धमनुष्यक्षेत्रं दक्षिणं च तत्तचेति दक्षिणार्द्धमनुष्यक्षेत्रं तत्र भवा दाक्षिणार्द्धमनुष्यक्षेत्रा णमित्यलङ्कारे षट्षष्टिश्चन्द्राः प्रभासितवन्तः प्रभासनीयं अथवा लिङ्गव्यत्ययाद्दक्षिणानि यानि मनुष्यक्षेत्राणामर्द्धानि तानि तथा तानि प्रकाशितवन्तः, पाठान्तरे दक्षिणार्द्धमनुष्यक्षेत्रे प्रभासनीयं प्रभासितवन्तः, ते च एवं–द्वौ जम्बूद्वीपे चन्द्रौ चत्वारो लवणसमुद्रे द्वादश धातकीखण्डे द्विचत्वारिंशत्कालोदधिसमुद्रे द्विसप्ततिश्च पुष्करार्धे, सर्वे चैते द्वात्रिंशदधिकं शतं, एतदर्द्धं च षट्षष्टिर्दक्षिणपङ्क्तौ स्थिताः षट्षष्टिश्चोत्तरपङ्क्तौ, यदा चोत्तरा पङ्क्तिः पूर्वस्यां गच्छति तदा दक्षिणा पश्चिमायामित्येवं सूर्यसूत्रमप्यवसेयमिति, 'छावट्ठिं गण'त्ति आवश्यके तु षट्सप्ततिरभिहितेतीदं मतान्तरमिति। 'छावट्ठिं सागरोवमाइं ठिइ'त्ति यचातिरिक्तं तदिह न विवक्षितं, यत

६५-६६स-मवायाध्य. ॥ ७८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



एवमिदमन्यत्रोच्यते–'दो वारे विजयाइसु गयस्स तिन्निऽच्चुए अहव ताइं। अइरेगं नरभवियं नाणाजीवाण सवद्धा ॥ १ ॥' इति [द्वे वारे विजयादिषु गतस्य त्रीन् वारान् अथवाऽच्युते तानि। अतिरिक्तं नरभविकं नानाजीवानां सर्वाद्धा ॥ १ ॥] ॥ ६६ ॥

पञ्चसंवच्छरियस्स णं जुगस्स नक्खत्तमासेणं मिज्जमाणस्स सत्तसट्ठिं नक्खत्तमासा प०, हेमवयएरन्नवयाओ णं बाहाओ सत्तट्ठिं सत्तट्ठिं जोयणसयाइं पणपन्नाइं तिण्णि य भागा जोयणस्स आयामेणं प०, मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोयमदीवस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं सत्तसट्ठिं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, सव्वेसिंपि णं नक्खत्ताणं सीमाविक्खंभेणं सत्तट्ठिं भागं भइए समंसे प० ॥ सूत्रं ६७ ॥

अथ सप्तषष्टिस्थानके किञ्चिद्विधियते, तत्र 'पञ्चसंवच्छरी'त्यादि, नक्षत्रमासो येन कालेन चन्द्रो नक्षत्रमण्डलं भुङ्क्ते, स च सप्तविंशतिरहोरात्राणि एकविंशतिश्चाहोरात्रस्य सप्तषष्टिभागाः २७|$\frac{21}{67}$, युगप्रमाणं चाष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानीति प्राक् दर्शितम् १८३०, तदेवं नक्षत्रमासस्योक्तप्रमाणराशिना दिनसप्तषष्टिभागतया व्यवस्थापितेन त्रिंशदुत्तराष्टादशशतप्रमाणेन युगदिनप्रमाणराशिः सप्तषष्टिभागतया व्यवस्थापित एकं लक्षं द्वाविंशतिः सहस्राणि षट् शतानि दश चेत्येवंरूपो विभज्यमानः सप्तषष्टिनक्षत्रमासप्रमाणो भवतीति, 'बाहाओ'त्ति लघुहिमवज्जीवायाः पूर्वापरभागतो ये प्रवर्द्धमानक्षेत्रप्रदेशपङ्क्ती हैमवतवर्षजीवां यावत्ते हैमवतबाहू उच्येते एवमैरण्यवतबाहू अपि भावनीये,

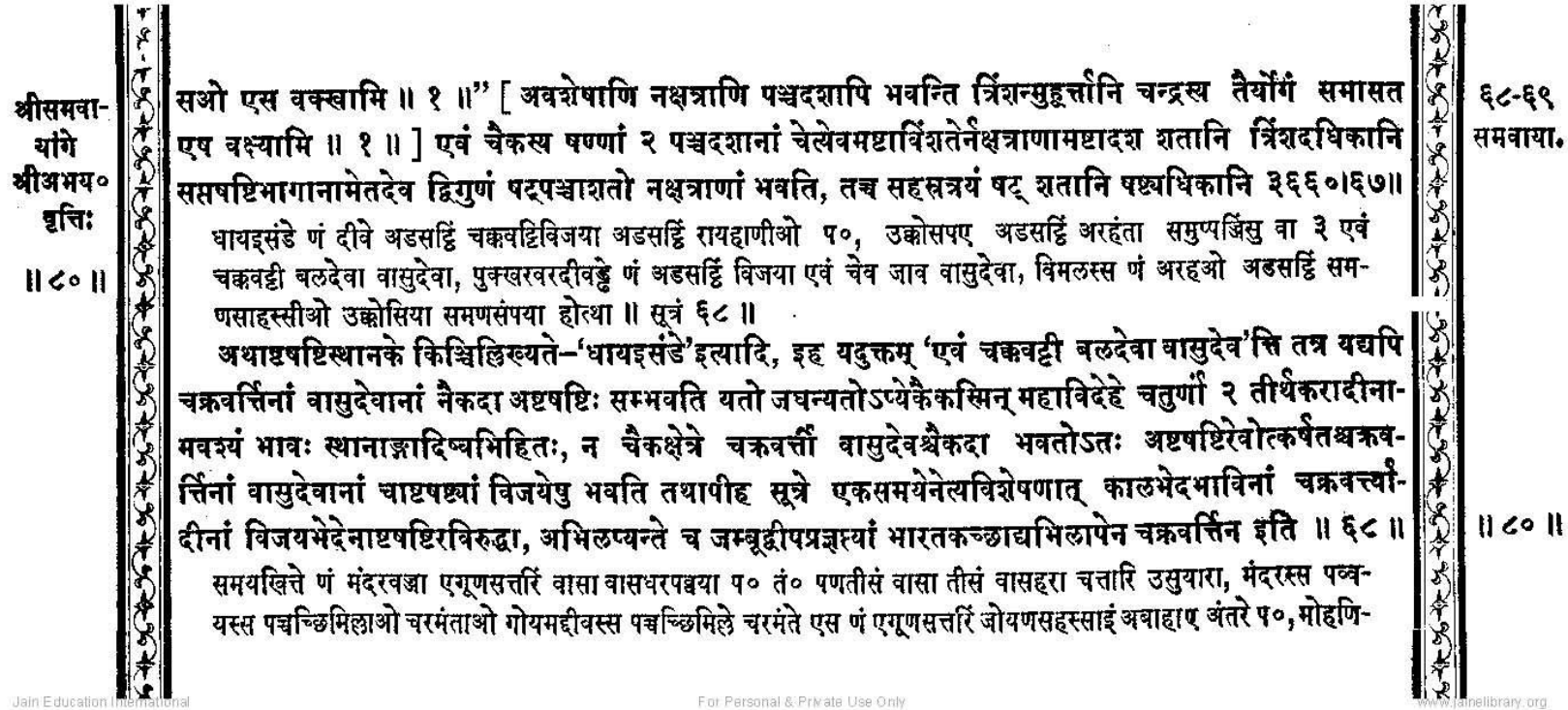
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इह प्रमाणसंवादः–'बाहा सत्तट्ठिसए पणपन्ने तिन्नि य कलाओ'त्ति कला-एकोनविंशतिभागः, एतच्च बाहुप्रमाणं हैमवतधनुःपृष्ठात् 'चत्तारि सत्त सया अडतीससहस्स दस कला य धणुं'स्येवंलक्षणात् ३८७४०।$\frac{१०}{१९}$ हिमवद्धनुःपृष्ठे 'धणुपिट्ठ कलचउक्कं पणवीससहस्स दुसय तीसहिय'न्त्येवंलक्षणे २५२३०।$\frac{४}{१९}$ अपनीते यच्छेषं तदर्द्धीकृतं सद्धवतीति, आयामेन–दैर्घ्येणेति । 'मंदरस्से'त्यादि, मेरोः पूर्वान्ताज्जम्बूद्वीपोऽपरस्यां दिशि जगति बाह्यांतपर्यवसानः पञ्चपञ्चाशद्योजनसहस्राणि तावदस्ति, ततः परं द्वादशयोजनसहस्राण्यतिक्रम्य लवणसमुद्रमध्ये गौतमद्वीपाभिधानो द्वीपोऽस्ति तमधिकृत्य सूत्रार्थः संभवति, पञ्चपञ्चाशतो द्वादशानां च सप्तषष्टित्वभावात्, यद्यपि सूत्रपुस्तकेषु गौतमशब्दो न दृश्यते तथाप्यसौ दृश्यः, जीवाभिगमादिषु लवणसमुद्रे गौतमचन्द्ररविद्वीपान् विना द्वीपान्तरस्याश्रूयमाणत्वादिति । 'सव्वेसिंपि ण'मित्यादि, सर्वेषामपि णमित्यलङ्कारे नक्षत्राणां सीमाविष्कम्भः–पूर्वापरतश्चन्द्रस्य नक्षत्रभुक्तिक्षेत्रविस्तारः नक्षत्रेणाहोरात्रभोग्यक्षेत्रस्य सप्तषष्ट्या भागैर्भाजितो–विभक्तः समांशः–समच्छेदः प्रज्ञप्तः, भागान्तरेण तु भज्यमानस्य नक्षत्रसीमाविष्कम्भस्य विषमच्छेदना भवति, भागान्तरेण न भक्तुं शक्यते इत्यर्थः, तथाहि–नक्षत्रेणाहोरात्रगम्यस्य क्षेत्रस्य सप्तषष्टिभागीकृतस्यैकविंशतिर्भागा अभिजिन्नक्षत्रस्य क्षेत्रतः सीमाविष्कम्भो भवति, एतावति क्षेत्रे चन्द्रेण सह तस्य योगो व्यपदिश्यत इत्यर्थः, तथा तस्यामेवैकविंशतौ त्रिंशन्मुहूर्त्तत्वादहोरात्रस्य त्रिंशता गुणितायां ६३० सप्तषष्ट्या हृतभागायां यल्लब्धं तत्कालसीमा भवति, चन्द्रेण सह तस्य योगकालः इत्यर्थः, सा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

च नव मुहूर्त्ताः सप्तविंशतिश्च सप्तषष्टिभागाः ९।२७, आह च—"अभिइस्स चंदजोगो सत्तट्ठिं खण्डिए अहोरत्ते । भागाओ एक्कवीसं स होंति अहिगा नव मुहुत्ता ॥ १ ॥" इति, [अभिजिति चन्द्रयोगः सप्तषष्ट्या खण्डितेऽहोरात्रे । भागास्त्वेकविंशतिः स भवन्ति नवमुहूर्त्ताधिकाः ॥ १ ॥] क्षेत्रतः कालतस्तथा शतभिषग्भरण्यार्द्राश्लेषास्वातिज्येष्ठानां त्रयस्त्रिंशत्सप्तषष्टिभागास्तद्भागार्द्धं च क्षेत्रसीमाविष्कम्भो भवति, तस्यामेव सार्द्धत्रयस्त्रिंशति त्रिंशता गुणितायां १००५ सप्तषष्ट्या हृतभागायां यल्लब्धं तदेषां कालसीमा, तच्च पञ्चदश मुहूर्त्ताः, आह च—"सयभिसया भरणीओ अद्दा अस्सेस साइ जेट्ठा य । एए छण्णक्खत्ता पन्नरसमुहुत्तसंजोगा ॥ १ ॥" इति [शतभिषक् भरणी आर्द्रा अश्लेषा स्वातिर्ज्येष्ठा च । एतानि षड् नक्षत्राणि पञ्चदशमुहूर्त्तसंयोगानि ॥१॥] तथोत्तरात्रयः पुनर्वसुरोहिणीविशाखानां सप्तषष्टिभागानां शतं तद्भागार्द्धं च क्षेत्रसीमाविष्कम्भः भवति, तथा तस्मिन्नेव त्रिंशद्गुणिते ३०१५ तथैव हृतभागे यल्लब्धं तदेषां कालसीमा भवति, सा च पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ता इति, आह च—"तिन्नेव उत्तराइं पुणवसूरोहिणी विसाहा य । एए छन्नक्खत्ता, पणयालमुहुत्तसंजोगा ॥१॥" इति [तिस्र एवोत्तराः पुनर्वसू रोहिणी विशाखा च । एतानि षड् नक्षत्राणि पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तानि ॥ १ ॥] शेषाणां पञ्चदशानां नक्षत्राणां सप्तषष्टिरेव सप्तषष्टिभागानां क्षेत्रसीमाविष्कम्भो भवति, तस्यां च तथैव गुणितायां २०१० हृतभागायां च यल्लब्धं तत्कालसीमा, तच्च त्रिंशन्मुहूर्त्ताः, आह च—"अवसेसा नक्खत्ता पन्नरसवि हुंति तीसइमुहुत्ता । चंदस्स तेहिं जोगो समा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ८० ॥

सओ एस वक्खामि ॥ १ ॥" [अवशेषाणि नक्षत्राणि पञ्चदशापि भवन्ति त्रिंशन्मुहूर्त्तानि चन्द्रस्य तैर्योगं समासत एष वक्ष्यामि ॥ १ ॥] एवं चैकस्य षण्णां २ पञ्चदशानां चेत्येवमष्टाविंशतेर्नक्षत्राणामष्टादश शतानि त्रिंशदधिकानि सप्तषष्टिभागानामेतदेव द्विगुणं षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां भवति, तच्च सहस्रत्रयं षट् शतानि षष्ट्यधिकानि ३६६०।६७॥

धायइसंडे णं दीवे अडसट्ठिं चक्कवट्टिविजया अडसट्ठिं रायहाणीओ प०, उक्कोसपए अडसट्ठिं अरहंता समुप्पज्जिंसु वा ३ एवं चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा, पुक्खरवरदीवड्ढे णं अडसट्ठिं विजया एवं चेव जाव वासुदेवा, विमलस्स णं अरहओ अडसट्ठिं समणसाहस्सीओ उक्कोसिया समणसंपया होत्था ॥ सूत्रं ६८ ॥

अथाष्टषष्टिस्थानके किञ्चिल्लिख्यते–'धायइसंडे'इत्यादि, इह यदुक्तम् 'एवं चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेव'त्ति तत्र यद्यपि चक्रवर्त्तिनां वासुदेवानां नैकदा अष्टषष्टिः सम्भवति यतो जघन्यतोऽप्येकैकस्मिन् महाविदेहे चतुर्णां २ तीर्थकरादीनामवश्यं भावः स्थानाङ्गादिष्वभिहितः, न चैकक्षेत्रे चक्रवर्त्ती वासुदेवश्चैकदा भवतोऽतः अष्टषष्टिरेवोत्कर्षतश्चक्रवर्त्तिनां वासुदेवानां चाष्टषष्ट्यां विजयेषु भवति तथापीह सूत्रे एकसमयेनेत्यविशेषणात् कालभेदभाविनां चक्रवर्त्त्यादीनां विजयभेदेनाष्टषष्टिरविरुद्धा, अभिलप्यन्ते च जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यां भारतकच्छाद्यभिलापेन चक्रवर्त्तिन इति ॥ ६८ ॥

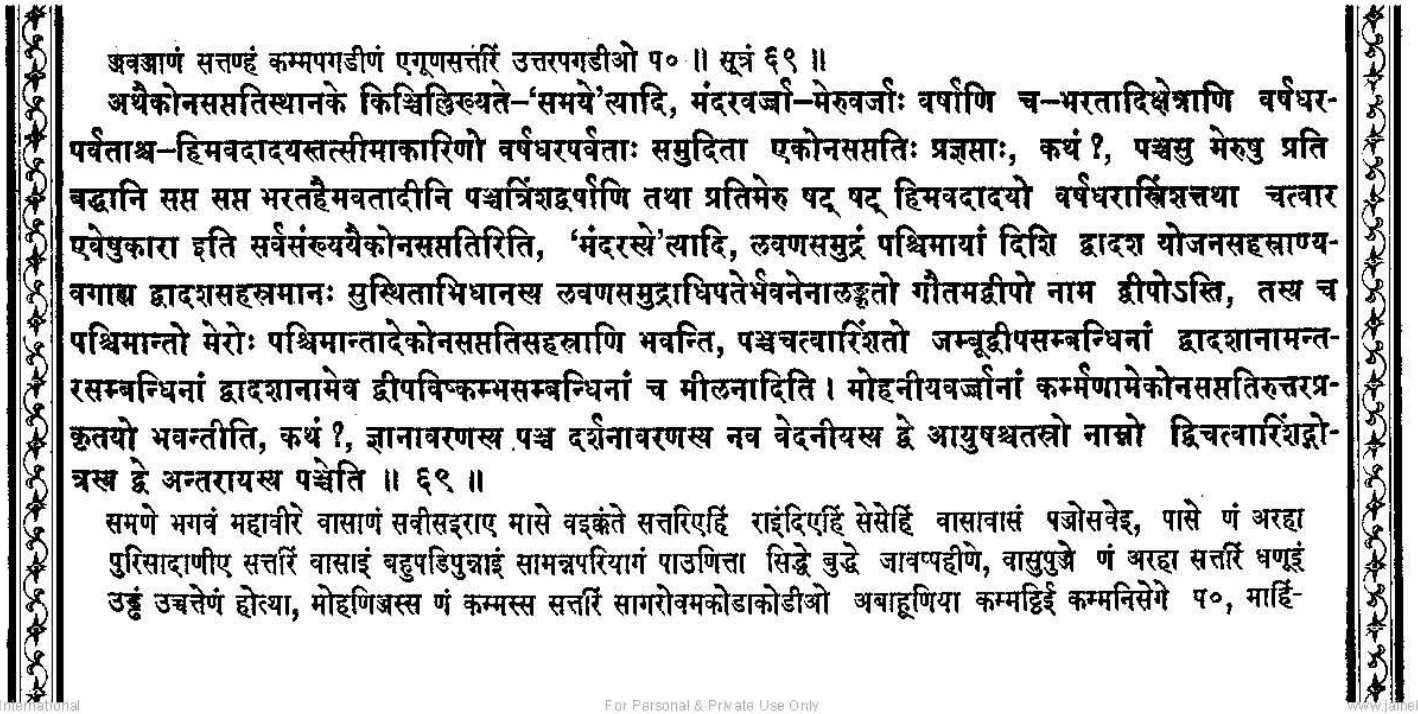
समयखित्ते णं मंदरवज्जा एगूणसत्तरिं वासा वासधरपव्वया प० तं० पणतीसं वासा तीसं वासहरा चत्तारि उसुयारा, मंदरस्स पव्वयस्स पच्चच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोयमद्दीवस्स पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस णं एगूणसत्तरिं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, मोहणि-

६८-६९ समवाया. ॥ ८० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [६९]

प्रत अनुक्रम [१४७]



अवज्ञाणं सत्तण्हं कम्मपगडीणं एगूणसत्तरिं उत्तरपगडीओ प० ॥ सूत्रं ६९ ॥

अथैकोनसप्ततिस्थानके किञ्चिल्लिख्यते–'समये'त्यादि, मंदरवर्जा–मेरुवर्जाः वर्षाणि च–भरतादिक्षेत्राणि वर्षधरपर्वताश्च–हिमवदादयस्तत्सीमाकारिणो वर्षधरपर्वताः समुदिता एकोनसप्ततिः प्रज्ञप्ताः, कथं ?, पञ्चसु मेरुषु प्रतिबद्धानि सप्त सप्त भरतहैमवतादीनि पञ्चत्रिंशद्वर्षाणि तथा प्रतिमेरु षट् षट् हिमवदादयो वर्षधराख्रिंशत्तथा चत्वार एवेषुकारा इति सर्वसंख्ययैकोनसप्ततिरिति, 'मंदरस्से'त्यादि, लवणसमुद्रं पश्चिमायां दिशि द्वादश योजनसहस्राण्यवगाह्य द्वादशसहस्रमानः सुस्थिताभिधानस्य लवणसमुद्राधिपतेर्भवनेनालङ्कृतो गौतमद्वीपो नाम द्वीपोऽस्ति, तस्य च पश्चिमान्तो मेरोः पश्चिमान्तादेकोनसप्ततिसहस्राणि भवन्ति, पञ्चचत्वारिंशतो जम्बूद्वीपसम्बन्धिनां द्वादशानामन्तरसम्बन्धिनां द्वादशानामेव द्वीपविष्कम्भसम्बन्धिनां च मीलनादिति। मोहनीयवर्जानां कर्म्मणामेकोनसप्ततिरुत्तरप्रकृतयो भवन्तीति, कथं ?, ज्ञानावरणस्य पञ्च दर्शनावरणस्य नव वेदनीयस्य द्वे आयुषश्चतस्रो नाम्नो द्विचत्वारिंशद्गोत्रस्य द्वे अन्तरायस्य पञ्चेति ॥ ६९ ॥

समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसइराए मासे वइक्कंते सत्तरिएहिं राइंदिएहिं सेसेहिं वासावासं पज्जोसवेइ, पासे णं अरहा पुरिसादाणीए सत्तरिं वासाइं बहुपडिपुन्नाइं सामन्नपरियागं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे जावप्पहीणे, वासुपुज्जे णं अरहा सत्तरिं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, मोहणिज्जस्स णं कम्मस्स सत्तरिं सागरोवमकोडाकोडीओ अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मनिसेगे प०, मार्हि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

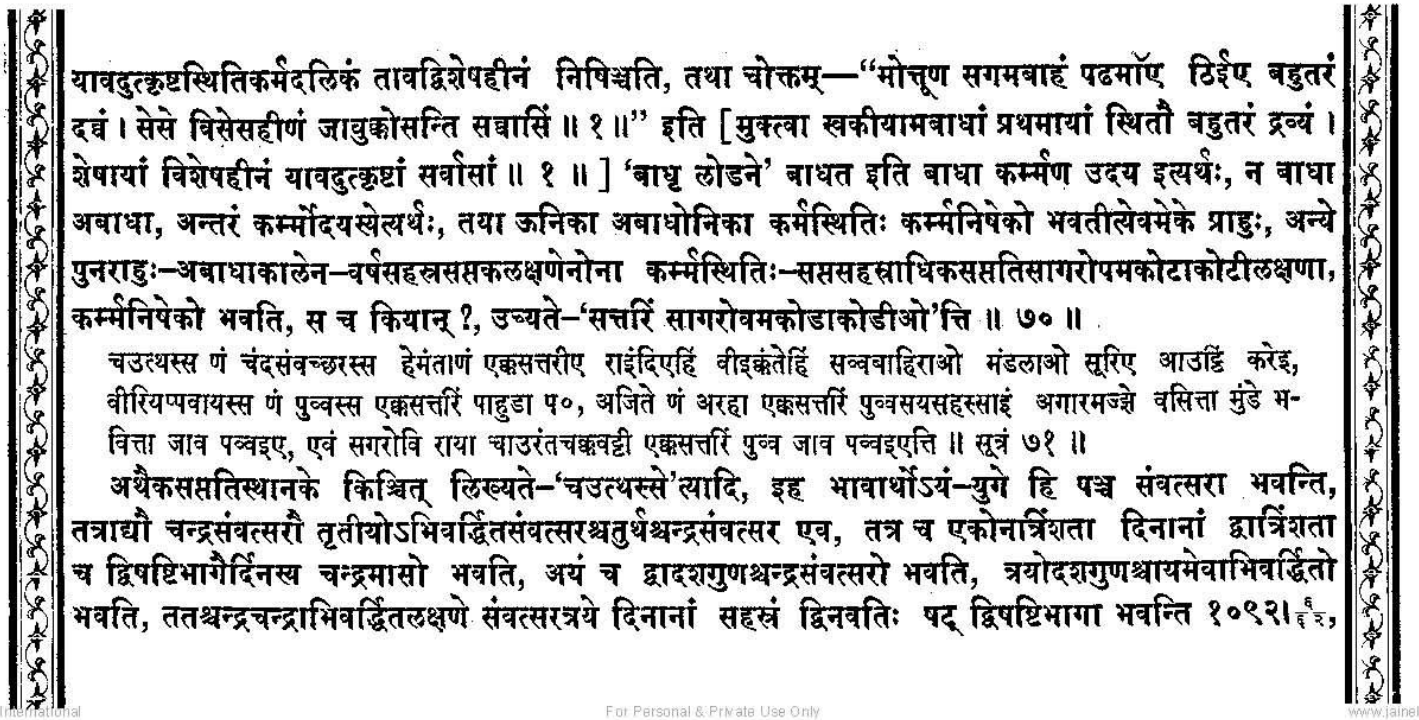
प्रत सूत्रांक [७०]

प्रत अनुक्रम [१४८]

दस्स णं देविंदस्स देवरन्नो सत्तरिं सामाणियसाहस्सीओ प० ॥ सूत्रं ७० ॥

अथ सप्ततिस्थानके किमपि लिख्यते–'समणे'इत्यादि, वर्षाणां–चतुर्मासप्रमाणस्य वर्षाकालस्य सविंशतिरात्रे-विंशतिदिवसाधिके मासे व्यतिक्रान्ते पञ्चाशति दिनेष्वतीतेष्वित्यर्थः सप्तत्यां च रात्रिदिनेषु शेषेषु भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यामित्यर्थः, वर्षास्वावासो वर्षावासः-वर्षावस्थानं 'पज्जोसवेइ'त्ति परिवसति सर्वथा वासं करोति, पञ्चाशति प्राक्तनेषु दिवसेषु तथाविधवसत्यभावादिकारणे स्थानान्तरमप्याश्रयति भाद्रपदशुक्लपञ्चम्यां तु वृक्षमूलादावपि निवसतीति हृदयमिति, 'पुरिसादाणीय'त्ति पुरुषाणामादानीयः-उपादेयः पुरुषादानीयः 'अबाहूणिया कम्मट्ठिई कम्मणिसेगे पण्णत्ते'त्ति इह किलात्मा अविशिष्टमेव कर्म्मपुद्गलोपादानं कृत्वा उत्तरकालं ज्ञानावरणीयादिकर्म्मणां स्वं स्वमबाधाकालं मुक्त्वा ज्ञानावरणीयादिप्रकृतिविभागतया अनाभोगिकेन वीर्येणोदयसहितं तद्दलिकं निषिञ्चति, उदययोग्यं रचयतीत्यर्थः, अतो द्विविधा स्थितिः–कर्म्मत्वापादनमात्ररूपा अनुभवरूपा च, यतः स्थितिः–अवस्थानं तेन भावेनाप्रच्यवनं, तत्र कर्म्मत्वापादनरूपां तामधिकृत्य सप्ततिः सागरोपमकोटीकोट्यः, अनुभवरूपां त्वधिकृत्य सप्तवर्षसहस्रोनेति, तत्र 'अबाह'त्ति किमुक्तं भवति ?–बन्धावलिकाया आरभ्य यावत्सप्तवर्षसहस्राणि तावत्कर्म न बाधते, नोदयं यातीत्यर्थः, ततोऽनन्तरसमये कर्मदलिकं पूर्वनिषिक्तं उदये प्रवेशयति, निषेको नाम ज्ञानावरणादिकर्म्मदलिकस्यानुभवनार्थं रचना, तच्च प्रथमसमये बहुकं निषिञ्चति द्वितीयसमये विशेषहीनं तृतीयसमये विशेषहीनमेवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



यावदुत्कृष्टस्थितिकर्मदलिकं तावद्विशेषहीनं निषिञ्चति, तथा चोक्तम्—"मोत्तूण सगमबाहं पढमाॅए ठिईए बहुतरं दव्वं। सेसे विसेसहीणं जावुक्कोसन्ति सव्वासिं ॥ १ ॥" इति [मुक्त्वा स्वकीयामबाधां प्रथमायां स्थितौ बहुतरं द्रव्यं। शेषायां विशेषहीनं यावदुत्कृष्टां सर्वासां ॥ १ ॥] 'बाधृ लोडने' बाधत इति बाधा कर्म्मण उदय इत्यर्थः, न बाधा अबाधा, अन्तरं कर्म्मोदयस्येत्यर्थः, तया ऊनिका अबाधोनिका कर्मस्थितिः कर्म्मनिषेको भवतीत्येवमेके प्राहुः, अन्ये पुनराहुः—अबाधाकालेन—वर्षसहस्रसप्तकलक्षणेनोना कर्म्मस्थितिः—सप्तसहस्राधिकसप्ततिसागरोपमकोटाकोटीलक्षणा, कर्म्मनिषेको भवति, स च कियान्?, उच्यते—'सत्तरिं सागरोवमकोडाकोडीओ'त्ति ॥ ७० ॥

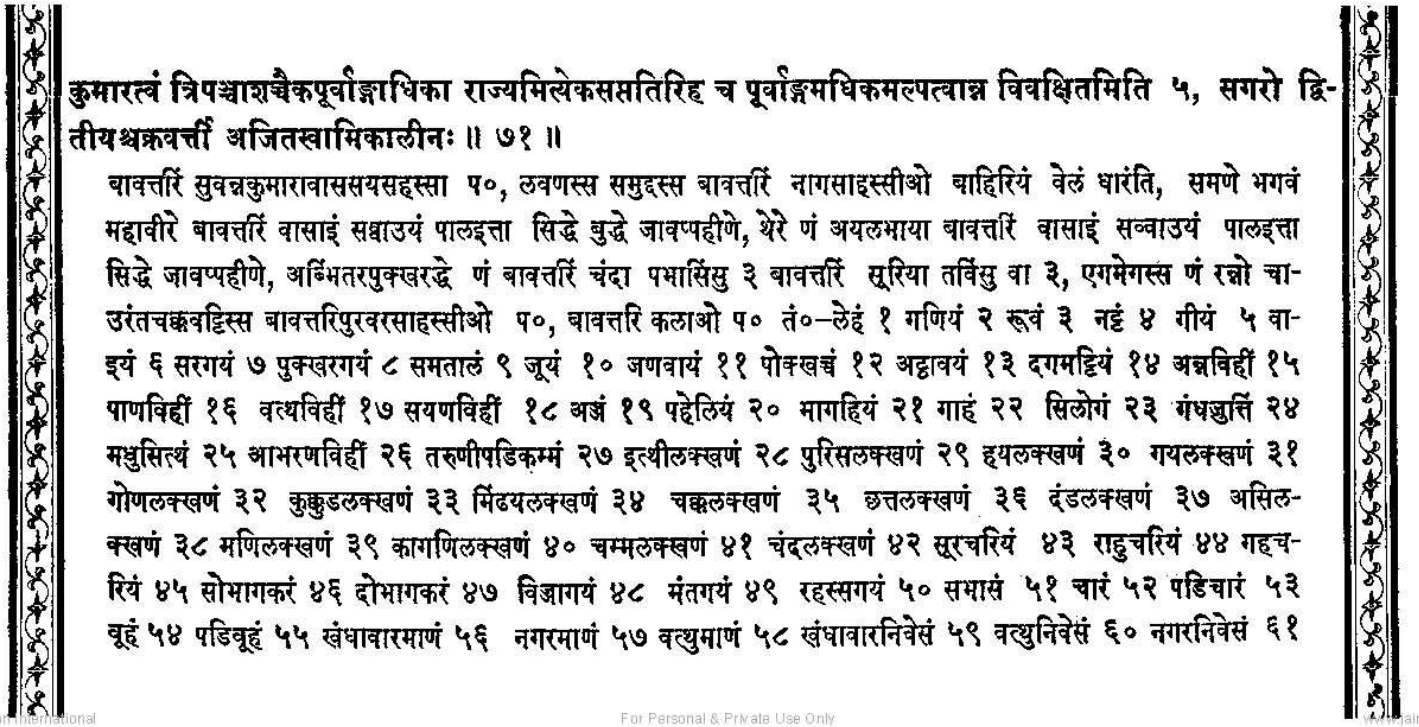
चउत्थस्स णं चंदसंवच्छरस्स हेमंताणं एक्कसत्तरीए राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं सव्वबाहिराओ मंडलाओ सूरिए आउट्टिं करेइ, वीरियप्पवायस्स णं पुव्वस्स एक्कसत्तरिं पाहुडा प०, अजिते णं अरहा एक्कसत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए, एवं सगरोवि राया चाउरंतचक्कवट्टी एक्कसत्तरिं पुव्व जाव पव्वइएत्ति ॥ सूत्रं ७१ ॥

अथैकसप्ततिस्थानके किञ्चित् लिख्यते—'चउत्थस्से'त्यादि, इह भावार्थोऽयं—युगे हि पञ्च संवत्सरा भवन्ति, तत्राद्यौ चन्द्रसंवत्सरौ तृतीयोऽभिवर्द्धितसंवत्सरश्चतुर्थश्चन्द्रसंवत्सर एव, तत्र च एकोनात्रिंशता दिनानां द्वात्रिंशता च द्विषष्टिभागैर्दिनस्य चन्द्रमासो भवति, अयं च द्वादशगुणश्चन्द्रसंवत्सरो भवति, त्रयोदशगुणश्चायमेवाभिवर्द्धितो भवति, ततश्चन्द्रचन्द्राभिवर्द्धितलक्षणे संवत्सरत्रये दिनानां सहस्रं द्विनवतिः षट् द्विषष्टिभागा भवन्ति १०९२।६२,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा आदित्यसंवत्सरे दिनानां शतत्रयं षट्षष्टिश्च भवन्ति, तत्त्रितये च सहस्रमष्टनवत्यधिकं भवति, इह च किल चन्द्रयुगमादित्ययुगं चाषाढ्यामेकं पूर्यतेऽपरञ्च श्रावणकृष्णप्रतिपदि आरभ्यते, एवं चादित्ययुगसंवत्सरत्रयापेक्षया चन्द्रयुगसंवत्सरत्रयं पञ्चभिर्दिनैः षट्पञ्चाशता च दिनद्विषष्टिभागैरूनं भवतीतिकृत्वा आदित्ययुगसंवत्सरत्रयं श्रावणकृष्णपक्षस्य चन्द्रदिनषट्के साधिके पूर्यते युगसंवत्सरत्रयं त्वाषाढ्यां, ततश्च श्रावणकृष्णपक्षसप्तमदिनादारभ्य दक्षिणायनेनादित्यश्चरन् चन्द्रयुगचतुर्थसंवत्सरस्य चतुर्थमासान्तभूतायामष्टादशोत्तरशततमदिनभूतायां कार्तिक्यां द्वादशोत्तरशततमे स्वकीयमण्डले चरति, ततश्चान्यान्येकसप्ततिर्मण्डलानि तावत्स्वेव दिनेषु मार्गशीर्षादीनां चतुर्णां हैमन्तमासानां सम्बन्धिषु चरति, ततो द्विसप्ततितमे दिने माघमासे बहुलपक्षत्रयोदशीलक्षणे सूर्य आवृत्तिं करोति, दक्षिणायनान्निवृत्त्योत्तरायणेन चरतीत्यर्थः, उक्ता च ज्योतिष्करण्डके पञ्चसु युगसंवत्सरेषूत्तरायणतिथयः क्रमेणैवं यदुत– "बहुलस्स सत्तमीए १ सूरो सुद्धस्स तो चउत्थीए २। बहुलस्स य पाडिवए ३ बहुलस्स य तेरसीदिवसे ४ ॥ १ ॥ सुद्धस्स य दसमीए ५ पवत्तए पंचमी उ आउट्टी। एआ आउट्टीओ सवाओ माघमासंमि ॥ २ ॥" त्ति, दक्षिणायनदिनानि चैवं–"पढमा बहुलपडिवए १ बीया बहुलस्स तेरसी दिवसे २। सुद्धस्स य दसमीए ३ बहुलस्स य सत्तमीए ४ उ ॥ १ ॥ सुद्धस्स चउत्थीए पवत्तए पंचमी उ आउट्टी। एया आउट्टीओ सवाओ सावणे मासे ॥ २ ॥" त्ति। 'विरियपुवस्स'त्ति तृतीयपूर्वस्य 'पाहुड'त्ति प्राभृतमधिकारविशेषः। 'अजिए'इत्यादि, तस्य हि अष्टादश पूर्वलक्षाणि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



कुमारत्वं त्रिपञ्चाशच्चैकपूर्वाङ्गाधिका राज्यमित्येकसप्ततिरिह च पूर्वाङ्गमधिकमल्पत्वान्न विवक्षितमिति ५, सगरो द्वितीयश्चक्रवर्त्ती अजितस्वामिकालीनः ॥ ७१ ॥

बावत्तरिं सुवन्नकुमारावाससयसहस्सा प०, लवणस्स समुद्दस्स बावत्तरिं नागसाहस्सीओ बाहिरियं वेलं धारंति, समणे भगवं महावीरे बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जावप्पहीणे, थेरे णं अयलभाया बावत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जावप्पहीणे, अब्भिंतरपुक्खरद्धे णं बावत्तरिं चंदा पभासिंसु ३ बावत्तरिं सूरिया तविंसु वा ३, एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स बावत्तरिपुरवरसाहस्सीओ प०, बावत्तरि कलाओ प० तं०–लेहं १ गणियं २ रूवं ३ नट्टं ४ गीयं ५ वाइयं ६ सरगयं ७ पुक्खरगयं ८ समतालं ९ जूयं १० जणवायं ११ पोक्खच्चं १२ अट्ठावयं १३ दगमट्टियं १४ अन्नविहीं १५ पाणविहीं १६ वत्थविहीं १७ सयणविहीं १८ अज्जं १९ पहेलियं २० मागहियं २१ गाहं २२ सिलोगं २३ गंधजुत्तिं २४ मधुसित्थं २५ आभरणविहीं २६ तरुणीपडिकम्मं २७ इत्थीलक्खणं २८ पुरिसलक्खणं २९ हयलक्खणं ३० गयलक्खणं ३१ गोणलक्खणं ३२ कुक्कुडलक्खणं ३३ मिंढयलक्खणं ३४ चक्कलक्खणं ३५ छत्तलक्खणं ३६ दंडलक्खणं ३७ असिलक्खणं ३८ मणिलक्खणं ३९ कागणिलक्खणं ४० चम्मलक्खणं ४१ चंदलक्खणं ४२ सूरचरियं ४३ राहुचरियं ४४ गहचरियं ४५ सोभागकरं ४६ दोभागकरं ४७ विज्जागयं ४८ मंतगयं ४९ रहस्सगयं ५० सभासं ५१ चारं ५२ पडिचारं ५३ वूहं ५४ पडिवूहं ५५ खंधावारमाणं ५६ नगरमाणं ५७ वत्थुमाणं ५८ खंधावारनिवेसं ५९ वत्थुनिवेसं ६० नगरनिवेसं ६१

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

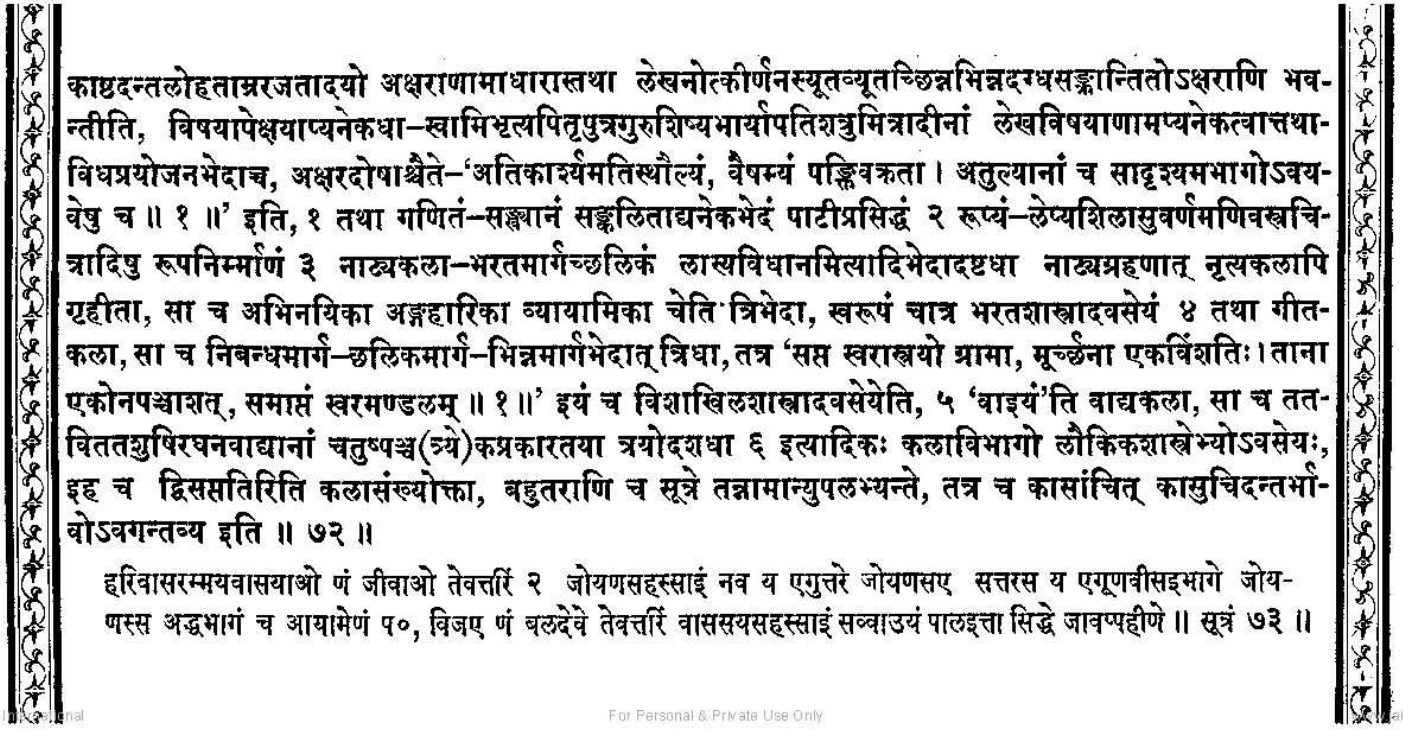
प्रत सूत्रांक [७२]

प्रत अनुक्रम [१५०]

ईसत्थं ६२ छरुप्पवायं ६३ आससिक्खं ६४ हत्थिसिक्खं ६५ धणुव्वेयं ६६ हिरण्णपागं सुवन्न० मणिपागं धातुपागं ६७ बाहुजुद्धं दंडजुद्धं मुट्ठिजुद्धं अट्ठिजुद्धं जुद्धं निजुद्धं जुद्धाइं जुद्धं सुत्तखेडं ६८ नालियाखेडं वट्टखेडं धम्मखेडं चम्मखेडं ६९ पत्तछेज्जं कडगच्छेज्जं ७० सजीवं निज्जीवं ७१ सउणरुयं ७२ संमुच्छिमखहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं उक्कोसेणं बावत्तरिं वाससहस्साइं ठिई पo ॥ सूत्रं ७२ ॥

अथ द्विसप्ततिस्थानके किमपि लिख्यते–सुवर्णकुमाराणां द्विसप्ततिर्लक्षाणि भवनानि, कथं ?, दक्षिणनिकाये अष्टत्रिंशदुत्तरनिकाये तु चतुस्त्रिंशदिति, 'नागसाहस्सीओ'त्ति नागकुमारदेवसहस्राणि वेलां-धोडशसहस्रप्रमाणामुत्सेधतो विष्कम्भतश्च दशसहस्रमानां लवणजलधिशिखां बाह्यां-धातकीखण्डद्वीपाभिमुखीं । महावीरो द्विसप्ततिवर्षाण्यायुः पालयित्वा सिद्धः, कथं ?, त्रिंशद्गृहस्थभावे द्वादश सार्द्धानि पक्षश्च छद्मस्थभावे देशोनानि त्रिंशत्केवलित्वे इति द्विसप्ततिः । 'अयलभाय'त्ति अचलो महावीरस्य नवमो गणधरः तस्यायुर्द्विसप्ततिवर्षाणि, कथं ?, षट्चत्वारिंशद्गृहस्थत्वे द्वादश छद्मस्थतायां चतुर्दश केवलित्वे इति । पुष्करार्द्धे द्विसप्ततिश्चन्द्राः, तत्रैकस्यां पङ्क्तौ षट्त्रिंशदन्यस्यां पङ्क्तौ च तावन्त एवेति, 'बावत्तरिं कलाओ'त्ति कलाः विज्ञानानीत्यर्थः, ताश्च कलनीयभेदाद्विसप्ततिर्भवन्ति, तत्र लेखनं लेखोऽक्षरविन्यासः, तद्विषया कला-विज्ञानं लेख एवोच्यते एवं सर्वत्र, स च लेखो द्विधा–लिपिविषयभेदात्, तत्र लिपिरष्टादशस्थानकोक्ता अथवा लाटादिदेशभेदतस्तथाविधविचित्रोपाधिभेदतो वाऽनेकविधेति, तथाहि–पत्रवल्क-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



काष्ठदन्तलोहताम्ररजतादयो अक्षराणामाधारास्तथा लेखनोत्कीर्णनस्यूतव्यूतच्छिन्नभिन्नदग्धसङ्क्रान्तितोऽक्षराणि भवन्तीति, विषयापेक्षयाप्यनेकधा–स्वामिभृत्यपितृपुत्रगुरुशिष्यभार्यापतिशत्रुमित्रादीनां लेखविषयाणामप्यनेकत्वात्तथाविधप्रयोजनभेदाच्च, अक्षरदोषाश्चैते–'अतिकार्श्यमतिस्थौल्यं, वैषम्यं पङ्क्तिवक्रता। अतुल्यानां च सादृश्यमभागोऽवयवेषु च ॥ १ ॥' इति, १ तथा गणितं–सङ्ख्यानं सङ्कलिताद्यनेकभेदं पाटीप्रसिद्धं २ रूप्यं–लेप्यशिलासुवर्णमणिवस्त्रचित्रादिषु रूपनिर्म्माणं ३ नाट्यकला–भरतमार्गच्छलिकं लास्यविधानमित्यादिभेदादष्टधा नाट्यग्रहणात् नृत्यकलापि गृहीता, सा च अभिनयिका अङ्गहारिका व्यायामिका चेति त्रिभेदा, स्वरूपं चात्र भरतशास्त्रादवसेयं ४ तथा गीतकला, सा च निबन्धमार्ग–छलिकमार्ग–भिन्नमार्गभेदात् त्रिधा, तत्र 'सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा, मूर्च्छना एकविंशतिः। ताना एकोनपञ्चाशत्, समासं स्वरमण्डलम् ॥ १ ॥' इयं च विशाखिलशास्त्रादवसेयेति, ५ 'वाइयं'ति वाद्यकला, सा च ततविततशुषिरघनवाद्यानां चतुष्पञ्च(त्र्ये)कप्रकारतया त्रयोदशधा ६ इत्यादिकः कलाविभागो लौकिकशास्त्रेभ्योऽवसेयः, इह च द्विसप्ततिरिति कलासंख्योक्ता, बहुतराणि च सूत्रे तन्नामान्युपलभ्यन्ते, तत्र च कासांचित् कासुचिदन्तर्भावोऽवगन्तव्य इति ॥ ७२ ॥

हरिवासरम्मयवासयाओ णं जीवाओ तेवत्तरिं २ जोयणसहस्साइं नव य एगुत्तरे जोयणसए सत्तरस य एगूणवीसइभागे जोयणस्स अद्धभागं च आयामेणं प०, विजए णं बलदेवे तेवत्तरिं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जावप्पहीणे ॥ सूत्रं ७३ ॥

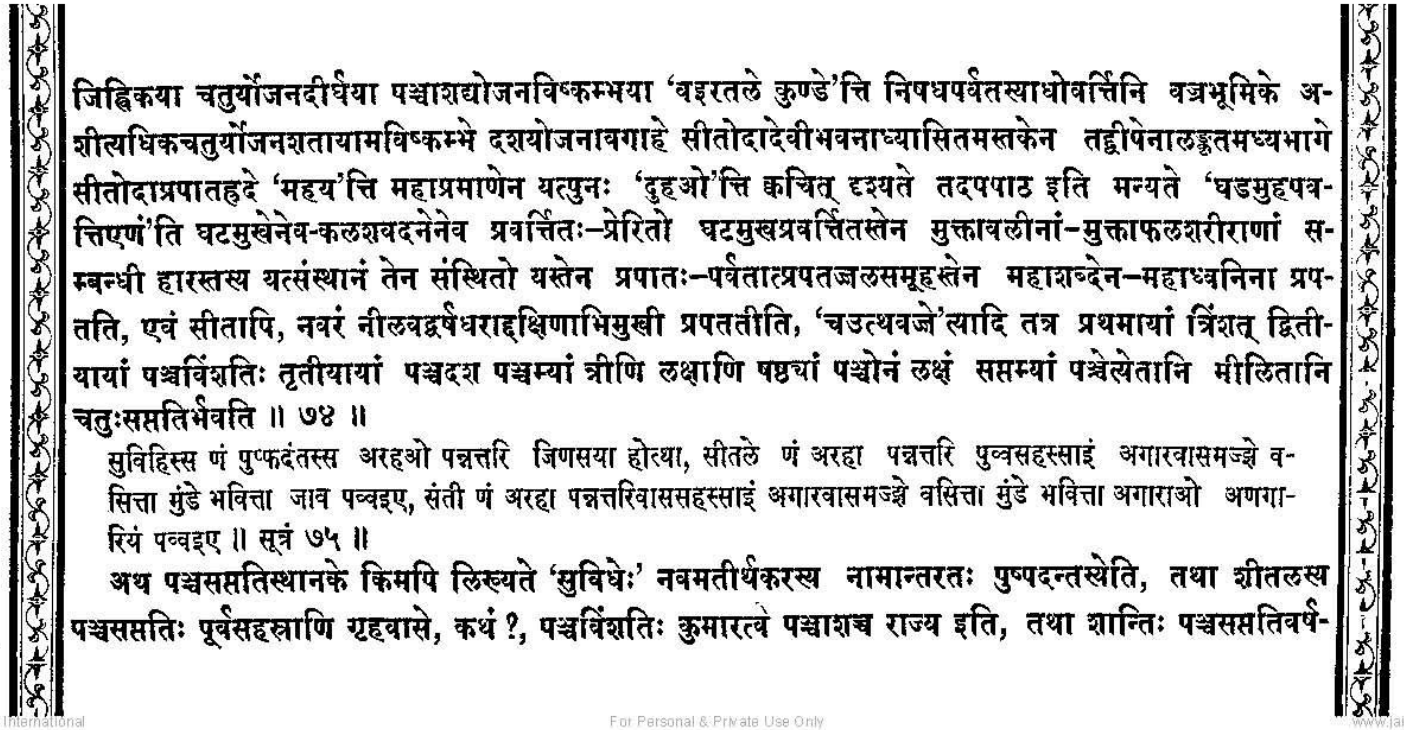
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अथ त्रिसप्ततिस्थानके किमपि लिख्यते, 'हरिवासे'ति अत्र संवादगाथा–'एगुत्तरा नवसया तेवत्तरिमे (व) जोयणसहस्सा । जीवा सत्तरस कला य अद्धकला चेव हरिवासेत्ति' ॥ १ ॥ (७३९०१–$\frac{१७१}{१९०.३}$) तथा विजयो–द्वितीयो बलदेवस्तस्येह त्रिसप्ततिर्वर्षलक्षाण्यायुरुक्तमावश्यके तु पञ्चसप्ततिरितीदमपि मतान्तरमेव ॥ ७३ ॥

थेरे णं अग्गिभूई गणहरे चोवत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जावप्पहीणे, निसहाओ णं वासहरपव्वयाओ तिगिच्छिओ णं दहाओ सीतोयामहानदीओ चोवत्तरिं जोयणसयाइं साहियाइं उत्तराहिमुही पवहित्ता वइरामयाए जिब्भियाए चउजोयणायामाए पन्नासजोयणविक्खंभाए वइरतले कुंडे महया घडमुहपवत्तिएणं मुत्तावलिहारसंठाणसंठिएणं पवाएणं महया सद्देणं पवडइ, एवं सीतावि दक्खिणाहिमुही भाणियव्वा, चउत्थवज्जासु छसु पुढवीसु चोवत्तरिं नरयावाससयसहस्सा प० ॥ सूत्रं ७४ ॥

अथ चतुःसप्ततिस्थानके किञ्चित् लिख्यते, तत्राग्निभूतिरिति महावीरस्य द्वितीयो गणधरः–गणनायकः तस्येह चतुःसप्ततिवर्षाण्यायुः, अत्र चायं विभागः–षट्चत्वारिंशद्वर्षाणि गृहस्थपर्यायः द्वादश छद्मस्थपर्यायः षोडश केवलिपर्याय इति, 'निसहाओ ण'मित्यादि अस्य भावार्थः–किल निषधवर्षधरस्य विष्कम्भो योजनानां षोडश सहस्राणि अष्टौ शतानि द्विचत्वारिंशत् कलाद्वयं चेति, तस्य च मध्यभागे तिगिच्छमहाह्रदः सहस्रद्वयविष्कम्भश्चतुःसहस्रायामः तदेवं पर्वतविष्कम्भार्द्धस्य ह्रदविष्कम्भार्द्धेन न्यूनतायां सीतोदाया महानद्याः पर्वतस्योपरि चतुःसप्ततिशतान्येकविंशत्यधिकानि कला चैकेत्येवं प्रवाहो भवति 'वइरामयाए जिब्भियाए'त्ति वज्रमय्या जिह्विकया प्रणालस्थमकरमुख-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



जिह्विकया चतुर्योजनदीर्घया पञ्चाशद्योजनविष्कम्भया 'वइरतले कुण्डे'त्ति निषधपर्वतस्याधोवर्त्तिनि वज्रभूमिके अशीत्यधिकचतुर्योजनशतायामविष्कम्भे दशयोजनावगाहे सीतोदादेवीभवनाध्यासितमस्तकेन तद्वीपेनालङ्कृतमध्यभागे सीतोदाप्रपातहदे 'महय'त्ति महाप्रमाणेन यत्पुनः 'दुहओ'त्ति क्वचित् दृश्यते तदपपाठ इति मन्यते 'घडमुहपवत्तिएणं'ति घटमुखेनेव-कलशवदनेनेव प्रवर्त्तितः–प्रेरितो घटमुखप्रवर्त्तितस्तेन मुक्तावलीनां–मुक्ताफलशरीराणां सम्बन्धी हारस्तस्य यत्संस्थानं तेन संस्थितो यस्तेन प्रपातः–पर्वतात्प्रपतज्जलसमूहस्तेन महाशब्देन–महाध्वनिना प्रपतति, एवं सीतापि, नवरं नीलवद्वर्षधराद्दक्षिणाभिमुखी प्रपततीति, 'चउत्थवज्जे'त्यादि तत्र प्रथमायां त्रिंशत् द्वितीयायां पञ्चविंशतिः तृतीयायां पञ्चदश पञ्चम्यां त्रीणि लक्षाणि षष्ठ्यां पञ्चोनं लक्षं सप्तम्यां पञ्चैतानि मीलितानि चतुःसप्ततिर्भवति ॥ ७४ ॥

सुविहिस्स णं पुप्फदंतस्स अरहओ पन्नत्तरि जिणसया होत्था, सीतले णं अरहा पन्नत्तरि पुव्वसहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए, संती णं अरहा पन्नत्तरिवाससहस्साइं अगारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ सूत्रं ७५ ॥

अथ पञ्चसप्ततिस्थानके किमपि लिख्यते 'सुविधेः' नवमतीर्थकरस्य नामान्तरतः पुष्पदन्तस्येति, तथा शीतलस्य पञ्चसप्ततिः पूर्वसहस्राणि गृहवासे, कथं ?, पञ्चविंशतिः कुमारत्वे पञ्चाशच्च राज्य इति, तथा शान्तिः पञ्चसप्ततिवर्ष-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७५]

प्रत अनुक्रम [१५३]

सहस्राणि गृहवासमध्युष्य प्रव्रजितः, कथं ?, पञ्चविंशतिः कुमारत्वे पञ्चविंशतिः माण्डलिकत्वे पञ्चविंशतिश्चक्रवर्त्तित्वे इति ॥ ७५ ॥

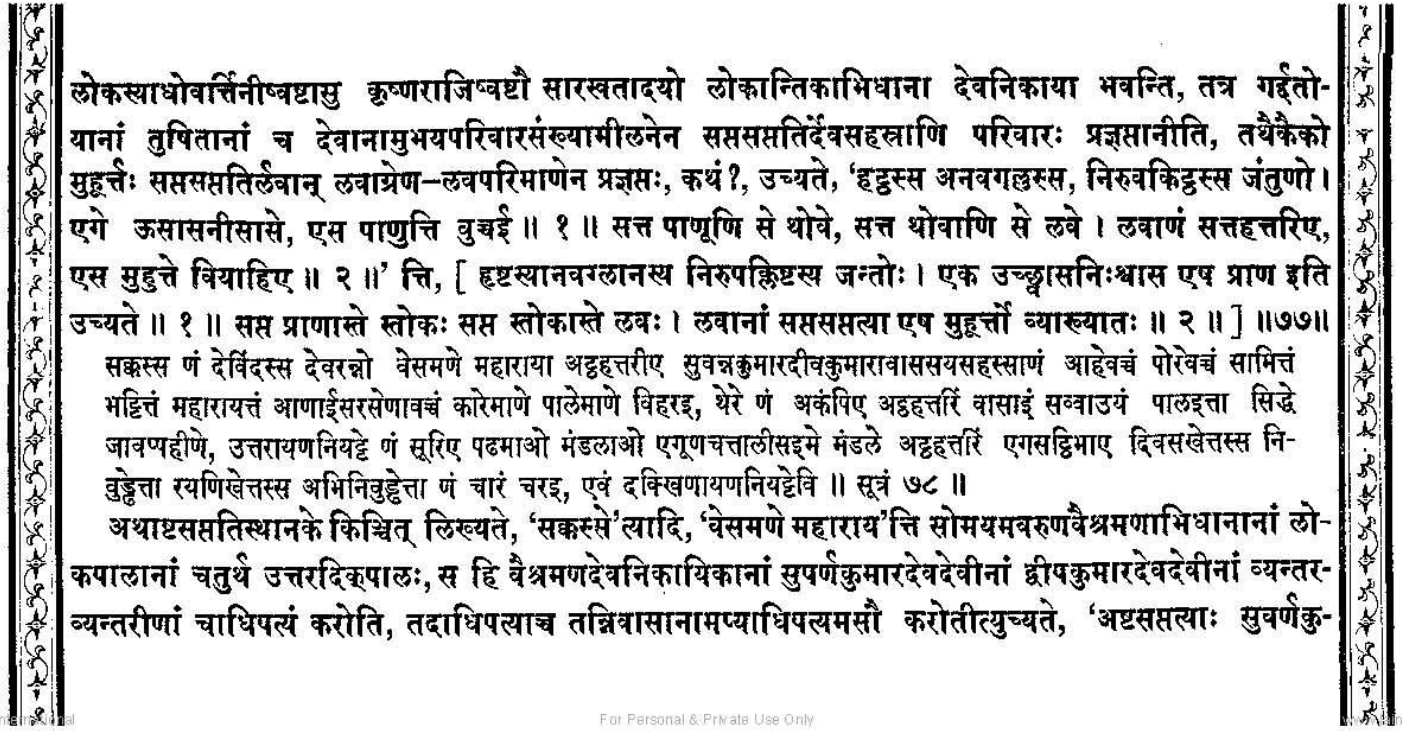
छावत्तरिं विज्जुकुमारावाससयसहस्सा प०, एवं–'दीवदिसाउदहीणं विज्जुकुमारिंदथणियमग्गीणं । छण्हंपि जुगलयाणं बावत्तरिं सयसहस्साइं ॥ सूत्रं ७६ ॥

अथ षट्सप्ततिस्थानके लिख्यते किञ्चित्–तत्र विद्युत्कुमाराणां भवनावासलक्षाणि दक्षिणस्यां चत्वारिंशदुत्तरस्यां तु षट्त्रिंशदिति षट्सप्ततिरिति, 'एव'मिति इदमेव भवनमानं शेषाणां द्वीपकुमारादिभवनपतिनिकायानां, इहार्थे गाथा–'दीवे'त्यादि 'युगलाना'मिति–दक्षिणोत्तरनिकायभेदेन युगलं, निकाये निकाये भवतीति, ॥ ७६ ॥

भरहे राया चाउरंतचक्कवट्टी सत्तहत्तरिं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसित्ता महारायाभिसेयं संपत्ते, अज्जवंसाओ णं सत्तहत्तरि रायाणो मुंडे जाव पव्वइया, गद्दतोयतुसियाणं देवाणं सत्तहत्तरिं देवसहस्सपरिवारा प०, एगमेगे णं मुहुत्ते सत्तहत्तरिं लवे लवग्गेणं प० ॥ सूत्रं ७७ ॥

अथ सप्तसप्ततिस्थानके विंत्रियते किञ्चित्–तत्र भरतचक्रवर्त्ती ऋषभस्वामिनः षट्सु पूर्वलक्षेष्वतीतेषु जातस्यशीतितमे च तत्रातीते भगवति च प्रव्रजिते राजा संवृत्तः, ततश्च त्र्यशीत्याः षट्सु निष्कर्षितेषु सप्तसप्ततिस्तस्य कुमारवासो भवतीति, अङ्गवंशः–अङ्गराजसन्तानस्तस्य सम्बन्धिनः सप्तसप्ततौ राजानः प्रव्रजिताः 'गद्दतोये'त्यादि ब्रह्म-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



लोकस्याधोवर्त्तिनीष्वष्टासु कृष्णराजिष्वष्टौ सारस्वतादयो लोकान्तिकाभिधाना देवनिकाया भवन्ति, तत्र गर्दतोयानां तुषितानां च देवानामुभयपरिवारसंख्यामीलनेन सप्तसप्ततिर्देवसहस्राणि परिवारः प्रज्ञप्तानीति, तथैकैको मुहूर्त्तैः सप्तसप्ततिर्लवान् लवाग्रेण–लवपरिमाणेन प्रज्ञप्तः, कथं?, उच्यते, 'हट्ठस्स अनवगल्लस्स, निरुवकिट्ठस्स जंतुणो। एगे ऊसासनीसासे, एस पाणुत्ति वुच्चई ॥ १ ॥ सत्त पाणूणि से थोवे, सत्त थोवाणि से लवे। लवाणं सत्तहत्तरिए, एस मुहुत्ते वियाहिए ॥ २ ॥' त्ति, [हृष्टस्यानवग्लानस्य निरुपक्लिष्टस्य जन्तोः। एक उच्छ्वासनिःश्वास एष प्राण इति उच्यते ॥ १ ॥ सप्त प्राणास्ते स्तोकः सप्त स्तोकास्ते लवः। लवानां सप्तसप्तत्या एष मुहूर्त्तो व्याख्यातः ॥ २ ॥] ॥७७॥

सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो वेसमणे महाराया अट्ठहत्तरीए सुवन्नकुमारदीवकुमारावाससयसहस्साणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महारायत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ, थेरे णं अकंपिए अट्ठहत्तरिं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जावप्पहीणे, उत्तरायणनियट्टे णं सूरिए पढमाओ मंडलाओ एगूणचत्तालीसइमे मंडले अट्ठहत्तरिं एगसट्ठिभाए दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिनिवुड्ढेत्ता णं चारं चरइ, एवं दक्खिणायणनियट्टेवि ॥ सूत्रं ७८ ॥

अथाष्टसप्ततिस्थानके किञ्चित् लिख्यते, 'सक्कस्से'त्यादि, 'वेसमणे महाराय'त्ति सोमयमवरुणवैश्रमणाभिधानानां लोकपालानां चतुर्थ उत्तरदिक्पालः, स हि वैश्रमणदेवनिकायिकानां सुपर्णकुमारदेवदेवीनां द्वीपकुमारदेवदेवीनां व्यन्तरव्यन्तरीणां चाधिपत्यं करोति, तदाधिपत्याच्च तन्निवासानामप्याधिपत्यमसौ करोतीत्युच्यते, 'अष्टसप्तत्याः सुवर्णकु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मारद्वीपकुमारावासशतसहस्राणा'मिति, तत्र सुवर्णकुमाराणा दक्षिणस्यामष्टत्रिंशद्भवनलक्षाणि द्वीपकुमाराणां च चत्वारिंशदित्येवमष्टसप्ततिरिति, द्वीपकुमाराधिपत्यमेतस्य भगवत्यां न दृश्यते, इह तूक्तमिति मतान्तरमिदम्, 'आहेवच्चं'ति आधिपत्यम्–अधिपतिकर्म्म 'पोरेवच्चं'ति पुरोवर्त्तित्वं अग्रगामित्वमित्यर्थः, 'भट्टित्तं'ति भर्तृत्वं–पोषकत्वं 'सामित्तं'ति स्वामित्वं–स्वामिभावं 'महारायत्तं'ति महाराजत्वं लोकपालत्वमित्यर्थः, 'आणाईसरसेणावच्चं'ति आज्ञाप्रधानसेनानायकत्वं 'कारेमाणे'त्ति अनुनायकैः सेवकानां कारयन् 'पालेमाणे'त्ति आत्मनापि पालयन् 'विहरइ'त्ति आस्ते । अकम्पितः स्थविरो महावीरस्याष्टमो गणधरस्तस्य चाष्टसप्ततिर्वर्षाणि सर्वायुः, कथं ?, गृहस्थपर्याये अष्टचत्वारिंशत् छद्मस्थपर्याये नव केवलिपर्याये चैकविंशतिरिति । 'उत्तरायणनियट्टेणं'ति उत्तरायणाद्–उत्तरदिग्गमनान्निवृत्तः उत्तरायणनिवृत्तः, प्रारब्धदक्षिणायन इत्यर्थः 'सूरिए'त्ति आदित्यः 'पढमाओ मंडलाओ'त्ति दक्षिणां दिशं गच्छतो रवेर्यत्प्रथमं तस्मात् न तु सर्वाभ्यन्तरसूर्यमार्गात् 'एकूणचत्तालीसइमे'त्ति एकोनचत्वारिंशत्तमे मण्डले दक्षिणायनप्रथममण्डलापेक्षया सर्वाभ्यन्तरमण्डलापेक्षया तु चत्वारिंशे 'अट्ठहत्तरिं'ति अष्टसप्ततिः 'एगसट्ठिभाए'त्ति मुहूर्त्तस्यैकषष्टिभागान् 'दिवसखेत्तस्स'त्ति दिवसलक्षणस्य क्षेत्रस्य दिवसस्यैवेत्यर्थः, 'निवुड्ढेत्ता'त्ति निवर्ध्य हापयित्वेत्यर्थः, तथा 'रयणिखेत्तस्स'त्ति रजन्या एव 'अभिनिवुड्ढेत्ता'त्ति अभिनिवर्ध्य च वर्द्धयित्वेत्यर्थः, 'चारं चरइ'त्ति भ्राम्यतीत्यर्थः. भावार्थोऽस्यैव चन्द्रप्रज्ञप्तिवाक्यैरुपदर्श्यते–जम्बूद्वीपे यदैतौ सूर्यौ सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरतस्तदा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नवनवतियोजनसहस्राणि षट्चत्वारिंशदधिकानि योजनशतान्यन्योऽन्यमन्तरं कृत्वा चरतः, एतच्च जम्बूद्वीपेऽशीत्युत्तरं योजनशतं प्रविश्याभ्यन्तरं मण्डलं भवति एतस्मिंश्च द्विगुणे जंबूद्वीपप्रमाणादपकर्षिते यथोक्तमन्तरं भवतीति, तथा तत्र तयोश्चरतोरुत्कृष्टोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति जघन्यका च द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, ततोऽभ्यन्तरमण्डलान्निष्क्रम्य प्रथमेऽहोरात्रेऽभ्यन्तरानन्तरं मण्डलमुपसङ्क्रम्य यदा चारं चरतस्तदा नवनवतिर्योजनसहस्राणि षट्चत्वारिंशदधिकानि योजनशतानि पञ्चत्रिंशच्च एकषष्टिभागा योजनस्यान्तरं कृत्वा चारं चरतः, तदा चाष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्यां मुहूर्त्तस्यैकषष्टिभागाभ्यां न्यूनः, द्वादशमुहूर्त्ता च रात्रिर्भवति द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिकेति, एवं दक्षिणायनस्य द्वितीयादिषु मण्डलेष्वहोरात्रेषु चान्योऽन्यान्तरप्रमाणस्य पञ्चभिः पञ्चभिर्योजनैः पञ्चत्रिंशता चैकषष्टिभागैर्योजनस्य वृद्धिर्वाच्या, द्वाभ्यां द्वाभ्यां च मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यां दिनहानी रात्रिवृद्धिश्चेति, एवं च एकोनचत्वारिंशत्तमे मण्डले सूर्ययोरन्तरं नवनवतिः सहस्राण्यष्टशतानि सप्तपञ्चाशच्च योजनानां त्रयोविंशतिश्चैकषष्टिभागाः, दिनप्रमाणं चाष्टादशानां मुहूर्त्तानां मध्यादेकषष्टिभागानामष्टसप्तत्यां पातितायां षोडश मुहूर्त्ताश्चतुश्चत्वारिंशच्चैकषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, रात्रेस्त्वष्टसप्तत्यां क्षिप्तायां त्रयोदश मुहूर्त्ताः सप्तदशैकषष्टिभागाश्चेति, एवं 'दक्खिणायणनियट्टे'त्ति यथोत्तरायणनिवृत्त एकोनचत्वारिंशत्तमे मण्डले अष्टसप्ततिमेकषष्टिभागान् हापयति वर्द्धयति च, एवं दक्षिणायननिवृत्तोऽपि सूर्यस्तान् हापयति वर्द्धयति च, केवलं दक्षिणायने दिनभागान् हापयति रात्रिभागांश्च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [७८]

प्रत अनुक्रम [१५७]

वर्द्धयति इह तु दिनभागान् वर्द्धयति रात्रिभागाश्च हापयति ॥ ७८ ॥

वलयामुहस्स णं पायालस्स हिट्ठिल्लाओ चरमंताओ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं एगूणासिं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, एवं केउस्सवि जूयस्सवि ईसरस्सवि, छट्ठीए पुढवीए बहुमज्झदेसभायाओ छट्ठस्स घणोदहिस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं एगूणासीति जोयणसहस्साइं अबाहाए अन्तरे प०, जम्बुद्दीवस्स णं दीवस्स बारस्स य बारस्स य एस णं एगूणासीइं जोयणसहस्साइं साइरेगाइं अबाहाए अंतरे प० ॥ सूत्रं ॥ ७९ ॥

अथैकोनाशीतितमे स्थानके किञ्चिल्लिख्यते, तत्र 'वलयामुहस्स'त्ति वडवामुखाभिधानस्य पूर्वदिग्व्यवस्थितस्य 'पायालस्स'त्ति महापातालकलशस्याधस्तनचरमान्ताद्रत्नप्रभापृथ्वीचरमान्त एकोनाशीत्या(तौ)सहस्रेषु भवति, कथं ? रत्नप्रभा हि अशीतिसहस्राधिकं योजनानां लक्षं बाहल्यतो भवति, तस्याश्चैकं समुद्रावगाहसहस्रं परिहृत्याधोलक्षप्रमाणावगाहो वलयामुखपातालकलशो भवति, ततस्तचरमान्तात् पृथिवीचरमान्तो यथोक्तान्तरमेव भवति, एवमन्येऽपि त्रयो वाच्या इति, 'छट्ठीए' इत्यादि, अस्य भावार्थः–षष्ठपृथिवी हि बाहल्यतो योजनानां लक्षं षोडश सहस्राणि च भवति, घनोदधयस्तु यद्यपि सप्तापि प्रत्येकं विंशतिसहस्राणि स्युस्तथाप्येतस्य ग्रन्थस्य मतेन षष्ठ्यामसावेकविंशतिः संभाव्यते, तदेवं षष्ठपृथिवीबाहल्यार्द्धमष्टपञ्चाशत् घनोदधिप्रमाणं चैकविंशतिरित्येवमेकोनाशीतिर्भवति, ग्रन्थान्तरमतेन तु सर्वघनोदधीनां विंशतियोजनसहस्रबाहल्यत्वात्पञ्चमीमाश्रित्येदं सूत्रमवसेयं, यतस्तद्बाहल्य-

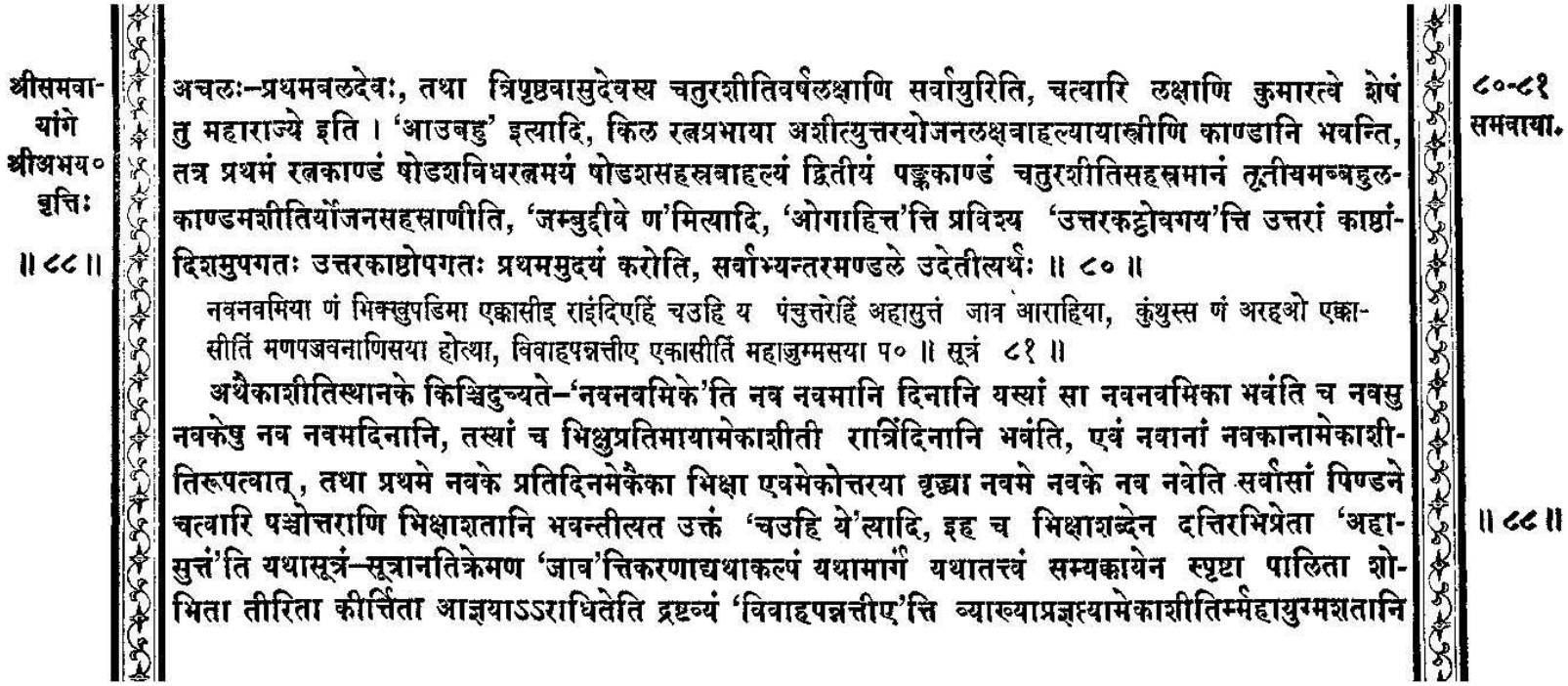
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मष्टादशोत्तरं लक्षमुक्तं, यत आह—"पढमासीइ सहस्सा १ बत्तीसा २ अट्ठवीस ३ वीसा य ४। अट्ठार ५ सोल ६ अट्ठ य ७ सहस्स लक्खोवरिं कुज्जा ॥ १ ॥" इति [प्रथमाऽशीतिः सहस्राणि द्वात्रिंशत् अष्टाविंशतिर्विंशतिश्च। अष्टादश षोडशाष्टौ सहस्राणि लक्षस्योपरि कुर्यात् ॥१॥] अथवा षष्ठ्याः सहस्राधिकोऽपि मध्यभागो विवक्षितः, एवमर्थसूचकत्वाद्बहुशब्दस्येति, तथा जम्बूद्वीपस्य जगत्याश्चत्वारि द्वाराणि विजयवैजयन्तजयन्तापराजिताभिधानानि चतुश्चतुर्योजनविष्कम्भानि गव्यूतपृथुलद्वारशाखानि क्रमेण पूर्वादिषु दिक्षु भवन्ति, तेषां च द्वारस्य च द्वारस्य चान्योऽन्यमित्यर्थः, 'एस णं'ति एतदेकोनाशीतियोजनसहस्राणि सातिरेकाणीत्येवंलक्षणमबाधया—व्यवधानेन व्यवधानरूपमित्यर्थान्तरं प्रज्ञप्तं, कथं ?, जम्बूद्वीपपरिधेः ३१६२२७ योजनानि क्रोशाः ३ धनूंषि १२८ अङ्गुलानि १३ सार्द्धानीत्येवंलक्षणस्यापकर्षितद्वारद्वारशाखाविष्कम्भस्य चतुर्विभक्तस्यैवंफलत्वादिति ॥ ७९ ॥

सेज्जंसे णं अरहा असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, तिविट्ठे णं वासुदेवे असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, अयले णं बलदेवे असीइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, तिविट्ठे णं वासुदेवे असीइवाससयसहस्साइं महाराया होत्था, आउवहुले णं कण्डे असीइजोयणसहस्साइं बाहल्लेणं प०, ईसाणस्स देविंदस्स देवरन्नो असीई सामाणियसाहस्सीओ प०, जम्बुदीवे णं दीवे असीउत्तरं जोयणसयं ओगाहेत्ता सूरिए उत्तरकट्ठोवगए पढमं उदयं करेइ ॥ सूत्रं ८० ॥

अथाशीतितमस्थानके किञ्चिल्लिख्यते—श्रेयांसः—एकादशो जिनः, त्रिपृष्ठः श्रेयांसजिनकालभावी प्रथमवासुदेवः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ८८ ॥

अचलः–प्रथमबलदेवः, तथा त्रिपृष्ठवासुदेवस्य चतुरशीतिवर्षलक्षाणि सर्वायुरिति, चत्वारि लक्षाणि कुमारत्वे शेषं तु महाराज्ये इति । 'आउबहु' इत्यादि, किल रत्नप्रभाया अशीत्युत्तरयोजनलक्षबाहल्यायास्त्रीणि काण्डानि भवन्ति, तत्र प्रथमं रत्नकाण्डं षोडशविधरत्नमयं षोडशसहस्रबाहल्यं द्वितीयं पङ्ककाण्डं चतुरशीतिसहस्रमानं तृतीयमब्बहुलकाण्डमशीतियोजनसहस्राणीति, 'जम्बुद्दीवे ण'मित्यादि, 'ओगाहित्त'त्ति प्रविश्य 'उत्तरकट्ठोवगय'त्ति उत्तरां काष्ठांदिशमुपगतः उत्तरकाष्ठोपगतः प्रथममुदयं करोति, सर्वाभ्यन्तरमण्डले उदेतीत्यर्थः ॥ ८० ॥

नवनवमिया णं भिक्खुपडिमा एक्कासीइ राइंदिएहिं चउहि य पंचुत्तरेहिं अहासुत्तं जाव आराहिया, कुंथुस्स णं अरहओ एक्कासीतिं मणपज्जवनाणिसया होत्था, विवाहपन्नत्तीए एकासीतिं महाजुम्मसया प० ॥ सूत्रं ८१ ॥

अथैकाशीतिस्थानके किञ्चिदुच्यते–'नवनवमिके'ति नव नवमानि दिनानि यस्यां सा नवनवमिका भवंति च नवसु नवकेषु नव नवमदिनानि, तस्यां च भिक्षुप्रतिमायामेकाशीती रात्रिंदिनानि भवंति, एवं नवानां नवकानामेकाशीतिरूपत्वात्, तथा प्रथमे नवके प्रतिदिनमेकैका भिक्षा एवमेकोत्तरया वृद्ध्या नवमे नवके नव नवेति सर्वासां पिण्डने चत्वारि पञ्चोत्तराणि भिक्षाशतानि भवन्तीत्यत उक्तं 'चउहि ये'त्यादि, इह च भिक्षाशब्देन दत्तिरभिप्रेता 'अहासुत्तं'ति यथासूत्रं–सूत्रानतिक्रमेण 'जाव'त्तिकरणाद्यथाकल्पं यथामार्गं यथातत्त्वं सम्यक्कायेन स्पृष्टा पालिता शोभिता तीरिता कीर्त्तिता आज्ञयाऽऽराधितेति द्रष्टव्यं 'विवाहपन्नत्तीए'त्ति व्याख्याप्रज्ञप्त्यामेकाशीतिर्म्महायुग्मशतानि

८०-८१ समवाया. ॥ ८८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रज्ञप्तानि, इह च शतशब्देनाध्ययनान्युच्यन्ते, तानि कृतयुग्मादिलक्षणराशिविशेषविचाररूपाणि अत्रान्तराध्ययनस्वभावानि तदवगमावगम्यानीति ॥ ८१ ॥

जम्बुद्दीवे दीवे बासीयं मंडलसयं जं सूरिए दुक्खुत्तो संकमित्ता णं चारं चरइ तं०–निक्खममाणे य पविसमाणे य, समणे भगवं महावीरे बासीए राइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं गब्भाओ गब्भं साहरिए, महाहिमवतस्स णं वासहरपव्वयस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं बासीइं जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे प०, एवं रुप्पिस्सवि ॥ सूत्रं ८२ ॥

अथ द्व्यशीतिस्थानके किमपि लिख्यते, अत्र जम्बूद्वीपे द्व्यशीत्यधिकं मण्डलशतं–सूर्यस्य मार्गशतं तद्भवतीति वाक्यशेषः, किंभूतं ?–यत् सूर्यो द्विकृत्वो–द्वौ वारौ सङ्क्रम्य–प्रविश्य चारं चरति, तद्यथा–निष्क्रामंश्च जम्बूद्वीपात् प्रविशंश्च जम्बूद्वीप एवेति, अयमत्र भावार्थः–किल चतुरशीत्यधिकं सूर्यमण्डलशतं भवति, तत्र सर्वाभ्यन्तरे सर्वबाह्ये सकृदेव सङ्क्रामति शेषाणि तु द्वौ वाराविति, इह च द्व्यशीतिविवक्षयैवेदं द्व्यशीतिस्थानकेऽधीतमिति भावनीयं, यद्यपि जम्बूद्वीपे पञ्चषष्टिरेव मण्डलानां भवति तथापि जम्बूद्वीपादिकसूर्यचारविषयत्वाच्छेषाण्यपि जम्बूद्वीपेन विशेषितानीति, 'समणे' इत्यादि आषाढस्य शुक्लपक्षषष्ठ्या आरभ्य द्व्यशीत्यां रात्रिन्दिवेष्वतिक्रान्तेषु त्र्यशीतितमे वर्त्तमाने अश्वयुजः कृष्णत्रयोदश्यामित्यर्थः, गर्भात्–गर्भाशयाद्देवानंदाब्राह्मणीकुक्षित इत्यर्थः गर्भे–त्रिशलाभिधानक्षत्रियाकुक्षिं संहृतो–नीतो देवेन्द्रवचनकारिणा हरिणेगमेष्यभिधानदेवेनेति, इदं च सूत्रं द्व्यशीतिरात्रिन्दिवान्यधिकृत्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८२]

प्रत अनुक्रम [१६१]

व्यशीतिस्थानकेऽधीयते, त्र्यशीतितमं रात्रिन्दिवमाश्रित्य तु त्र्यशीतितमस्थानके इति, 'महाहिमवंतस्से'त्यादि महाहिमवतो द्वितीयवर्षधरपर्वतस्य योजनशतद्वयोच्छ्रितस्य 'उवरिल्लाओ'त्ति उपरिमाचरमान्तात् सौगन्धिककाण्डस्याधस्तनश्चरमान्तो व्यशीतिर्योजनशतानि, कथं ?, रत्नप्रभापृथिव्यां हि त्रीणि काण्डानि–खरकाण्डं पङ्ककाण्डमब्बहुलकाण्डं चेति, तत्र प्रथमं काण्डं षोडशविधं, तद्यथा–रत्नकाण्डं १ वज्रकाण्डं २ एवं वैडूर्यं ३ लोहिताक्षं ४ मसारगल्लं ५ हंसगर्भं ६ पुलकं ७ सौगन्धिकं ८ ज्योतीरसं ९ अञ्जनं १० अञ्जनपुलकं ११ रजतं १२ जातरूपं १३ अङ्कं १४ स्फटिकं १५ रिष्टकाण्डं चेति १६, एतानि च प्रत्येकं सहस्रप्रमाणानि, ततश्च सौगन्धिककाण्डस्याष्टसत्वादशीतिशतानि द्वे च शते महाहिमवदुच्छ्रय इत्येवं व्यशीतिशतानि इति, एवं रुक्मिणोऽपि पञ्चमवर्षधरस्य वाच्यं, महाहिमवत्समानोच्छ्रयत्वात्तस्येति ॥ ८२ ॥

समणे भगवं महावीरे वासीइराइंदिएहिं वीइक्कंतेहिं तेयासीइमे राइंदिए वट्टमाणे गब्भाओ गब्भं साहरिए, सीयलस्स णं अरहओ तेसीई गणा तेसीई गणहरा होत्था, थेरे णं मंडियपुत्ते तेसीइं वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जावप्पहीणे, उसभे णं अरहा कोसलिए तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता णं जाव पव्वइए, भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं अगारमज्झे वसित्ता जिणे जाए केवली सव्वन्नू सव्वभावदरिसी ॥ सूत्रं ८३ ॥

अथ त्र्यशीतितमस्थानके किमपि लिख्यते–इह शीतलजिनस्य त्र्यशीतिर्गणाः त्र्यशीतिर्गणधरा उक्ता आवश्यके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्वेकाशीतिरिति मतान्तरमिदमिति, तथा स्थविरो मण्डितपुत्रो–महावीरस्य षष्ठो गणधरः तस्य च त्र्यशीतिर्वर्षाणि सर्वायुः, कथं ?, त्रिपञ्चाशद्गृहस्थपर्याये चतुर्दश छद्मस्थपर्याये षोडश केवलित्वे इत्येवं त्र्यशीतिरिति, तथा 'कोसलिए'त्ति कोशलदेशे भवः कौशलिकः 'तेसीइं'ति त्रिंशतिः पूर्वलक्षाणि कुमारत्वे त्रिषष्टिः राज्ये इत्येवं त्र्यशीतिः, तथा भरतश्चक्रवर्त्ती सप्तसप्ततिः पूर्वलक्षाणि कुमारत्वे षट् चक्रवर्त्तित्वे इत्येवं त्र्यशीतिमगारवासमध्युष्य जिनो जातः–राज्यावस्थस्यैव रागादिक्षयात्केवली–संपूर्णसहायविशुद्धज्ञानादित्रययोगात् सर्वज्ञो विशेषबोधात् सर्वभावदर्शी सामान्यबोधात्ततः पूर्वलक्षं प्रव्रज्याग्रहणपूर्वकं केवलित्वेन विहृत्य सिद्ध इति ॥ ८३ ॥

चउरासीइ निरयावाससयसहस्सा प०, उसभे णं अरहा कोसलिए चउरासीइं पुव्वसयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जावप्पहीणे, एवं भरहो बाहुबली बंभी सुंदरी, सिज्जंसे णं अरहा चउरासीइं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जावप्पहीणे, तिविट्ठे णं वासुदेवे चउरासीइं वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता अप्पइट्ठाणे नरए नेरइयत्ताए उववन्नो, सक्कस्स णं देविंदस्स देवरन्नो चउरासीई सामाणियसाहस्सीओ प०, सव्वेवि णं बाहिरया मंदरा चउरासीइं २ जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, सव्वेवि णं अंजणगपव्वया चउरासीइं २ जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं पन्नत्ता, हरिवासरम्मयवासियाणं जीवाणं धणुपिट्ठा चउरासीं जोयणसहस्साइं सोलस जोयणाइं चत्तारि य भागा जोयणस्स परिक्खेवेणं प०, पंकबहुलस्स णं कण्डस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं चोरासीइ जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, विवाहपन्नत्तीए णं भगव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८४]

प्रत अनुक्रम [१६३]

तीए चउरासीइं पयसहस्सा पदग्गेणं प०, चोरासीइ नागकुमारावाससयसहस्सा प०, चोरासीइ पइन्नगसहस्साइं प०, चोरासीइं जोणिप्पमुहसयसहस्सा प०, पुव्वाइयाणं सीसपहेलियापज्जवसाणाणं सट्ठाणट्ठाणंतराणं चोरासीए गुणकारे प०, उसभस्स णं अरहओ चउरासीइ समणसाहस्सीओ होत्था, सव्वेवि चउरासीइ विमाणावाससयसहस्सा सत्ताणउइं च सहस्सा तेवीसं च विमाणा भवंतीति मक्खायं ॥ सूत्रं ८४ ॥

चतुरशीतिस्थानके किमपि लिख्यते, चतुरशीतिर्नरकलक्षाण्यमुना विभागेन–'तीसा य ३० पण्णवीसा २० पणरस १५ दसेव ९ तिन्नि य ३ हवंति । पञ्चूणसयसहस्सं १ पंचेव ५ अनुत्तरा निरया ॥ १ ॥' इति, श्रेयांसः–एकादशस्तीर्थकरः एकविंशतिवर्षलक्षाणि कुमारत्वे तावन्त्येव प्रव्रज्यायां द्विचत्वारिंशद्राज्ये इत्येवं चतुरशीतिमायुः पालयित्वा सिद्धः, तथा 'तिविट्ठु'त्ति प्रथमवासुदेवः श्रेयांसजिनकालभावीति अप्रतिष्ठानो नरकः–सप्तमपृथिव्या पञ्चानां मध्यम इति, तथा 'सामाणिय'त्ति समानर्द्धयः तथा 'बाहिरयं'ति जम्बूद्वीपकमेरुव्यतिरिक्ताश्चत्वारो मन्दराश्चतुरशीतिः सहस्राणि प्रज्ञप्ताः 'अंजणगपव्वय'त्ति जम्बूद्वीपादष्टमे नन्दीश्वराभिधाने द्वीपे चक्रवालविष्कम्भमध्यभागे पूर्वादिषु दिक्षु चत्वारोऽञ्जनरत्नमया अञ्जनकपर्वताः, 'हरिवासे'त्यादि 'चत्तारि य भागा जोयणस्स'त्ति एकोनविंशतिर्भागाः, इहार्थे गाथार्द्धे–'धणुपिट्ठकलचउक्कं चुलसीइसहस्स सोलसहिय'त्ति [८४०१६ ४/१९,] तथा पङ्कबहुलं काण्डं द्वितीयं तस्य च बाहल्यं चतुरशीतिः सहस्राणीति यथोक्तः सूत्रार्थ इति, तथा व्याख्याप्रज्ञप्त्यां–भगवत्यां चतुरशीतिः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८४]

प्रत अनुक्रम [१६३]

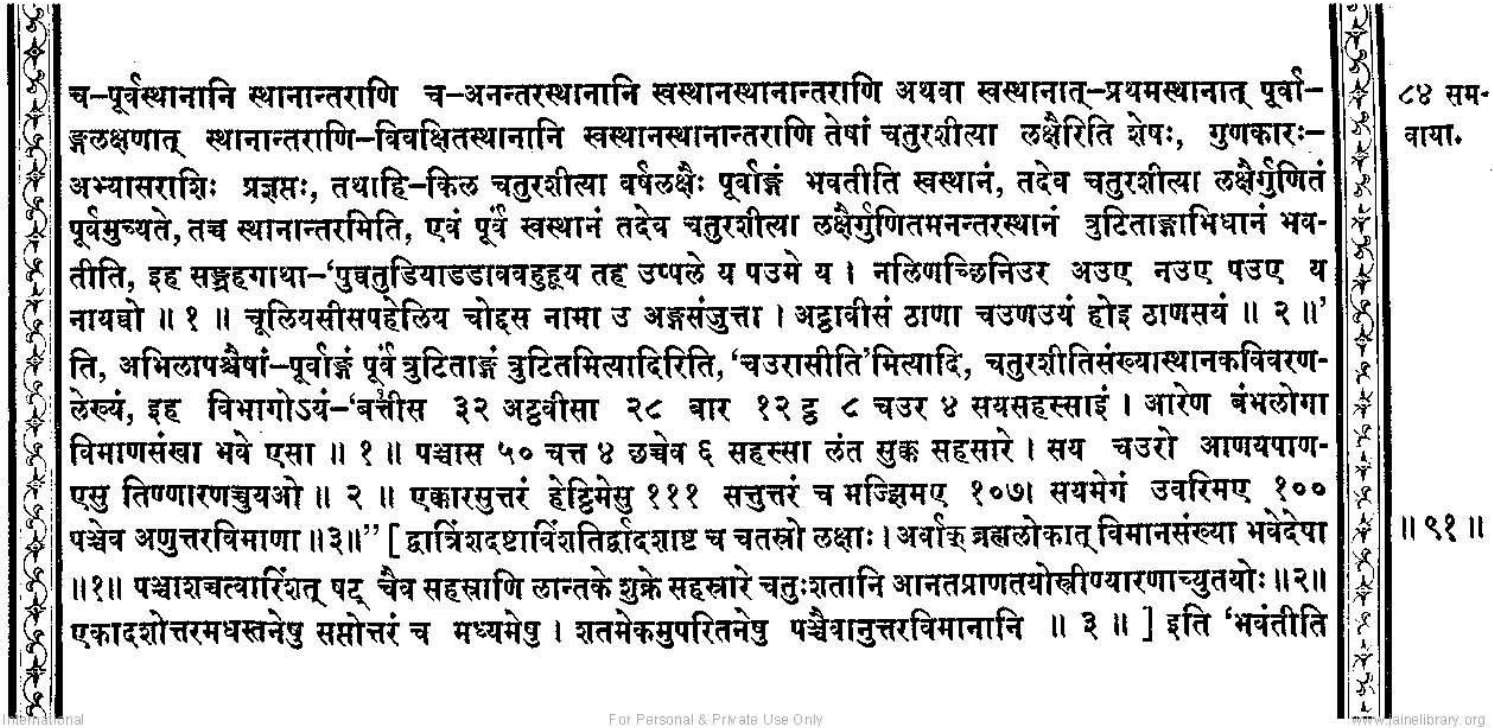
१६ सम०

पदसहस्राणि पदाग्रेण–पदपरिमाणेन, इह च यत्रार्थोपलब्धिस्तत्पदं, मतान्तरेण तु अष्टादशपदसहस्रपरिमाणत्वादाचारस्य एतद्विगुणत्वाच्च शेषाङ्गानां व्याख्याप्रज्ञप्तिर्द्वे लक्षे अष्टाशीतिः सहस्राणि पदानां भवन्तीति, तथा चतुरशीतिर्नागकुमारावासलक्षाणि–चतुश्चत्वारिंशतो दक्षिणायां चत्वारिंशतश्चोत्तरायां भावादिति, चतुरशीतिर्योनयो–जीवोत्पत्तिस्थानानि ता एव प्रमुखानि–द्वाराणि योनिप्रमुखानि तेषां शतसहस्राणि–लक्षाणि योनिप्रमुखशतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि, कथं ?–"पुढविदगअगणिमारुय एक्केके सत्त जोणिलक्खाओ । वण पत्तेय अणंते दस चउदस जोणिलक्खाओ ॥ १ ॥ विगलिंदिएसु दो दो चउरो चउरो य नारयसुरेसु । तिरिएसु होंति चउरो चोद्दसलक्खा उ मणुएसु ॥ २ ॥" त्ति, [पृथ्वीदकाग्निमरुतामेकैकस्मिन् सप्त योनिलक्षाः । वने प्रत्येकानन्तयोर्दश चतुर्दश योनिलक्षाः ॥ १ ॥ विकलेन्द्रियेषु द्वे द्वे चतस्रः चतस्रश्च नारकसुरयोः । तिर्यक्षु भवन्ति चतस्रः चतुर्दश लक्षास्तु मनुजेषु ॥ २ ॥] इह च जीवोत्पत्तिस्थानानामसंख्येयत्वेऽपि समानवर्णगन्धरसस्पर्शानां तेषामेकत्वविवक्षणान्न यथोक्तयोनिसंख्याव्यभिचारो मन्तव्य इति, 'पुव्वाइयाण'मित्यादि, पूर्वमादिर्येषां तानि पूर्वादिकानि तेषां शीर्षप्रहेलिका पर्यवसाने येषां तानि शीर्षप्रहेलिकापर्यवसानानि तेषां स्वस्थानात्–पूर्वपूर्वस्थानादुत्तरोत्तरस्य संख्यास्थानस्योत्पत्तिस्थानात् संख्याविशेषलक्षणात् गुणनीयादित्यर्थः 'स्थानान्तराणि' स्थानान्तराण्यपि अनन्तरस्थानान्यव्यवहितसङ्ख्याविशेषा गुणकारनिष्पन्ना येषु तानि स्वस्थानस्थानान्तराणि क्रमव्यवस्थितसङ्ख्यानविशेषा इत्यर्थः अथवा स्वस्थानानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८४]

प्रत अनुक्रम [१६३]



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ९१ ॥

च–पूर्वस्थानानि स्थानान्तराणि च–अनन्तरस्थानानि स्वस्थानस्थानान्तराणि अथवा स्वस्थानात्–प्रथमस्थानात् पूर्वा–ङ्गलक्षणात् स्थानान्तराणि–विवक्षितस्थानानि स्वस्थानस्थानान्तराणि तेषां चतुरशीत्या लक्षैरिति शेषः, गुणकारः–अभ्यासराशिः प्रज्ञप्तः, तथाहि–किल चतुरशीत्या वर्षलक्षैः पूर्वाङ्गं भवतीति स्वस्थानं, तदेव चतुरशीत्या लक्षैर्गुणितं पूर्वमुच्यते, तच्च स्थानान्तरमिति, एवं पूर्वं स्वस्थानं तदेव चतुरशीत्या लक्षैर्गुणितमनन्तरस्थानं त्रुटिताङ्गाभिधानं भवतीति, इह सङ्ग्रहगाथा–'पुवतुडियाडडाववहुहूय तह उप्पले य पउमे य । नलिणच्छिनिउर अउए नउए पउए य नायव्वो ॥ १ ॥ चूलियसीसपहेलिय चोद्दस नामा उ अङ्गसंजुत्ता । अट्ठावीसं ठाणा चउणउयं होइ ठाणसयं ॥ २ ॥' ति, अभिलापश्चैषां–पूर्वाङ्गं पूर्वं त्रुटिताङ्गं त्रुटितमित्यादिरिति, 'चउरासीति'मित्यादि, चतुरशीतिसंख्यास्थानकविवरणलेख्यं, इह विभागोऽयं–'बत्तीस ३२ अट्ठवीसा २८ बार १२ ट्ठ ८ चउर ४ सयसहस्साइं । आरेण बंभलोगा विमाणसंखा भवे एसा ॥ १ ॥ पञ्चास ५० चत्त ४ छचेव ६ सहस्सा लंत सुक्क सहसारे । सय चउरो आणयपाणएसु तिण्णारणच्चुयओ ॥ २ ॥ एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमेसु १११ सत्तुत्तरं च मज्झिमए १०७। सयमेगं उवरिमए १०० पञ्चेव अणुत्तरविमाणा ॥३॥" [द्वात्रिंशदष्टाविंशतिर्द्वादशाष्ट च चतस्रो लक्षाः । अर्वाङ् ब्रह्मलोकात् विमानसंख्या भवेदेषा ॥१॥ पञ्चाशचत्वारिंशत् षट् चैव सहस्राणि लान्तके शुक्रे सहस्रारे चतुःशतानि आनतप्राणतयोरारणाच्युतयोः ॥२॥ एकादशोत्तरमधस्तनेषु सप्तोत्तरं च मध्यमेषु । शतमेकमुपरितनेषु पञ्चैवानुत्तरविमानानि ॥ ३ ॥] इति 'भवंतीति

८४ समवाया. ॥ ९१ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मक्खायं'ति एतानि विमानान्येवं भवन्ति इति-हेतोराख्यातानि भगवता सर्वज्ञत्वात् सत्यवादित्वाच्चेति ॥ ८४ ॥

आयारस्स णं भगवओ सचूलियागस्स पंचासीइ उद्देसणकाला प०, धायइसण्डस्स णं मंदरा पंचासीइ जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं प०, रुयए णं मंडलियपव्वए पंचासीइ जोयणसहस्साइं सव्वग्गेणं प०, नंदणवणस्स णं हेट्ठिल्लाओ चरमंताओ सोगंधियस्स कंडस्स हेट्ठिले चरमंते एस णं पंचासीइ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे प० ॥ (सूत्रं) ८५ ॥

अथ पञ्चाशीतिस्थानके किञ्चिल्लिख्यते, तत्राचारस्य–प्रथमाङ्गस्य नवाध्ययनात्मकप्रथमश्रुतस्कन्धरूपस्य 'सचूलियागस्स' इति द्वितीये हि तस्य श्रुतस्कन्धे पञ्च चूलिकाः तासु च पञ्चमी निशीथाख्येह न गृह्यते भिन्नस्थानरूपत्वात्तस्याः, तासु च प्रथमद्वितीये सप्तसप्ताध्ययनात्मिके तृतीयचतुर्थ्यावेकैकाध्ययनात्मिके तदेवं सह चूलिकाभिर्वर्त्तत इति सचूलिकाकस्तस्य पञ्चाशीतिरुद्देशनकाला भवन्तीति, प्रत्यध्ययनं उद्देशनकालानामेतावत्संख्यत्वात्, तथाहि–प्रथमश्रुतस्कन्धे नवस्वध्ययनेषु क्रमेण सप्त ७ षट् १३ चत्वार १७ श्चत्वारः २१ षट् २७ पञ्च ३२ अष्ट ४० चत्वारः ४४ सप्त ५१ चेति, द्वितीयश्रुतस्कन्धे तु प्रथमचूलिकायां सप्तस्वध्ययनेषु क्रमेण एकादश ६२ त्रय ६५ स्त्रयः ६८ चर्तुषु द्वौ द्वौ ७६ द्वितीयायां सप्तैकसराणि ८३ अध्ययनान्येवं तृतीयैकाध्ययनात्मिका ८४ एवं चतुर्थ्यपीति ८५ सर्वमीलने पञ्चाशीतिरिति । तथा धातकीखण्डमन्दरौ सहस्रमवगाढौ चतुरशीतिसहस्राण्युच्छ्रताविति पञ्चाशीतियोजनसहस्राणि सर्वाग्रेण भवतः, पुष्करार्द्धमन्दरावप्येवं, नवरं सूत्रे नाभिहितौ विचित्रत्वात्सूत्रगतेरिति, तथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८५]

प्रत अनुक्रम [१६४]

श्रीसमवायांगि श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ९२ ॥

रुचको-रुचकाभिधानस्त्रयोदशद्वीपान्तर्गतः प्राकाराकृती रुचकद्वीपविभागकारितया स्थितः, अत एव मण्डलिकपर्वतो, मण्डलेन व्यवस्थितत्वात्, स च सहस्रमवगाढश्चतुरशीतिरुच्छ्रित इति पञ्चाशीतिः सहस्राणि सर्वाग्रेणेति, तथा 'नन्दनवनस्य' मेरोः पञ्चयोजनशतोच्छ्रितायां प्रथममेखलायां व्यवस्थितस्याधस्त्याच्चरमान्तात् 'सौगन्धिककाण्डस्य' रत्नप्रभापृथिव्याः खरकाण्डाभिधानप्रथमकाण्डस्यावान्तरकाण्डभूतस्याष्टमस्य सौगन्धिकाभिधानरत्नमयस्य सौगन्धिककाण्डस्याधस्त्यश्चरमान्तः पञ्चाशीतिर्योजनशतान्यन्तरमाश्रित्य भवति, कथम्?, पञ्च शतानि मेरोः सम्बन्धीनि प्रत्येकं च सहस्रप्रमाणत्वादवान्तरकाण्डानामष्टमकाण्डमशीतिशतानीति ॥ ८५ ॥

सुविहिस्स णं पुप्फदन्तस्स अरहओ छलसीइ गणा छलसीइ गणहरा होत्था, सुपासस्स णं अरहओ छलसीई वाइसया होत्था, दोच्चाए णं पुढवीए बहुमज्झदेसभागाओ दोच्चस्स घणोदहिस्स हेट्ठिले चरमंते एस णं छलसीइ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प० ॥ (सूत्रं) ८६ ॥

अथ षडशीतिस्थानके किमपि लिख्यते, तत्र सुविधेः–नवमजिनस्येह षडशीतिर्गणा गणधराश्चोक्ता आवश्यके तु अष्टाशीतिरिति मतान्तरमिदं, तथा द्वितीया पृथिवी-शर्करप्रभा, सा च बाहल्यतो द्वात्रिंशत्सहस्राधिकलक्षमाना तदर्द्धं षट्षष्टिः सहस्राणि घनोदधिश्च तदधोवर्त्ती द्वितीयापृथिवीसम्बन्धित्वात् द्वितीयो विंशतिः सहस्राणि बाहल्यत इति षडशीतिर्यथोक्तमन्तरं भवतीति ॥ ८६ ॥

८५-८६ समवाया०

॥ ९२ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८७]

प्रत अनुक्रम [१६६]

मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, मंदरस्स णं पव्वयस्स दक्खिणिल्लाओ चरमंताओ दगभासस्स आवासपव्वयस्स उत्तरिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीई जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, एवं मंदरस्स पच्चच्छिमिल्लाओ चरमंताओ संखस्सावा० पुरच्छिमिल्ले चरमंते, एवं चेव मंदरस्स उत्तरिल्लाओ चरमंताओ दगसीमस्स आवासपव्वयस्स दाहिणिल्ले चरमंते एस णं सत्तासीई जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, छण्हं कम्मपगडीणं आइमउवरिल्लवज्जाणं सत्तासीई उत्तरपगडीओ प०, महाहिमवंतकूडस्स णं उवरिमंताओ सोगन्धियस्स कंडस्स हेट्ठिले चरमंते एस णं सत्तासीइ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे प०, एवं रुप्पिकूडस्सवि ॥ सूत्रं ॥ ८७ ॥

अथ सप्ताशीतिस्थानके किञ्चिल्लिख्यते, 'मन्दरे'त्यादि, मेरोः पारैस्त्यान्तात् जम्बूद्वीपान्तः पञ्चचत्वारिंशत्सहस्राणि द्विचत्वारिंशच्च सहस्राणि लवणजलधिमवगाह्य गोस्तुभो वेलन्धरनागराजावासपर्वतः प्राच्यां दिशि भवति, एवं सूत्रोक्तमन्तरं भवतीति, एवमन्येषां त्रयाणामन्तरमवसेयमिति । तथा षण्णां कर्म्मप्रकृतीनामादिमोपरिमवर्जानां–ज्ञानावरणान्तरायरहितानां दर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुष्कनामगोत्रसंज्ञितानामित्यर्थः सप्ताशीतिरुत्तरप्रकृतयः प्रज्ञप्ताः, कथं ?, दर्शनावरणादीनां षण्णां क्रमेण नव द्वे अष्टाविंशतिः चतस्रो द्विचत्वारिंशद्वे चेत्यतस्तासां मीलने सूत्रोक्तसंख्या स्यादिति । 'महाहिमवन्ते'त्यादि, महाहिमवति द्वितीयवर्षधरपर्वते अष्टौ सिद्धायतनकूटमहाहिमवत्कूटादीनि कूटानि भवन्ति, तानि पञ्चशतोच्छ्रितानि, तत्र महाहिमवत्कूटस्य पञ्च शतानि द्वे शते महाहिमव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८७]

प्रत अनुक्रम [१६६]

दूषधरोच्छ्रयस्य अशीतिश्च शतानि प्रत्येकं सहस्रमानानामष्टानां सौगन्धिककाण्डावसानानां रत्नप्रभाखरकाण्डावान्तरकाण्डानामित्येवं मीलिते सप्ताशीतिरन्तरं भवतीति, एवं 'रुप्पिकूडस्सवि'त्ति रुक्मिणि पञ्चमवर्षधरे यद्वितीयं रुक्मिकूटाभिधानं कूटं तस्याप्यन्तरं महाहिमवत्कूटस्येव वाच्यं, समानप्रमाणत्वाद्द्वयोरपीति ॥ ८७ ॥

एगमेगस्स णं चंदिमसूरियस्स अट्ठासीइ अट्ठासीइ महग्गहा परिवारो प०, दिट्ठिवायस्स णं अट्ठासीइ सुत्ताइं प०, तं०–उज्जुसुयं परिणयापरिणयं एवं अट्ठासीइ सुत्ताणि भाणियव्वाणि जहा नंदीए, मंदरस्स णं पव्वयस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं अट्ठासीइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, एवं चउसुवि दिसासु नेयव्वं, बाहिराओ उत्तराओ णं कट्ठाओ सूरिए पढमं छम्मासं अयमाणे चोयालीसइमे मंडलगते अट्ठासीति इगसट्ठिभागे मुहुत्तस्स दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिनिवुड्ढेत्ता सूरिए चारं चरइ, दक्खिणकट्ठाओ णं सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे चोयालीसतिमे मंडलगते अट्ठासीई इगसट्ठिभागे मुहुत्तस्स रयणिखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिनिवुड्ढित्ता णं सूरिए चारं चरइ ॥ सूत्रं ८८ ॥

अष्टाशीतिस्थानके किञ्चिद्विवियते, एकैकस्यासंख्यातानामपि प्रत्येकमित्यर्थः, चन्द्रमाश्च सूर्यश्च चन्द्रमःसूर्यं तस्य, चन्द्रसूर्ययुगलस्य इत्यर्थः, अष्टाशीतिर्महाग्रहाः, एते च यद्यपि चन्द्रस्यैव परिवारोऽन्यत्र श्रूयते तथापि सूर्यस्यापीन्द्रत्वादेत एव परिवारतयाऽवसेया इति । 'दिट्ठिवाए'त्यादि, दृष्टिवादस्य–द्वादशाङ्गस्य परिकर्म्मसूत्रपूर्वगतप्रथमानु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योगचूलिकाभेदेन पञ्चप्रकारस्य 'सुत्ताइं'ति द्वितीयप्रकारभूतानि अष्टाशीतिर्भवन्ति 'जहा नंदीए'त्ति अतिदेशतः सूत्राणि दर्शितानि तानि चाग्रे व्याख्यास्यामः, 'मंदरस्से'त्यादि, मेरोः पूर्वान्तात् जम्बूद्वीपस्य पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्रमानात् जम्बूद्वीपान्ताच्च द्विचत्वारिंशद्योजनसहस्रेषु गोस्तुभस्य व्यवस्थितत्वात् तस्य च सहस्रविष्कम्भत्वाद् यथोक्तः सूत्रार्थो भवतीति, अनेनैव क्रमेण दक्षिणादिदिग्व्यवस्थितान् दकावभासशंखदकसीमाख्यान् वेलन्धरनागराजनिवासपर्वतानाश्रित्य वाच्यमत एवाह—'एवं चउसुवि दिसासु नेयव्व'मिति । 'बाहिराओ ण'मित्यादि, बाह्यायाः सर्वाभ्यन्तरमण्डलरूपाया उत्तरस्याः काष्ठायाः क्वचित् 'बाहिराओ'त्ति न दृश्यते सूर्यः प्रथमं षण्मासं दक्षिणायनलक्षणं दक्षिणायनादित्वात् संवत्सरस्य 'अयमाणे'त्ति आयान्—आगच्छन् चतुश्चत्वारिंशत्तममण्डलगतोऽष्टाशीतिमेकषष्टिभागान्, 'दिवसखेत्तस्स'त्ति दिवसस्यैव 'निवुड्ढेत्ते'त्ति निवर्द्ध्य हापयित्वा 'रयणिखेत्तस्स'त्ति रजन्यास्तु अभिवर्द्ध्य 'सूरिए चारं चरइ'त्ति भ्राम्यतीति, इह च भावनैवं—प्रतिमण्डलं दिनस्य मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयहानेर्दक्षिणायनापेक्षया चतुश्चत्वारिंशत्तमे अष्टाशीतिर्भागा हीयन्ते, रात्रेस्तु त एव वर्द्धन्त इति, द्विः सूर्यग्रहणं चेह दिनरात्र्याश्रितवाक्यद्वयभेदकल्पनया ततो न पुनरुक्तमवसेयं, इदं च सूत्रमष्टसप्ततिस्थानकसूत्रवद्भावनीयमिति, 'दक्खिणकट्ठाओ' इति आदिसूत्रं पूर्वसूत्रवदवगन्तव्यं नवरमिह दिनवृद्धिः रात्रिहानिश्च भावनीयेति ॥ ८८ ॥

उसभे णं अरहा कोसलिए इमीसे ओसप्पिणीए ततियाए सुसमदूसमाए पच्छिमे भागे एगूणणउए अद्धमासेहिं सेसेहिं कालगए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [८९]

प्रत अनुक्रम [१६८]

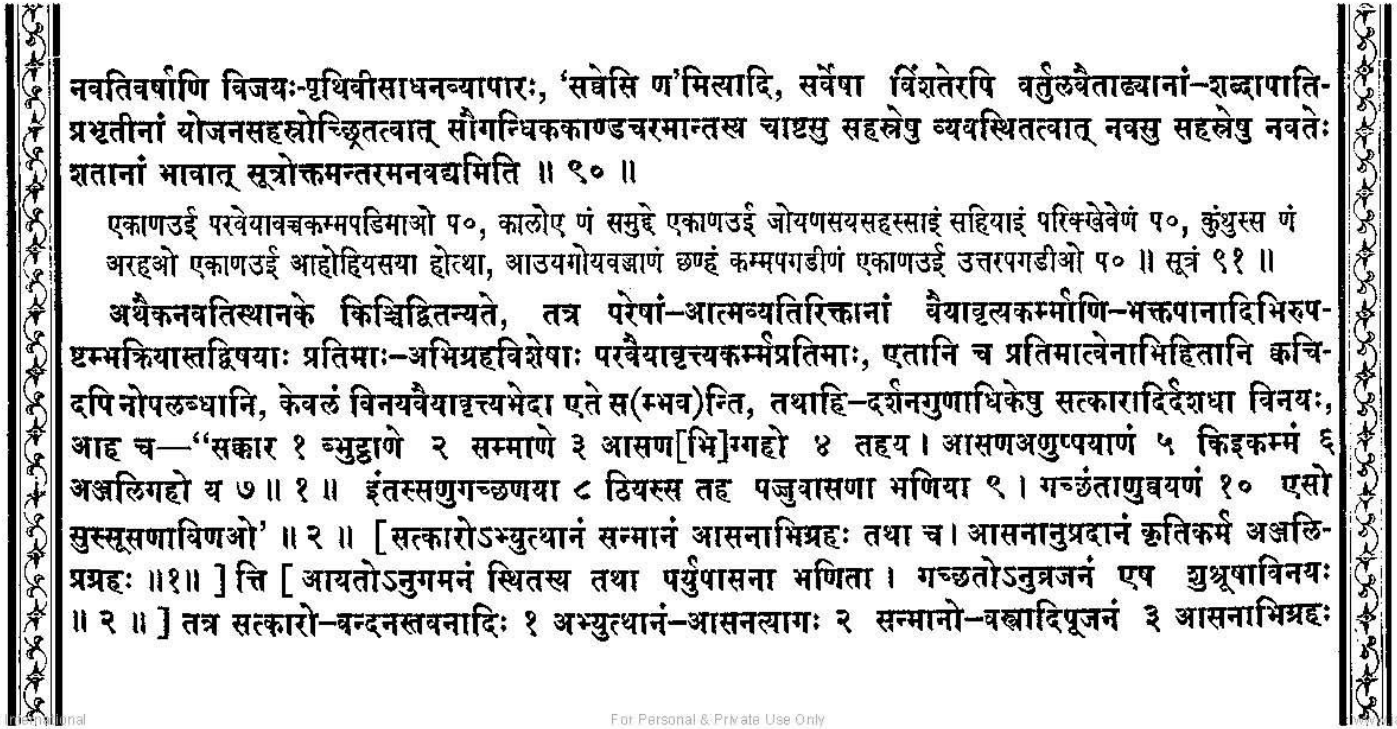
जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, समणे भगवं महावीरे इमीसे ओसप्पिणीए चउत्थाए दूसमसुसमाए समाए पच्छिमे भागे एगूणनउइए अद्धमासेहिं सेसेहिं कालगए जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, हरिसेणे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी एगूणनउइं वाससयाइं महाराया होत्था, संतिस्स णं अरहओ एगूणनउई अज्जासाहस्सीओ उक्कोसिया अज्जियासंपया होत्था ॥ सूत्रं ८९ ॥

अथैकोननवतिस्थानके किञ्चिद्विचार्यते–'तईयाए समाए'त्ति सुषमदुष्षमाभिधानाया एकोननवत्यामर्द्धमासेषु–त्रिषु वर्षेषु अर्द्धनवसु च मासेषु सत्स्विति गम्यते, 'जाव'त्ति करणात् 'अन्तगडे सिद्धे बुद्धे मुत्ते'त्ति दृश्यं, हरिषेण-चक्रवर्त्ती दशमस्तस्य च दश वर्षसहस्राणि सर्वायुस्तत्र च शतोनानि नव सहस्राणि राज्यं शेषाण्येकादश शतानि कुमारत्वमाण्डलिकत्वानगारत्वेषु अवसेयानि, इह शान्तिजिनस्यैकोननवतिरार्यिकासहस्राण्युक्तान्यावश्यके त्वेकषष्टिः सहस्राणि शतानि च षडभिधीयन्त इति मतान्तरमेतदिति ॥ ८९ ॥

सीयले णं अरहा नउइं धणूइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, अजियस्स णं अरहओ नउई गणा नउई गणहरा होत्था, एवं संतिस्सवि, सयंभुस्स णं वासुदेवस्स णउइवासाइं विजए होत्था, सव्वेसि णं वट्टवेयड्ढपव्वयाणं उवरिल्लाओ सिहरतलाओ सोगंधियकण्डस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं नउइजोयणसयाइं अबाहाए अंतरे प० ॥ सूत्रं ९० ॥

अथ नवतिस्थानके किञ्चिद् व्याख्यायते, तत्राजितनाथस्य शान्तिनाथस्य चेह नवतिर्गणा गणधराश्चोक्ताः आवश्यके तु पञ्चनवतिरजितस्य षट्त्रिंशत्तु शान्तेरुक्तास्तदिदमपि मतान्तरमिति, तथा स्वयम्भूः-तृतीयवासुदेवस्तस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



नवतिवर्षाणि विजयः-पृथिवीसाधनव्यापारः, 'सव्वेसि ण'मित्यादि, सर्वेषा विंशतेरपि वर्तुलवैताढ्यानां–शब्दापाति-प्रभृतीनां योजनसहस्रोच्छ्रितत्वात् सौगन्धिककाण्डचरमान्तस्य चाष्टसु सहस्रेषु व्यवस्थितत्वात् नवसु सहस्रेषु नवतेः शतानां भावात् सूत्रोक्तमन्तरमनवद्यमिति ॥ ९० ॥

एकाणउई परवेयावच्चकम्मपडिमाओ प०, कालोए णं समुद्दे एकाणउई जोयणसयसहस्साइं सहियाइं परिक्खेवेणं प०, कुंथुस्स णं अरहओ एकाणउई आहोहियसया होत्था, आउयगोयवज्जाणं छण्हं कम्मपगडीणं एकाणउई उत्तरपगडीओ प० ॥ सूत्रं ९१ ॥

अथैकनवतिस्थानके किञ्चिद्वितन्यते, तत्र परेषां–आत्मव्यतिरिक्तानां वैयावृत्यकर्म्माणि–भक्तपानादिभिरुपष्टम्भक्रियास्तद्विषयाः प्रतिमाः–अभिग्रहविशेषाः परवैयावृत्त्यकर्म्मप्रतिमाः, एतानि च प्रतिमात्वेनाभिहितानि क्वचिदपि नोपलब्धानि, केवलं विनयवैयावृत्त्यभेदा एते स(म्भव)न्ति, तथाहि–दर्शनगुणाधिकेषु सत्कारादिर्दशधा विनयः, आह च—"सक्कार १ ब्भुट्ठाणे २ सम्माणे ३ आसण[भि]ग्गहो ४ तहय। आसणअणुप्पयाणं ५ किइकम्मं ६ अंजलिगहो य ७॥ १ ॥ इंतस्सणुगच्छणया ८ ठियस्स तह पज्जुवासणा भणिया ९। गच्छंताणुव्वयणं १० एसो सुस्सूसणाविणओ' ॥ २ ॥ [सत्कारोऽभ्युत्थानं सन्मानं आसनाभिग्रहः तथा च। आसनानुप्रदानं कृतिकर्म अंजलिप्रग्रहः ॥१॥] त्ति [आयतोऽनुगमनं स्थितस्य तथा पर्युपासना भणिता। गच्छतोऽनुव्रजनं एष शुश्रूषाविनयः ॥ २ ॥] तत्र सत्कारो–वन्दनस्तवनादिः १ अभ्युत्थानं–आसनत्यागः २ सन्मानो–वस्त्रादिपूजनं ३ आसनाभिग्रहः

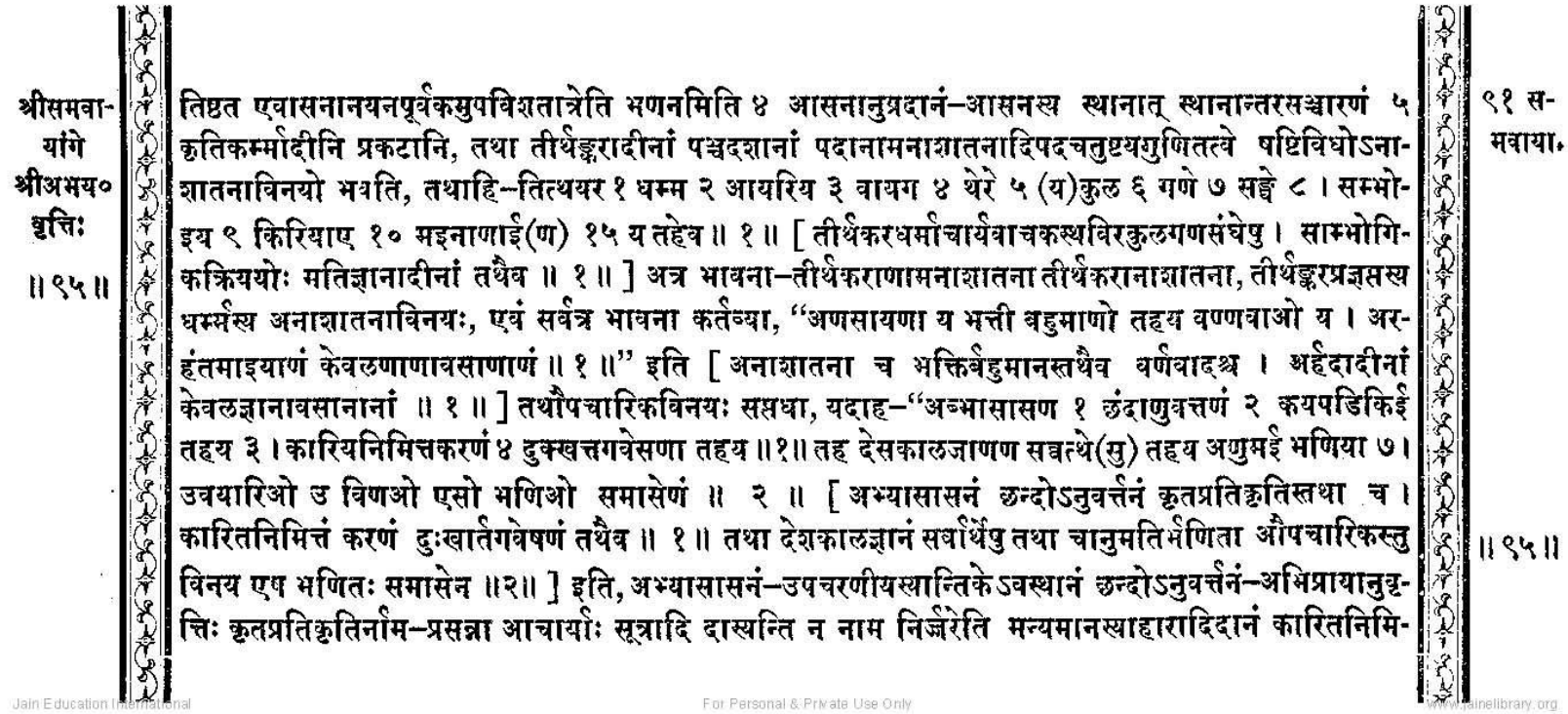
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	सत्कारादि दशविध-विनयस्य वर्णनं

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [९१]

प्रत अनुक्रम [१७०]



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ९५ ॥

तिष्ठत एवासनानयनपूर्वकमुपविशतात्रेति भणनमिति ४ आसनानुप्रदानं–आसनस्य स्थानात् स्थानान्तरसञ्चारणं ५ कृतिकर्म्मादीनि प्रकटानि, तथा तीर्थङ्करादीनां पञ्चदशानां पदानामनाशातनादिपदचतुष्टयगुणितत्वे षष्टिविधोऽनाशातनाविनयो भवति, तथाहि–तित्थयर १ धम्म २ आयरिय ३ वायग ४ थेरे ५ (य)कुल ६ गणे ७ सङ्घे ८ । सम्भोइय ९ किरियाए १० मइनाणाई(ण) १५ य तहेव ॥ १ ॥ [तीर्थकरधर्माचार्यवाचकस्थविरकुलगणसंघेषु । साम्भोगिकक्रिययोः मतिज्ञानादीनां तथैव ॥ १ ॥] अत्र भावना–तीर्थकराणामनाशातना तीर्थकरानाशातना, तीर्थङ्करप्रज्ञप्तस्य धर्म्मस्य अनाशातनाविनयः, एवं सर्वत्र भावना कर्तव्या, "अणसायणा य भत्ती बहुमाणो तहय वण्णवाओ य । अरहंतमाइयाणं केवलणाणावसाणाणं ॥ १ ॥" इति [अनाशातना च भक्तिर्बहुमानस्तथैव वर्णवादश्च । अर्हदादीनां केवलज्ञानावसानानां ॥ १ ॥] तथौपचारिकविनयः सप्तधा, यदाह–"अब्भासासण १ छंदाणुवत्तणं २ कयपडिकिई तहय ३ । कारियनिमित्तकरणं ४ दुक्खत्तगवेसणा तहय ॥१॥ तह देसकालजाणण सव्वत्थे(सु) तहय अणुमई भणिया ७। उवयारिओ उ विणओ एसो भणिओ समासेणं ॥ २ ॥ [अभ्यासासनं छन्दोऽनुवर्त्तनं कृतप्रतिकृतिस्तथा च । कारितनिमित्तं करणं दुःखार्तगवेषणं तथैव ॥ १ ॥ तथा देशकालज्ञानं सर्वार्थेषु तथा चानुमतिर्भणिता औपचारिकस्तु विनय एष भणितः समासेन ॥२॥] इति, अभ्यासासनं–उपचरणीयस्यान्तिकेऽवस्थानं छन्दोऽनुवर्त्तनं–अभिप्रायानुवृत्तिः कृतप्रतिकृतिर्नाम–प्रसन्ना आचार्याः सूत्रादि दास्यन्ति न नाम निर्जरेति मन्यमानस्याहारादिदानं कारितनिमि-

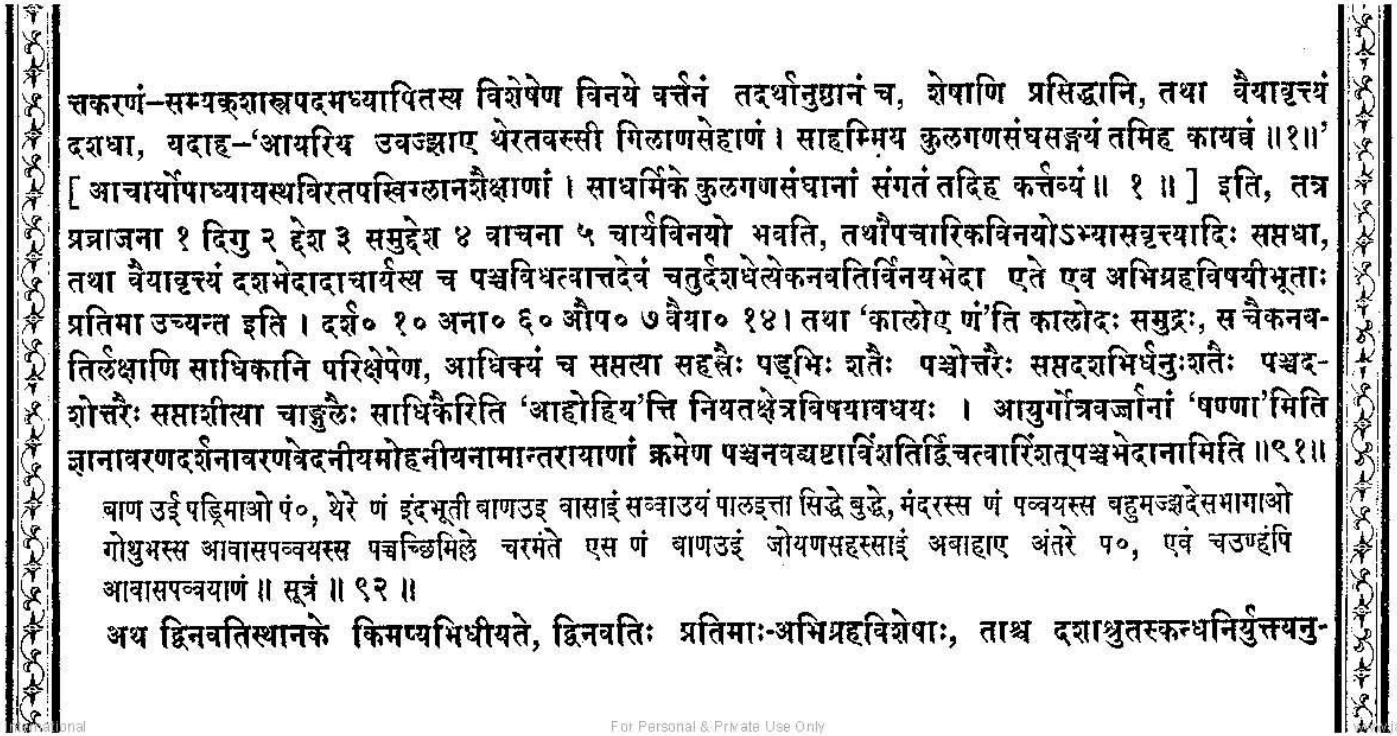
९१ समवाया. ॥ ९५ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्कारादि दशविध-विनयस्य वर्णनं

प्रत सूत्रांक [९१]

प्रत अनुक्रम [१७०]



सत्करणं–सम्यक्शास्त्रपदमध्यापितस्य विशेषेण विनये वर्त्तनं तदर्थानुष्ठानं च, शेषाणि प्रसिद्धानि, तथा वैयावृत्त्यं दशधा, यदाह–'आयरिय उवज्झाए थेरतवस्सी गिलाणसेहाणं। साहम्मिय कुलगणसंघसङ्गयं तमिह कायवं ॥१॥' [आचार्योपाध्यायस्थविरतपस्विग्लानशैक्षाणां। साधर्मिके कुलगणसंघानां संगतं तदिह कर्त्तव्यं॥ १ ॥] इति, तत्र प्रव्राजना १ दिगु २ देश ३ समुद्देश ४ वाचना ५ चार्यविनयो भवति, तथौपचारिकविनयोऽभ्यासवृत्त्यादिः सप्तधा, तथा वैयावृत्त्यं दशभेदादाचार्यस्य च पञ्चविधत्वात्तदेवं चतुर्दशधेत्येकनवतिर्विनयभेदा एते एव अभिग्रहविषयीभूताः प्रतिमा उच्यन्त इति। दर्श० १० अना० ६० औप० ७ वैया० १४। तथा 'कालोए णं'ति कालोदः समुद्रः, स चैकनवतिर्लक्षाणि साधिकानि परिक्षेपेण, आधिक्यं च सप्तत्या सहस्रैः षड्भिः शतैः पञ्चोत्तरैः सप्तदशभिर्धनुःशतैः पञ्चदशोत्तरैः सप्ताशीत्या चाङ्गुलैः साधिकैरिति 'आहोहिय'त्ति नियतक्षेत्रविषयावधयः । आयुर्गोत्रवर्जानां 'पण्णा'मिति ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयनामान्तरायाणां क्रमेण पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिर्द्विचत्वारिंशत्पञ्चभेदानामिति ॥९१॥

बाण उई पडिमाओ पं०, थेरे णं इंदभूती बाणउइ वासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे, मंदरस्स णं पव्वयस्स बहुमज्झदेसभागाओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पच्चिछमिले चरमंते एस णं बाणउइं जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, एवं चउण्हंपि आवासपव्वयाणं ॥ सूत्रं ॥ ९२ ॥

अथ द्विनवतिस्थानके किमप्यभिधीयते, द्विनवतिः प्रतिमाः-अभिग्रहविशेषाः, ताश्च दशाश्रुतस्कन्धनिर्युक्त्यनु-

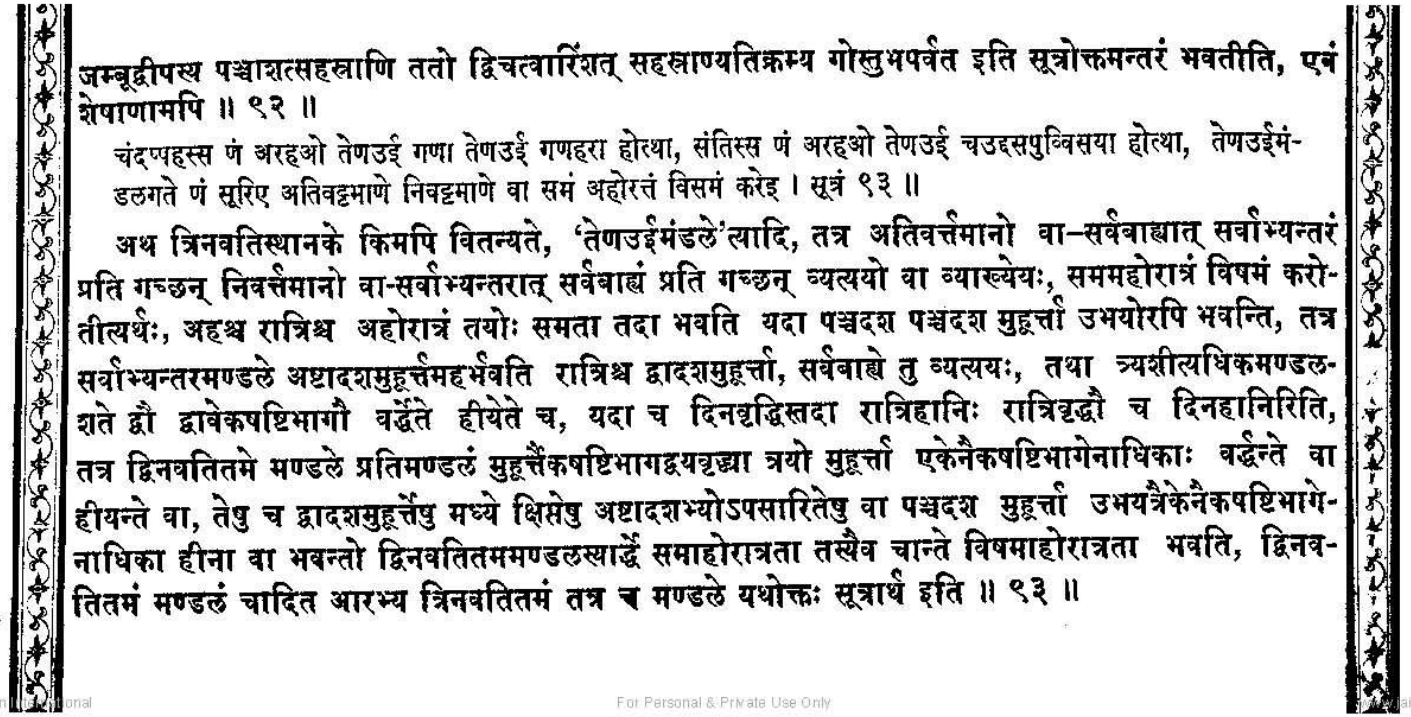
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्कारादि दशविध-विनयस्य वर्णनं

सारेण दर्श्यन्ते, तत्र किल पञ्च प्रतिमा उक्ताः, तद्यथा–समाधिप्रतिमा द्विविधा १ उपधानप्रतिमा २ विवेकप्रतिमा ३ प्रतिसंलीनताप्रतिमा ४ एकविहारप्रतिमा चेति ५, तत्र समाधिप्रतिमा द्विविधा श्रुतसमाधिप्रतिमा चारित्रसमाधिप्रतिमा च, दर्शनं ज्ञानान्तर्गतमिति न भिन्ना दर्शनप्रतिमा विवक्षिता, तत्र श्रुतसमाधिप्रतिमा द्विषष्टिभेदा, कथं?, आचारे प्रथमे श्रुतस्कन्धे पञ्च द्वितीये सप्तत्रिंशत् स्थानाङ्गे षोडश व्यवहारे चतस्र इत्येता द्विषष्टिः, एताश्च चारित्रस्वभावा अपि विशिष्टश्रुतवतां भवन्तीति श्रुतप्रधानतया श्रुतसमाधिप्रतिमात्वेनोपदिष्टा इति सम्भावयामः, पञ्च सामायिकच्छेदोपस्थापनीयाद्याश्चारित्रसमाधिप्रतिमाः, उपधानप्रतिमा द्विविधा भिक्षुश्रावकभेदात्, तत्र भिक्षुप्रतिमा 'मासाइसत्तंता' इत्यादिनाऽभिहितस्वरूपा द्वादश उपासप्रतिमासु 'दंसणवय' इत्यादिनाऽभिहितस्वरूपा एकादशेति सर्वास्वयोविंशतिर्विवेकप्रतिमा त्वेका क्रोधादेरारभ्यन्तरस्य गणशरीरोपधिभक्तपानादेर्बाह्यस्य च विवेचनीयस्यानेकत्वेऽप्येकत्वविवक्षणादिति, प्रतिसंलीनताप्रतिमाऽप्येकैव इन्द्रियस्वरूपस्य पञ्चविधस्य नोइन्द्रियस्वभावस्य च योगकषायविविक्तशयनासनभेदतस्त्रिविधस्य प्रतिसंलीनताविषयस्य भेदेनाविवक्षणादिति, पञ्चस्वेकविहारप्रतिमैकैव, न चेह सा भेदेन विवक्षिता, भिक्षुप्रतिमास्वन्तर्भावितत्वादित्येवं द्विषष्टिः पञ्च त्रयोविंशतिरेका एका च द्विनवतिस्ता भवन्तीति। स्थविर इन्द्रभूतिर्महावीरस्य प्रथमगणनायकः, स च गृहस्थपर्याये पञ्चाशतं वर्षाणि त्रिंशतं छद्मस्थपर्यायं द्वादश च केवलित्वं पालयित्वा सिद्ध इति सर्वाणि द्विनवतिरिति। 'मंदरस्से'त्यादि, भावार्थः, मेरुमध्यभागात्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	प्रतिमाः / अभिग्रह-विशेषाणाम भेद-प्रभेदाः



जम्बूद्वीपस्य पञ्चाशत्सहस्राणि ततो द्विचत्वारिंशत् सहस्राण्यतिक्रम्य गोस्तुभपर्वत इति सूत्रोक्तमन्तरं भवतीति, एवं शेषाणामपि ॥ ९२ ॥

चंदप्पहस्स णं अरहओ तेणउई गणा तेणउई गणहरा होत्था, संतिस्स णं अरहओ तेणउई चउद्दसपुव्विसया होत्था, तेणउईमंडलगते णं सूरिए अतिवट्टमाणे निवट्टमाणे वा समं अहोरत्तं विसमं करेइ । सूत्रं ९३ ॥

अथ त्रिनवतिस्थानके किमपि वितन्यते, 'तेणउईमंडले'त्यादि, तत्र अतिवर्त्तमानो वा–सर्वबाह्यात् सर्वाभ्यन्तरं प्रति गच्छन् निवर्त्तमानो वा-सर्वाभ्यन्तरात् सर्वबाह्यं प्रति गच्छन् व्यत्ययो वा व्याख्येयः, सममहोरात्रं विषमं करोतीत्यर्थः, अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रं तयोः समता तदा भवति यदा पञ्चदश पञ्चदश मुहूर्त्ता उभयोरपि भवन्ति, तत्र सर्वाभ्यन्तरमण्डले अष्टादशमुहूर्त्तमहर्भवति रात्रिश्च द्वादशमुहूर्त्ता, सर्वबाह्ये तु व्यत्ययः, तथा त्र्यशीत्यधिकमण्डलशते द्वौ द्वावेकषष्टिभागौ वर्द्धेते हीयेते च, यदा च दिनवृद्धिस्तदा रात्रिहानिः रात्रिवृद्धौ च दिनहानिरिति, तत्र द्विनवतितमे मण्डले प्रतिमण्डलं मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयवृद्ध्या त्रयो मुहूर्त्ता एकेनैकषष्टिभागेनाधिकाः वर्द्धन्ते वा हीयन्ते वा, तेषु च द्वादशमुहूर्त्तेषु मध्ये क्षिप्तेषु अष्टादशभ्योऽपसारितेषु वा पञ्चदश मुहूर्त्ता उभयत्रैकेनैकषष्टिभागेनाधिका हीना वा भवन्तो द्विनवतितममण्डलस्यार्द्धे समाहोरात्रता तस्यैव चान्ते विषमाहोरात्रता भवति, द्विनवतितमं मण्डलं चादित आरभ्य त्रिनवतितमं तत्र च मण्डले यथोक्तः सूत्रार्थ इति ॥ ९३ ॥

१७ सम०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [९४]

प्रत अनुक्रम [१७३]

निसहनीलवंतियाओ णं जीवाओ चउणउइ जोयणसहस्साइं एक्कं छप्पन्नं जोयणसयं दोन्नि य एगूणवीसइभागे जोयणस्स आयामेणं प०, अजियस्स णं अरहओ चउणउइ ओहिनाणिसया होत्था ॥ सूत्रं ९४ ॥

अथ चतुर्नवतिस्थानके किञ्चिद्विविच्यते, 'निसहे'त्यादि, इह पादोना संवादगाथा 'चउणउइसहस्साइं छप्पणहियं सयं कला दो य । जीवा निसहस्सेस" [चतुर्नवतिः सहस्राणि षट्पञ्चाशदधिकं शतं कले द्वे च । जीवा निषधस्यैषा] त्ति ॥ ९४ ॥

सुपासस्स णं अरहओ पंचाणउइ गणा पंचाणउइ गणहरा होत्था, जम्बुद्दीवस्स णं दीवस्स चरमंताओ चउद्दिसिं लवणसमुद्दं पंचाणउइ पंचाणउइ जोयणसहस्साइं ओगाहित्ता चत्तारि महापायालकलसा प० तं०–वलयामुहे केऊए जूयए ईसरे, लवणसमुद्दस्स उभओपासंपि पंचाणउयं पंचाणउयं पदेसाओ उव्वेहुस्सेहपरिहाणीए प०, कुंथू णं अरहा पंचाणउइ वाससहस्साइं परमाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव पहीणे, थेरे णं मोरियपुत्ते पंचाणउइवासाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जावप्पहीणे ॥सूत्रं ९५॥

अथ पञ्चनवतिस्थानके किञ्चिल्लिख्यते, लवणसमुद्रस्योभयपार्श्वतोऽपि पञ्चनवतिः प्रदेशा उद्वेधोत्सेधपरिहान्या विषये प्रज्ञप्ताः, अयमत्र भावार्थः–लवणसमुद्रमध्ये दशसाहस्रिकक्षेत्रस्य समधरणीतलापेक्षया सहस्रमुद्वेधः, उण्डत्वमित्यर्थः, तदनन्तरं पञ्चनवतिं प्रदेशानतिक्रम्योद्वेधस्य प्रदेशो हीयते, ततोऽपि पञ्चनवतिं प्रदेशान् गत्वा उद्वेधस्य प्रदेशः परिहीयते, एवं पञ्चनवति२प्रदेशातिक्रमे प्रदेशमात्रस्य प्रदेशमात्रस्योद्वेधस्य हान्या पञ्चनवत्यां योजनसह-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

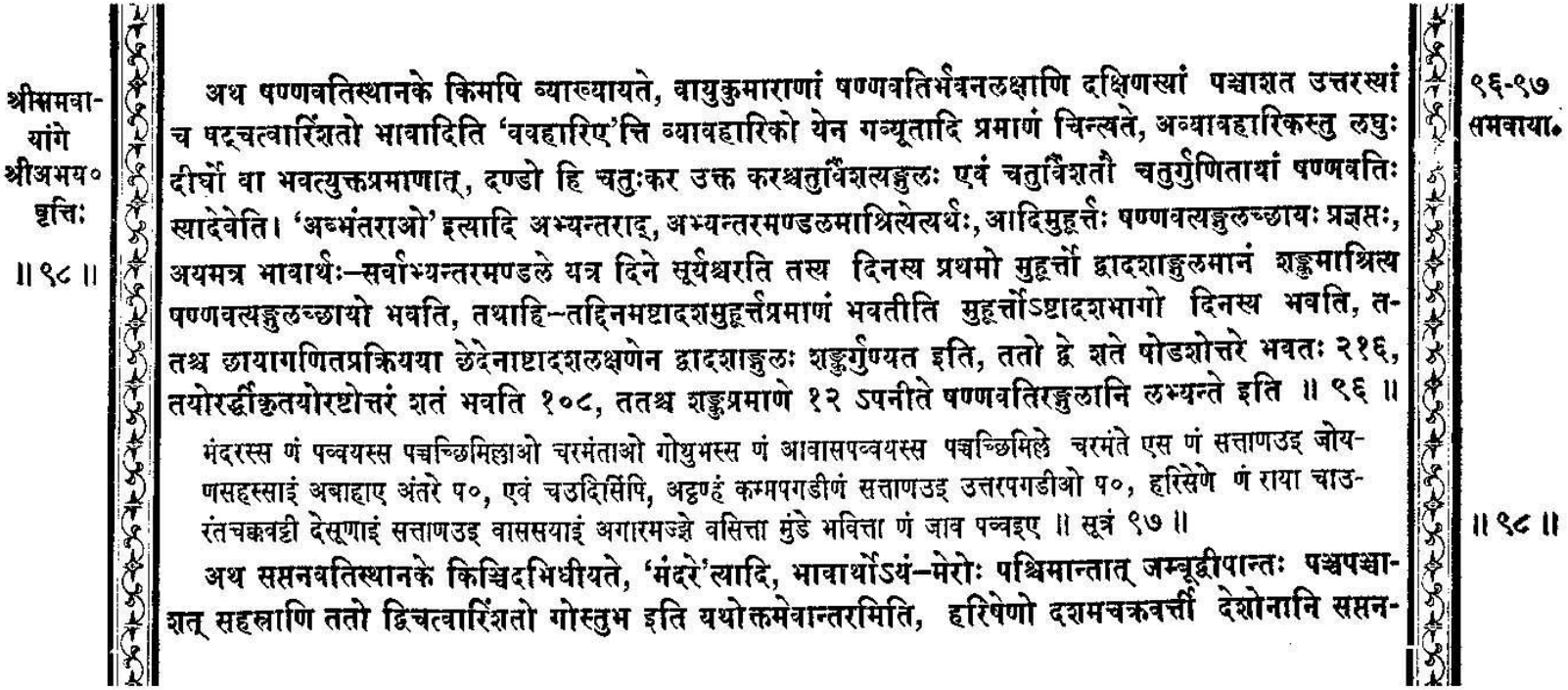
प्रत सूत्रांक [९५]

प्रत अनुक्रम [१७४]

स्रेष्वतिक्रान्तेषु समुद्रतटप्रदेशेषु उद्वेधसहस्रस्यापि परिहानिर्भवतीत्यर्थः, समभूतलत्वं भवतीति, तथा समुद्रमध्यभागापेक्षया तत्तटस्य साहस्रिक उत्सेधो भवति, उत्सेधश्चोच्चत्वं, तत्र समधरणीतलरूपात्तत्तटात्पञ्चनवतिं प्रदेशानतिक्रम्य एकप्रदेशिका उत्सेधस्य परिहानिर्भवति, ततोऽपि पञ्चनवतिं प्रदेशान् गत्वा प्रादेशिक्येवोत्सेधहानिर्भवति, एवं पञ्चनवतिपञ्चनवतिप्रदेशातिक्रमेण प्रादेशिक्यां प्रादेशिक्यां उत्सेधहान्यां पञ्चनवत्यां योजनसहस्रेष्वतिक्रान्तेषु समुद्रमध्यभागे सहस्रमपि उत्सेधस्य परिहीयते, एवं साहस्रिकोत्सेधपरिहानौ साहस्रिकोद्वेधता भवति 'लवणस्से'ति, अथवोद्वेधार्थं योत्सेधपरिहानिस्तस्यां च पञ्चनवतिः प्रदेशाः–प्रज्ञप्तास्तेष्वतिलङ्घितेषु उत्सेधतः प्रदेशपरिहान्यामुद्वेधः प्रादेशिको भवतीति, तथा कुन्थुनाथस्य–सप्तदशतीर्थकरस्य कुमारत्वमाण्डलिकत्वचक्रवर्त्तित्वानगारत्वेषु प्रत्येकं त्रयोविंशतेर्वर्षसहस्राणामर्द्धाष्टमवर्षशतानां च भावात्सर्वायुः पञ्चनवतिर्वर्षसहस्राणि भवन्तीति, तथा मौर्यपुत्रो-महावीरस्य सप्तमगणधरस्तस्य पञ्चनवतिर्वर्षाणि सर्वायुः, कथं ?, गृहस्थत्वछद्मस्थत्वकेवलित्वेषु क्रमेण पञ्चषष्टिचतुर्दशषोडशानां वर्षाणां भावादिति ॥ ९५ ॥

एगमेगस्स णं रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स छण्णउई छण्णउई गामकोडीओ होत्था, वायुकुमाराणं छण्णउइ भवणावाससयसहस्सा प०, ववहारिए णं दंडे छण्णउइ अङ्गुलाइं अंगुलमाणेणं, एवं धणू नालिया जुगे अक्खे मुसलेवि हु, अब्भितरओ आइमुहुत्ते छण्णउइअंगुलछाए प० ॥ सूत्रं ९६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ ९८ ॥

अथ षण्णवतिस्थानके किमपि व्याख्यायते, वायुकुमाराणां षण्णवतिर्भवनलक्षाणि दक्षिणस्यां पञ्चाशत उत्तरस्यां च षट्चत्वारिंशतो भावादिति 'ववहारिए'त्ति व्यावहारिको येन गव्यूतादि प्रमाणं चिन्त्यते, अव्यावहारिकस्तु लघुः दीर्घो वा भवत्युत्कप्रमाणात्, दण्डो हि चतुःकर उक्त करश्चतुर्विंशत्यङ्गुलः एवं चतुर्विंशतौ चतुर्गुणितायां षण्णवतिः स्यादेवेति। 'अब्भंतराओ' इत्यादि अभ्यन्तराद्, अभ्यन्तरमण्डलमाश्रित्येत्यर्थः, आदिमुहूर्त्तः षण्णवत्यङ्गुलच्छायः प्रज्ञप्तः, अयमत्र भावार्थः–सर्वाभ्यन्तरमण्डले यत्र दिने सूर्यश्चरति तस्य दिनस्य प्रथमो मुहूर्त्तो द्वादशाङ्गुलमानं शङ्कुमाश्रित्य षण्णवत्यङ्गुलच्छायो भवति, तथाहि–तद्दिनमष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणं भवतीति मुहूर्त्तोऽष्टादशभागो दिनस्य भवति, ततश्च छायागणितप्रक्रियया छेदेनाष्टादशलक्षणेन द्वादशाङ्गुलः शङ्कुर्गुण्यत इति, ततो द्वे शते षोडशोत्तरे भवतः २१६, तयोरर्द्धीकृतयोरष्टोत्तरं शतं भवति १०८, ततश्च शङ्कुप्रमाणे १२ ऽपनीते षण्णवतिरङ्गुलानि लभ्यन्ते इति ॥ ९६ ॥

मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चिच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथुभस्स णं आवासपव्वयस्स पच्चिच्छिमिल्ले चरमंते एस णं सत्ताणउइ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, एवं चउदिसिंपि, अट्ठण्हं कम्मपगडीणं सत्ताणउइ उत्तरपगडीओ प०, हरिसेणे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी देसूणाइं सत्ताणउइ वाससयाइं अगारमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता णं जाव पव्वइए ॥ सूत्रं ९७ ॥

अथ सप्तनवतिस्थानके किञ्चिदभिधीयते, 'मंदरे'त्यादि, भावार्थोऽयं–मेरोः पश्चिमान्तात् जम्बूद्वीपान्तः पञ्चपञ्चाशत् सहस्राणि ततो द्विचत्वारिंशतो गोस्तुभ इति यथोक्तमेवान्तरमिति, हरिषेणो दशमचक्रवर्त्ती देशोनानि सप्तन-

९६-९७ समवाया० ॥ ९८ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्तिं वर्षशतानि गृहमध्युषितस्त्रीणि चाधिकानि प्रव्रज्यां पालितवान् दशवर्षसहस्रत्वात्तदायुष्कस्येति ॥ ९७ ॥

नंदणवणस्स णं उवरिल्लाओ चरमंताओ पंडुयवणस्स हेट्ठिले चरमंते एस णं अट्ठाणउइ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, मंदरस्स णं पव्वयस्स पच्चच्छिमिल्लाओ चरमंताओ गोथुभस्स आवासपव्वयस्स पुरच्छिमिल्ले चरमंते एस णं अट्ठाणउइ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प०, एवं चउदिसिंपि, दाहिणभरहस्स णं धणुप्पिट्ठे अट्ठाणउइ जोयणसयाइं किंचूणाइं आयामेणं प०, उत्तराओ कट्ठाओ सूरिए पढमं छम्मासं अयमाणे एगूणपन्नासतिमे मण्डलगते अट्ठाणउइ एकसट्ठिभागे मुहुत्तस्स दिवसखेत्तस्स निवुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिनिवुड्ढित्ता णं सूरिए चारं चरइ, दक्खिणाओ णं कट्ठाओ सूरिए दोचं छम्मासं अयमाणे एगूणपन्नासइमे मंडलगते अट्ठाणउइ एकसट्ठिभाए मुहुत्तस्स रयणिखित्तस्स निवुड्ढेत्ता दिवसखेत्तस्स अभिनिवुड्ढित्ता णं सूरिए चारं चरइ, रेवईपढमजेट्ठापज्जवसाणाणं एगूणवीसाए नक्खत्ताणं अट्ठाणउइ ताराओ तारग्गेणं प० ॥ सूत्रं ९८ ॥

अथाष्टनवतिस्थानके किञ्चिदभिधीयते–'नंदणवणे'त्यादि, भावार्थोऽयं–नन्दनवनं मेरोः पञ्चयोजनशतोच्छ्रितप्रथममेखलाभावि पञ्चयोजनशतोच्छ्रितं तद्गतपञ्चयोजनशतोच्छ्रितकूटाष्टकस्य तद्ग्रहणेन ग्रहणात् तथा पण्डकवनं च मेरुशिखरव्यवस्थितं अतो नवनवत्या मेरोरुच्चैस्त्वस्य आद्ये सहस्रे अपकृष्टे यथोक्तमन्तरं भवतीति । गोस्तुभसूत्रभावार्थः पूर्ववन्नवरं गोस्तुभविष्कम्भसहस्रे क्षिप्ते यथोक्तमन्तरं भवतीति । 'वेयड्ढस्स ण'मित्यादि यः केषुचित्पुस्तकेषु दृश्यते सोऽपपाठः, सम्यक्पाठश्चायं–'दाहिणभरहड्ढस्स णं धणुपिट्ठे अट्ठाणउइं जोयणसयाइं किंचूणाइं आयामेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णत्ते' इति, यतोऽन्यत्रोक्तं–'नव चेव सहस्साइं छावट्ठाइं सयाइं सत्त भवे । सविसेस कला चेगा दाहिणभरहे धणुप्पिट्ठं ॥ १ ॥ (९६०७$\frac{१}{१९}$) ति, वैताढ्यधनुःपृष्ठं त्वेवमुक्तमन्यत्र–"दस चेव सहस्साइं सत्तेव सया हवंति तेयाला । धणुपिट्ठं वेयड्ढे कला य पण्णारस हवंति ॥ १ ॥" (१०७४३ $\frac{५}{१९}$) 'उत्तराओ ण'मित्यादि, भावार्थः पूर्वोक्तभावनानुसारेणावसेयः, नवरमिह 'एकतालीसइमे' इति केषुचित्पुस्तकेषु दृश्यते सोऽपपाठः, 'एगूणपञ्चासइमे'त्ति एकोनपञ्चाशतो द्विगुणत्वे अष्टनवतिर्भवति, द्वयगुणनं च प्रतिमण्डलं मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयवृद्धेर्दिनस्य रात्रेर्वेति । 'रेवई'त्यादि, रेवतिः प्रथमा येषां तानि रेवतिप्रथमानि तथा ज्येष्ठा पर्यवसाने येषां तानि ज्येष्ठापर्यवसानानि तानि च तानि चेति कर्म्मधारयः तेषामेकोनविंशतेर्नक्षत्राणामष्टनवतिस्तारास्तारापरिमाणेन प्रज्ञप्ताः, तथाहि–रेवतिनक्षत्रं द्वात्रिंशत्तारं ३२ अश्विनी त्रितारं ३५ भरणी (त्रितारं) ३८ कृत्तिका षट्तारं ४४ रोहिणी पञ्चतारं ४९ मृगशिरस्त्रितारं ५२ आर्द्रा एकतारं ५३ पुनर्वसुः पञ्चतारं ५८ पुष्यस्त्रितारं ६१ अश्लेषा षट्तारं ६७ मघा सप्ततारं ७४ पूर्वाफाल्गुनी द्वितारं ७६ उत्तराफाल्गुनी द्वितारं ७८ हस्तः पञ्चतारं ८३ चित्रा एकतारं ८४ स्वातिरेकतारं ८५ विशाखा पञ्चतारं ९० अनुराधा चतुस्तारं ९४ ज्येष्ठा त्रितारमित्येवं ९७ सर्वतारामीलने यथोक्तं ताराग्रमेकोनं ग्रन्थान्तराभिप्रायेण भवति, अधिकृतग्रन्थाभिप्रायेण त्वेषामेकतरस्य एकताराधिकत्वं सम्भाव्यते ततो यथोक्ता तत्संख्या भवतीति ॥ ९८ ॥

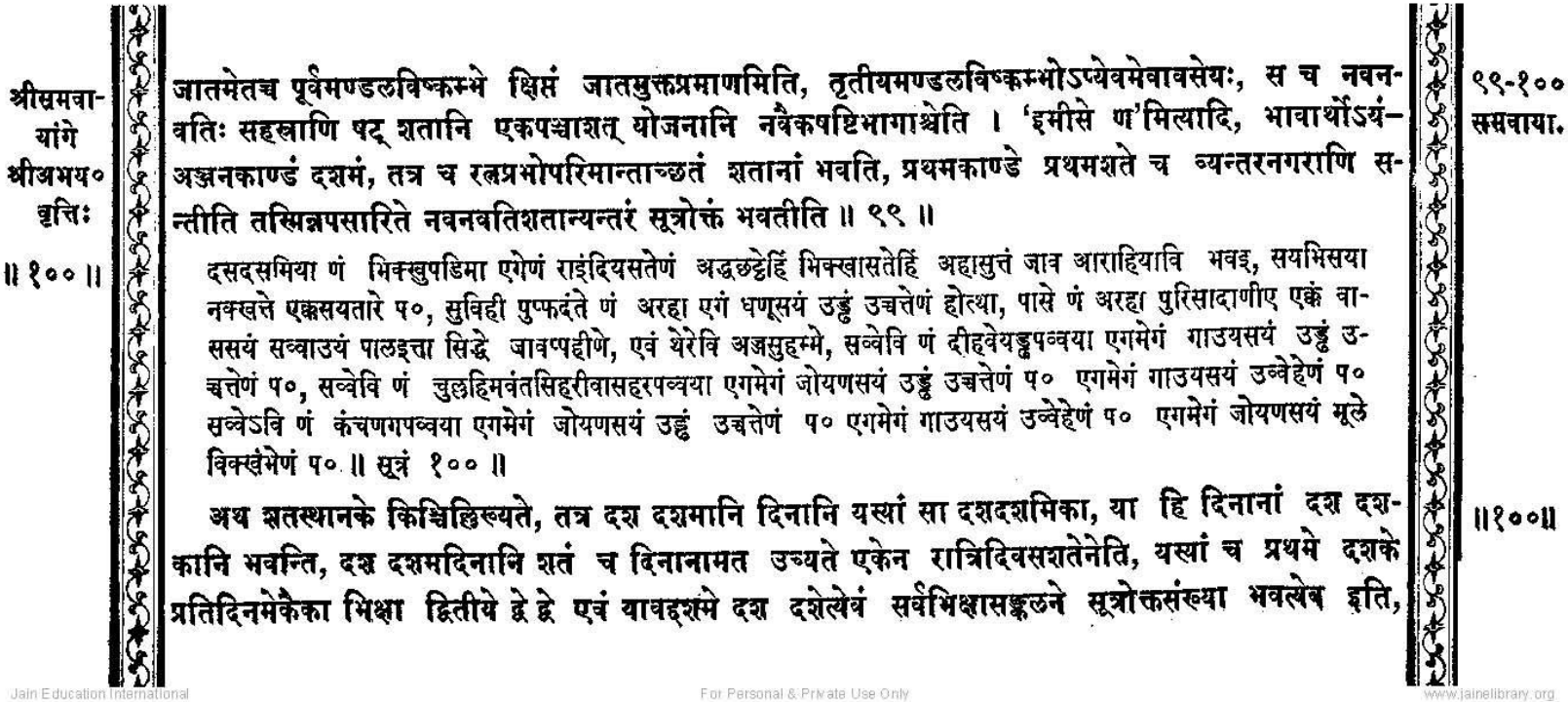
मंदरे णं पव्वए णवणउइ जोयणसहस्साइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, नंदणवणस्स णं पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ पच्चच्छिमिल्ले चरमंते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एस णं नवनउइ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे प०, एवं दक्खिणिल्लाओ चरमंताओ उत्तरिल्ले चरमंते एस णं णवणउइ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे प०, उत्तरे पढमे सूरियमंडले नवनउइजोयणसहस्साइं साइरेगाइं आयामविक्खंभेणं प०, दोच्चे सूरियमंडले नवनउइ जोयणसहस्साइं साहियाइं आयामविक्खंभेणं प०, तइए सूरियमंडले नवनउइ जोयणसहस्साइं साहियाइं आयामविक्खंभेणं प०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए अंजणस्स कंडस्स हेट्ठिल्लाओ चरमंताओ वाणमंतरभोमेज्जविहाराणं उवरिमंते एस णं नवनउइ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे प० ॥ सूत्रं ९९ ॥

अथ नवनवतिस्थानके किमपि लिख्यते–'नंदणवणे'त्यादि, अस्य भावार्थः–मेरुविष्कम्भो मूले दश सहस्राणि, नन्दनवनस्थाने तु नवनवतियोंजनशतानि चतुःपञ्चाशच्च योजनानि षट् योजनैकादशभागा बाह्यो गिरिविष्कम्भो नन्दनवनाभ्यन्तरस्तु मेरुविष्कम्भ एकोननवतिः शतानि चतुःपञ्चाशदधिकानि षट् चैकादशभागास्तथा पञ्च शतानि नन्दनवनविष्कम्भः, तदेवमभ्यन्तरगिरिविष्कम्भो द्विगुणनन्दनवनविष्कम्भश्च मिलितो यथोक्तमन्तरं प्रायो भवति, 'पढमसूरियमंडले'त्ति, इह जम्बूद्वीपप्रमाणस्याशीत्युत्तरशते द्विगुणिते अपहृते यो राशिः स प्रथममण्डलस्यायामविष्कम्भः, स च नवनवतिः सहस्राणि षट् च शतानि चत्वारिंशदधिकानि, द्वितीयं तु नवनवतिः सहस्राणि षट् शतानि पञ्चचत्वारिंशच्च योजनानि योजनस्य च पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागाः, कथं ?, मण्डलस्य मण्डलस्य चान्तरं द्वे द्वे योजने, सूर्यविमानविष्कम्भश्चाष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः, एतद्द्विगुणितं पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागाश्चेति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ १०० ॥

जातमेतच्च पूर्वमण्डलविष्कम्भे क्षिप्तं जातमुक्तप्रमाणमिति, तृतीयमण्डलविष्कम्भोऽप्येवमेवावसेयः, स च नवनवतिः सहस्राणि षट् शतानि एकपञ्चाशत् योजनानि नवैकषष्टिभागाश्चेति । 'इमीसे ण'मित्यादि, भावार्थोऽयं–अञ्जनकाण्डं दशमं, तत्र च रत्नप्रभोपरिमान्ताच्छतं शतानां भवति, प्रथमकाण्डे प्रथमशते च व्यन्तरनगराणि सन्तीति तस्मिन्नपसारिते नवनवतिशतान्यन्तरं सूत्रोक्तं भवतीति ॥ ९९ ॥

दसदसमिया णं भिक्खुपडिमा एगेणं राइंदियसतेणं अद्धछट्ठेहिं भिक्खासतेहिं अहासुत्तं जाव आराहियावि भवइ, सयभिसया नक्खत्ते एक्कसयतारे प०, सुविही पुप्फदंते णं अरहा एगं धणूसयं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, पासे णं अरहा पुरिसादाणीए एक्कं वाससयं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे जावप्पहीणे, एवं थेरेवि अज्जसुहम्मे, सव्वेवि णं दीहवेयड्ढपव्वया एगमेगं गाउयसयं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, सव्वेवि णं चुल्लहिमवंतसिहरीवासहरपव्वया एगमेगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं प० एगमेगं गाउयसयं उव्वेहेणं प० सव्वेऽवि णं कंचणगपव्वया एगमेगं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं प० एगमेगं गाउयसयं उव्वेहेणं प० एगमेगं जोयणसयं मूले विक्खंभेणं प० ॥ सूत्रं १०० ॥

अथ शतस्थानके किञ्चिल्लिख्यते, तत्र दश दशमानि दिनानि यस्यां सा दशदशमिका, या हि दिनानां दश दशकानि भवन्ति, दश दशमदिनानि शतं च दिनानामत उच्यते एकेन रात्रिदिवसशतेनेति, यस्यां च प्रथमे दशके प्रतिदिनमेकैका भिक्षा द्वितीये द्वे द्वे एवं यावद्दशमे दश दशेत्येवं सर्वभिक्षासङ्कलने सूत्रोक्तसंख्या भवत्येव इति,

९९-१०० समवाया.

॥१००॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१००]

प्रत अनुक्रम [१७९]

पार्श्वनाथस्त्रिंशद्वर्षाणि कुमारत्वं सप्ततिं चानगारत्वमित्येवं शतमायुः पालयित्वा सिद्धः, एवं 'थेरेवि अज्जसुहमे'त्ति आर्यसुधर्म्मो–महावीरस्य पञ्चमो गणधरः सोऽपि वर्षशतं सर्वायुः पालयित्वा सिद्धस्तथा च तस्यागारवासः पञ्चाशद्वर्षाणि छद्मस्थपर्यायो द्विचत्वारिंशत्केवलिपर्यायोऽष्टौ, भवति चैतद्राशित्रयमीलने वर्षशतमिति । वैताढ्यादिषूच्चत्वचतुर्थांशः उद्वेधः, काञ्चनका उत्तरकुरुषु देवकुरुषु क्रमव्यवस्थितानां पञ्चानां महाह्रदानामुभयतो दश दश व्यवस्थितास्ते च जम्बूद्वीपे शतद्वयसंख्याः समवसेया इति ॥ १०० ॥

चंदप्पभे णं अरहा दिवड्ढं धणुसयं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, आरणे कप्पे दिवड्ढं विमाणावाससयं प०, एवं अच्चुएवि १५० सूत्रं १०१ ॥

सुपासे णं अरहा दो धणुसया उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, सव्वेवि णं महाहिमवंतरुप्पीवासहरपव्वया दो दो जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, दो दो गाउयसयाइं उव्वेहेणं प०, जम्बुद्दीवे णं दीवे दो कंचणपव्वयसया प० ॥ २०० सूत्रं १०२ ॥

अथैकोत्तरस्थानवृद्ध्या सूत्ररचनां परित्यज्य पञ्चाशच्छतादिवृद्ध्या तां कुर्वन्नाह–'चंदप्पहे'त्यादि, सुगमं सर्वमाद्वादशाङ्गगणिपिटकसूत्रात् ॥ २०० ॥

पउमप्पभे णं अरहा अद्धाइज्जाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, असुरकुमाराणं देवाणं पासायवडिंसगा अद्धाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प० ॥ २५० सूत्रं ॥ १०३ ॥

नवरं 'पासायवडिंसय'त्ति अवतंसकाः–शेखरकाः कर्णपूराणि वा अवतंसका इव अवतंसकाः प्रधाना इत्यर्थः प्रासादाश्च ते अवतंसकाः प्रासादानां वा मध्ये अवतंसकाः प्रासादावतंसकाः ॥ २५० ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्र शत-समवायः परिसमाप्तः, **अथ प्रकिर्णकः समवायः आरभ्यते**

प्रत सूत्रांक [१०५]

प्रत अनुक्रम [१८४]

सुमई णं अरहा तिण्णि धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, अरिट्ठनेमी णं अरहा तिण्णि वाससयाइं कुमारवासमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता जाव पव्वइए, वेमाणियाणं देवाणं विमाणपागारा तिण्णि तिण्णि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, समणस्स भगवओ महावीरस्स तिन्नि सयाणि चोद्दसपुव्वीणं होत्था, पंचधणुसइयस्स णं अंतिमसारीरियस्स सिद्धिगयस्स सातिरेगाणि तिण्णि धणुसयाणि जीवप्पदेसोगाहणा प० ॥ ३००॥ सूत्रं ॥१०४॥ पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स अद्धट्ठसयाइं चोद्दसपुव्वीणं संपया होत्था, अभिनंदणे णं अरहा अधुट्ठाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ॥ ३५० ॥ सूत्रं १०५ ॥

तथा 'पंचधणुस्सइयस्स ण'मित्यादि, पञ्चधनुःशतप्रमाणस्य 'अंतिमसारीरियस्स'त्ति चरमशरीरस्य सिद्धिगतस्य सातिरेकाणि त्रीणि शतानि धनुषां जीवप्रदेशावगाहना प्रज्ञप्ता, यतोऽसौ शैलेशीकरणसमये शरीररन्ध्रपूरणेन देहत्रिभागं विमुच्य घनप्रदेशो भूत्वा देहत्रिभागद्वयावगाहनः सिद्धिमुपगच्छति, सातिरेकत्वं चैवं 'तिन्नि सया तेत्तीसा धणुत्तिभागो य होइ बोद्धव्वो । एसा खलु सिद्धाणं उक्कोसोगाहणा भणिय ॥ १ ॥' त्ति [त्रीणि शतानि त्रयस्त्रिंशद् धनूंषि त्रिभागश्च भवति बोद्धव्यः । एषा खलु सिद्धानामुत्कृष्टावगाहना भणिता ॥ १ ॥] ॥ ३०० ॥ ३५० ॥

संभवे णं अरहा चत्तारि धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, सव्वेवि णं णिसढनीलवंता वासहरपव्वया चत्तारि चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि चत्तारि गाउयसयाइं उव्वेहेणं प०, सव्वेवि णं वक्खारपव्वया णिसढनीलवंतवासहरपव्वयए णं चत्तारि चत्तारि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं चत्तारि चत्तारि गाउयसयाइं उव्वेहेणं प०, आणयपाणएसु दोसु कप्पेसु चत्तारि विमाणसया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०६]

प्रत अनुक्रम [१८५]

प०, समणस्स णं भगवओ महावीरस्स चत्तारि सया वाईणं सदेवमणुयासुरंमि लोगंमि वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाइसंपया होत्था ॥ ४०० ॥ सूत्रं १०६ ॥

'सव्वेऽवि णं वक्खारपवए'त्यादि, वक्षस्कारपर्वता एकक्षेत्रप्रतिबद्धा विंशतिस्ते च वर्षधराः ते च चतुःचतुःशतोच्चाः ॥

अजिते णं अरहा अद्धपंचमाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, सगरे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी अद्धपंचमाइं धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था ॥ ४५० ॥ सूत्रं १०७ ॥ सव्वेवि णं वक्खारपव्वय सीआ सीओआओ महानईओ मंदरपव्वयंतेणं पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच पंच गाउयसयाइं उव्वेहेणं प०, सव्वेवि णं वासहरकूडा पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था मूले पंच पंच जोयणसयाइं विक्खंभेणं प०, उसभे णं अरहा कोसलिए पंच धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी पंचधणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, सोमणसगंधमादणविज्जुप्पभमालवंताणं वक्खारपव्वयाणं मंदरपव्वयंतेणं पंच २ जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच पंच गाउयसयाइं उव्वेहेणं प०, सव्वेवि णं वक्खारपव्वयकूडा हरिहरिस्सहकूडवज्जा पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं मूले पंच पंच जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं प०, सव्वेवि णं नंदणकूडा बलकूडवज्जा पंच पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं मूले पंच पंच जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं प०, सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु विमाणा पंच २ जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प० ॥ ५०० ॥ सूत्रं १०८ ॥

सव्वेविणं वक्खारेत्यादि शीतादिनदीप्रत्यासत्तौ मेरुप्रत्यासत्तौ च पञ्चशतोच्चा इति, तथा 'सव्वेवि णं वासे'त्यादि, तत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०८]

प्रत अनुक्रम [१८७]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥ १०२ ॥

वर्षधरकूटानि शतद्वयमशीत्यधिकं, कथं ?, 'लहुहिमवं हिमवं निसढे एक्कारस अट्ठ नव य कूडाइं । नीलाइसु तिसु नवगं अट्ठेक्कारस जहासंखं ॥ १ ॥ [क्षुल्लहिमवति हिमवति निषधे एकादशाष्टौ नव च कूटानि । नीलादिषु त्रिषु नवकमष्टैकादश च यथासंख्यम् ॥ १ ॥] एतेषां च पञ्चगुणत्वात्, वक्षस्कारकूटानि त्वशीत्यधिकचतुःशतीसंख्यानि, कथं ?, "विज्जुपहमालवंते नव नव सेसेसु सत्त सत्तेव । सोलस वक्खारेसुं चउरो चउरो य कूडाइं" ॥ १ ॥ [विद्युत्प्रभमाल्यवतोर्नव नव शेषेषु सप्त सप्तैव । षोडश वक्षस्कारेषु चत्वारि चत्वारि च कूटानि ॥ १ ॥] एतेषां पञ्चगुणत्वात्, पञ्चगुणत्वं च जम्बूद्वीपादिमेरूपलक्षितक्षेत्राणां पञ्चत्वात्, सर्वाण्येतानि पञ्चशतोच्छ्रितानि, एवं मानुषोत्तरादिष्वपि, वैताढ्यकूटानि तु सक्रोशषड्योजनोच्छ्रयाणि, वर्षकूटानि तु ऋषभकूटादीन्यष्टयोजनोच्छ्रितानीति, हरिकूटहरिसहकूटवर्जनं त्विह तयोः सहस्रोच्छ्रयत्वाद्, आह च—'विज्जुप्पभहरिकूडो हरिस्सहो मालवंतवक्खारे । नंदणवणबलकूडो उविद्धा जोयणसहस्सं' ॥ १ ॥ [विद्युत्प्रभहरिकूटे हरिसहो माल्यवद्वक्षस्कारः । नन्दनवने बलकूट उद्विद्धा योजनसहस्रं ॥ १ ॥] ॥ ५०० ॥

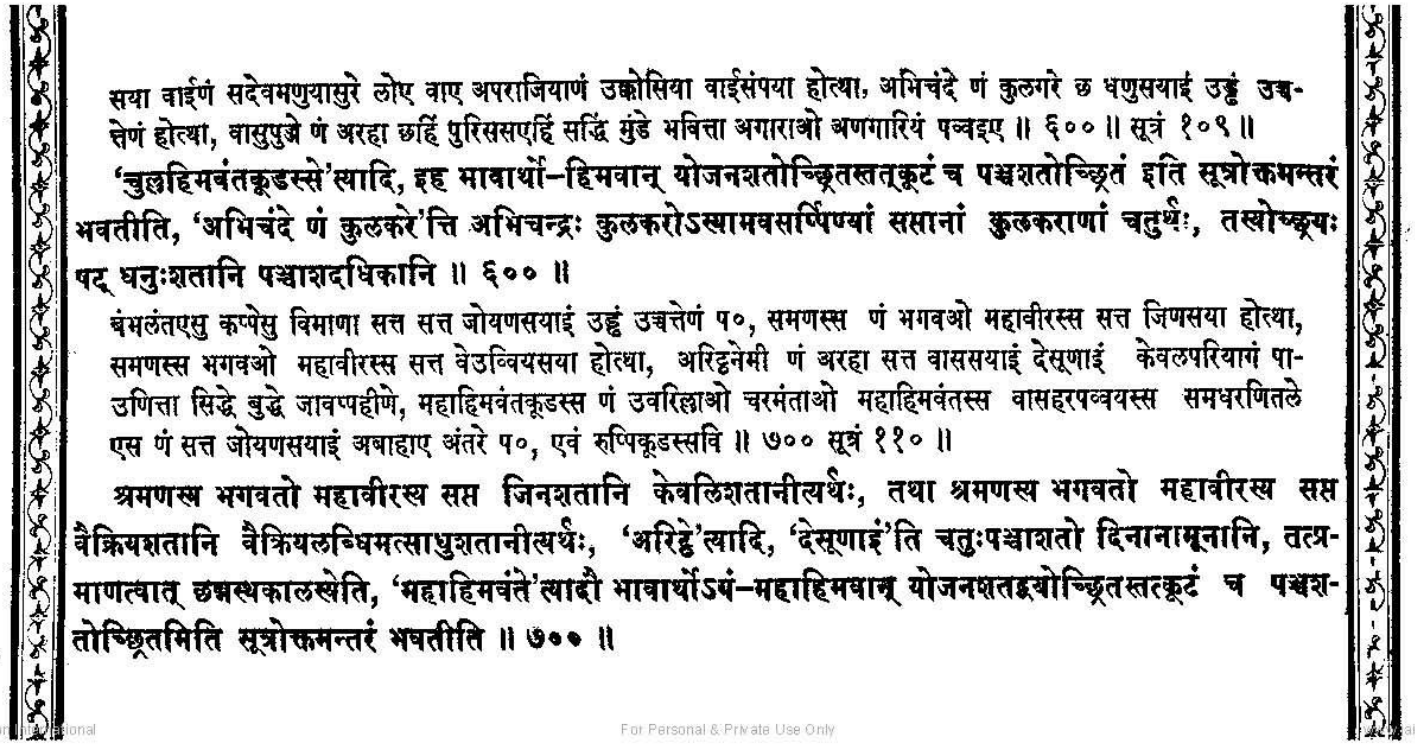
सणंकुमारमाहिंदेसु कप्पेसु विमाणा छजोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, चुल्लहिमवंतकूडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ चुल्लहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स समधरणितले एस णं छ जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे प०, एवं सिहरीकूडस्सवि, पासस्स णं अरहओ छ

१०७-१०८ १०९ समवाया. ॥१०२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१०९]

प्रत अनुक्रम [१८८]



सया वाईणं सदेवमणुयासुरे लोए वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाईसंपया होत्था, अभिचंदे णं कुलगरे छ धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, वासुपुज्जे णं अरहा छहिं पुरिससएहिं सद्धिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ ६०० ॥ सूत्रं १०९ ॥

'चुल्लहिमवंतकूडस्से'त्यादि, इह भावार्थो–हिमवान् योजनशतोच्छ्रितस्तत्कूटं च पञ्चशतोच्छ्रितं इति सूत्रोक्तमन्तरं भवतीति, 'अभिचंदे णं कुलकरे'त्ति अभिचन्द्रः कुलकरोऽस्यामवसर्पिण्यां ससानां कुलकराणां चतुर्थः, तस्योच्छ्रयः षट् धनुःशतानि पञ्चाशदधिकानि ॥ ६०० ॥

बंभलंतएसु कप्पेसु विमाणा सत्त सत्त जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, समणस्स णं भगवओ महावीरस्स सत्त जिणसया होत्था, समणस्स भगवओ महावीरस्स सत्त वेउव्वियसया होत्था, अरिट्ठनेमी णं अरहा सत्त वाससयाइं देसूणाइं केवलपरियागं पाउणित्ता सिद्धे बुद्धे जावप्पहीणे, महाहिमवंतकूडस्स णं उवरिल्लाओ चरमंताओ महाहिमवंतस्स वासहरपव्वयस्स समधरणितले एस णं सत्त जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे प०, एवं रुप्पिकूडस्सवि ॥ ७०० सूत्रं ११० ॥

श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य सप्त जिनशतानि केवलिशतानीत्यर्थः, तथा श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य सप्त वैक्रियशतानि वैक्रियलब्धिमत्साधुशतानीत्यर्थः, 'अरिट्ठे'त्यादि, 'देसूणाइं'ति चतुःपञ्चाशतो दिनानामूनानि, तत्प्रमाणत्वात् छद्मस्थकालस्येति, 'महाहिमवंते'त्यादौ भावार्थोऽयं–महाहिमवान् योजनशतद्वयोच्छ्रितस्तत्कूटं च पञ्चशतोच्छ्रितमिति सूत्रोक्तमन्तरं भवतीति ॥ ७०० ॥

१८ सम०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१११]

प्रत अनुक्रम [१९०]

महासुक्कसहस्सारेसु दोसु कप्पेसु विमाणा अट्ठ जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए पढमे कंडे अट्ठसु जोयणसएसु वाणमंतरभोमेज्जविहारा प०, समणस्स णं भगवओ महावीरस्स अट्ठसया अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं गइकल्लाणाणं ठिइकल्लाणाणं आगमेसिभद्दाणं उक्कोसिया अणुत्तरोववाइयसंपया होत्था, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अट्ठहिं जोयणसएहिं सूरिए चारं चरति, अरहओ णं अरिट्ठनेमिस्स अट्ठ सयाइं वाईणं सदेवमणुयासुरंमि लोगंमि वाए अपराजियाणं उक्कोसिया वाईसंपया होत्था ॥ ८०० सूत्रं १११ ॥

'इमीसे ण'मित्यादि, प्रथमं काण्डं खरकाण्डं खरकाण्डस्य षोडशविभागस्य प्रथमविभागरूपं रत्नकाण्डं, तत्र योजनसहस्रप्रमाणे अध उपरि च योजनशतद्वयं विमुच्यान्येष्वष्टसु योजनशतेषु वनेषु भवा वानास्ते च ते व्यन्तराश्च तेषां सम्बन्धिनः भूमिविकारत्वाद्भौमेयकास्ते च ते विहरन्ति–क्रीडन्ति तेष्विति विहाराश्च–नगराणि वानव्यन्तरभौमेयकविहारा इति, 'अट्ठ सय'त्ति अष्ट शतानि, केषामित्याह—'अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं'ति देवेषूत्पत्स्यमानत्वात् देवा द्रव्यदेवा इत्यर्थः तेषां गतिः–देवगतिलक्षणा कल्याणं येषां ते गतिकल्याणास्तेषामेवं स्थितिः–त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमलक्षणा कल्याणं येषां ते तथा तेषां, तथा ततश्च्युतानामागमिष्यद्–आगामि भद्रं–कल्याणं निर्वाणगमनलक्षणं येषां ते आगमिष्यद्भद्राः तेषां, किमित्याह–'उक्कोसिए'त्यादि ॥ ८०० ॥

आणयपाणयआरणअच्चुएसु कप्पेसु विमाणा नव नव जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, निसढकूडस्स णं उवरिल्लाओ सिहरतलाओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिसढस्स वासहरपव्वयस्स समे धरणितले एस णं नव जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे प०, एवं नीलवंतकूडस्सवि, विमलवाहणे णं कुलगरे णं नव धणुसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं होत्था, इमीसे णं रयणप्पभाए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ नवहिं जोयणसएहिं सव्वुवरिमे तारारूवे चारं चरइ, निसढस्स णं वासहरपव्वयस्स उवरिल्लाओ सिहरतलाओ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए पढमस्स कंडस्स बहुमज्झदेसभाए एस णं नव जोयणसयाइं अबाहाए अंतरे प०, एवं नीलवंतस्सवि ॥ ९०० सूत्रं ११२ ॥

'निसहकूडस्स ण'मित्यादि, इहायं भावः–निषधकूटं पञ्चशतोच्छ्रितं निषधश्च चतुःशतोच्छ्रित इति यथोक्तमन्तरं भवतीति ॥ ९०० ॥

सव्वेवि णं गेवेज्जविमाणे दस दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, सव्वेवि णं जमगपव्वया दस दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प० दस दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं प० मूले दस दस जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं प०, एवं चित्तविचित्तकूडावि भाणियव्वा, सव्वेवि णं वट्टवेयड्ढपव्वया दस दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प० दस दस गाउयसयाइं उव्वेहेणं प० मूले दस दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं प०, सव्वत्थ समा पल्लगसंठाणसंठिया प०, सव्वेवि णं हरिहरिस्सहकूडा वक्खारकूडवज्जा दस दस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, मूले दस जोयणसयाइं विक्खंभेणं, एवं बलकूडावि नंदणकूडवज्जा, अरहावि अरिट्ठनेमी दस वाससयाइं सव्वाउयं पालइत्ता सिद्धे बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे, पासस्स णं अरहओ दस सयाइं जिणाणं होत्था, पासस्स णं अरहओ दस अन्तेवासीसयाइं कालगयाइं जाव सव्वदुक्खप्पहीणाइं, पउमद्दहपुंडरीयद्दहा य दस दस जोयणसयाइं आयामेणं प०, ॥ १००० सूत्रं ११३ ॥ अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं विमाणा एक्कारस जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं प०, पासस्स णं अरहओ इक्कारस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सयाइं वेउव्वियाणं होत्था ॥ ११०० सूत्रं ११४ ॥ महापउममहापुंडरीयदहाणं दो दो जोयणसहस्साइं आयामेणं प० ॥ २००० सूत्रं ११५ ॥ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए वइरकंडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ लोहियक्खकंडस्स हेट्ठिल्ले चरमंते एस णं तिन्नि जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प० ॥ ३००० सूत्रं ११६ ॥ तिगिच्छिकेसरिदहाणं चत्तारि चत्तारि जोयणसहस्साइं आयामेणं प० ॥ ४००० सूत्रं ११७ ॥ धरणितले मंदरस्स णं पव्वयस्स बहुमज्झदेसभाए रुयगनाभीओ चउदिसिं पञ्च २ जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे मंदरपव्वए प० ॥ ५००० सूत्रं ११८ ॥ सहस्सारे णं कप्पे छ विमाणावाससहस्सा प० ॥ ६००० सूत्रं ११९ ॥ इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए रयणस्स कंडस्स उवरिल्लाओ चरमंताओ पुलगस्स कंडस्स हेट्ठिले चरमंते एस णं सत्त जोयणसहस्साइं अबाहाए अंतरे प० ॥ ७००० सूत्रं १२० ॥ हरिवासरम्मयाणं वासा अट्ठ जोयणसहस्साइं साइरेगाइं वित्थरेणं प० ॥ ८००० सूत्रं १२१ ॥ दाहिणड्ढभरहस्स णं जीवा पाईणपडीणायया दुहओ समुद्दं पुट्ठा नव जोयणसहस्साइं आयामेणं प० ॥ ९००० सूत्रं १२२ ॥ मंदरे णं पव्वए धरणितले दस जोयणसहस्साइं विक्खंभेणं प० ॥ १०००० सूत्रं १२३ ॥ जम्बूदीवेणं दीवे एगं जोयणसयसहस्सं आयामविक्खंभेणं प० ॥ १००००० सूत्रं १२४ ॥ लवणे णं समुद्दे दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं प० ॥ २००००० सूत्रं १२५ ॥ पासस्स णं अरहओ तिन्नि सयसाहस्सीओ सत्तावीसं च सहस्साइं उक्कोसिया सावियासंपया होत्था ॥ ३००००० सूत्रं १२६ ॥ धायइखंडे णं दीवे चत्तारि जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं प० ॥ ४००००० सूत्रं १२७ ॥ लवणस्स णं समुद्दस्स पुरच्छिमिल्लाओ चरमंताओ पच्चच्छिमिल्ले चरमंते एस णं पंच जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे प० ॥ ५००००० सूत्रं १२८ ॥ भरहे णं राया चाउरंतचक्कवट्टी छ पुव्वस-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१२९]

प्रत अनुक्रम [२०८]

यसहस्साइं रायमज्झे वसित्ता मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥ ६००००० सूत्रं १२९ ॥ जम्बूदीवस्स णं दीवस्स पुरच्छिमिल्लाओ वेइयंताओ धायइखंडचक्कवालस्स पच्चच्छिमिल्ले चरमंते सत्त जोयणसयसहस्साइं अबाहाए अंतरे प० ॥ ७००००० सूत्रं १३० ॥ माहिंदे णं कप्पे अट्ठ विमाणावाससयसहस्साइं प० ८००००० ॥ सूत्रं १३१ ॥ अजियस्स णं अरहओ साइरेगाइं नव ओहिनाणिसहस्साइं होत्था ॥ ९००० सूत्रं १३२ ॥ पुरिससीहे णं वासुदेवे दस वाससयसहस्साइं सव्वाउयं पालइत्ता पञ्चमाए पुढवीए नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ने ॥ १००००० सूत्रं १३३ ॥ समणे भगवं महावीरे तित्थगरभवग्गहणाओ छट्ठे पोट्टिलभवग्गहणे एगं वासकोडिं सामन्नपरियागं पाउणित्ता सहस्सारे कप्पे सव्वट्ठविमाणे देवत्ताए उववन्ने ॥ १०००००० सूत्रं १३४ ॥ उसभसिरिस्स भगवओ चरिमस्स य महावीरवद्धमाणस्स एगा सागरोवमकोडाकोडी अबाहाए अंतरे प० ॥ १००००००००००००० सूत्रं १३५ ॥

'सवेवि णं जमगे'त्यादि, उत्तरकुरुषु नीलवद्वर्षधरस्य–उत्तरतः शीताया महानद्या उभयोः कूलयोर्द्वौ यमकाभिधानौ पर्वतौ स्तः, ते च पञ्चस्वप्युत्तरकुरुषु द्वयोर्द्वयोर्भावाद्दश, एवं 'चित्तविचित्तकूडावि'त्ति पञ्चसु देवकुरुषु यमकवत्तत्सद्भावात् पञ्च चित्रकूटाः पञ्च विचित्रकूटा इति, 'सवेवि ण'मित्यादि, सर्वेऽपि वृत्ता वैताढ्या विंशतिः शब्दापात्यादयः, 'सवेवि णं हरी'त्यादि, हरिकूटं विद्युत्प्रभाभिधाने गजदन्ताकारवक्षस्कारपर्वते हरिसहकूटं तु माल्यवद्वक्षस्कारे, तानि च पञ्चस्वपि मन्दरेषु भावात् पञ्च पञ्च भवन्ति सहस्रोच्छ्रितानि च, 'वक्खारकूडवज्ज'त्ति शेषवक्षस्कारकूटेष्वेवमुच्चत्वं नास्त्येतेष्वेवासीत्यर्थः, एवं 'बलकूडावि'त्ति पञ्चसु मन्दरेषु पञ्च नन्दनवनानि तेषु प्रत्ये-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३५]

प्रत अनुक्रम [२१४]

कमैशान्या दिशि बलकूटाभिधानं कूटमस्ति, ततः पञ्च, तानि सहस्रोच्छ्रितानि च, 'नन्दनकूडवज्ज'त्ति शेषाणि नन्दनवनेषु प्रत्येकं पूर्वादिदिग्विदिग्व्यवस्थितानि चत्वारिंशत्संख्यानि नन्दनकूटानि वर्जयित्वा, तानि साहस्रिकाणि न भवन्तीत्यर्थः। 'अरहंते'त्यादि, कुमारत्वे त्रीणि वर्षशतान्यनगारत्वे सप्तेत्येवं दश शतानि, 'पउमद्दहपुंडरीयद्दह'त्ति पद्महृदः श्रीदेवीनिवासो हिमवद्वर्षधरपर्वतोपरिवर्त्ती पुण्डरीकहृदो लक्ष्मीदेवीनिवासः शिखरिवर्षधरोपरिवर्त्तीति ॥ १००० ॥ ११०० ॥ तथा महापद्ममहापुण्डरीकहृदौ महाहिमवद्रुक्मिवर्षधरयोरुपरिवर्त्तिनौ ह्रीबुद्धिदेव्योर्निवासभूताविति ॥ २००० ॥ 'इमीसे णं रयणे'त्यादि, अयमिह भावार्थः–रत्नप्रभापृथिव्याः प्रथमस्य षोडशविभागस्य खरकाण्डाभिधानकाण्डस्य प्रथमं रत्नकाण्डं वज्रकाण्डं नाम काण्डं द्वितीयं वैडूर्यकाण्डं तृतीयं लोहिताक्षकाण्डं चतुर्थं तानि च प्रत्येकं साहस्रिकाणीति त्रयाणां यथोक्तमन्तरं भवतीति ॥ ३००० ॥ तिगिञ्छिकेसरिहृदौ निषधनीलवद्वर्षधरोपरिस्थितौ धृतिकीर्त्तिदेवीनिवासाविति ॥ ४००० ॥ 'धरणितले' इत्यादि, धरणितले–धरण्यां समे भूभाग इत्यर्थः, 'रुयगनाभीओ'त्ति 'अट्ठपएसो रुयगो तिरियं लोगस्स मज्झयारंमि। एसप्पभवो दिसाणं एसेव भवे अणुदिसाणं ॥ १ ॥ [अष्टप्रदेशो रुचकस्तिर्यग्लोकस्य मध्ये। एष प्रभवो दिशामेष एव भवेदनुदिशां ॥ १ ॥] ति, रुचक एव नाभिचक्रस्य तुम्बमिवेति रुचकनाभिः, ततश्चतसृष्वपि दिक्षु पञ्च पञ्च सहस्राणि मेरुस्तस्य दशसहस्रविष्कम्भत्वादिति ॥ ५००० ॥ ६००० ॥ 'इमीसे ण'मित्यादि, रत्नकाण्डं प्रथमं पुलककाण्डं सप्तममिति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३५]

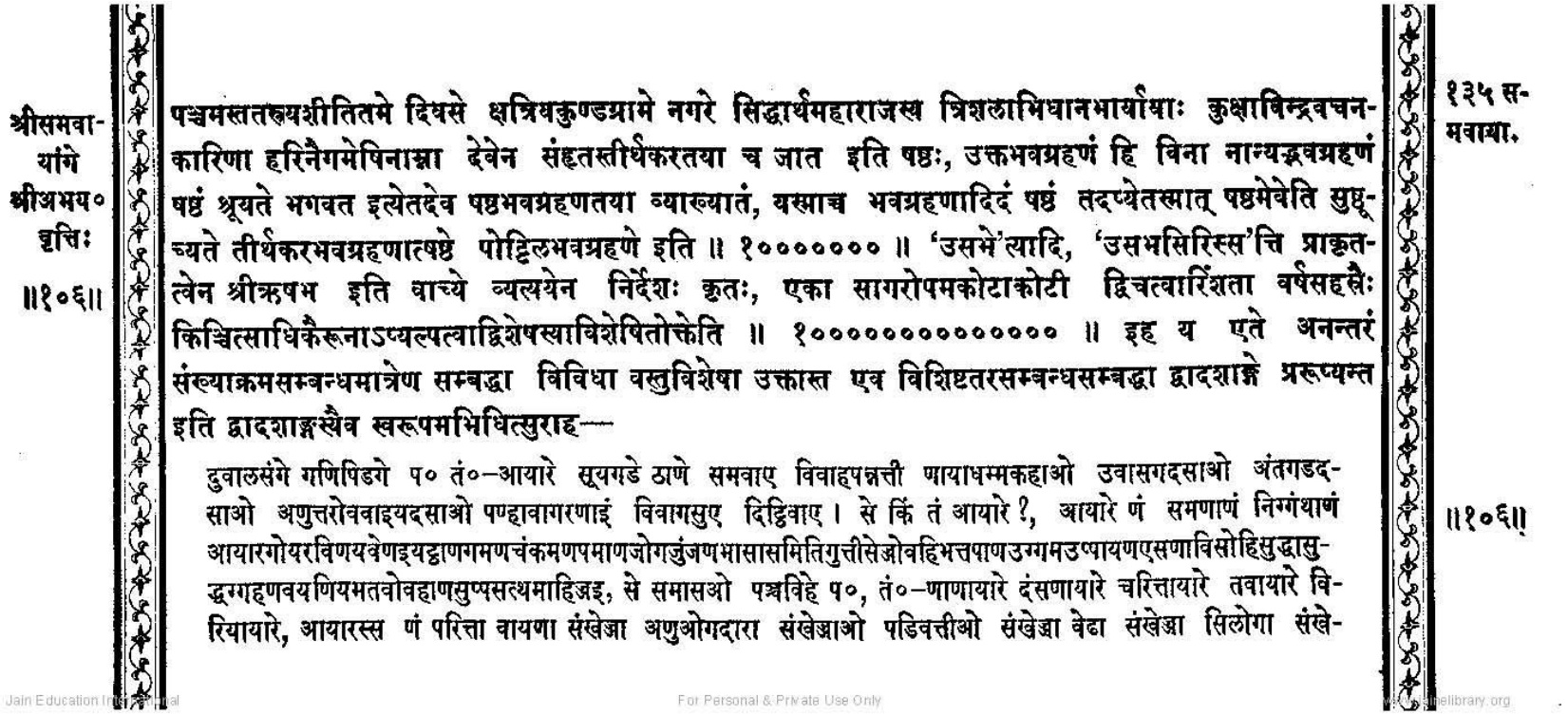
प्रत अनुक्रम [२१४]

सप्तसहस्राणि ॥ ७००० ॥ 'हरिवासे'त्यादि, इहार्थे गाथार्द्धं–'हरिवासे इगवीसा चुलसी य सया कला य एक्का य'त्ति ॥ ८००० ॥ 'दाहिणे'त्यादि दक्षिणो भागो भरतस्येति दक्षिणार्द्धभरतं तस्य जीवेव जीवा–ऋज्वी सीमा प्राचीनं–पूर्वतः प्रतीचीनं–पश्चिमतः आयता–दीर्घा प्राचीनप्रतीचीनायता 'दुहओ'त्ति उभयतः पूर्वापरपार्श्वयोरित्यर्थः, समुद्रं–लवणसमुद्रं स्पृष्टा–छुप्तवती नव सहस्राण्यायामत इहोक्ता, स्थानान्तरे तु तद्विशेषोऽयं'नव सहस्राणि सप्त शतान्यष्टचत्वारिंशदधिकानि द्वादश च कला' इति ॥ ९००० ॥ १०००० ॥ १००००० ॥ २००००० ॥ ३००००० ॥ ४००००० ॥ 'लवणे'त्यादि, तत्र जम्बूद्वीपस्य लक्षं चत्वारि च लवणस्येति पञ्च ॥ ५००००० ॥ 'जम्बूदीवस्से'त्यादि, तत्र लक्षं जम्बूद्वीपस्य द्वे लवणस्य चत्वारि धातकीखण्डस्येति सप्त लक्षाण्यन्तरं सूत्रोक्तं भवतीति ७००००० ॥ अजितस्यार्हतः सातिरेकाणि नवावधिज्ञानिसहस्राणि, अतिरेकश्चत्वारि शतानि, इदं च सहस्रस्थानकमपि लक्षस्थानकाधिकारे यदधीतं तत् सहस्रशब्दसाधर्म्याद्विचित्रत्वाद्वा सूत्रगतेर्लेखकदोषाद्वेति ॥ ९००००० ॥ पुरुषसिंहः पञ्चमवासुदेवः ॥ १०००००० ॥ 'समणे'त्यादि, यतो भगवान् पोट्टिलाभिधानराजपुत्रो बभूव, तत्र वर्षकोटिं प्रव्रज्यां पालितवानित्येको भवः, ततो देवोऽभूदिति द्वितीयः, ततो नन्दनाभिधानो राजसूनुः छत्राग्रनगर्यां जज्ञे इति तृतीयः, तत्र वर्षलक्षं सर्वदा मासक्षपणेन तपस्तप्त्वा दशमदेवलोके पुष्पोत्तरवरविजयपुण्डरीकाभिधाने विमाने देवोऽभवदिति चतुर्थस्ततो ब्राह्मणकुण्डग्रामे ऋषभदत्तब्राह्मणस्य भार्यायां देवानन्दाभिधानायाः कुक्षावुत्पन्न इति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१३५]

प्रत अनुक्रम [२१४]



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥१०६॥

पञ्चमस्ततस्त्र्यशीतितमे दिवसे क्षत्रियकुण्डग्रामे नगरे सिद्धार्थमहाराजस्य त्रिशलाभिधानभार्यायाः कुक्षाविन्द्रवचनकारिणा हरिनैगमेषिनाम्ना देवेन संहृतस्तीर्थकरतया च जात इति षष्ठः, उक्तभवग्रहणं हि विना नान्यद्भवग्रहणं षष्ठं श्रूयते भगवत इत्येतदेव षष्ठभवग्रहणतया व्याख्यातं, यस्माच्च भवग्रहणादिदं षष्ठं तदप्येतस्मात् षष्ठमेवेति सुधूच्यते तीर्थकरभवग्रहणात्षष्ठे पोट्टिलभवग्रहणे इति ॥ १०००००००० ॥ 'उसभे'त्यादि, 'उसभसिरिस्स'त्ति प्राकृतत्वेन श्रीऋषभ इति वाच्ये व्यत्ययेन निर्देशः कृतः, एका सागरोपमकोटाकोटी द्विचत्वारिंशता वर्षसहस्रैः किञ्चित्साधिकैरूनाऽप्यल्पत्वाद्विशेषस्याविशेषितोक्तेति ॥ १०००००००००००००० ॥ इह य एते अनन्तरं संख्याक्रमसम्बन्धमात्रेण सम्बद्धा विविधा वस्तुविशेषा उक्तास्त एव विशिष्टतरसम्बन्धसम्बद्धा द्वादशाङ्गे प्ररूप्यन्त इति द्वादशाङ्गस्यैव स्वरूपमभिधित्सुराह—

दुवालसंगे गणिपिडगे प० तं०–आयारे सूयगडे ठाणे समवाए विवाहपन्नत्ती णायाधम्मकहाओ उवासगदसाओ अंतगडदसाओ अणुत्तरोववाइयदसाओ पण्हावागरणाइं विवागसुए दिट्ठिवाए। से किं तं आयारे?, आयारे णं समणाणं निग्गंथाणं आयारगोयरविणयवेणइयट्ठाणगमणचंकमणपमाणजोगजुंजणभासासमितिगुत्तीसेज्जोवहिभत्तपाणउग्गमउप्पायणएसणाविसोहिसुद्धासुद्धग्गहणवयणियमतवोवहाणसुप्पसत्थमाहिज्जइ, से समासओ पञ्चविहे प०, तं०–णाणायारे दंसणायारे चरित्तायारे तवायारे विरियायारे, आयारस्स णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखे-

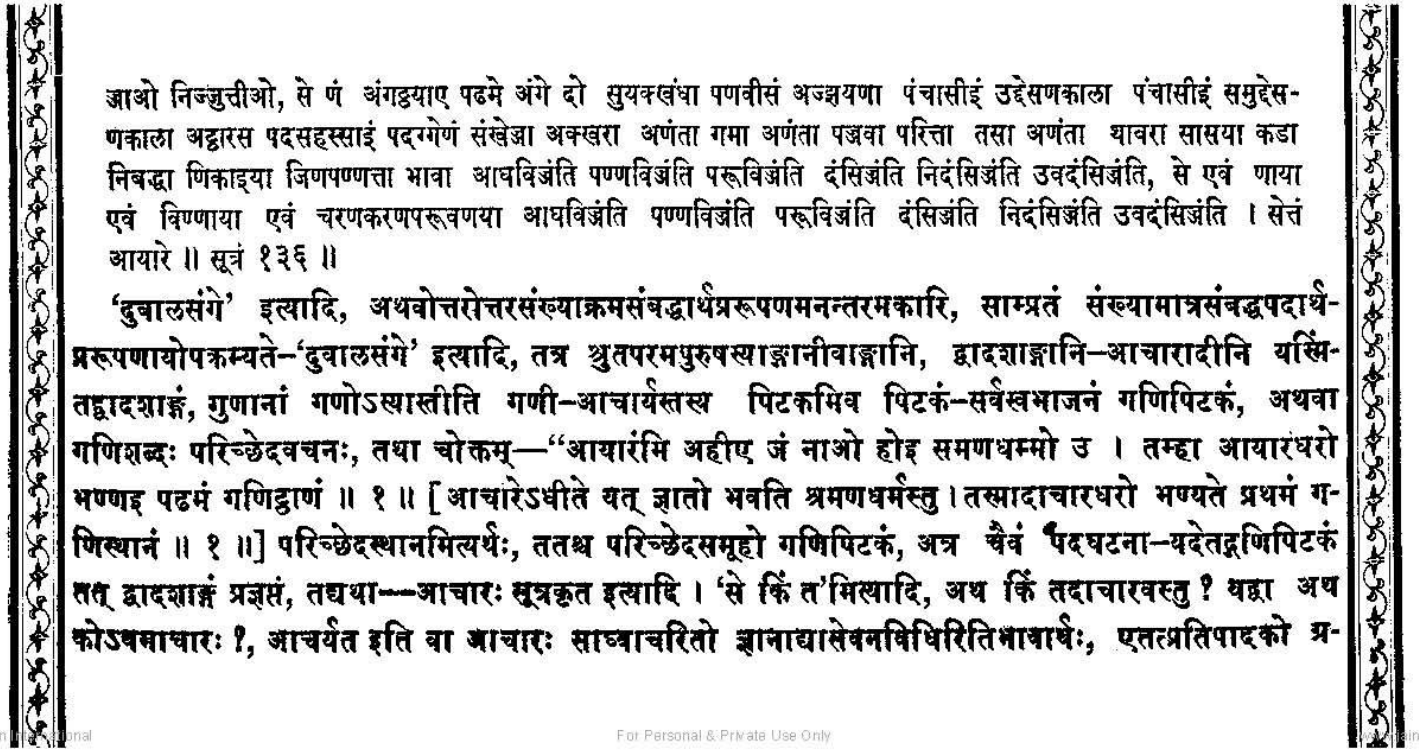
१३५ समवाया. ॥१०६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार अंगसूत्रस्य शास्त्रीयपरिचय:

प्रत सूत्रांक [१३६]

प्रत अनुक्रम [२१५]



ज्ञाओ निज्जुत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए पढमे अंगे दो सुयक्खंधा पणवीसं अज्झयणा पंचासीइं उद्देसणकाला पंचासीइं समुद्देसणकाला अट्ठारस पदसहस्साइं पदग्गेणं संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा निबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति । सेत्तं आयारे ॥ सूत्रं १३६ ॥

'दुवालसंगे' इत्यादि, अथवोत्तरोत्तरसंख्याक्रमसंबद्धार्थप्ररूपणमनन्तरमकारि, साम्प्रतं संख्यामात्रसंबद्धपदार्थप्ररूपणायोपक्रम्यते–'दुवालसंगे' इत्यादि, तत्र श्रुतपरमपुरुषस्याङ्गानीवाङ्गानि, द्वादशाङ्गानि–आचारादीनि यस्मिंस्तद्वादशाङ्गं, गुणानां गणोऽस्यास्तीति गणी–आचार्यस्तस्य पिटकमिव पिटकं–सर्वस्वभाजनं गणिपिटकं, अथवा गणिशब्दः परिच्छेदवचनः, तथा चोक्तम्—"आयारंमि अहीए जं नाओ होइ समणधम्मो उ । तम्हा आयारधरो भण्णइ पढमं गणिट्ठाणं ॥ १ ॥ [आचारेऽधीते यत् ज्ञातो भवति श्रमणधर्मस्तु । तस्मादाचारधरो भण्यते प्रथमं गणिस्थानं ॥ १ ॥] परिच्छेदस्थानमित्यर्थः, ततश्च परिच्छेदसमूहो गणिपिटकं, अत्र चैवं पदघटना–यदेतद्गणिपिटकं तत् द्वादशाङ्गं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—आचारः सूत्रकृत इत्यादि । 'से किं त'मित्यादि, अथ किं तदाचारवस्तु ? यद्वा अथ कोऽयमाचारः ?, आचर्यत इति वा आचारः साध्वाचरितो ज्ञानाद्यासेवनविधिरितिभावार्थः, एतत्प्रतिपादको ग्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः

प्रत सूत्रांक [१३६]

प्रत अनुक्रम [२१५]

न्थोऽप्याचार एवोच्यते, 'आयारे णं'ति अनेनाचारेण करणभूतेन श्रमणानामाचारो व्याख्यायत इति योगः, अथवा आचारेऽधिकरणभूते णमिति वाक्यालङ्कारे 'श्रमणानां' तपःश्रीसमालिङ्गितानां 'निर्ग्रन्थानां' सबाह्याभ्यन्तरग्रन्थरहितानां, आह–श्रमणा निर्ग्रन्था एव भवन्तीति विशेषणं किमर्थमिति ?, उच्यते, शाक्यादिव्यवच्छेदार्थम्, उक्तं च–"निग्गंथसक्कतावसगेरुयआजीव पंचहा समण'त्ति [निर्ग्रन्थशाक्यतापसगैरिकाजीविकाः पञ्चधा श्रमणाः] तत्राचारो–ज्ञानाद्यनेकभेदभिन्नः गोचरो–भिक्षाग्रहणविधिलक्षणो विनयो–ज्ञानादिविनयः वैनयिकं–तत्फलं कर्म्मक्षयादि स्थानं–कायोत्सर्गोपवेशनशयनभेदात् त्रिरूपं गमनं–विहारभूम्यादिषु गतिश्चङ्क्रमणं–उपाश्रयान्तरे शरीरश्रमव्यपोहार्थमितस्ततः सञ्चरणं प्रमाणं–भक्तपानाभ्यवहारोपध्यादेर्मानं योगयोजनं–स्वाध्यायप्रत्युपेक्षणादिव्यापारेषु परेषां नियोजनं भाषाः–संयतस्य भाषाः सत्यासत्यामृषारूपाः समितयः–ईर्यासमित्याद्याः पञ्च गुप्तयो–मनोगुप्त्यादयस्तिस्रः तथा शय्या च–वसतिरुपधिश्च–वस्त्रादिको भक्तं च–अशनादि पानं च–उष्णोदकादीति द्वन्द्वः, तथा उद्गमोत्पादनैषणालक्षणानां दोषाणां विशुद्धिः–अभाव उद्गमोत्पादनैषणाविशुद्धिस्ततः शय्यादीनामुद्गमादिविशुद्ध्या शुद्धानां तथाविधकारणेऽशुद्धानां च ग्रहणं शय्यादिग्रहणं, तथा व्रतानि–मूलगुणा नियमाः–उत्तरगुणास्तपउपधानं–द्वादशविधं तपः, तत आचारश्च गोचरश्चेत्यादि यावद्व्रतयश्च शय्यादिग्रहणं च व्रतानि च नियमाश्च तपउपधानं चेति समाहारद्वन्द्वस्ततस्तच्च तत्सुप्रशस्तं चेति कर्म्मधारयः, एतत्सर्वमाख्यायते–अभिधीयते, एतेषु आचारादिपदेषु यत्र क्वचि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार अंगसूत्रस्य शास्त्रीयपरिचयः

प्रत सूत्रांक [१३६]

प्रत अनुक्रम [२१५]

दन्यतरोपादाने अन्यतरस्य गतार्थस्याभिधानं तत्सर्वं तत्प्राधान्यख्यापनार्थमेवेत्यवसेयमिति। 'से समासओ' इत्यादि, सःआचारो यमधिकृत्य ग्रन्थस्याचार इति संज्ञा प्रवर्त्तते 'समासतः' संक्षेपतः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–ज्ञानाचार इत्यादि, तत्र ज्ञानाचारः–श्रुतज्ञानविषयः कालाध्ययनविनयाध्ययनादिरूपो व्यवहारोऽष्टधा 'दर्शनाचारः' सम्यक्त्ववतां व्यवहारो निःशङ्कितादिरूपोऽष्टधा 'चारित्राचारः' चारित्रिणां समित्यादिपालनात्मको व्यवहारः 'तपआचारो' द्वादशविधतपोविशेषानुष्ठितिः 'वीर्याचारो' ज्ञानादिप्रयोजनेषु वीर्यस्यागोपनमिति, 'आयार'त्ति आचाराग्रन्थस्य णमित्यलङ्कारे 'परित्ता' संख्येया आद्यन्तोपलब्धेर्नानन्ता भवन्तीत्यर्थः, काः ?–वाचनाः–सूत्रार्थप्रदानलक्षणाः, अवसर्प्पिण्युत्सर्प्पिणीकालं वा प्रतीत्य, 'परीते'त्ति संख्येयान्यनुयोगद्वाराणि–उपक्रमादीनि, अध्ययनानामेव संख्येयत्वात् प्रज्ञापकवचनगोचरत्वाच्च 'संखेज्जाओ पडिवत्तीओ'त्ति द्रव्यार्थे पदार्थाभ्युपगमा मतान्तराणीत्यर्थः, प्रतिपाद्यनि(माद्यभि)ग्रहविशेषा वा 'संखेज्जा वेढ'त्ति वेष्टकाः–छन्दोविशेषाः, एकार्थप्रतिबद्धवचनसङ्कलिकेत्यन्ये, 'संखेज्जा सिलोग'त्ति श्लोकाः–अनुष्टुप्छन्दांसि 'संख्याताः 'निर्युक्तयः' निर्युक्तानां–सूत्रेऽभिधेयतया व्यवस्थापितानामर्थानां युक्तिः–घटना विशिष्टा योजना निर्युक्तयुक्तिः, एतस्मिंश्च वाक्ये युक्तशब्दलोपान्निर्युक्तिरित्युच्यते, एताश्च निक्षेपनिर्युक्त्याद्याः संख्येया इति। 'से ण'मित्यादि स आचारो णमित्यलङ्कारे 'अङ्गार्थतया' अङ्गलक्षणवस्तुत्वेन प्रथममङ्गं स्थापनामधिकृत्य, रचनापेक्षया तु द्वादशमङ्गं, प्रथमं पूर्वं तस्य सर्वप्रवचनात् पूर्वं क्रियमाणत्वादिति, द्वौ श्रुतस्कन्धौ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः

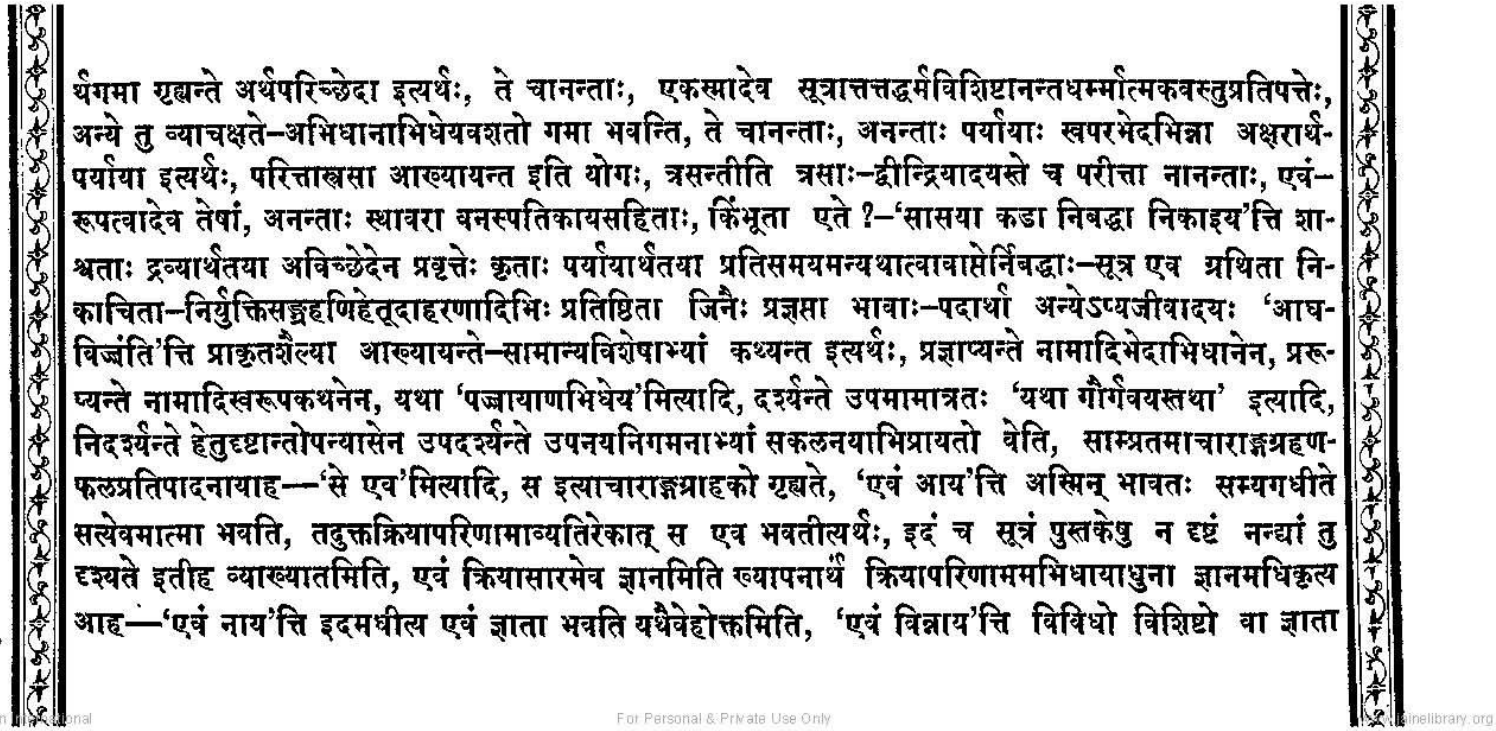
अध्ययनसमुदायलक्षणौ, पञ्चविंशतिरध्ययनानि, तद्यथा–'सत्थपरिण्णा १ लोगविजओ २ सीओसणिज्ज ३ संमत्तं ४। आवंति ५ धुय ६ विमोहो ७ महापरिण्णो ८ वहाणसुयं ९ ॥१॥' इति प्रथमः श्रुतस्कन्धः, 'पिंडेसण १ सेज्जि २ रिया ३ भासज्जाया य ४ वत्थ ५ पाएसा ६। उग्गहपडिमा ७ सत्तसत्तिक्कया १४ भावण १५ विमुत्ती १६ ॥ २ ॥' इति द्वितीयः श्रुतस्कन्धः, एवमेतानि निशीथवर्जानि पञ्चविंशतिरध्ययनानि, तथा पञ्चाशीतिरुद्देशनकालाः, कथं ?, उच्यते, अङ्गस्य श्रुतस्कन्धस्याध्ययनस्योद्देशकस्य चैतेषां चतुर्णामप्येक एवोद्देशनकालः, एवं शस्त्रपरिज्ञादिषु पञ्चविंशतावध्ययनेषु क्रमेण सप्त १ षट् २ चतु ३ श्चतुः ४ षट् ५ पञ्च ६ अष्ट ७ सप्त ८ चतु ९ रेकादश १० त्रि ११ त्रि १२ द्वि-१३ द्वि १४ द्वि १५ द्वि १६ संख्या उद्देशनकालाः षोडशस्वध्ययनेषु शेषेषु नवसु नवैवेति, इह सङ्ग्रहगाथा–'सत्त य छ चउ चउरो छ पञ्च अट्ठेव सत्त चउरो य। एक्कारा ति ति दो दो दो दो सत्तेक्क एक्को य ॥ १ ॥' त्ति, एवं समुद्देशनकाला अपि भणितव्याः, अष्टादश पदसहस्राणि पदाग्रेण प्रज्ञप्तः, इह यत्रार्थोपलब्धिस्तत्पदं, ननु यदि द्वौ श्रुतस्कन्धौ पञ्चविंशतिरध्ययनान्यष्टादश पदसहस्राणि पदाग्रेण भवन्ति ततो यद्भणितं "नवबंभचेरमइओ अट्ठारसपदसहस्सिओ वेउ"त्ति तत्कथं न विरुध्यते ?, उच्यते, यत् द्वौ श्रुतस्कन्धावित्यादि तदाचारस्य प्रमाणं भणितं, यत्पुनरष्टादश पदसहस्राणि तन्नवब्रह्मचर्य्याध्ययनात्मकस्य प्रथमश्रुतस्कन्धस्य प्रमाणं, विचित्रार्थबद्धानि च सूत्राणि, गुरूपदेशतस्तेषामर्थोऽवसेय इति, संख्येयानि अक्षराणि, वेष्टकादीनां संख्येयत्वात्, अनन्ता गमाः, इह गमाः–अ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः

प्रत सूत्रांक [१३६]

प्रत अनुक्रम [२१५]



थंगमा गृह्यन्ते अर्थपरिच्छेदा इत्यर्थः, ते चानन्ताः, एकस्मादेव सूत्रात्तत्तद्धर्मविशिष्टानन्तधर्म्मात्मकवस्तुप्रतिपत्तेः, अन्ये तु व्याचक्षते–अभिधानाभिधेयवशतो गमा भवन्ति, ते चानन्ताः, अनन्ताः पर्यायाः स्वपरभेदभिन्ना अक्षरार्थ-पर्याया इत्यर्थः, परित्तास्त्रसा आख्यायन्त इति योगः, त्रसन्तीति त्रसाः–द्वीन्द्रियादयस्ते च परीत्ता नानन्ताः, एवं–रूपत्वादेव तेषां, अनन्ताः स्थावरा वनस्पतिकायसहिताः, किंभूता एते ?–'सासया कडा निबद्धा निकाइय'त्ति शा-श्वताः द्रव्यार्थतया अविच्छेदेन प्रवृत्तेः कृताः पर्यायार्थतया प्रतिसमयमन्यथात्वावाप्तेर्निबद्धाः–सूत्र एव ग्रथिता नि-काचिता–निर्युक्तिसङ्ग्रहणिहेतूदाहरणादिभिः प्रतिष्ठिता जिनैः प्रज्ञप्ता भावाः–पदार्था अन्येऽप्यजीवादयः 'आघ-विज्जंति'त्ति प्राकृतशैल्या आख्यायन्ते–सामान्यविशेषाभ्यां कथ्यन्त इत्यर्थः, प्रज्ञाप्यन्ते नामादिभेदाभिधानेन, प्ररू-प्यन्ते नामादिस्वरूपकथनेन, यथा 'पज्जायाणभिधेय'मित्यादि, दर्श्यन्ते उपमामात्रतः 'यथा गौर्गवयस्तथा' इत्यादि, निदर्श्यन्ते हेतुदृष्टान्तोपन्यासेन उपदर्श्यन्ते उपनयनिगमनाभ्यां सकलनयाभिप्रायतो वेति, साम्प्रतमाचाराङ्गग्रहण-फलप्रतिपादनायाह—'से एव'मित्यादि, स इत्याचाराङ्गग्राहको गृह्यते, 'एवं आय'त्ति अस्मिन् भावतः सम्यगधीते सत्येवमात्मा भवति, तदुक्तक्रियापरिणामाव्यतिरेकात् स एव भवतीत्यर्थः, इदं च सूत्रं पुस्तकेषु न दृष्टं नन्द्यां तु दृश्यते इतीह व्याख्यातमिति, एवं क्रियासारमेव ज्ञानमिति ख्यापनार्थं क्रियापरिणाममभिधायाधुना ज्ञानमधिकृत्य आह—'एवं नाय'त्ति इदमधीत्य एवं ज्ञाता भवति यथैवेहोक्तमिति, 'एवं विन्नाय'त्ति विविधो विशिष्टो वा ज्ञाता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः

प्रत सूत्रांक [१३६]

प्रत अनुक्रम [२१५]

विज्ञाता एवं विज्ञाता भवति–तत्रान्तरीयज्ञाता भवति, तत्रान्तरीयज्ञातृभ्यः प्रधानतर इत्यर्थः, 'एव'मित्यादि निगमनवाक्यं, एवं–अनेन प्रकारेणाचारगोचरविनयाद्यभिधानरूपेण 'चरणकरणप्ररूपणता आख्यायत' इति चरणं–व्रतश्रमणधर्म्मसंयमाद्यनेकविधं करणं–पिण्डविशुद्धिसमित्याद्यनेकविधं तयोः प्ररूपणता–प्ररूपणैव आख्यायते इत्यादि पूर्ववदिति, 'सेत्तं आयारे'त्ति तदिदमाचारवस्तु अथवा सोऽयमाचारो यः पूर्वं दृष्ट इति ॥ १ ॥

से किं तं सूअगडे ?, सुअगडे णं ससमया सूइज्जंति परसमया सूइज्जंति ससमयपरसमया सूइज्जंति जीवा सूइज्जंति अजीवा सूइज्जंति जीवाजीवा सूइज्जंति लोगो सूइज्जति अलोगो सूइज्जति लोगालोगो सुइज्जति, सूअगडे णं जीवाजीवपुण्णपावासवसंवरनिज्जरणबंधमोक्खावसाणा पयत्था सुइज्जंति, समणाणं अचिरकालपव्वइयाणं कुसमयमोहमोहमइमोहियाणं संदेहजायसहजबुद्धिपरिणामसंसइयाणं पावकरमलिनमइगुणविसोहणत्थं असीअस्स किरियावाइयसयस्स चउरासीए अकिरियवाईणं सत्तट्ठीए अण्णाणियवाईणं बत्तीसाए वेणइयवाईणं तिण्हं तेवट्ठीणं अण्णदिट्ठियसयाणं वूहं किच्चा ससमए ठाविज्जति णाणदिट्ठंतवयणणिस्सारं सुट्ठु दरिसयंता विविहवित्थराणुगमपरमसब्भावगुणविसिट्ठा मोक्खपहोयारगा उदारा अण्णाणतमंधकारदुग्गेसु दीवभूआ सोवाणा चेव सिद्धिसुगइगिहुत्तमस्स णिक्खोभनिप्पकंपा सुत्तत्था, सुयगडस्स णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, से णं अङ्गट्ठयाए दोच्चे अंगे दो सुयक्खंधा तेवीसं अज्झयणा तेत्तीसं उद्देसणकाला तेत्तीसं समुद्देसणकाला छत्तीसं पदसहस्साइं पयग्गेणं प० संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,
सूत्रकृत अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१३७]

प्रत अनुक्रम [२१६]

सिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से तं सूअगडे २ ॥ सूत्रं १३७ ॥

'से किं तं सूयगडे' 'सूच सूचायां' सूचनात् सूत्रं सूत्रेण कृतं सूत्रकृतमिति रूढ्योच्यते, 'सूयगडेणं'ति सूत्रकृतेन सूत्रकृते वा स्वसमयाः सूच्यन्ते इत्यादि कण्ठ्यं, तथा सूत्रकृतेन जीवाजीवपुण्यपापाश्रवसंवरनिर्जराबन्धमोक्षावसानाः पदार्थाः सूच्यन्ते, तथा 'समणाण'मित्यादि, अत्र श्रमणानां मतिगुणविशोधनार्थं स्वसमयः स्थाप्यत इति वाक्यार्थः, तत्र श्रमणानां किंभूतानां ?–अचिरकालप्रव्रजितानां, चिरकालप्रव्रजिता हि निर्म्मलमतयो भवन्ति, अहर्निशं शास्त्रपरिचयाद्बहुश्रुतसंपर्काच्चेति, पुनः किंभूतानां ?–'कुसमयमोहमोहमइमोहियाणं'ति कुत्सितः समयः—सिद्धान्तो येषां ते कुसमयाः–कुतीर्थिकास्तेषां मोहः–पदार्थेष्वयथावबोधः कुसमयमोहस्तस्माद्यो मोहः–श्रोतृमनोमूढता तेन मतिर्मोहिता–मूढतां नीता येषां ते कुसमयमोहमतिमोहिताः, अथवा कुसमयाः–कुसिद्धान्तास्तेषां ओघः–संघो मकारस्तु प्राकृतत्वात् तस्माद्यो मोहः–श्रोतृमनोमूढता तेन मतिर्मोहिता येषां ते कुसुमयौघमोहमतिमोहिताः, अथवा कुसमयानां–कुतीर्थिकानां मोहो मोघो वा–शुभफलापेक्षया निष्फलो यो मोहस्तेन मतिर्मोहिता येषां ते कुसमयमोहमोहमतिमोहिताः कुसमयमोघमोहमतिमोहिता वा तेषां, तथा संदेहाः–वस्तुतत्त्वं प्रति संशयाः कुसमयमोहमतिमोहितानामिति विशेषणसान्निध्यात् कुसमयेभ्यः सकाशात् (ते) जाता येषां ते सन्देहजाताः,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रकृत अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१३७]

प्रत अनुक्रम [२१६]

तथा सहजात्–स्वभावसम्पन्नात् न कुसमयश्रवणसम्पन्नाद्बुद्धिपरिणामात्–मतिस्वभावात् संशयो जातो येषा ते सहजबुद्धिपरिणामसंशयिताः सन्देहजाताश्च सहजबुद्धिपरिणामसंशयिताश्च ये ते तथा तेषां श्रमणानामिति प्रक्रमः, किमत आह–'पापकरो' विपर्ययसंशयात्मकत्वेन कुत्सितप्रवृत्तिनिबन्धनत्वादशुभकर्म्महेतुरत एव च मलिनः–स्वरूपाच्छादनादनिर्म्मलो यो मतिगुणो–बुद्धिपर्यायस्तस्य विशोधनाय–निर्म्मलत्वाधानाय पापकरमलिनमतिगुणविशोधनार्थं । 'असीयस्स किरियावाइयसयस्स'त्ति अशीत्यधिकस्य क्रियावादिशतस्य व्यूहं कृत्वा स्वसमयः स्थाप्यत इति योगः, एवं शेषेष्वपि पदेषु क्रिया योजनीयेति, तत्र न कर्त्तारं विना क्रिया संभवतीति तामात्मसमवायिनीं वदन्ति ये तच्छीलाश्च ते क्रियावादिनः, ते पुनरात्माद्यस्तित्वप्रतिपत्तिलक्षण अमुनोपायेनाशीत्यधिकशतासंख्या विज्ञेयाः–जीवाजीवाश्रवबन्धसम्वरनिर्जरापुण्यापुण्यमोक्षाख्यान्नव पदार्थान् विरचय्य परिपाट्या जीवपदार्थस्याधः स्वपरभेदावुपन्यसनीयौ, तयोरधो नित्यानित्यभेदौ, तयोरप्यधः कालेश्वरात्मनियतिस्वभावभेदाः पञ्च न्यसनीयाः, पुनरित्थं विकल्पाः कर्त्तव्याः–अस्ति जीवः स्वतो नित्यः कालत इत्येको विकल्पो, विकल्पार्थश्चायं–विद्यते खल्वात्मा स्वेन रूपेण नित्यश्च कालवादिनः, उक्तेनैवाभिलापेन द्वितीयो विकल्प ईश्वरकारणिकस्य, तृतीयः आत्मवादिनश्चतुर्थो नियतिवादिनः पञ्चमः स्वभाववादिनः, एवं स्वत इत्यपरित्यजता लब्धाः पञ्च विकल्पाः, परत इत्यनेनापि पञ्च लभ्यन्ते, नित्यत्वापरित्यागेन चैते दश विकल्पाः, एवमनित्यत्वेनापि दशैव, एवं विंशतिर्जीवपदा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रकृत अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचय:,

प्रत सूत्रांक [१३७]

प्रत अनुक्रम [२१६]

थेंन लब्धाः, अजीवादिष्वप्यष्टास्वेवमेव प्रतिपदं विंशतिर्विकल्पानामतो विंशतिर्नवगुणा शतमशीत्युत्तरं क्रियावादिनामिति, 'चउरासीए अकिरियवाईणं'ति एतेषां च स्वरूपं यथा नन्द्यादिषु तथा वाच्यं, नवरमेतद्व्याख्याने पुण्यापुण्यवर्जाः सप्त पदार्थाः स्थाप्यन्ते, तदधः स्वतः परतश्चेति पदद्वयं, तदधः कालादीनां षष्ठी यदृच्छा न्यस्यते, ततश्च नास्ति जीवः स्वतः कालत इत्येको विकल्पः, एवमेते चतुरशीतिर्भवन्ति । 'सत्तट्ठीए अन्नाणियवाईणं'ति एतेऽपि तथैव, नवरं जीवादीन्नव पदार्थानुत्पत्तिदशमानुपरि व्यवस्थाप्याधः सप्त सदादयः स्थाप्याः, तद्यथा–सत्त्वमसत्त्वं सदसत्त्वमवाच्यत्वं सदवाच्यत्वमसदवाच्यत्वं सदसदवाच्यत्वमिति, तत्र को जानाति जीवस्य सत्त्वमित्येको विकल्पः, एवमसत्त्वमित्यादि, तत एते सप्त नवकास्त्रिषष्टिः, उत्पत्तेस्त्वाद्या एव चत्वारो वाच्याः, इत्येवं सप्तषष्टिरिति, तथा 'बत्तीसाए वेणइयवाईणं'ति, एते चैवं–सुरनृपतिज्ञातियतिस्थविराधममातृपितॄणां प्रत्येकं कायवाङ्मनोदानैश्चतुर्द्धा विनयः कार्य इत्यभ्युपगमवन्तो द्वात्रिंशदिति । एवं चैतेषां चतुर्णां वादिप्रकाराणां मीलने त्रीणि त्रिषष्ट्यधिकानि अन्यदृष्टिशतानि भवन्त्यत उच्यते–'तिण्ह'मित्यादि, 'बूहं किच्च'त्ति प्रतिक्षेपं कृत्वा 'ससमयो' जैनसिद्धान्तः स्थाप्यते, यत एवं सूत्रकृतेन विधीयते अतस्तत्सूत्रार्थयोः स्वरूपमाह–'नाणे'त्यादि, नाना–अनेकविधाः बहुभिः प्रकारैरित्यर्थः, 'दिट्ठंतवयणनिस्सारं'ति स्याद्वादिना पूर्वपक्षीकृतानां प्रवादिनां स्वपक्षस्थापनाय यानि दृष्टान्तवचनान्युपलक्षणत्वाद्धेतुवचनानि च तदपेक्षया निस्सारं–सारताशून्यं परेषां मतमिति गम्यते, सुष्ठु–पुनरप्रतिक्षेप-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रकृत अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

णीयत्वेन दर्शयन्तौ–प्रकटयन्तौ तथाविधश्चासौ सत्पदप्ररूपणाद्यनेकानुयोगद्वाराश्रितत्वेन विस्तारानुगमश्च–अनुगमनीयानेकजीवादितत्त्वानां विस्तरप्रतिपादनं विविधविस्तारानुगमः तया परमसद्भावः–अत्यन्तसत्यता वस्तूनामैदम्पर्यमित्यर्थस्तावेव गुणौ ताभ्यां विशिष्टौ विविधविस्तारानुगमपरमसद्भावगुणविशिष्टौ 'मोक्खपहोयारग'त्ति मोक्षपथावतारकौ, सम्यग्दर्शनादिषु प्राणिनां प्रवर्त्तकावित्यर्थः, 'उदार'त्ति उदाराः सकलसूत्रार्थदोषरहितत्वेन निखिलतद्गुणसहितत्वेन च, तथाऽज्ञानमेव तमः–अन्धकारमात्यन्तिकान्धकारमथवा प्रकृष्टमज्ञानमज्ञानतमं तदेवान्धकारमज्ञानतमोऽन्धकारमज्ञानतमोऽन्धकारमज्ञानतमान्धकारं वा तेन ये दुर्गा–दुरधिगमास्ते तथा तेषु तत्त्वमार्गेष्विति गम्यते 'दीवभूय'त्ति प्रकाशकारित्वाद्दीपोपमौ 'सोवाणा चेव'त्ति सोपानानीव–उन्नतारोहणमार्गविशेष इव सिद्धिसुगतिगृहोत्तमस्य–सिद्धिलक्षणा सुगतिः सिद्धिसुगतिरथवा सिद्धिश्च सुगतिश्च–सुदेवत्वसुमानुषत्वलक्षणा सिद्धिसुगती तल्लक्षणं यद्गृहाणामुत्तमं गृहोत्तमं–वरप्रासादस्तस्य सिद्धिसुगतिगृहोत्तमस्यारोहण इति गम्यते 'निक्खोभनिप्पकंप'त्ति निःक्षोभौ वादिना क्षोभयितुं–चालयितुमशक्यत्वात् निष्प्रकम्पौ स्वरूपतोऽपीषद्व्यभिचारलक्षणकम्पाभावात्, कावित्याह ?— 'सूत्रार्थौ' सूत्रं चार्थश्च–निर्युक्तिभाष्यसङ्ग्रहणिवृत्तिचूर्णिपञ्जिकादिरूप इति सूत्रार्थौ, शेषं कण्ठ्यं यावत् 'सेत्तं सूयगडे'त्ति, नवरं त्रयस्त्रिंशदुद्देशनकालाः–'चउ ४ तिय ३ चउरो ४ दो २ दो २ एक्कारस चेव हुंति एक्कसरा । सत्तेव महज्झयणा एगसरा बीयसुयखंधे ॥ १ ॥' इत्यतो गाथातोऽवसेया इति ॥ २ ॥

१३७ सूत्रकृताङ्ग० ॥१११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रकृत अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचय:,

प्रत सूत्रांक [१३८]

प्रत अनुक्रम [२१७--२१९]

से किं तं ठाणे ?, ठाणेणं ससमया ठाविज्जन्ति परसमया ठाविज्जंति ससमयपरसमया ठाविज्जंति जीवा ठाविज्जंति अजीवा ठाविज्जंति जीवाजीवा० लोगा० अलोगा० लोगालोगा ठाविज्जंति, ठाणेणं दव्वगुणखेत्तकालपज्जव पयत्थाणं–'सेला सलिला य समुद्दा सूरभवणविमाण आगर णदीओ। णिहिओ पुरिसज्जाया सरा य गोत्ता य जोइसंचाला ॥ १ ॥ एक्कविहवत्तव्वयं दुविह जाव दसविहवत्तव्वयं जीवाण पोग्गलाण य लोगट्ठाइं च णं परूवणया आघविज्जंति, ठाणस्स णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए तइए अंगे एगे सुयक्खंधे दस अज्झयणा एक्कवीसं उद्देसणकाला बावत्तरिं पयसहस्साइं पयग्गेणं प०, संखेज्जा अक्खरा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति, सेत्तं ठाणे ३ ॥ सूत्रं १३८ ॥

'से किं तं ठाणे'इत्यादि, अथ किं तत् स्थानं ?, तिष्ठन्त्यस्मिन् प्रतिपाद्यतया जीवादय इति स्थानं, तथा चाह—'ठाणेण'मित्यादि, स्थानेन स्थाने वा जीवाः स्थाप्यन्ते यथावस्थितस्वरूपप्रतिपादनायेति हृदयं, शेषं प्रायो निगदसिद्धमेव, नवरं ठाणेण इत्यस्य पुनरुच्चारणं सामान्येनैव पूर्वोक्तस्यैव स्थापनीयविशेषप्रतिपादनाय वाक्यान्तरमिदमिति ज्ञापनार्थं, तत्र 'दव्वगुणखेत्तकालपज्जव'त्ति प्रथमाबहुवचनलोपाद्द्रव्यगुणक्षेत्रकालपर्यवाः पदार्थानां–जीवादीनां स्थानेन स्थाप्यन्ते इति प्रक्रमः, तत्र द्रव्यं द्रव्यार्थता यथा जीवास्तिकायोऽनन्तानि द्रव्याणि गुणः–स्वभावो यथोपयोगस्वभावो जीवः क्षेत्रं–यथा असंख्येयप्रदेशावगाहनोऽसौ, कालो यथा अनाद्यपर्यवसितः, पर्यवाः–कालकृता अवस्था

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थान अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१३८]

प्रत अनुक्रम [२१७-२१९]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥११२॥

यथा नारकत्वादयो बालत्वादयो वेति, 'सेला' इत्यादि गाथाविशेषः, तत्र शैला–हिमवदादिपर्वताः स्थाप्यन्ते स्थानेनेति योगः सर्वत्र, सलिलाश्च गङ्गाद्या महानद्यः समुद्राः–लवणादयः सूराः–आदित्या भवनानिः–असुरादीनां विमानानि चन्द्रादीनां आकराः–सुवर्णाद्युत्पत्तिभूमयो नद्यः–सामान्या महीकोसीप्रभृतयो निधयः–चक्रवर्त्तिसम्बन्धिनो नैसर्प्पादयो नव 'पुरिसजाय'त्ति पुरुषप्रकारा उन्नतप्रणतादिभेदाः पाठान्तरेण 'पुस्सजोय'त्ति उपलक्षणत्वात् पुष्यादिनक्षत्राणां चन्द्रेण सह पश्चिमाग्रिमोभयप्रमर्दकादियोगाः स्वराश्च–षड्जादयः सप्त गोत्राणि च–काश्यपादीनि एकोनपञ्चाशत्, 'जोइसंचालय'त्ति ज्योतिषः–तारकरूपस्य सञ्चलनानि 'तिहिं ठाणेहिं तारारूवे चलेज्जा' इत्यादिना सूत्रेण स्थाप्यन्ते स्थानेनेति प्रक्रमः । १ । तथा एकविधं च तद्वक्तव्यं च–तदभिधेयमित्येकविधवक्तव्यं प्रथमे अध्ययने स्थाप्यत इति योगः, एवं द्विविधवक्तव्यकं द्वितीयेऽध्ययने, एवं तृतीयादिषु यावद्दशविधवक्तव्यकं दशमेऽध्ययने, तथा जीवानां पुद्गलानां च प्ररूपणताऽऽख्यायत इति योगः, तथा 'लोगट्ठाइं च णं'ति लोकस्थायिनां च–धर्म्माधर्म्मास्तिकायादीनां परूपणता–प्रज्ञापना, शेषमाचारसूत्रव्याख्यानवदवसेयं, नवरमेकविंशतिरुद्देशनकालाः, कथं?, द्वितीयतृतीयचतुर्थेष्वध्ययनेषु चत्वारश्चत्वार उद्देशकाः पञ्चमे त्रय इत्येते पञ्चदश, शेषासु षट्, षण्णामध्ययनानां षडुद्देशनकालत्वादिति 'बावत्तरिं पदसहस्साइं'ति अष्टादशपदसहस्रमानादाचाराद्द्विगुणत्वात् सूत्रकृतस्य ततोऽपि द्विगुणत्वात् स्थानस्येति ॥ ३ ॥

१३८स्थानाङ्गः

॥११२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थान अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१३९]

प्रत अनुक्रम [२२०]

से किं तं समवाए ?, समवाएणं ससमया सूइज्जंति परसमया सूइज्जंति ससमयपरसमया सूइज्जंति जाव लोगालोगा सूइज्जंति, समवाएणं एकाइयाणं एगट्ठाणं एगुत्तरियपरिवुड्ढीए दुवालसंगस्स य गणिपिडगस्स पल्लवग्गे समणुगाइज्जइ ठाणगसयस्स बारसविहवित्थरस्स सुयणाणस्स जगजीवहियस्स भगवओ समासेणं समोयारे आहिज्जति, तत्थ य णाणाविहप्पगारा जीवाजीवा य वण्णिया वित्थरेण अवरेवि अ बहुविहा विसेसा नरगतिरियमणुअसुरगणाणं आहारुस्सासलेसाआवाससंखआययप्पमाणउववायचवणउग्गहणोवहिवेयणविहाणउवओगजोगइंदियकसाय विविहा य जीवजोणी विक्खंभुस्सेहपरिरयप्पमाणं विहिविसेसा य मंदरादीणं महीधराणं कुलगरतित्थगरगणहराणं सम्मत्तभरहाहिवाण चक्कीणं चेव चक्कहरहलहराण य वासाण य निगमा य समाए एए अण्णे य एवमाइ एत्थ वित्थरेणं अत्था समाहिज्जंति, समवायस्स णं परित्ता वायणा जाव से णं अङ्गट्ठयाए चउत्थे अंगे एगे अज्झयणे एगे सुयक्खंधे एगे उद्देसणकाले एगे चउयाले पदसहस्से पदग्गेणं प०, संखेज्जाणि अक्खराणि जाव चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति, सेत्तं समवाए ४ ॥ सूत्रं १३९ ॥

'से किं त'मित्यादि, अथ कोऽसौ समवायः ?, सूत्रेषु प्राकृतत्वेन वकारलोपात् समाये इत्युक्तं, समवायनं समवायः सम्यक् परिच्छेद इत्यर्थः, तद्धेतुश्च ग्रन्थोऽपि समवायः, तथा चाह—समवायेन समवाये वा स्वसमयाः सूच्यन्ते इत्यादि कण्ठ्यं, तथा समवायेन समवाये वा 'एगाइयाणं'ति एकद्वित्रिचतुरादीनां शतान्तानां कोटाकोट्यन्तानां वा 'एगट्ठाणं'ति एके च ते अर्थाश्चेत्येकार्थास्तेषां, अयमर्थः एकेषां केषाञ्चित् न सर्वेषां निखिलानां वक्तुमशक्यत्वादर्थानां–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समवाय अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१३९]

प्रत अनुक्रम [२२०]

जीवादीनां 'एगुत्तरिय'त्ति एक उत्तरो यस्यां सा एकोत्तरा सैव एकोत्तरिका, इह प्राकृतत्वात् ह्रस्वत्वं, 'परिवुड्ढि-य'त्ति परिवृद्धिश्चेति समनुगीयते समवायेनेति योगः, तत्र च परिवर्द्धनं संख्यायाः समवसेयं, चशब्दस्य चान्यत्र सम्बन्धादेकोत्तरिका अनेकोत्तरिका च, तत्र शतं यावदेकोत्तरिका परतोऽनेकोत्तरिकेति, तथा द्वादशाङ्गस्य च गणि-पिटकस्य 'पल्लवग्गे'त्ति पर्यवपरिमाणं अभिधेयादितद्धर्मसंख्यानं यथा 'परित्ता तसा' इत्यादि पर्यवशब्दस्य च 'पल्लव'त्ति निर्देशः प्राकृतत्वात् पर्यङ्कः पल्यङ्क इत्यादिवदिति, अथवा पल्लवा इव पल्लवाः–अवयवास्तत्परिमाणं 'स-मणुगाइज्जति'त्ति–समनुगीयते–प्रतिपाद्यते, पूर्वोक्तमेवार्थं प्रपञ्चयन्नाह—'ठाणगसयस्स'त्ति स्थानकशतस्यैकादीनां शतान्तानां संख्यास्थानानां तद्विशेषितात्मादिपदार्थानामित्यर्थः, तथा द्वादशविधो विस्तरो यस्याचारादिभेदेन तत् द्वादशविधविस्तरं तस्य श्रुतज्ञानस्य–जिनप्रवचनस्य, किंभूतस्य ?–जगज्जीवहितस्य, 'भगवतः' श्रुतातिशययुक्तस्य 'स-मासेन' संक्षेपेण समाचारः–प्रतिस्थानं प्रत्यङ्गं च विविधाभिधायकत्वलक्षणो व्यवहारः 'आहिज्जइ'त्ति आख्यायते, अथ समाचाराभिधानानन्तरं यदुक्तं तदभिधातुमाह–'तत्थ ये'त्यादि, 'तत्थ य'त्ति तत्रैव समवाये इति योगः नाना-विधः प्रकारो येषां ते नानाविधप्रकाराः तथाहि–एकेन्द्रियादिभेदेन पञ्चप्रकारा जीवाः पुनरेकैकः प्रकारः पर्याप्ता-पर्याप्तादिभेदेन नानाविधः, 'जीवाजीवा य'त्ति जीवा अजीवाश्च वर्णिता 'विस्तरेण' महता वचनसन्दर्भेण, अपरेऽपि च बहुविधा 'विशेषा' जीवाजीवधर्म्मा वर्णिता इति योगः, तानेव लेशतः आह–'नरये'त्यादि, 'नरय'त्ति निवासनिवा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समवाय अंगसूत्रस्य शास्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१३९]

प्रत अनुक्रम [२२०]

सिनामभेदोपचारान्नारकाः, ततश्च नारकतिर्यग्मनुजसुरगणानां सम्बन्धिन आहारादयः, तत्र आहारः–ओजआहारादिराभोगिकानाभोगिकस्वरूपोऽनेकधा उच्छ्वासोऽनुसमयादिकालभेदेनानेकधा लेश्या कृष्णादिका षोढा आवाससंख्या यथा नरकावासानां चतुरशीतिर्लक्षाणीत्यादिका आयतप्रमाणमावासानामेव संख्यातासंख्यातयोजनायामता उपलक्षणत्वादस्य विष्कम्भबाहल्यपरिधिमानान्यप्यत्र द्रष्टव्यानि, उपपात एकसमयेनैतावतामेतावता वा कालव्यवधानेनोत्पत्तिः च्यवनमेकसमयेनैतावतामियता वा कालव्यवधानेन मरणं, अवगाहना–शरीरप्रमाणमङ्गुलासंख्येयभागादि अवधिः–अङ्गुलासंख्येयभागक्षेत्रविषयादि वेदना–शुभाशुभस्वभावा विधानानि–भेदा यथा सप्तविधा नारका इत्यादि उपयोगः–आभिनिबोधिकादिर्द्वादशविधः योगः–पञ्चदशविधः इन्द्रियाणि–पञ्च द्रव्यादिभेदाद् विंशतिर्वा श्रोत्रादिच्छिद्राद्यपेक्षयाऽष्टौ वा कषायाः–क्रोधादयः आहारश्चोच्छ्वासश्चेत्यादिर्द्वन्द्वस्ततः कषायशब्दात्प्रथमाबहुवचनलोपो द्रष्टव्यः तथा विविधा च जीवयोनिः-सचित्तादिकं जीवानामुत्पत्तिस्थानं, तथा विष्कम्भोत्सेधपरिरयप्रमाणं विधिविशेषाश्च मन्दरादीनां महीधराणामिति, तत्र विष्कम्भो–विस्तार उत्सेधः–उच्चत्वं परिरयः–परिधिः विधिविशेषा इति विधयो–भेदा यथा मन्दरा जम्बूद्वीपीयधातकीखण्डीयपौष्करार्द्धकभेदात्त्रिधा तद्विशेषस्तु जम्बूद्वीपको लक्षोच्चः शेषास्तु पञ्चाशीतिसहस्रोच्छ्रिता इति, एवमन्येष्वपि भावनीयं, तथा कुलकरतीर्थकरगणधराणां तथा समस्तभरताधिपानां–चक्रिणां चैव तथा चक्रधरहलधराणां च विधिविशेषाः समाश्रीयन्त इति योगः, तथा वर्षाणां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समवाय अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१३९]

प्रत अनुक्रम [२२०]

च–भरतादिक्षेत्राणां निर्गमाः–पूर्वेभ्यः उत्तरेषामाधिक्यानि 'समाए'त्ति समवाये चतुर्थे अङ्गे वर्णिता इति प्रक्रमः, अथैतन्निगमयन्नाह—एते चोक्ताः पदार्था अन्ये च घनतनुवातादयः पदार्थाः, एवमादयः–एवंप्रकाराः अत्र समवाये विस्तरेणार्थाः समाश्रीयन्ते, अविपरीतस्वरूपगुणभूषिता बुद्ध्याऽङ्गीक्रियन्त इत्यर्थः, अथवा समस्यन्ते–कुप्ररूपणाभ्यः सम्यक्प्ररूपणायां क्षिप्यन्ते, शेषं निगदसिद्धमानिगमनादिति ॥ ५ ॥

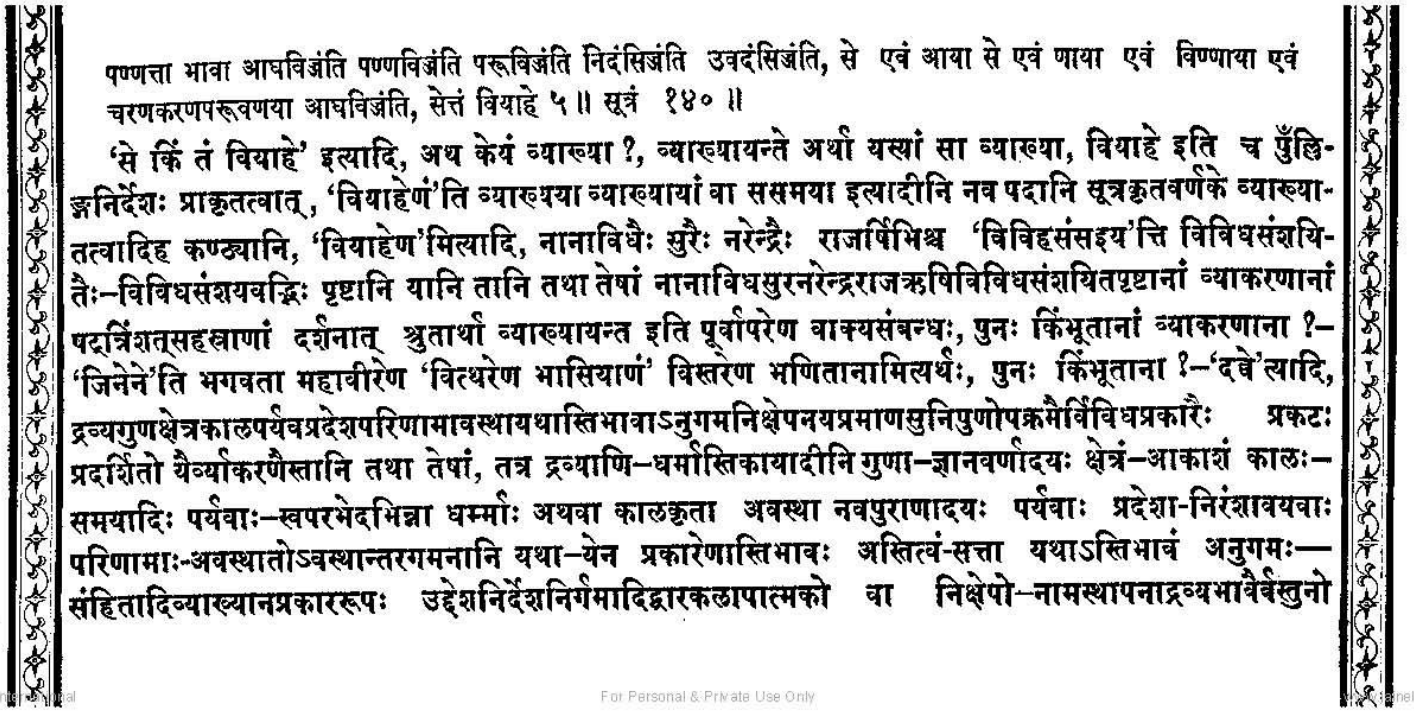
से किं तं वियाहे ?, वियाहेणं ससमया विआहिज्जंति परसमया विआहिज्जंति ससमयपरसमया विआहिज्जंति जीवा विआहिज्जंति अजीवा विआहिज्जंति जीवाजीवा विआहिज्जंति लोगे विआहिज्जइ अलोए वियाहिज्जइ लोगालोगे विआहिज्जइ, वियाहेणं नाणाविहसुरनरिंदरायरिसिविविहसंसइअपुच्छियाणं जिणेणं वित्थरेण भासियाणं दव्वगुणखेत्तकालपज्जवपदेसपरिणामजहच्छिट्ठियभावअणुगमनिक्खेवणयप्पमाणसुनिउणोवक्कमविविहप्पकारपगडपयासियाणं लोगालोगपयासियाणं संसारसमुद्दरुंदउत्तरणसमत्थाणं सुरवइसंपूजियाणं भवियजणपयहिययाभिनंदियाणं तमरयविद्धंसणाणं सुदिट्ठदीवभूयईहामतिबुद्धिवद्धणाणं छत्तीससहस्समणूणयाणं वागरणाणं दंसणाओ सुयत्थबहुविहप्पगारा सीसहियत्था य गुणमहत्था, वियाहस्स णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ, से णं अंगट्ठयाए पञ्चमे अंगे एगे सुयक्खंधे एगे साइरेगे अज्झयणसते दस उद्देसगसहस्साइं दस समुद्देसगसहस्साइं छत्तीसं वागरणसहस्साइं चउरासीई पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता, संखेज्जाइं अक्खराइं अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समवाय अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,
वियाह/(भगवती) अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४०]

प्रत अनुक्रम [२२१]



पण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, से एवं आया से एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति, सेत्तं वियाहे ५ ॥ सूत्रं १४० ॥

'से किं तं वियाहे' इत्यादि, अथ केयं व्याख्या ?, व्याख्यायन्ते अर्था यस्यां सा व्याख्या, वियाहे इति च पुँल्लिङ्गनिर्देशः प्राकृतत्वात्, 'वियाहेणं'ति व्याख्यया व्याख्यायां वा ससमया इत्यादीनि नव पदानि सूत्रकृतवर्णके व्याख्यातत्वादिह कण्ठ्यानि, 'वियाहेण'मित्यादि, नानाविधैः सुरैः नरेन्द्रैः राजर्षिभिश्च 'विविहसंसइय'त्ति विविधसंशयितैः–विविधसंशयवद्भिः पृष्टानि यानि तानि तथा तेषां नानाविधसुरनरेन्द्रराजऋषिविविधसंशयितपृष्टानां व्याकरणानां षट्त्रिंशत्सहस्राणां दर्शनात् श्रुतार्था व्याख्यायन्त इति पूर्वापरेण वाक्यसंबन्धः, पुनः किंभूतानां व्याकरणाना ?–'जिनेने'ति भगवता महावीरेण 'वित्थरेण भासियाणं' विस्तरेण भणितानामित्यर्थः, पुनः किंभूताना ?–'दवे'त्यादि, द्रव्यगुणक्षेत्रकालपर्यवप्रदेशपरिणामावस्थायथास्तिभावाऽनुगमनिक्षेपनयप्रमाणसुनिपुणोपक्रमैर्विविधप्रकारैः प्रकटः प्रदर्शितो यैर्व्याकरणैस्तानि तथा तेषां, तत्र द्रव्याणि–धर्मास्तिकायादीनि गुणा–ज्ञानवर्णादयः क्षेत्रं–आकाशं कालः–समयादिः पर्यवाः–स्वपरभेदभिन्ना धर्म्माः अथवा कालकृता अवस्था नवपुराणादयः पर्यवाः प्रदेशा-निरंशावयवाः परिणामाः-अवस्थातोऽवस्थान्तरगमनानि यथा–येन प्रकारेणास्तिभावः अस्तित्वं-सत्ता यथाऽस्तिभावं अनुगमः–संहितादिव्याख्यानप्रकाररूपः उद्देशनिर्देशनिर्गमादिद्वारकलापात्मको वा निक्षेपो–नामस्थापनाद्रव्यभावैर्वस्तुनो

२० सम०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वियाह/(भगवती) अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४०]

प्रत अनुक्रम [२२१]

न्यासः 'नयप्रमाणं' नया–नैगमादयः सप्त द्रव्यास्तिकपर्यायास्तिकभेदात् ज्ञाननयक्रियानयभेदान्निश्चयव्यवहारभेदाद्वा द्वौ ते एव तावेव वा प्रमाणं–वस्तुतत्त्वपरिच्छेदनं नयप्रमाणं तथा सुनिपुणः–सुसूक्ष्मः सुनिपुणो वा सुष्ठु निश्चितगुण उपक्रमः–आनुपूर्व्यादिः, विविधप्रकारता चैषां भेदभणनत एवोपदर्शितेति, पुनः किंभूतानां व्याकरणानां ?, लोकालोकौ प्रकाशितौ येषु तानि तथा तेषां, तथा 'संसारसमुद्दरुंदउत्तरणसमत्थाणं'ति संसारसमुद्रस्य रुंदस्य–विस्तीर्णस्य उत्तरणे–तारणे समर्थानामित्यर्थः अत एव सुरपतिसंपूजितानां–प्रच्छकनिर्णायकपूजनात् सूक्तत्वेन श्लाघितत्वाद्वा तथा 'भवियजणपयहियया भिणंदियाणं'ति भव्यजनानां–भव्यप्राणिनां प्रजा–लोको भव्यजनप्रजा भव्यजनपदो वा तस्यास्तस्य वा हृदयैः–चित्तैरभिनन्दितानां–अनुमोदितानामिति विग्रहः, तथा तमोरजसी–अज्ञानपातके विध्वंसयति–नाशयति यत्तत्तमोरजोविध्वंसं तच्च तद् ज्ञानं च तमोरजोविध्वंसज्ञानं तेन सुष्ठु दृष्टानि–निर्णीतानि यानि तानि तथा अत एव तानि च तानि दीपभूतानि चेति, अत एव तानि ईहामतिबुद्धिवर्द्धनानि चेति, तेषां तमोरजोविध्वंसज्ञानसुदृष्टदीपभूतेहामतिबुद्धिवर्द्धनानां, तत्र ईहा-वितर्को मतिः–अवायो निश्चय इत्यर्थः बुद्धिः–औत्पत्तिक्यादिचतुर्विधेति, अथवा तमोरजोविध्वंसनानामिति पृथगेव पदं पाठान्तरेण सुदृष्टदीपभूतानामिति च, तथा 'छत्तीससहस्समणूणयाणं'ति अन्यूनकानि षट्त्रिंशत् सहस्राणि येषां तानि तथा, इह मकारोऽन्यथा पदनिपातश्च प्राकृतत्वादनवद्य इति, 'वागरणाणं'ति व्याक्रियन्ते–प्रश्नानन्तरमुत्तरतयाऽभिधीयन्ते निर्णायकेन यानि तानि व्याकरणानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	वियाह/(भगवती) अंगसूत्रस्य शा१त्रीयपरिचय:,

प्रत सूत्रांक [१४०]

प्रत अनुक्रम [२२१]

तेषां दर्शनात्–प्रकाशनादुपनिबन्धनादित्यर्थः, अथवा तेषा दर्शना–उपदर्शका इत्यर्थः, क इत्याह—'सुतत्थबहुविहप्पयारे'त्ति श्रुतविषया–अर्थाः श्रुतार्था अभिलाप्यार्थविशेषा इत्यर्थः श्रुता वा आकर्णिता जिनसकाशे गणधरेण ये अर्थास्ते श्रुतार्थाः, अथवा श्रुतमिति सूत्रं अर्था–निर्युक्त्यादय इति श्रुतार्थास्ते च ते बहुविधप्रकाराश्चेतिविग्रहः श्रुतार्थानां वा बहवो विधाः–प्रकारा इति विग्रहः, किमर्थं ते व्याख्यायन्त इत्याह–'शिष्यहितार्थाय' शिष्याणां हितं–अनर्थप्रतिघातार्थप्राप्तिरूपं तदेवार्थः प्रार्थ्यमानत्वात्तस्य तस्मै इति, किंभूतास्ते अत आह—गुणहत्था–गुण एवार्थप्राप्त्यादिलक्षणो हस्त इव हस्तः प्रधानावयवो येषां ते तथा (गुणमहत्था–गुणोत्सवार्थाः), 'वियाहस्से'त्यादि तु निगमनान्तं सूत्रसिद्धं, नवरं शतमिहाध्ययनस्य संज्ञा, चतुरशीतिः पदसहस्राणि पदाग्रेणेति समवायापेक्षया द्विगुणताया इहानाश्रयणादन्यथा तद्विगुणत्वे द्वे लक्षे अष्टाशीतिः सहस्राणि च भवन्तीति ॥ ५ ॥

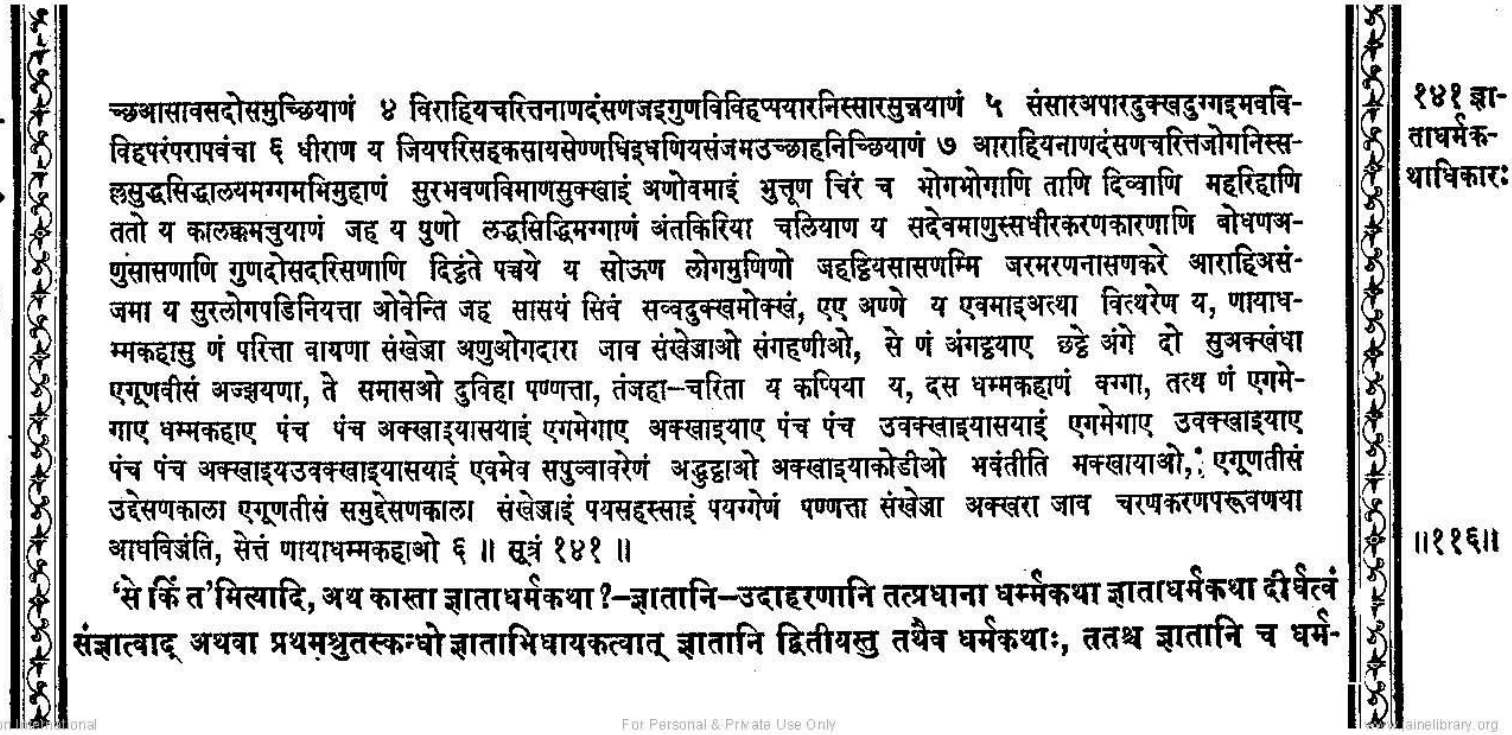
से किं तं णायाधम्मकहाओ ?, णायाधम्मकहासु णं णायाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइआइं वणखंडा रायाणो ५ अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइयपरलोइअइड्ढीविसेसा १० भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहातवोवहाणाइं परियागा १५ संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायायाइं २० पुणबोहिलाभा अंतकिरियाओ २२ य आघविज्जंतिजाव नायाधम्मकहासु णं पव्वइयाणं विणयकरणजिणसामिसासणवरे संजमपईण्णपालणधिइमइववसायदुब्बलाणं १ तवनियमतवोवहाणरणदुद्धरभरभग्गयणिस्सहयणिसिट्ठाणं २ घोरपरीसहपराजियाणं सहपारद्धरुद्धसिद्धालयमग्गनिग्गयाणं ३ विसयसुहतु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वियाह/(भगवती) अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,
ज्ञाताधर्मकथा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४१]

प्रत अनुक्रम [२२२]



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥११६॥

च्छआसावसदोसमुच्छियाणं ४ विराहियचरित्तनाणदंसणजइगुणविविहप्पयारनिस्सारसुन्नयाणं ५ संसारअपारदुक्खदुग्गइभवविविहपरंपरापवंचा ६ धीराण य जियपरिसहकसायसेण्णधिइधणियसंजमउच्छाहनिच्छियाणं ७ आराहियनाणदंसणचरित्तजोगनिस्सल्लसुद्धसिद्धालयमग्गमभिमुहाणं सुरभवणविमाणसुक्खाइं अणोवमाइं भुत्तूण चिरं च भोगभोगाणि ताणि दिव्वाणि महरिहाणि ततो य कालक्कमचुयाणं जह य पुणो लद्धसिद्धिमग्गाणं अंतकिरिया चलियाण य सदेवमाणुस्सधीरकरणकारणाणि बोधणअणुसासणाणि गुणदोसदरिसणाणि दिट्ठंते पच्चये य सोऊण लोगमुणिणो जहट्ठियसासणम्मि जरमरणनासणकरे आराहिअसंजमा य सुरलोगपडिनियत्ता ओवेन्ति जह सासयं सिवं सव्वदुक्खमोक्खं, एए अण्णे य एवमाइअत्था वित्थरेण य, णायाधम्मकहासु णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए छट्ठे अंगे दो सुअक्खंधा एगूणवीसं अज्झयणा, ते समासओ दुविहा पण्णत्ता, तंजहा–चरिता य कप्पिया य, दस धम्मकहाणं वग्गा, तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पंच पंच अक्खाइयासयाइं एगमेगाए अक्खाइयाए पंच पंच उवक्खाइयासयाइं एगमेगाए उवक्खाइयाए पंच पंच अक्खाइयउवक्खाइयासयाइं एवमेव सपुव्वावरेणं अद्धट्ठाओ अक्खाइयाकोडीओ भवंतीति मक्खायाओ, एगूणतीसं उद्देसणकाला एगूणतीसं समुद्देसणकाला संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता संखेज्जा अक्खरा जाव चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति, सेत्तं णायाधम्मकहाओ ६ ॥ सूत्रं १४१ ॥

'से किं त'मित्यादि, अथ कास्ता ज्ञाताधर्मकथा ?–ज्ञातानि–उदाहरणानि तत्प्रधाना धर्म्मकथा ज्ञाताधर्मकथा दीर्घत्वं संज्ञात्वाद् अथवा प्रथमश्रुतस्कन्धो ज्ञाताभिधायकत्वात् ज्ञातानि द्वितीयस्तु तथैव धर्मकथाः, ततश्च ज्ञातानि च धर्म-

१४१ ज्ञाताधर्मकथाधिकारः

॥११६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञाताधर्मकथा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

कथाश्च ज्ञाताधर्मकथाः, तत्र प्रथमं व्युत्पत्त्यर्थं सूत्रकारो दर्शयन्नाह—'नायाधम्मकहासु ण'मित्यादि, ज्ञाताना–उदाहरणभूतानां मेघकुमारादीनां नगरादीन्याख्यायन्ते, नगरादीनि द्वाविंशतिः पदानि कण्ठ्यानि च, नवरमुद्यानं–पत्रपुष्पफलच्छायोपगतवृक्षोपशोभितं विविधवेषोन्नतमानश्च बहुजनो यत्र भोजनार्थं यातीति, चैत्यं–व्यन्तरायतनं, वनखण्डोऽनेकजातीयैरुत्तमैर्वृक्षैरुपशोभित इति, 'आघविज्जंति' इह यावत्करणादन्यानि पंच पदानि दृश्यानि यावदयं सूत्रावयवो यथा 'नायाधम्मे'त्यादि, तत्र ज्ञाताधर्मकथासु णमित्यलङ्कारे प्रव्रजितानां, क्व ?–'विनयकरणजिनस्वामिशासनवरे' कर्म्मविनयकरे जिननाथसम्बन्धिनि शेषप्रवचनापेक्षया प्रधाने प्रवचने इत्यर्थः, पाठान्तरेण 'समणाणं विणयकरणजिणसासणंमि पवरे' किंभूतानां ?–संयमप्रतिज्ञा–संयमाभ्युपगमः सैव दुरधिगम्यत्वात् कातरनरक्षोभकत्वाद्गम्भीरत्वाच्च पातालमिव पातालं तत्र धृतमतिव्यवसाया दुर्लभा येषां ते तथा, पाठान्तरेण संयमप्रतिज्ञापालने ये धृतिमतिव्यवसायास्तेषु दुर्बला ये ते तथा तेषां, तत्र धृतिः–चित्तस्वास्थ्यं मतिः–बुद्धिर्व्यवसायः–अनुष्ठानोत्साह इति, तथा तपसि नियमः–अवश्यकरणं तपोनियमो नियन्त्रितं तपः स च तप उपधानं चानियन्त्रितं तप एव श्रुतोपचारः तपोनियमतपउपधाने ते एव रणश्च–कातरजनक्षोभकत्वात् सङ्ग्रामो 'दुद्धरभर'त्ति श्रमकारणत्वाद्दुर्द्धरभरश्च–दुर्वहलोहादिभारस्ताभ्यां भग्ना इति(एव)–भग्नकाः–पराङ्मुखीभूतास्तथा 'निस्सहगनिसट्ठाणं'ति निःसहा–नितरामशक्तास्त एव निःसहका निसृष्टाश्च–निसृष्टाङ्गा मुक्ताङ्गा ये ते तपोनियमतपउपधानरणदुर्धरभरभग्ननिःसहकनिसृष्टाः, पाठान्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञाताधर्मकथा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधितः मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१४१]

प्रत अनुक्रम [२२२]

रेण निःसहकनिविष्टास्तेषा, इह च प्राकृतत्वेन ककारलोपसन्धिकरणाभ्यां भग्ना इत्यादौ दीर्घत्वमवसेयं, तथा घोरपरीषहैः पराजिताश्चासहाश्च–असमर्थाः सन्तः प्रारब्धाश्च–परीषहैरेव वशीकर्त्तुं रुद्धाश्च मोक्षमार्गगमने ये ते घोरपरीषहपराजितासहप्रारब्धरुद्धाः अत एव सिद्धालयमार्गात्–ज्ञानादेर्निर्गताः–प्रतिपतिता ये ते तथा ते च ते चेति तेषां घोरपरीषहपराजितासहप्रारब्धरुद्धसिद्धालयमार्गनिर्गतानां, पाठान्तरेण घोरपरीषहपराजितानां तथा सहयुगपदेव परीषहैर्विशिष्टगुणश्रेणिमारोहन्तः प्ररुद्धरुद्धाः–अतिरुद्धाः सिद्धालयमार्गनिर्गताश्च ये ते तथा तेषां सहप्ररुद्धसिद्धालयमार्गनिर्गतानां, तथा विषयसुखेषु तुच्छेषु स्वरूपतः आशावशदोषेण–मनोरथपारतन्त्र्यवैगुण्येन मूर्च्छिता–अध्युपपन्ना ये ते तथा तेषां विषयसुखतुच्छाशावशदोषमूर्च्छितानां पाठान्तरेण विषयसुखे या महेच्छा कस्यांचिदवस्थायां या चावस्थान्तरे तुच्छाशा तयोर्वशः–पारतन्त्र्यं तल्लक्षणेन दोषेण मूर्च्छिता ये ते तथा तेषां विषयसुखमहेच्छातुच्छाशावशदोषमूर्च्छितानां, तथा विराधितानि चारित्रज्ञानदर्शनानि यैस्ते तथा, तथा यतिगुणेषु विविधप्रकारेषु मूलगुणोत्तरगुणरूपेषु निःसाराः–सारवर्जिताः पलञ्जिप्रायगुणधान्या इत्यर्थः, तथा तैरेव यतिगुणैः शून्यकाः सर्वथा अभावाद्ये ते तथेति, पदत्रयस्य च कर्म्मधारयोऽतस्तेषां विराधितचारित्रज्ञानदर्शनयतिगुणविविधप्रकारनिःसारशून्यकानां, किमत आह–संसारे–संसृतौ अपारदुःखा–अनन्तक्लेशा ये दुर्गतिषु–नारकतिर्यक्कुमानुषकुदेवत्वरूपासु भवा–भवग्रहणानि तेषां ये विविधाः परम्पराः–पारम्पर्याणि तासां ये प्रपञ्चास्ते संसारापारदुर्गतिभवविविधपरम्परा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञाताधर्मकथा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४१]

प्रत अनुक्रम [२२२]

प्रपञ्चाः, आख्यायन्ते इति पूर्वेण योगः, तथा धीराणां च-महासत्त्वानां, किंभूतानां ?–जितं परीषहकषायसैन्यं यैस्ते तथा, धृतेः–मनःस्वास्थ्यस्य धनिकाः–स्वामिनो धृतिधनिकाः, तथा संयमे उत्साहो–वीर्यं निश्चितः–अवश्यंभावी येषां(ते)संयमोत्साहनिश्चितास्ततः पदत्रयस्य कर्मधारयोऽतस्तेषां जितपरीषहकषायसैन्यधृतिधनिकसंयमोत्साहनिश्चितानां, तथा आराधिता ज्ञानदर्शनचारित्रयोगा यैस्ते तथा निःशल्यो–मिथ्यादर्शनादिशल्यरहितः शुद्धश्च–अतीचारविमुक्तो यः सिद्धालयस्य-सिद्धेर्यो(:)मार्गस्तस्याभिमुखा ये ते तथा ततः पदद्वयस्य कर्म्मधारयः अतस्तेषामाराधितज्ञानदर्शनचारित्रयोगनिःशल्यशुद्धसिद्धालयमार्गाभिमुखानां, किमत आह–सुरभवने-देवतयोत्पादे यानि विमानसौख्यानि तानि सुरभवनविमानसौख्यानि अनुपमानि ज्ञाताधर्मकथास्वाख्यायन्त इति प्रक्रमः, इह च भवनशब्देन भवनपतिभवनानि न व्याख्यातान्यविराधितसंयमप्रव्रजितप्रस्तावात्, ते हि भवनपतिषु नोत्पद्यन्त इति, तथा भुक्त्वा चिरं च भोगभोगान्–मनोज्ञशब्दादीन् तांस्तथाविधान् दिव्यान्-स्वर्गभवान् 'महार्हान्' महतः-आत्यन्तिकान् अर्हान्-प्रशस्ततया पूज्यानिति भावः, ततश्च–देवलोकात् कालक्रमच्युतानां यथा पुनर्लब्धसिद्धिमार्गाणां–मनुजगतावबोधज्ञानादीनामन्तक्रिया-मोक्षो भवति तथाऽऽख्यायन्त इति प्रक्रमः, तथा चलितानां च–कथञ्चित्कर्मवशतः परीषहादावधीरतया संयमप्रतिज्ञायाः प्रभ्रष्टानां सह देवैर्मानुषाः सदेवमानुषास्तेषां सम्बन्धीनि धीरकरणे–धीरत्वोत्पादने यानि कारणानि–ज्ञातानि तानि सदेवमानुषधीरकरणकारणानि आख्यायन्त इति प्रक्रमः, इयमत्र भावना–यथा आर्याषाढो देवेन धीरीकृतो यथा वा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञाताधर्मकथा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४१]

प्रत अनुक्रम [२२२]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥११८॥

मेघकुमारो भगवता शैलकाचार्यो वा पन्थकसाधुना धीरीकृतः एवं धीरकरणकारणानि तत्राख्यायंते, किंभूतानि तानीत्याह–'बोधनानुशासनानि' बोधनानि–मार्गभ्रष्टस्य मार्गस्थापनानि अनुशासनानि—दुःस्थस्य सुस्थतासम्पादनानि अथवा बोधनं-आमन्त्रणं तत्पूर्वकान्यनुशासनानि बोधनानुशासनानि, तथा गुणदोषदर्शनानि–संयमाराधनायां गुणा इतरत्र दोषा भवन्तीत्येवंदर्शनानि वाक्यान्याख्यायन्त इति योगः, तथा दृष्टान्तान् ज्ञातानि प्रत्ययांश्च बोधिकारणभूतानि वाक्यानि श्रुत्वा 'लोकमुनयः' शुकपरिव्राजकादयो 'यथा' येन प्रकारेण स्थिताः शासने जरामरणनाशनकरे जिनानां सम्बन्धिनीति भावः, तथाऽऽख्यायन्त इति योगः, तथा 'आराहितसञ्जम'त्ति एत एव लौकिकमुनयः संयमं वलिताश्च जिनप्रवचनं प्रपन्नाः पुनः परिपालितसंयमाश्च सुरलोकं गत्वा चैते सुरलोकप्रतिनिवृत्ता उपयान्ति यथा शाश्वतं–सदाभाविनं शिवं-अबाधाकं सर्वदुःखमोक्षं निर्वाणमित्यर्थः, एते चोक्तलक्षणाः अन्ये च 'एवमादिअत्थ'त्ति एवमादय आदिशब्दस्य प्रकारार्थत्वादेवंप्रकारा अर्थाः–पदार्थाः, 'वित्थरेण य'त्ति विस्तरेण चशब्दात् कचित्केचित् संक्षेपेण आख्यायन्त इति क्रियायोगः 'नायाधम्मकहासु ण'मित्यादि कण्ठ्यमानिगमनात्, नवरं 'एकूणवीसमज्झयण'त्ति प्रथमश्रुतस्कन्धे एकोनविंशतिर्द्वितीये च दशेति, तथा 'दस धम्मकहाणं वग्गा' इत्यादौ भावनेयं–इहैकोनविंशतिर्ज्ञाताध्ययनानि दार्ष्टान्तिकार्थज्ञापनलक्षणज्ञातप्रतिपादकत्वात्तानि प्रथमश्रुतस्कन्धे, द्वितीये त्वहिंसादिलक्षणधर्म्मस्य कथा धर्मकथा–आख्यानकानीत्युक्तं भवति, तासां च दश वर्गाः, वर्ग इति समूहः, तत-

१४१ ज्ञाताधर्मकथाधिकारः

॥११८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञाताधर्मकथा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४१]

प्रत अनुक्रम [२२२]

श्चार्थाधिकारसमूहात्मकान्यध्ययनान्येव दश वर्गा द्रष्टव्याः, तत्र ज्ञातेष्वादिमानि दश यानि तानि ज्ञातान्येव, न तेष्वाख्यायिकादिसम्भवः, शेषाणि नव ज्ञातानि, तेषु पुनरेकैकस्मिन् पञ्च पञ्च चत्वारिंशदधिकानि आख्यायिकाशतानि, तत्राप्येकैकस्यामाख्यायिकायां पञ्च पञ्चोपाख्यायिकाशतानि, तत्राप्येकैकस्यामुपाख्यायिकायां पञ्च पञ्चाख्यायिकोपाख्यायिकाशतानि, एवमेतानि संपिण्डितानि किं सञ्जातं ?–'इगवीसं कोडिसयं लक्खा पण्णासमेव बोद्धव्वा । १२१५०००००० । एवं ठिए समाणे अहिगयसुत्तस्स पत्थारो ॥ १ ॥' तद्यथा 'दस धम्मकहाणं वग्गा, तत्थ णं एगमेगाए धम्मकहाए पञ्च पञ्च अक्खाइयासयाइं एगमेगाए अक्खाइयाए पञ्च पञ्चउवक्खाइयासयाइं एगमेगाए उवक्खाइयाए पञ्च पञ्च अक्खाइउवक्खाइयासयाइं'ति, एवमेतानि सम्पिण्डितानि किं संजातं ?–'पणवीसं कोडिसयं १२५०००००००० एत्थ य समलक्खणाइया जम्हा । नवनाययसंबद्धा अक्खाइयमाइया तेणं ॥ १ ॥ ते सोहिज्जंति फुडं इमाउ रासीओ वेगलाणं तु । पुणरुत्तवज्जियाणं पमाणमेयं विणिद्दिट्ठं ॥२॥' शोधिते चैतस्मिन् सति अर्द्धचतुर्थाः एव कथानककोट्यो भवन्तीति, अत एवाह—'एवमेव सपुव्वावरेणं'ति भणितप्रकारेण गुणनशोधने कृते सतीत्युक्तं भवति 'अद्धट्ठाओ अक्खाइयाकोडीओ भवन्तीतिमक्खाओ'त्ति आख्यायिकाः–कथानकानि एता-एवमेतत्संख्या भवन्तीतिकृत्वा आख्याता भगवता महावीरेणेति, तथा संख्यातानि 'पदसयसहस्साणी'ति किल पञ्च लक्षाणि षट्सप्ततिश्च सहस्राणि पदाग्रेण अथवा सूत्रालापकपदाग्रेण संख्यातान्येव पदसहस्राणि भवन्तीत्येवं सर्वत्र भावयितव्यमिति ॥ ६ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञाताधर्मकथा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४२]

प्रत अनुक्रम [२२३]

से किं तं उवासगदसाओ ?, उवासगदसासु णं उवासयाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइआइं वणखंडा रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइयपरलोइयइड्ढिविसेसा उवासयाणं सीलव्वयवेरमणगुणपच्चक्खाणपोसहोववासपडिवज्जणयाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणा पडिमाओ उवसग्गा संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायाया पुणो बोहिलाभा अंतकिरियाओ आघविज्जंति, उवासगदसासु णं उवासयाणं रिद्धिविसेसा परिसा वित्थरधम्मसवणाणि बोहिलाभअभिगमसम्मत्तविसुद्धया थिरत्तं मूलगुणउत्तरगुणाइयारा ठिईविसेसा य बहुविसेसा पडिमाभिग्गहग्गहणपालणा उवसग्गाहियासणा णिरुवसग्गा य तवा य विचित्ता सीलव्वयगुणवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासा अपच्छिममारणंतिया य संलेहणाझोसणाहिं अप्पाणं जह य भावइत्ता बहूणि भत्ताणि अणसणाए य छेअइत्ता उववण्णा कप्पवरविमाणुत्तमेसु जह अणुभवंति सुरवरविमाणवरपोंडरीएसु सोक्खाइं अणोवमाइं कमेण भुत्तूण उत्तमाइं तओ आउक्खएणं चुया समाणा जह जिणमयम्मि बोहिं लद्धूण य संजमुत्तमं तमरयोघविप्पमुक्का उवेंति जह अक्खयं सव्वदुक्खमोक्खं, एते अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेण य, उवासयदसासु णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए सत्तमे अंगे एगे सुयक्खंधे दस अज्झयणा दस उद्देसणकाला दस समुद्देसणकाला संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं प० संखेज्जाइं अक्खराइं जाव एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति, सेत्तं उवासगदसाओ ७ ॥ सूत्रं १४२ ॥

'से किं त'मित्यादि अथ कास्ता उपासकदशाः ?, उपासकाः श्रावकास्तद्वक्तव्यताकलापप्रतिबद्धा दशाः—दशाध्ययनोपलक्षिता उपासकदशाः, तथा चाह—'उपासकदसासु णं' उपासकानां नगराणि उद्यानानि चैत्यानि वनखण्डा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उवासगदशा अंगसूत्रस्य शास्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४२]

प्रत अनुक्रम [२२३]

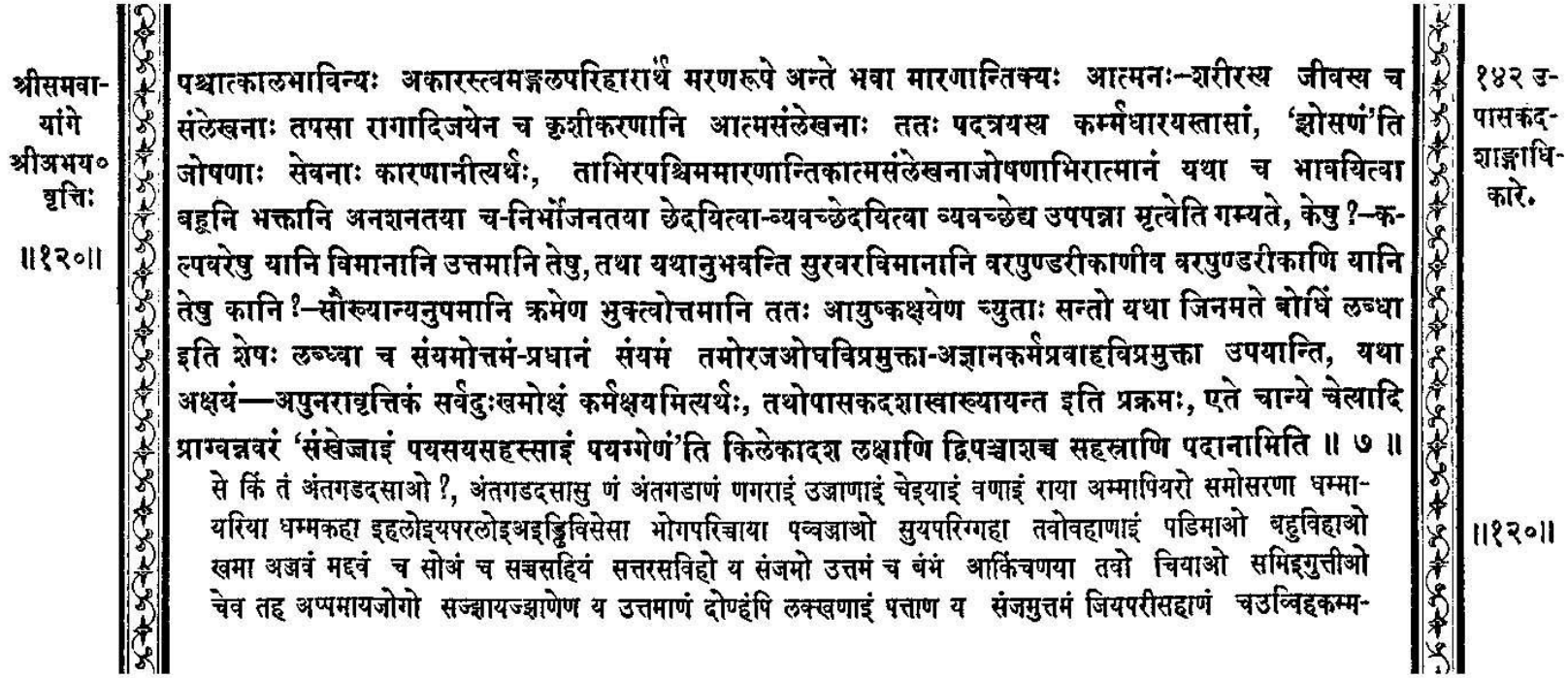
राजानः अम्बापितरौ समवसरणानि धर्माचार्यौ धर्मकथा ऐहलौकिकपारलौकिका ऋद्धिविशेषा उपासकाना च शीलव्रतविरमणगुणप्रत्याख्यानपौषधोपवासप्रतिपादनताः, तत्र शीलव्रतानि–अणुव्रतानि विरमणानि–रागादिविरतयः गुणा–गुणव्रतानि प्रत्याख्यानानि–नमस्कारसहितादीनि पौषधः–अष्टम्यादिपर्वदिनं तत्रोपवसनमाहारशरीरसत्कारादित्यागः पौषधोपवासः, ततो द्वन्द्वे सत्येतेषां प्रतिपादनताः–प्रतिपत्तय इति विग्रहः, श्रुतपरिग्रहास्तपउपधानानि प्रतीतानि 'पडिमाओ'त्ति एकादश उपासकप्रतिमाः कायोत्सर्गा वा उपसर्गा–देवादिकृतोपद्रवाः संलेखनाभक्तपानप्रत्याख्यानानि, पादपोपगमनानि देवलोकगमनानि सुकुलप्रत्यायातिः पुनर्बोधिलाभोऽन्तक्रिया चाख्यायन्ते पूर्वोक्तमेवेतो विशेषत आह—'उवासगे'त्यादि, तत्र ऋद्धिविशेषा–अनेककोटीसंख्याद्रव्यादिसम्पद्विशेषाः तथा परिषदः–परिवारविशेषा यथा मातापितृपुत्रादिका अभ्यन्तरपरिषत् दासीदासमित्रादिका बाह्यपरिषदिति, विस्तरधर्मश्रवणानि महावीरसन्निधौ, ततो बोधिलाभोऽभिगमः–सम्यक्त्वस्य विशुद्धता स्थिरत्वं–सम्यक्त्वशुद्धिरेव मुलगूणोत्तरगुणा–अणुव्रतादयः अतिचारास्तेषामेव–वधबन्धादितः खण्डनानि स्थितिविशेषाश्च–उपासकपर्यायस्य कालमानभेदाश्च बहुविशेषाः प्रतिमाः–प्रभूतभेदाः सम्यग्दर्शनादिप्रतिमाः अभिग्रहग्रहणानि तेषामेव च पालनानि उपसर्गाधिसहनानि निरुपसर्गश्च–उपसर्गाभावश्चेत्यर्थः, तपांसि च विचित्राणि शीलव्रतादयोऽनन्तरोक्तरूपा अपश्चिमाः–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उवासगदशा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४२]

प्रत अनुक्रम [२२३]



श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥१२०॥

पश्चात्कालभाविन्यः अकारस्त्वमङ्गलपरिहारार्थं मरणरूपे अन्ते भवा मारणान्तिक्यः आत्मनः–शरीरस्य जीवस्य च संलेखनाः तपसा रागादिजयेन च कृशीकरणानि आत्मसंलेखनाः ततः पदत्रयस्य कर्म्मधारयस्तासां, 'झोसणं'ति जोषणाः सेवनाः कारणानीत्यर्थः, ताभिरपश्चिममारणान्तिकात्मसंलेखनाजोषणाभिरात्मानं यथा च भावयित्वा बहूनि भक्तानि अनशनतया च-निर्भोजनतया छेदयित्वा-व्यवच्छेदयित्वा व्यवच्छेद्य उपपन्ना मृत्वेति गम्यते, केषु ?–कल्पवरेषु यानि विमानानि उत्तमानि तेषु, तथा यथानुभवन्ति सुरवरविमानानि वरपुण्डरीकाणीव वरपुण्डरीकाणि यानि तेषु कानि ?–सौख्यान्यनुपमानि क्रमेण भुक्त्वोत्तमानि ततः आयुष्कक्षयेण च्युताः सन्तो यथा जिनमते बोधिं लब्धा इति शेषः लब्ध्वा च संयमोत्तमं-प्रधानं संयमं तमोरजओघविप्रमुक्ता-अज्ञानकर्मप्रवाहविप्रमुक्ता उपयान्ति, यथा अक्षयं—अपुनरावृत्तिकं सर्वदुःखमोक्षं कर्मक्षयमित्यर्थः, तथोपासकदशास्वाख्यायन्त इति प्रक्रमः, एते चान्ये चेत्यादि प्राग्वन्नवरं 'संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं'ति किलेकादश लक्षाणि द्विपञ्चाशच्च सहस्राणि पदानामिति ॥ ७ ॥

से किं तं अंतगडदसाओ ?, अंतगडदसासु णं अंतगडाणं णगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणाइं राया अम्मापियरो समोसरणा धम्मायरिया धम्मकहा इहलोइयपरलोइअइड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं पडिमाओ बहुविहाओ खमा अज्जवं मद्दवं च सोअं च सच्चसहियं सत्तरसविहो य संजमो उत्तमं च बंभं आकिंचणया तवो चियाओ समिइगुत्तीओ चेव तह अप्पमायजोगो सज्झायज्झाणेण य उत्तमाणं दोण्हंपि लक्खणाइं पत्ताण य संजमुत्तमं जियपरीसहाणं चउव्विहकम्म-

१४२ उपासकदशाङ्गाधिकारे.

॥१२०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उवासगदशा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचय:,
अंतकृतदशा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचय:,

प्रत सूत्रांक [१४३]

प्रत अनुक्रम [२२४]

क्खयम्मि जह केवलस्स लंभो परियाओ जत्तिओ य जह पालिओ मुणिहिं पायोवगओ य जो जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता अंतगडो मुनिवरो तमरयोघविप्पमुक्को मोक्खसुहमणंतरं च पत्ता एए अन्ने य एवमाइअत्था वित्थारेणं परूवेई, अंतगडदसासु णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ, जाव से णं अंगट्ठयाए अट्ठमे अंगे एगे सुयक्खंधे दस अज्झयणा सत्त वग्गा दस उद्देसणकाला दस समुद्देसणकाला संखेज्जाइं पयसहस्साइं पयग्गेणं पण्णत्ता संखेज्जा अक्खरा जाव एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति, सेत्तं अंतगडदसाओ ॥ ८ ॥ (सूत्रं १४३)

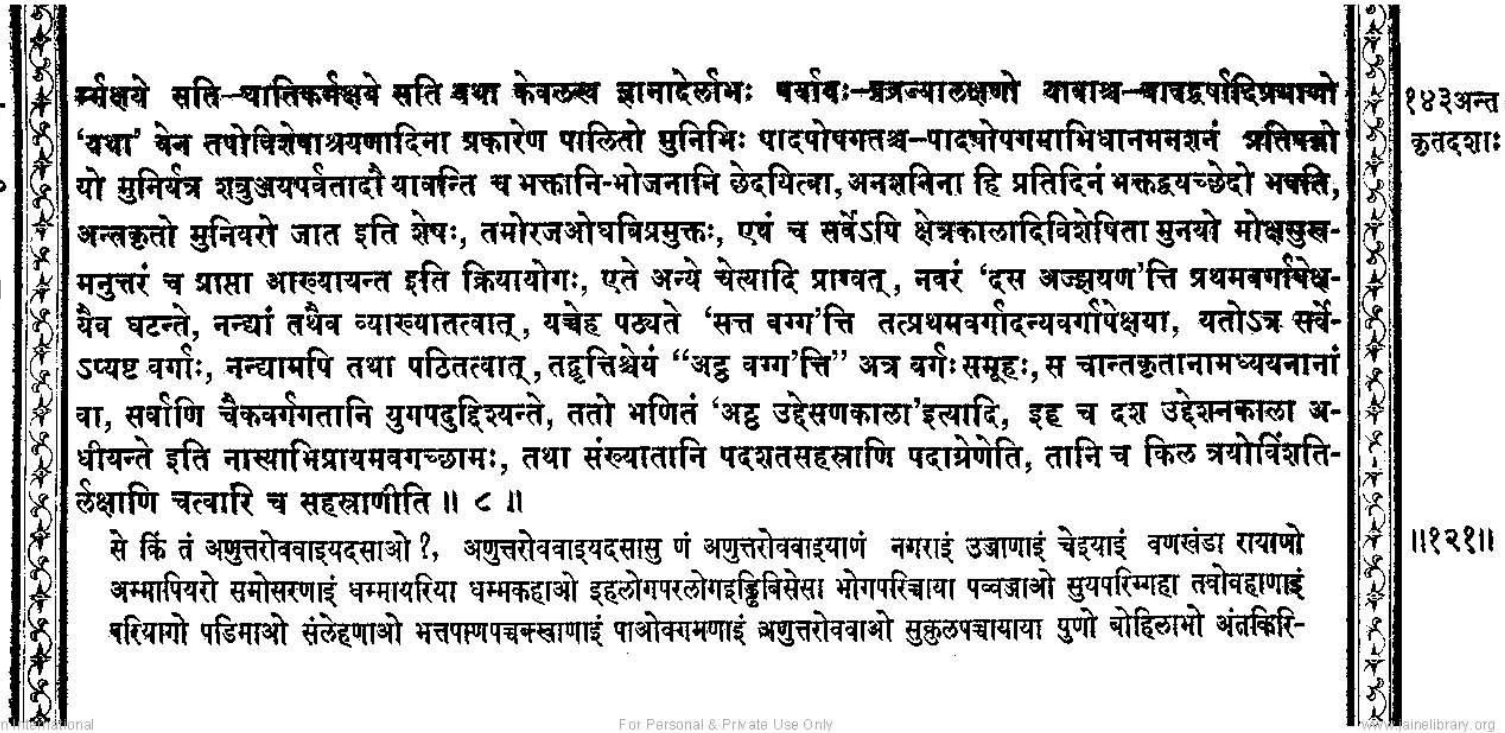
'से किं त'मित्यादि, अथ कास्ता अन्तकृद्दशाः ?, तत्रान्तो-विनाशः, स च कर्म्मणस्तत्फलस्य वा संसारस्य कृतो यैस्ते अन्तकृतास्ते च तीर्थकरादयस्तेषा दशाः–प्रथमवर्गे दशाध्ययनानीति तत्संख्यया अन्तकृतदशाः, तथा चाह— 'अंतगडदसासु ण'मित्यादि कण्ठ्यं, नवरं नगरादीनि चतुर्दश पदानि षष्ठाङ्गवर्णकाभिहितान्येव, तथा 'पडिमाओ'त्ति द्वादश भिक्षुप्रतिमा मासिक्यादयो बहुविधाः तथा क्षमा मार्दवं आर्जवं च शौचं च सत्यसहितं, तत्र शौचं–परद्रव्यापहारमालिन्याभावलक्षणं सप्तदशविधश्च संयम उत्तमं च ब्रह्म-मैथुनविरतिरूपं 'आकिंचणिय'त्ति आकिञ्चन्यं तपस्त्याग इति–आगमोक्तं दानं समितयो गुप्तयश्चैव तथा अप्रमादयोगः स्वाध्यायध्यानयोश्च उत्तमयोर्द्वयोरपि लक्षणानि–स्वरूपाणि, तत्र स्वाध्यायस्य लक्षणं 'सज्झाएण पसत्थं झाण'मित्यादि, ध्यानलक्षणं यथा–"अंतोमुहुत्तमित्तं चित्तावत्थाणमेगवत्थुंमी"त्यादि, व्याख्यायन्त इति सर्वत्र योगः, तथा प्राप्तानां च संयमोत्तमं–सर्वविरतिं जितपरीषहाणां चतुर्विधक-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतकृतदशा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४३]

प्रत अनुक्रम [२२४]



श्रीसमवा-यांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥१२१॥

१४३अन्त-कृतदशाः

र्म्मक्षये सति–घातिकर्मक्षये सति यथा केवलस्य ज्ञानादेर्लाभः पर्यायः–प्रव्रज्यालक्षणो यावांश्च–यावद्वर्षादिप्रमाणो 'यथा' येन तपोविशेषाश्रयणादिना प्रकारेण पालितो मुनिभिः पादपोपगतश्च–पादपोपगमाभिधानमनशनं प्रतिपन्नो यो मुनिर्यत्र शत्रुञ्जयपर्वतादौ यावन्ति च भक्तानि-भोजनानि छेदयित्वा, अनशनेन हि प्रतिदिनं भक्तद्वयच्छेदो भवति, अन्तकृतो मुनिवरो जात इति शेषः, तमोरजओघविप्रमुक्तः, एवं च सर्वेऽपि क्षेत्रकालादिविशेषिता मुनयो मोक्षसुख-मनुत्तरं च प्राप्ता आख्यायन्त इति क्रियायोगः, एते अन्ये चेत्यादि प्राग्वत्, नवरं 'दस अज्झयण'त्ति प्रथमवर्गापेक्ष-यैव घटन्ते, नन्द्यां तथैव व्याख्यातत्वात्, यच्चेह पठ्यते 'सत्त वग्ग'त्ति तत्प्रथमवर्गादन्यवर्गापेक्षया, यतोऽत्र सर्वे-ऽप्यष्ट वर्गाः, नन्द्यामपि तथा पठितत्वात्, तद्वृत्तिश्चेयं "अट्ठ वग्ग'त्ति" अत्र वर्गः समूहः, स चान्तकृतानामध्ययनानां वा, सर्वाणि चैकवर्गगतानि युगपदुद्दिश्यन्ते, ततो भणितं 'अट्ठ उद्देसणकाला'इत्यादि, इह च दश उद्देशनकाला अ-धीयन्ते इति नास्माभिप्रायमवगच्छामः, तथा संख्यातानि पदशतसहस्राणि पदाग्रेणेति, तानि च किल त्रयोविंशति-र्लक्षाणि चत्वारि च सहस्राणीति ॥ ८ ॥

से किं तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ?, अणुत्तरोववाइयदसासु णं अणुत्तरोववाइयाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणखंडा रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोगपरलोगइड्ढिविसेसा भोगपरिच्चाया पव्वज्जाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं परियागो पडिमाओ संलेहणाओ भत्तपाणपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं अणुत्तरोववाओ सुकुलपच्चायाया पुणो बोहिलाभो अंतकिरि-

॥१२१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतकृतदशा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचय:,
अनुत्तरोपपातिकदशा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचय:,

प्रत सूत्रांक [१४४]

प्रत अनुक्रम [२२५]

याओ य आघविज्जंति, अणुत्तरोववाइयदसासु णं तित्थकरसमोसरणाइं परमंगल्लजगहियाणि जिणातिसेसा य बहुविसेसा जिण-सीसाणं चेव समणगणपवरगंधहत्थीणं थिरजसाणं परिसहसेण्णरिउबलपमद्दणाणं तवदित्तचरित्तणाणसम्मत्तसारविविहप्पगारवित्थरपसत्थगुणसंजुयाणं अणगारमहरिसीणं अणगारगुणाण वण्णओ उत्तमवरतवविसिट्ठणाणजोगजुत्ताणं जह य जगहियं भगवओ जारिसा इड्ढिविसेसा देवासुरमाणुसाणं परिसाणं पाउब्भावा य जिणसमीवं जह य उवासंति जिणवरं जह य परिकहंति धम्मं लोग-गुरू अमरनरसुरगणाणं सोऊण य तस्स भासियं अवसेसकम्मविसयविरत्ता नरा जहा अब्भुवेंति धम्ममुरालं संजमं तवं चावि बहु-विहप्पगारं जह बहूणि वासाणि अणुचरित्ता आराहियनाणदंसणचरित्तजोगा जिणवयणमणुगयमहियं भासित्ता जिणवराण हिययेण-मणुण्णेत्ता जे य जहिं जत्तियाणि भत्ताणि छेअइत्ता लद्धूण य समाहिमुत्तमज्झाणजोगजुत्ता उववन्ना मुणिवरोत्तमा जह अणुत्तरेसु पावंति जह अणुत्तरं तत्थ विसयसोक्खं तओ य चुआ कमेण काहिंति संजया जहा य अंतकिरियं एए अन्ने य एवमाइअत्था वित्थरेण, अणुत्तरोववाइयदसासु णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए नवमे अंगे एगे सुयक्खंधे दस अज्झयणा तिन्नि वग्गा दस उद्देसणकाला दस समुद्देसणकाला संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं प०, संखे-ज्जाणि अक्खराणि जाव एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति, सेत्तं अणुत्तरोववाइयदसाओ ॥ ९ ॥ (सूत्रं १४४)

'से किं त'मित्यादि, नास्मादुत्तरो विद्यते इत्यनुत्तर उपपतनमुपपातो जन्मेत्यर्थः अनुत्तरः–प्रधानः संसारे अन्यस्य तथाविधस्याभावादुपपातो येषां ते तथा त एवानुत्तरोपपातिकाः, तद्वक्तव्यताप्रतिबद्धा दशा–दशाध्ययनोपलक्षिता अनुत्तरोपपातिकदशाः, तथा चाह—'अणुत्तरोववाइयदसासु ण'मित्यादि, तत्रानुत्तरोपपातिकानामिति–साधूनां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुत्तरोपपातिकदशा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

नगरादीनि द्वाविंशतिः पदानि ज्ञाताधर्मकथावर्णकोक्तानि यथा तथा (ज्ञेयानि), एतेषामेव च प्रपञ्चं रचयन्नाह— अनुत्तरोपपातिकदशासु तीर्थकरसमवसरणानि, किम्भूतानि ?–परममाङ्गल्यत्वेन जगद्धितानि परममाङ्गल्यजगद्धितानि जिनातिशेषाश्च–बहुविशेषा 'देहं विमलसुयंध'मित्यादयश्चतुस्त्रिंशदधिकतरा वा तथा जिनशिष्याणां चैव–गणधरादीनां, किम्भूतानामत आह—श्रमणगणप्रवरगन्धहस्तिनां–श्रमणोत्तमानामित्यर्थः, तथा स्थिरयशसां तथा परीषहसैन्यमेव–परीषहवृन्दमेव रिपुबलं–परचक्रं तत्प्रमर्दनानां, तथा दववद्–दावाग्निरिव दीप्तानि–उज्ज्वलानि पाठान्तरेण तपोदीप्तानि यानि चारित्रज्ञानसम्यक्त्वानि तैः साराः–सफलाः विविधप्रकारविस्तारा–अनेकविधप्रपञ्चाः प्रशस्ताश्च ये क्षमादयो गुणास्तैः संयुतानां, क्वचिद्गुणध्वजानामिति पाठः, तथा अनगाराश्च ते महर्षयश्चेत्यनगारमहर्षयस्तेषामनगारगुणानां वर्णकः–श्लाघा आख्यायन्त इति योगः, पुनः किम्भूतानां जिनशिष्याणा ?–उत्तमाश्च ते जात्यादिभिर्वरतपसश्च ते विशिष्टज्ञानयोगयुक्ताश्चेत्यतस्तेषामुत्तमवरतपोविशिष्टज्ञानयोगयुक्तानां, किञ्चापरं ?, यथा च जगद्धितं भगवत इत्यत्र जिनस्य शासनमिति गम्यते, यादृशाश्च ऋद्धिविशेषा देवासुरमानुषाणां रत्नोज्ज्वललक्षयोजनमानविमानरचनं सामानिकाद्यनेकदेवदेवीकोटिसमवायनं मणिखण्डमण्डितदण्डपटुप्रचलत्पताकिकाशतोपशोभितमहाध्वजपुरःप्रवर्त्तनं विविधातोद्यनादगगनाभोगपूरणं चैवमादिलक्षणाः प्रतिकल्पितगन्धसिन्धुरस्कन्धारोहणं चतुरङ्गसैन्यपरिवारणं छत्रचामरमहाध्वजादिमहाराजचिह्नप्रकाशनं च एवमादयश्च सम्पद्विशेषाः समवसरणगमनप्रवृत्तानां वैमानिकज्योतिष्काणा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुत्तरोपपातिकदशा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचय:,

प्रत सूत्रांक [१४४]

प्रत अनुक्रम [२२५]

भवनपतिव्यन्तराणां राजादिमनुजानां च अथवा अनुत्तरोपपातिकसाधूनां ऋद्धिविशेषा देवादिसम्बन्धिनस्तादृशा आख्यायन्त इति क्रियायोगः, तथा पर्षदां च 'संजयवेमाणित्थी संजइ पुव्वेण पविसिउं वीर'मित्यादिनोक्तस्वरूपाणां प्रादुर्भावाश्च–आगमनानि, क ?–'जिणसमीवं'ति जिनसमीपे यथा–येन च प्रकारेण पञ्चविधाभिगमादिना उपासते–सेवन्ते राजादयो जिनवरं तथाऽऽख्यायत इति योगः, यथा च परिकथयति धर्म्मं लोकगुरुरिति–जिनवरोऽमरनरासुरगणानां, श्रुत्वा च तस्येति–जिनवरस्य भाषितं अवशेषाणि क्षीणप्रायाणि कर्म्माणि येषा ते तथा ते च ते विषयविरक्ताश्चेति अवशेषकर्मविषयविरक्ताः, के ?–नराः, किं ?–यथा अभ्युपयन्ति धर्म्ममुदारं, किंस्वरूपमत आह—संयमं तपश्चापि, किम्भूतमित्याह—बहुविधप्रकारं, तथा यथा बहूनि वर्षाणि 'अणुचरित्त'त्ति अनुचर्य आसेव्य संयमं तपश्चेति वर्त्तते, तत आराधितज्ञानदर्शनचारित्रयोगास्तथा 'जिणवयणमणुगयमहियभासिय'त्ति जिनवचनं–आचारादि अनुगतं–सम्बद्धं नार्दवितर्दमित्यर्थः महितं–पूजितमधिकं वा भाषितं यैरध्यापनादिना ते तथा, पाठान्तरे जिनवचनमनुगत्या–आनुकूल्येन सुष्ठु भाषितं यैस्ते जिनवचनानुगतिसुभाषिताः, तथा 'जिणवराण हियएणमणुण्णेत्त'त्ति इति षष्ठी द्वितीयार्थे तेन जिनवरान् हृदयेन–मनसा अनुनीय–प्राप्य ध्यात्वेतियावत्, ये च यत्र यावन्ति च भक्तानि छेदयित्वा लब्ध्वा च समाधिमुत्तमं ध्यानयोगयुक्ताः उपपन्ना मुनिवरोत्तमा यथा अनुत्तरेषु तथा आख्यायन्त इति प्रक्रमः, तथा प्राप्नुवन्ति यथाऽनुत्तरं 'तत्थ'त्ति अनुत्तरविमानेषु विषयसुखं तथाऽऽख्यायन्ते इति योगः, 'तत्तो य'त्ति अनुत्त-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुत्तरोपपातिकदशा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४४]

प्रत अनुक्रम [२२५]

रविमानेभ्यश्च्युताः क्रमेण करिष्यन्ति संवसा यथा चान्तक्रियां ते तथाऽऽख्यायन्ते अनुत्तरोपपातिकदशास्विति प्रकृतं,एते चान्ये चेत्यादि पूर्ववत्, नवरं 'दस अज्झयणा तिन्नि वग्ग'त्ति, इहाध्ययनसमूहो वर्गो, वर्गे दशाध्ययनानि, वर्गश्च युगपदेवोद्दिश्यते इत्यतस्त्रय एवोद्देशनकाला भवन्तीत्येवमेव च नन्द्यामभिधीयन्ते, इह तु दृश्यन्ते दशेत्यत्राभिप्रायो न ज्ञायत इति, तथा संख्यातानि 'पदसयसहस्साइं पयग्गेणं'ति किल षट्चत्वारिंशल्लक्षाण्यष्टौ च सहस्राणि॥९॥

से किं तं पण्हावागरणाणि ?, पण्हावागरणेसु अट्ठुत्तरं पसिणसयं अट्ठुत्तरं अपसिणसयं अट्ठुत्तरं पसिणापसिणसयं विज्जाइसया नागसुवन्नेहिं सद्धिं दिव्वा संवाया आघविज्जंति, पण्हावागरणदसासु णं ससमयपरसमयपण्णवयपत्तेअबुद्धविविहत्थभासाभासियाणं अइसयगुणउवसमणाणप्पगारआयरियभासियाणं वित्थरेणं वीरमहेसीहिं विविहवित्थरभासियाणं च जगहियाणं अद्दागंगुट्ठबाहुअसिमणिखोमआइच्चभासियाणं विविहमहापसिणविज्जामणपसिणविज्जादेवयपयोगपहाणगुणप्पगासियाणं सब्भूयदुगुणप्पभावनरगणमइविम्हयकराणं अईसयमईयकालसमयदमसमतित्थकरुत्तमस्स ठिइकरणकारणाणं दुरहिगमदुरवगाहस्स सव्वसव्वन्नुसम्मअस्स अबुहजणविबोहणकरस्स पच्चक्खयपच्चयकराणं पण्हाणं विविहगुणमहत्था जिणवरप्पणीया आघविज्जंति, पण्हावागरणेसु णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए दसमे अंगे एगे सुयक्खंधे पणयालीसं उद्देसणकाला पणयालीसं समुद्देसणकाला संखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेणं प०, संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा जाव चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति, सेत्तं पण्हावागरणाइं ॥ १० ॥ (सूत्रं १४५)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुत्तरोपपातिकदशा अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,
प्रश्नव्याकरण अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४५]

प्रत अनुक्रम [२२६]

'से किं त'मित्यादि, प्रश्नः–प्रतीतस्तन्निर्वचनं–व्याकरणं प्रश्नानां च व्याकरणानां च योगात्प्रश्नव्याकरणानि तेषु 'अङ्गुत्तरं पसिणसयं' तत्राङ्गुष्ठबाहुप्रश्नादिका मन्त्रविद्याः प्रश्ना या पुनर्विद्या मन्त्रविधिना जप्यमाना अपृष्टा एव शुभाशुभं कथयन्ति एताः अप्रश्नाः तथाऽङ्गुष्ठादिप्रश्नभावं तदभावं च प्रतीत्य या विद्याः शुभाशुभं कथयन्ति ताः प्रश्नाप्रश्नाः 'विज्जाइसय'त्ति तथा अन्ये विद्यातिशयाः स्तम्भस्तोभवशीकरणविद्वेषीकरणोच्चाटनादयः नागसुपर्णैश्च सह-भवनपतिविशेषैरुपलक्षणत्वाद्यक्षादिभिश्च सह साधकस्येति गम्यते दिव्याः–तात्त्विकाः संवादाः–शुभाशुभगताः संलापाः आख्यायन्ते, एतदेव प्रायः प्रपञ्चयन्नाह—'पण्हाचामरणदसे'त्यादि, स्वसमयपरसमयप्रज्ञापका ये प्रत्येकबुद्धास्तैः कर-कण्डादिसदृशैर्विविधार्था यका भाषा गम्भीरेत्यर्थः तया भाषिताः–गदिताः स्वसमयपरसमयप्रज्ञापकप्रत्येकबुद्धविविधार्थभाषाभाषितास्तासां, किम् ?–आदर्शाङ्गुष्ठादीनां सम्बन्धिनां प्रश्नानां विविधगुणमहार्थाः प्रश्नव्याकरणदशास्वाख्यायन्त इति योगः, पुनः किम्भूतानां प्रश्नानां ?–'अइसयगुणउवसमनाणप्पगारआयरियभासियाणं'ति अतिशयाश्च–आमर्षौषध्यादयो गुणाश्च–ज्ञानादय उपशमश्च–स्वपरभेदः एते नानाप्रकारा येषां ते तथा ते च ते आचार्याश्च तैर्भाषिता यास्तास्तथा तासां, कथं भाषितानामित्याह–'वित्थरेणं'ति विस्तरेण–महता वचनसन्दर्भेण तथा स्थिरमहर्षिभिः पाठान्तरे वीरमहर्षिभिः 'विविहवित्थरभासियाणं च'त्ति विविधविस्तरेण भाषितानां च, चकारस्तृतीयप्रणायकभेदसमुच्चयार्थः, पुनः कथंभूतानां प्रश्नानां ?–'जगहियाणं'ति जगद्धितानां पुरुषार्थोपयोगित्वात्, किंसम्बन्धिनीत्याशङ्क्याह–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नव्याकरण अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

'अद्दाग'त्ति आदर्शश्चाङ्गुष्ठश्च बाहू च असिश्च मणिश्च क्षौमं च–वस्त्रं आदित्यश्चेति द्वन्द्वस्ते आदिर्येषां कुड्यशङ्खघंटा–दीनां ते तथा तेषां सम्बन्धिनीनां, प्रश्नविद्याभिरादर्शकादीनामावेशनात्, किंभूतानां प्रश्नानामत आह—विविध-महाप्रश्नविद्याश्च–वाचैव प्रश्ने सत्युत्तरदायिन्यः मनःप्रश्नविद्याश्च–मनःप्रश्नितार्थोत्तरदायिन्यस्तासां दैवतानि–तदधि-ष्ठातृदेवतास्तेषां प्रयोगप्राधान्येन–तद्व्यापारप्रधानतया गुणं–विविधार्थसंवादनलक्षणं प्रकाशयन्ति–लोके व्यञ्जयन्ति यास्ता विविधमहाप्रश्नविद्यामनःप्रश्नविद्यादैवतप्रयोगप्राधान्यगुणप्रकाशिकास्तासां, पुनः किंभूतानां प्रश्नानां ?–सद्भूतेन–तात्त्विकेन द्विगुणेन पुनः उपलक्षणत्वाल्लौकिकप्रश्नविद्याप्रभावापेक्षया बहुगुणेन पाठान्तरे विविधगुणेन प्रभावेन–माहा-त्म्येन नरगणमतेः–मनुजसमुदयबुद्धेर्विस्मयकार्य्यः–चमत्कारहेतवो याः प्रश्नास्ताः सद्भूतद्विगुणप्रभावनरगणमतिवि-स्मयकार्यस्तासां, पुनः किंभूतानां तासां ?–'अतिसयमतीतकालसमये'ति अतिशयेन योऽतीतः कालः समयः स तथा तत्र, अतिव्यवहिते काले इत्यर्थः, दमः–शमस्तत्प्रधानः तीर्थकराणां–दर्शनान्तरशास्तृणामुत्तमो यः स तथा भगवान्–जिनस्तस्य दमतीर्थकरोत्तमस्य स्थितिकरणं–स्थापनं, आसीद् अतीतकाले सातिशयज्ञानादिगुणयुक्तः सकल-प्रणायकशिरःशेखरकल्पः पुरुषविशेषः एवंविधप्रश्नानामन्यथानुपपत्तेरित्येवंरूपं, तस्य प्रतिष्ठापनस्य कारणानि–हे-तवो यास्तास्तथा तासां, पुनस्ता एव विशिनष्टि–दुरभिगमं–दुःखबोधं गम्भीरं सूक्ष्मार्थत्वेन दुरवगाहं च—दुःखाध्येयं सूत्रबहुत्वाद्यत्तस्य सर्वेषां सर्वज्ञानां सम्मतं–इष्टं सर्वसर्वज्ञसम्मतं अथवा सर्वं च तत्सर्वज्ञसम्मतं चेति सर्वसर्वज्ञसम्मतं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नव्याकरण अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचय:,

प्रत सूत्रांक [१४५]

प्रत अनुक्रम [२२६]

प्रवचनतत्त्वमित्यर्थः, तस्य अबुधजनविबोधनकरस्य एकान्तहितस्येति भावः 'पच्चक्खयपच्चयकराणं'ति प्रत्यक्षकेन—ज्ञानेन साक्षादित्यर्थो यः प्रत्ययः—सर्वातिशयनिधानमतीन्द्रियार्थोपदर्शनाव्यभिचारि चेदं जिनप्रवचनमित्येवंरूपा प्रतिपत्तिः अथवा प्रत्यक्षेणेवानेनार्थाः प्रतीयन्त इति प्रत्यक्षमिवेदमित्येवं प्रत्ययः प्रत्यक्षकप्रत्ययस्तत्करणशीलाः—प्रत्यक्षकप्रत्ययकार्यः प्रत्यक्षताप्रत्ययकार्यो वा तासां प्रत्यक्षकप्रत्ययकारीणां प्रत्यक्षताप्रत्ययकारीणां वा, कासामित्याह—प्रश्नानां—प्रश्नविद्यानां उपलक्षणत्वादन्यासां च यासामष्टोत्तरशतान्यादौ प्रतिपादितानि, विविधगुणा—बहुविधप्रभावास्ते च ते महार्थाश्च—महान्तोऽभिधेयाः—पदार्थाः शुभाशुभसूचनादयो विविधगुणमहार्थाः, किंभूता ?—जिनवरप्रणीताः, किमित्याह—'आघविज्जंति'त्ति आख्यायन्ते शेषं पूर्ववत्, नवरं 'पणयालीस'मित्यादि यद्यपीहाध्ययनानां दशत्वाद्दशैवोद्देशनकाला भवन्ति तथापि वाचनान्तरापेक्षया पञ्चचत्वारिंशदिति सम्भाव्यते इति 'पणयालीस'मित्याद्यविरुद्धमिति, 'संखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेणं'ति तानि च किल द्विनवतिर्लक्षाणि षोडश च सहस्राणीति ॥ १० ॥

से किं तं विवागसुयं ?, विवागसुए णं सुक्कडदुक्कडाणं कम्माणं फलविवागे आघविज्जंति, से समासओ दुविहे पण्णत्ते, तंजहा—दुहविवागे चेव सुहविवागे चेव, तत्थ णं दस दुहविवागाणि दस सुहविवागाणि, से किं तं दुहविवागाणि ?, दुहविवागेसु णं दुहविवागाणं नगराइं उज्जाणाइं चेइयाइं वणखंडा रायाणो अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ नगरगमणाइं संसारपबंधे दुहपरंपराओ य आघविज्जंति, सेत्तं दुहविवागाणि । से किं तं सुहविवागाणि ?, सुहविवागेसु सुहविवागाणं णगराइं उज्जाणाइं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्नव्याकरण अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,
विपाकश्रुत अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

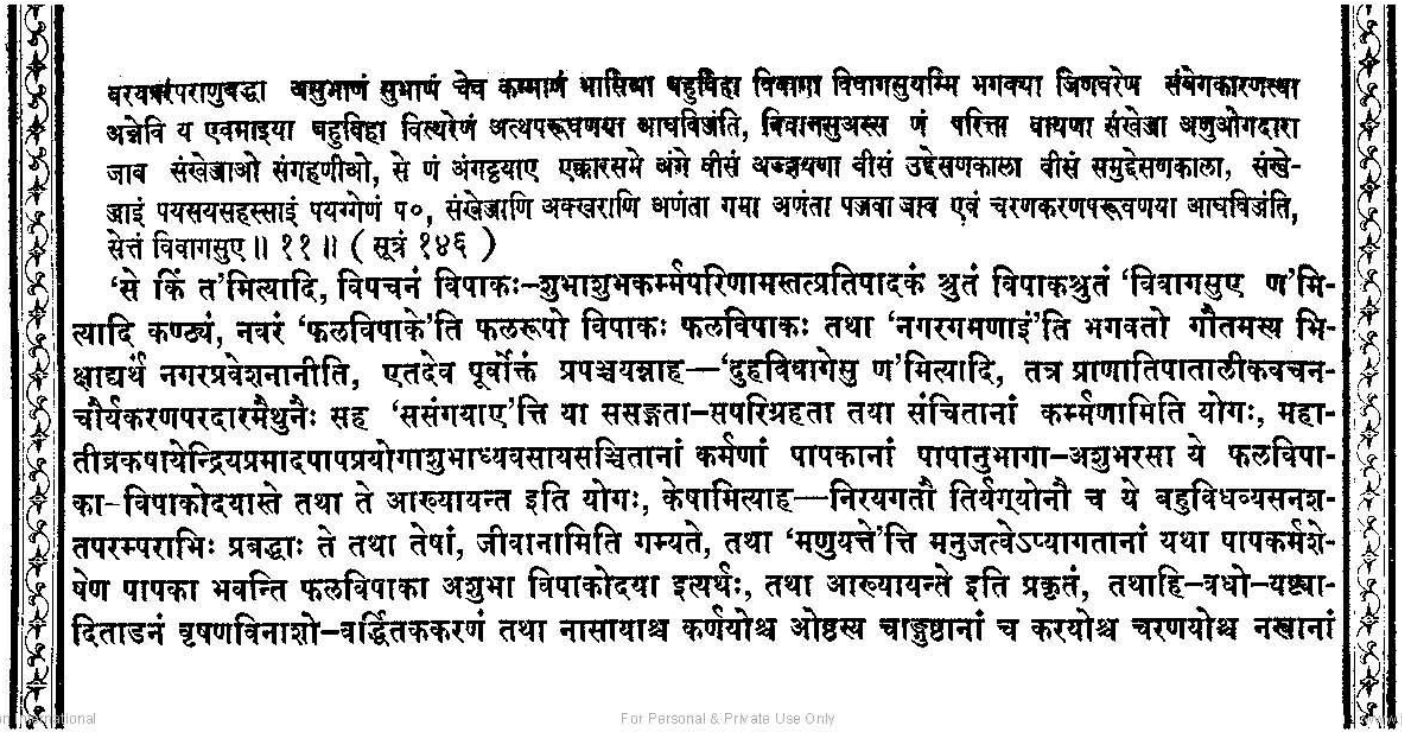
चेइयाइं वणखंडा रायाओ अम्मापियरो समोसरणाइं धम्मायरिया धम्मकहाओ इहलोइयपरलोइयइड्ढिविसेसा ओसक्कणपरिवाया उस्सक्कणपरिवाया साहाओ सुयपरिग्गहा तवोवहाणाइं परियागा पडिमाओ संलेहणाओ भत्तपच्चक्खाणाइं पाओवगमणाइं देवलोगगमणाइं सुकुलपच्चायाया पुणबोहिलाहा अंतकिरियाओ य आघविज्जंति, दुहविवागेसु णं पाणाइवायअलियवयणचोरिक्कपरदारगमणदुप्पउत्तसंगयाए महतिव्वकसायइंदियप्पमायपावप्पओयणसुहज्झवसाणसंचियाणं कम्माणं पावगाणं पावअणुभागफलविवागा निरयगतितिरिक्खजोणिबहुविहदुसहसयपरंपरापबद्धाणं मणुयत्तेवि आगयाणं जहा पावकम्मसेसेण पावगा होंति फलविवागा बहुसमुद्दविप्पासनासाकन्नुट्ठंगुट्ठकरचरणनहच्छेदणजिब्भछेदणअंजणकडग्गिदाहमयचलणमलणफालणउल्लंबणसूलल्लयालउडलउट्टिभंजणतउसीसगतत्ततेलकलकलअहिसिंचणकुंभिपाककंपणथिरबंधणवेहवज्झकत्तणपतिभयकरकरपल्लीवणादिदारुणाणि दुक्खाणि बहुविविहपरंपराणुबद्धा प मुच्चंति पावकम्मवल्लीए, अवेयइत्ता हु णत्थि मोक्खो तवेण धिइधणियबद्धकच्छेण साहेणं तस्स नावि हुज्ज, एत्तो य सुहविवागेसु णं सीलसंजमणियमगुणतवोवहाणेसु साहूसु सुविहिएसु अणुकंपासयप्पओगतिकालमइविसुद्धभत्तपाणाइं पययमणसा हियसुहनीसेसतिव्वपरिणामनिच्छियमई पयच्छिऊणं पयोगसुद्धाइं जह य निव्वत्तेंति उ बोहिलाभं जह य परित्तीकरेंति नरनरयतिरियसुरगमणविपुलपरियट्टअरतिभयविसायसोगमिच्छत्तसेलसंकडं अन्नाणतमंधकारचिक्खिल्लसुदुत्तारं जरमरणजोणिसंखुभियचक्कवालं सोलसकसायसावयपयंडचंडं अणाइअं अणवदग्गं संसारसागरमिणं जह य णिबंधंति आउगं सुरगणेसु जह य अणुभवंति सुरगणविमाणसोक्खाणि अणोवमाणि ततो य कालंतरे चुआणं इहेव नरलोगमागयाणं आउवपुपुण्णरूवजातिकुलजम्मआरोग्गबुद्धिमेहाविसेसा मित्तजणसयणधणधण्णविभवसमिद्धसारसमुदयविसेसा बहुविहकामभोगुब्भवाण सोक्खाण सुहविवागोत्तमेसु, अणु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विपाकश्रुत अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचय:,

प्रत सूत्रांक [१४६]

प्रत अनुक्रम [२२७]



वरयवरपरागुबद्धा असुभाणं सुभाणं चेव कम्माणं भासित्ता बहुविहा विवागा विवागसुयम्मि भगवया जिणवरेण संवेगकारणत्था अन्नेवि य एवमाइया बहुविहा वित्थरेणं अत्थपरूवणया आघविज्जंति, विवागसुअस्स णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा जाव संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए एक्कारसमे अंगे वीसं अज्झयणा वीसं उद्देसणकाला वीसं समुद्देसणकाला, संखेज्जाइं पयसयसहस्साइं पयग्गेणं प०, संखेज्जाणि अक्खराणि अणंता गमा अणंता पज्जवा जाव एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति, सेत्तं विवागसुए ॥ ११ ॥ (सूत्रं १४६)

'से किं त'मित्यादि, विपचनं विपाकः–शुभाशुभकर्म्मपरिणामस्तत्प्रतिपादकं श्रुतं विपाकश्रुतं 'विवागसुए ण'मित्यादि कण्ठ्यं, नवरं 'फलविपाके'ति फलरूपो विपाकः फलविपाकः तथा 'नगरगमणाइं'ति भगवतो गौतमस्य भिक्षाद्यर्थं नगरप्रवेशनानीति, एतदेव पूर्वोक्तं प्रपञ्चयन्नाह—'दुहविवागेसु ण'मित्यादि, तत्र प्राणातिपातालीकवचनचौर्यकरणपरदारमैथुनैः सह 'ससंगयाए'त्ति या ससङ्गता–सपरिग्रहता तया संचितानां कर्म्मणामिति योगः, महातीव्रकषायेन्द्रियप्रमादपापप्रयोगाशुभाध्यवसायसञ्चितानां कर्मणां पापकानां पापानुभागा–अशुभरसा ये फलविपाका–विपाकोदयास्ते तथा ते आख्यायन्त इति योगः, केषामित्याह—निरयगतौ तिर्यग्योनौ च ये बहुविधव्यसनशतपरम्पराभिः प्रबद्धाः ते तथा तेषां, जीवानामिति गम्यते, तथा 'मणुयत्ते'त्ति मनुजत्वेऽप्यागतानां यथा पापकर्मशेषेण पापका भवन्ति फलविपाका अशुभा विपाकोदया इत्यर्थः, तथा आख्यायन्ते इति प्रकृतं, तथाहि–वधो–यष्ट्यादिताडनं वृषणविनाशो–वर्द्धितककरणं तथा नासायाश्च कर्णयोश्च ओष्ठस्य चाङ्गुष्ठानां च करयोश्च चरणयोश्च नखानां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विपाकश्रुत अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

च यच्छेदनं तत्तथा जिह्वाछेदनं 'अंजण'त्ति अञ्जनं तप्तायःशलाकया नेत्रयोः ग्रक्षणं वा देहस्य क्षारतैलादिना 'कडग्गिदाहणं'ति कटानां–विदलवंशादिमयानामग्निः कटाग्निस्तेन दाहनं कटाग्निदाहनं, कटेन परिवेष्टितस्य बाधनमित्यर्थः, तथा गजचलनमलनं फालनं–विदारणं उल्लम्बनं–वृक्षशाखादावुद्बन्धनं तथा शूलेन लतया लकुटेन यष्ट्या च भञ्जनं गात्राणां तथा त्रपुणा–धातुविशेषेण सीसकेण च—तेनैव तप्तेन तैलेन च 'कलकल'त्ति सशब्देनाभिषेचनं तथा कुम्भ्यां–भाजनविशेषे पाकः कुम्भीपाकः कम्पनं–शीतलजलाच्छोटनादिना शीतकाले गात्रोत्कम्पजननं तथा स्थिरबन्धनं–निबिडनियन्त्रणं वेधः–कुन्तादिना शस्त्रेण भेदनं वर्द्धकर्त्तनं–त्वग्नुत्रोटनं प्रतिभयकरं–भयजननं तच्च तत् करप्रदीपनं च–वसनावेष्टितस्य तैलाभिषिक्तस्य करयोरग्निप्रबोधनमिति कर्म्मधारयः, ततश्च वधश्च वृषणविनाशश्चेत्यादि यावत्प्रतिभयकरकरप्रदीपनं चेति द्वन्द्वः, ततस्तानि आदिर्येषां दुःखानां तानि च तानि दारुणानि चेति कर्म्मधारयः, कानीमानीत्याह—दुःखानि, किंभूतानि ?–अनुपमानि दुःखविपाकेष्वाख्यायन्त इति प्रक्रमः, तथेदमाख्यायते बहुविविधपरम्पराभिः दुःखानामिति गम्यते, अनुबद्धाः–सन्ततमालिङ्गिता बहुविधपरम्परानुबद्धा जीवा इति गम्यते न मुच्यन्ते–न त्यज्यन्ते, कया ?–पापकर्मवल्ल्या दुःखफलसम्पादिकया, किमित्याह—यतोऽवेदयित्वा–अननुभूय कर्मफलमिति गम्यते दुर्यस्मादर्थे नास्ति–न भवति मोक्षो–वियोगः कर्म्मणः सकाशात्, जीवानामिति गम्यते, किं सर्वथा नेत्याह—तपसा–अनशनादिना किम्भूतेन ?—धृतिः—चित्तसमाधानं तद्रूपा 'धणिय'त्ति अत्यर्थं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विपाकश्रुत अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचय:,

प्रत सूत्रांक [१४६]

प्रत अनुक्रम [२२७]

बद्धा–निष्पीडिता कच्छा–बन्धविशेषो यत्र तत्तथा तेन, धृतिबलयुक्तेनेत्यर्थः, शोधनं–अपनयनं तस्य कर्म्मविशेषस्य 'वावि'त्ति सम्भावनायां 'होज्जा' सम्पद्येत नान्यो मोक्षोपायोऽस्तीति भावः, 'एत्तो ये'त्यादि इतश्चानन्तरं सुखविपाकेषु द्वितीयश्रुतस्कन्धाध्ययनेष्वित्यर्थः यदाख्यायते तदभिधीयत इति शेषः, शीलं–ब्रह्मचर्यं समाधिर्वा संयमः–प्राणातिपातविरतिर्नियमा–अभिग्रहविशेषाः गुणाः–शेषमूलगुणाः उत्तरगुणाश्च तपोऽनशनादि एतेषामुपधानं–विधानं येषां ते तथा अतस्तेषु शीलसंयमनियमगुणतपउपधानेषु, केष्वित्याह–साधुषु–यतिषु, किम्भूतेषु ?–सुष्ठु विहितं–अनुष्ठितं येषां ते सुविहितास्तेषु भक्तादि दत्त्वा यथा बोधिलाभादि निर्वर्त्तयन्ति तथेहाख्यायत इति सम्बन्धः, इह च सम्प्रदानेऽपि सप्तमी न दुष्टा, विषयस्य विवक्षणात्, अनुकम्पा–अनुक्रोशस्तत्प्रधान आशयः–चित्तं तस्य प्रयोगो–व्यापृत्तिरनुकम्पाशयप्रयोगस्तेन, तथा 'तिकालमति'त्ति त्रिषु कालेषु या मतिः–बुद्धिर्यदुत दास्यामीति परितोषो दीयमाने परितोषो दत्ते च परितोष इति सा त्रैकालिमतिस्तया च यानि विशुद्धानि तानि तथा तानि च तानि भक्तपानानि चेति अनुकम्पाशयप्रयोगत्रिकालमतिविशुद्धभक्तपानानि प्रदायेति क्रियायोगः, केन प्रदायेत्याह–प्रयतमनसा–आदरभूतचेतसा, हितोऽनर्थपरिहाररूपत्वात् सुखहेतुत्वात् सुखः शुभो वा 'नीसेस'त्ति निःश्रेयसः कल्याणकरत्वात् तीव्रः–प्रकृष्टः परिणामः–अध्यवसानं यस्याः सा तथा सा निश्चिता–असंशया मतिः–बुद्धिर्येषां ते हितसुखनिःश्रेयसतीव्रपरिणामनिश्चितमतयः किं ?–'पयच्छिऊणं'ति प्रदाय, किंभूतानि भक्तपानानि ?–प्रयोगेषु शुद्धानि दाय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विपाकश्रुत अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४६]

प्रत अनुक्रम [२२७]

कदानव्यापारापेक्षया सकलाशंसादिदोषरहितानि ग्राहकग्रहणव्यापारापेक्षया चोद्गमादिदोषवर्जितानि, ततः किं ?–यथा च–येन च प्रकारेण पारम्पर्येण–मोक्षसाधकत्वलक्षणेन निर्वर्त्तयन्ति, भव्यजीवा इति गम्यते, तुशब्दो भाषामात्रार्थः, बोधिलाभं, यथा च परित्तीकुर्वन्ति–ह्रस्वतां नयन्ति संसारसागरमिति योगः, किंभूतं ?–नरनिरयतिर्यक्सुरगतिषु यज्जीवानां गमनं–परिभ्रमणं स एव विपुलो–विस्तीर्णः परिवर्त्तो–मत्स्यादीनां परिवर्त्तनमनेकधा सञ्चरणं यत्र स तथा, तथा अरतिभयविषादशोकमिथ्यात्वान्येव शैलाः–पर्वतास्तैः सङ्कटः–सङ्कीर्णो यः स तथा ततः कर्म्मधारयोऽतस्तं, इह च विषादो–दैन्यमात्रं शोकस्त्वाक्रन्दनादिचिह्न इति, तथा अज्ञानमेव तमोऽन्धकारं–महान्धकारं यत्र स तथा अतस्तं, 'चिक्खिल्लसुदुत्तारं'ति चिक्खिल्लं–कर्दमः संसारपक्षे तु चिक्खिल्लं–विषयधनस्वजनादिप्रतिबन्धस्तेन सुदुस्तरो–दुःखोत्तार्यो यः स तथा तं, तथा जरामरणयोनय एव संक्षुभितं–महामत्स्यमकराद्यनेकजलजन्तुजातसम्मर्देन प्रविलोडितं चक्रवालं–जलपरिमाण्डल्यं यत्र स तथा तं, तथा षोडश कषाया एव श्वापदानि–मकरग्राहादीनि प्रकाण्डचण्डानि–अत्यर्थं रौद्राणि यत्र स तथा तं, अनादिकमनवदग्रमनन्तं संसारसागरमिमं प्रत्यक्षमित्यर्थः, तथा यथा च सागरोपमादिना प्रकारेण निबध्नन्त्यायुः सुरगणेषु साधुदानप्रत्ययमिति भावः, यथा चानुभवन्ति सुरगणविमानसौख्यानि अनुपमानि, ततश्च कालान्तरेण च्युतानाम् 'इहेव'त्ति तिर्यग्लोके नरलोकमागतानामायुर्वपुर्वर्णरूपजातिकुलजन्मारोग्यबुद्धिमेधाविशेषा आख्यायन्त इति योगः, तत्रायुषो विशेष इतरजीवायुषः सकाशात् शुभत्वं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	विपाकश्रुत अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४६]

प्रत अनुक्रम [२२७]

दीर्घत्वं च एवं वपुः–शरीरं तस्य स्थिरसंहननता वर्णस्योदारगौरत्वं रूपस्यातिसुन्दरता जातेरुत्तमत्वं कुलस्याप्येवं जन्मनो विशिष्टक्षेत्रकालौ निराबाधत्वं आरोग्यस्य प्रकर्षः बुद्धिरौत्पत्तिक्यादिका तस्याः प्रकृष्टता मेधा अपूर्वश्रुतग्रहणशक्तिस्तस्या विशेषः प्रकृष्टतैवेति, तथा मित्रजनः–सुहृल्लोकः स्वजनः–पितृपितृव्यादिः धनधान्यरूपो यो विभवो–लक्ष्मीः स धनधान्यविभवस्तथा समृद्धेः–पुरान्तःपुरकोशकोष्ठागारबलवाहनरूपायाः सम्पदो यानि साराणि–प्रधानानि वस्तूनि तेषां यः समुदयः–समूहः स तथा इत्येतेषां द्वन्द्वस्तत एषां ये विशेषाः–प्रकर्षास्ते तथा, तथा बहुविधकामभोगोद्भवानां सौख्यानां विशेषा इतीहापि सम्बन्धनीयं, शुभविपाक उत्तमो येषां ते शुभविपाकोत्तमास्तेषु जीवेष्विति गम्यं, इह चेयं षष्ठ्यर्थे सप्तमी, तेन शुभविपाकाध्ययनवाच्यानां साधूनामायुष्कादिविशेषाः शुभविपाकाध्ययनेष्वाख्यायन्ते इति प्रकृतं, अथ प्रत्येकं श्रुतस्कन्धयोरभिधेये पुण्यपापविपाकरूपे प्रतिपाद्य तयोरेव यौगपद्येन ते आह–'अणुवरये'त्यादि, अनुपरता–अविच्छिन्ना ये परम्परानुबद्धाः–पारम्पर्यप्रतिबद्धाः, के ?–विपाका इति योगः, केषां ?–अशुभानां शुभानां चैव कर्मणां प्रथमद्वितीयश्रुतस्कन्धयोः क्रमेणैव च भाषिताः–उक्ता बहुविधा विपाकाः विपाकश्रुते एकादशाङ्गे भगवता जिनवरेण संवेगकारणार्थाः–संवेगहेतवो भावाः अन्येऽपि चैवमादिका आख्यायन्त इति पूर्वोक्तक्रियया वचनपरिणामाद्वोत्तरक्रियया योगः, एवं च बहुविधा विस्तरेणार्थप्ररूपणता आ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विपाकश्रुत अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

ख्यायन्त इति, शेषं कण्ठ्यं, नवरं संख्यातानि पदशतसहस्राणि पदाग्रेणेति, तत्र किल एका पदकोटी चतुरशीतिश्च लक्षाणि द्वात्रिंशच्च सहस्राणीति ॥ ११ ॥

से किं तं दिट्ठिवाए,? दिट्ठिवाए णं सव्वभावपरूवणया आघविज्जंति, से समासओ पंचविहे प० तं०–परिकम्मं सुत्ताइं पुव्वगयं अणुओगो चूलिया, से किं तं परिकम्मे ?–परिकम्मे सत्तविहे प० तं–सिद्धसेणियापरिकम्मे मणुस्ससेणियापरिकम्मे पुट्ठसेणियापरिकम्मे ओगाहणसेणियापरिकम्मे उवसंपज्जसेणियापरिकम्मे विप्पजहसेणियापरिकम्मे चुआचुअसेणियापरिकम्मे, से किं तं सिद्धसेणियापरिकम्मे ?, सिद्धसेणिआपरिकम्मे चोद्दसविहे प० तं०–माउयापयाणि एगट्ठियपयाणि पादोट्ठपयाणि आगासपयाणि केउभूयं रासिबद्धं एगगुणं दुगुणं तिगुणं केउभूयं पडिग्गहो संसारपडिग्गहो नंदावत्तं सिद्धबद्धं, सेत्तं सिद्धसेणियापरिकम्मे, से किं तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे ?, मणुस्ससेणियापरिकम्मे चोद्दसविहे पण्णत्ते, तं जहा–ताइं चेव माउआपयाणि जाव नंदावत्तं मणुस्सबद्धं, सेत्तं मणुस्ससेणियापरिकम्मे, अवसेसा परिकम्माइं पुट्ठाइयाइं एक्कारसविहाइं पन्नत्ताइं, इच्चेयाइं सत्त परिकम्माइं ससमइयाइं सत्त आजीवियाइं छ चउक्कणइयाइं सत्त तेरासियाइं, एवामेव सपुव्वावरेणं सत्त परिकम्माइं तेसीति भवंतीतिमक्खायाइं, सेत्तं परिकम्माइं, से किं तं सुत्ताइं ?, सुत्ताइं अट्ठासीति भवंतीतिमक्खायाइं, तंजहा–उजुगं परिणयापरिणयं बहुभंगियं विप्पचइयं [विन(ज)यचरियं] अणंतरं परंपरं समाणं संजूहं [मासाणं] सं भिन्नं अहाचयं [अहव्वायं नन्द्यां] सोवत्थि(वत्तं) यं णंदावत्तं बहुलं पुट्ठापुट्ठं वियावत्तं एवंभूयं दुआवत्तं वत्तमाणप्पयं समभिरूढं सव्वओभद्दं पणामं[पस्सासं नन्द्यां]दुपडिग्गहं इच्चेयाइं बावीसं सुत्ताइं छिण्णछेअणइआइं ससमयसुत्तपरिवाडीए, इच्चेआइं बावीसं सुत्ताइं अछिन्नछेयनइयाइं आजीवियसुत्तपरिवाडीए, इच्चेआइं बावीसं सुत्ताइं तिकणइयाइं तेरासियसुत्तपरिवाडिए, इच्चे-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विपाकश्रुत अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचय:,
द्रष्टिवाद अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचय:,

प्रत सूत्रांक [१४७]

प्रत अनुक्रम [२२८--२३२]

आइं बावीसं सुत्ताइं चउक्कणइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए, एवामेव सपुव्वावरेणं अट्ठासीति सुत्ताइं भवंतीतिमक्खयाइं, सेत्तं सुत्ताइं। से किं तं पुव्वगयं ?, पुव्वगयं चउद्दसविहं पन्नत्तं, तंजहा–उप्पायपुव्वं अग्गेणीयं वीरियं अत्थिणत्थिप्पवायं नाणप्पवायं सच्चप्पवायं आयप्पवायं कम्मप्पवायं पच्चक्खाणप्पवायं विज्जाणुप्पवायं अवंझ० पाणाऊ० किरियाविसालं लोगबिंदुसारं १४, उप्पायपुव्वस्स णं दस वत्थू प० चत्तारि चूलियावत्थू प०, अग्गेणियस्स णं पुव्वस्स चोद्दस वत्थू बारस चूलियावत्थू, वीरियपवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठ वत्थू अट्ठ चूलियावत्थू प०, अत्थिणत्थिप्पवायस्स णं पुव्वस्स अट्ठारस वत्थू दस चूलियावत्थू प०, नाणप्पवायस्स णं पुव्वस्स बारस वत्थू प०, सच्चप्पवायस्स णं पुव्वस्स दो वत्थू प०, आयप्पवायस्स णं पुव्वस्स सोलस वत्थू प०, कम्मप्पवायपुव्वस्स तीसं वत्थू प०, पच्चक्खाणस्स णं पुव्वस्स वीसं वत्थू प०, विज्जाणुप्पवायस्स णं पुव्वस्स पनरस वत्थू प०, अवंझस्स णं पुव्वस्स बारस वत्थू प०, पाणाउस्स णं पुव्वस्स तेरस वत्थू प०, किरियाविसालस्स णं पुव्वस्स तीसं वत्थू प०, लोगबिंदुसारस्स णं पुव्वस्स पणवीसं वत्थू प०,–दस चोद्दस अट्ठट्ठारसे व बारस दुवे य वत्थूणि। सोलस तीसा वीसा पन्नरस अणुप्पवायंमि ॥ १ ॥ बारस एक्कारसमे बारसमे तेरसेव वत्थूणि। तीसा पुण तेरसमे चउदसमे पन्नवीसाओ ॥ २ ॥ चत्तारि दुवालस अट्ठ चेव दस चेव चूलवत्थूणि। आतिल्लाण चउण्हं सेसाणं चूलिया णत्थि ॥ ३ ॥ सेत्तं पुव्वगयं, से किं तं अणुओगे ?, अणुओगे दुविहे पन्नत्ते, तंजहा–मूलपढमाणुओगे य गंडियाणुओगे य, से किं तं मूलपढमाणुओगे ?, एत्थ णं अरहंताणं भगवंताणं पुव्वभवा देवलोगगमणाणि आउं चवणाणि जम्मणाणि अ अभिसेया रायवरसिरीओ सीयाओ पव्वज्जाओ तवा य भत्ता केवलणाणुप्पाया अ तित्थपवत्तणाणि अ संघयणं संठाणं उच्चत्तं आउं वन्नविभागो सीसा गणा गणहरा य अज्जा पवत्तणीओ संघस्स चउव्विहस्स जं वावि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रष्टिवाद अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४७]

प्रत अनुक्रम [२२८--२३२]

परिमाणं जिणमणपज्जवओहिनाणसम्मत्तसुयनाणिणो य वाई अणुत्तरगई य जत्तिया सिद्धा पाओवगआ य जे जहिं जत्तियाइं भत्ताइं छेअइत्ता अंतगडा मुणिवरुत्तमा तमरओघविप्पमुक्का सिद्धिपहमणुत्तरं च पत्ता, एए अन्ने य एवमाइया भावा मूलपढमाणुओगे कहिआ आघविज्जंति पण्णविज्जंति परू० सेत्तं मूलपढमाणुओगे, से किं तं गंडियाणुओगे ?, अणेगविहे पण्णत्ते, तंजहा–कुलगरगंडियाओ तित्थगरगंडियाओ गणहरगंडियाओ चक्कहरगंडियाओ दसारगंडियाओ बलदेवगंडियाओ वासुदेवगंडियाओ हरिवंसगंडियाओ भद्दबाहुगंडियाओ तवोकम्मगंडियाओ चित्तंतरगंडियाओ उस्सप्पिणीगंडियाओ ओसप्पिणीगंडियाओ अमरनरतिरियनिरयगइगमणविविहपरियट्टणाणुओगे, एवमाइयाओ गंडियाओ आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति, सेत्तं गंडियाणुओगे, से किं तं चूलियाओ ?, जण्णं आइल्लाणं चउण्हं पुव्वाणं चूलियाओ, सेसाइं पुव्वाइं अचूलियाइं, सेत्तं चूलियाओ, दिट्ठिवायस्स णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ संगहणीओ, से णं अंगट्ठयाए बारसमे अंगे एगे सुयखंधे चउद्दस पुव्वाइं संखेज्जा वत्थू संखेज्जा चूलवत्थू संखेज्जा पाहुडा संखेज्जा पाहुडपाहुडा संखेज्जाओ पाहुडियाओ संखेज्जाओ पाहुडपाहुडियाओ संखेज्जाणि पयसयसहस्साणि पयग्गेणं पन्नत्ता, संखेज्जा अक्खरा अणंता गमा अणंता पज्जवा परित्ता तसा अणंता थावरा सासया कडा णिबद्धा णिकाइया जिणपण्णत्ता भावा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, एवं णाया एवं विण्णाया एवं चरणकरणपरूवणया आघविज्जंति, सेत्तं दिट्ठिवाए, सेत्तं दुवालसंगे गणिपिडगे ॥ १२ ॥ (सूत्रं १४७)

'से किं तं दिट्ठिवाए'त्ति दृष्टयो–दर्शनानि वदनं वादो दृष्टीनां वादो दृष्टिवादः दृष्टीना वा पातो यत्रासौ दृष्टिपातः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रष्टिवाद अंगसूत्रस्य शास्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४७]

प्रत अनुक्रम [२२८--२३२]

सर्वनयदृष्टय एवेहाख्यायन्त इत्यर्थः, तथा चाह—'दिट्ठिवाए ण'मित्यादि, दृष्टिवादेन दृष्टिपातेन वा सर्वभावप्ररूपणाऽऽख्यायते, 'से समासओ पंचविहे' इत्यादि सर्वमिदं प्रायो व्यवच्छिन्नं तथापि यथादृष्टं किमपि लिख्यते, तत्र सूत्रादिग्रहणयोग्यतासम्पादनसमर्थानि परिकर्म्माणि गणितपरिकर्मवत्, तच्च परिकर्म्मश्रुतं सिद्धश्रेणिकादिपरिकर्म्ममूलभेदतः सप्तविधं, उत्तरभेदतस्तु त्र्यशीतिविधं मातृकापदादि, एतच्च सर्वं समूलोत्तरभेदं सूत्रार्थतो व्यवच्छिन्नं, एतेषां च परिकर्म्मणां षट् आदिमानि परिकर्म्माणि स्वसामयिकान्येव, गोशालकप्रवर्त्तिताजीविकपाखण्डिकसिद्धान्तमतेन पुनः च्युताच्युतश्रेणिकापरिकर्म्मसहितानि सप्त प्रज्ञाप्यन्ते, इदानीं परिकर्मसु नयचिन्ता, तत्र नैगमो द्विविधः–साङ्ग्राहिकोऽसाङ्ग्राहिकश्च, तत्र साङ्ग्राहिकः सङ्ग्रहं प्रविष्टोऽसाङ्ग्राहिकश्च व्यवहारं, तस्मात्सङ्ग्रहो व्यवहार ऋजुसूत्रः शब्दादयश्चैक एवेत्येवं चत्वारो नयाः, एतैश्चतुर्भिर्नयैः षट् स्वसामयिकानि परिकर्म्माणि चिन्त्यन्ते, अतो भणितं 'छ चउक्कनयाइं'ति भवन्ति, त एव चाजीविकास्त्रैराशिका भणिताः, कस्माद् ?, उच्यते, यस्मात्ते सर्वं त्र्यात्मकं इच्छन्ति, यथा जीवोऽजीवो जीवाजीवः लोकोऽलोको लोकालोकः सत् असत् सदसत् इत्येवमादि, नयचिन्तायामपि ते त्रिविधं नयमिच्छन्ति, तद्यथा–द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकः उभयार्थिकः, अतो भणितं 'सत्त तेरासिय'त्ति सप्त परिकर्माणि त्रैराशिकपाखण्डिकास्त्रिविधया नयचिन्तया चिन्तयन्तीत्यर्थः, 'सेत्तं परिकम्मे'त्ति निगमनं, 'से किं तं सुत्ताइ'मित्यादि, तत्र सर्वद्रव्यपर्यायनयाद्यर्थसूचनात् सूत्राणि अष्टाशीत्यपि च सूत्रार्थतो व्यवच्छिन्नानि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रष्टिवाद अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४७]

प्रत अनुक्रम [२२८--२३२]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥१३०॥

तथापि दृष्टानुसारतः किञ्चिल्लिख्यते, एतानि किल ऋजुकादीनि द्वाविंशतिः सूत्राणि, तान्येव विभागतोऽष्टाशीतिर्भवन्ति, कथम्?, उच्यते, 'इच्चेइयाइं बावीसं सुत्ताइं छिन्नछेयनइयाइं ससमयसुत्तपरिवाडीए'त्ति इह यो नयः सूत्रं छिन्नं छेदेनेच्छति स छिन्नच्छेदनयो यथा "धम्मो मंगलमुक्किट्ठ"मित्यादिश्लोकः सूत्रार्थतः प्रत्येकच्छेदेन स्थितो न द्वितीयादिश्लोकमपेक्षते, प्रत्येककल्पितपर्यन्त इत्यर्थः, एतान्येव द्वाविंशतिः स्वसमयसूत्रपरिपाट्या सूत्राणि स्थितानि, तथा इत्येतानि द्वाविंशतिः सूत्राणि अच्छिन्नच्छेदनयिकान्याजीविकसूत्रपरिपाट्येति, अयमर्थः–इह यो नयः सूत्रमच्छिन्नं छेदेनेच्छति सोऽच्छिन्नच्छेदनयो यथा 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठ'मित्यादि श्लोक एवार्थतो द्वितीयादिश्लोकमपेक्षमाणो द्वितीयादयश्च प्रथममिति अन्योऽन्यसापेक्षा इत्यर्थः, एतानि द्वाविंशतिराजीविकगोशालकप्रवर्त्तितपाखण्डसूत्रपरिपाट्या अक्षररचनाविभागस्थितान्यप्यर्थतोऽन्योऽन्यमपेक्षमाणानि भवन्ति, 'इच्चेइयाइं' इत्यादि सूत्रं, तत्र 'तिकनइयाइं'-ति नयत्रिकाभिप्रायतश्चिन्त्यन्त इत्यर्थस्त्रैराशिकाश्चाजीविका एवोच्यन्ते इति, तथा 'इच्चेइयाइं' इत्यादि सूत्रं, तत्र 'चउकनइयाइं'ति नयचतुष्काभिप्रायतश्चिन्त्यन्त इति भावना, 'एवमेवे'त्यादिसूत्रं, एवं चतस्रो द्वाविंशतयोऽष्टाशीतिः सूत्राणि भवन्ति 'सेत्तं सुत्ताइं'ति निगमनवाक्यं, 'से किं तं पुव्वगयं' इत्यादि, अथ किं तत् पूर्वगतं?, उच्यते, यस्मात्तीर्थकरः तीर्थप्रवर्त्तनाकाले गणधराणां सर्वसूत्राधारत्वेन पूर्वं पूर्वगतं सूत्रार्थं भाषते तस्मात्पूर्वाणीति भणितानि, गणधराः पुनः श्रुतरचनां विदधाना आचारादिक्रमेण रचयन्ति स्थापयन्ति च, मतान्तरेण तु पूर्वगतसूत्रार्थः पूर्वमर्हता

१४७ दृष्टिवादः

॥१३०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रष्टिवाद अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचय:,

प्रत सूत्रांक [१४७]

प्रत अनुक्रम [२२८--२३२]

भाषितो गणधरैरपि पूर्वगतश्रुतमेव पूर्वं रचितं पश्चादाचारादि, नन्वेवं यदाचारनिर्युक्त्यामभिहितं 'सव्वेसिं आयारो पढमो' इत्यादि तत्कथम्?, उच्यते, तत्र स्थापनामाश्रित्य तथोक्तमिह त्वक्षररचनां प्रतीत्य भणितं पूर्वं पूर्वाणि कृतानीति, तच्च पूर्वगतं चतुर्दशविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा–'उप्पाये'त्यादि, तत्रोत्पादपूर्वं प्रथमं, तत्र च सर्वद्रव्याणां पर्यवाणां चोत्पादभावमङ्गीकृत्य प्रज्ञापना कृता, तस्य च पदपरिमाणमेका कोटी, अग्गेणीयं द्वितीयं, तत्रापि सर्वेषां द्रव्याणां पर्यवाणां जीवविशेषाणां चाग्रं–परिमाणं वर्ण्यत इत्यग्रेणीयं तस्य पदपरिमाणं षण्णवतिः पदशतसहस्राणि, 'वीरियं'ति वीर्यप्रवादं तृतीयं, तत्राप्यजीवानां जीवानां च सकर्मेतराणां वीर्यं प्रोच्यत इति वीर्यप्रवादं, तस्यापि ससतिः पदशतसहस्राणि परिमाणं, अस्तिनास्तिप्रवादं चतुर्थं, यद्यलोके यथास्ति यथा वा नास्ति, अथवा स्याद्वादाभिप्रायतः तदेवास्ति तदेव नास्तीत्येवं प्रवदतीति अस्तिनास्तिप्रवादं भणितं, तदपि पदपरिमाणतः षष्टिः पदशतसहस्राणि, ज्ञानप्रवादं पञ्चमं, तस्मिन् मतिज्ञानादिपञ्चकस्य भेदप्ररूपणा यस्मात् कृता तस्मात् ज्ञानप्रवादं, तस्मिन् पदपरिमाणमेका कोटी एकपदोनेति, सत्यप्रवादं षष्ठं सत्यं–संयमः सत्यवचनं वा तद्यत्र सभेदं सप्रतिपक्षं च वर्ण्यते तत्सत्यप्रवादं, तस्य पदपरिमाणं एका पदकोटी षट् च पदानीति, आत्मप्रवादं सप्तमं 'आय'त्ति आत्मा सोऽनेकधा यत्र नयदर्शनैर्वर्ण्यते तदात्मप्रवादं, तस्य पदपरिमाणं षड्विंशतिः पदकोट्यः कर्म्मप्रवादमष्टमं ज्ञानावरणादिकमष्टविधं कर्म्मप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशादिभिर्भेदैरन्यैश्चोत्तरोत्तरभेदैर्यत्र वर्ण्यते तत्कर्म्मप्रवादं, तत्परिमाणमेका पदकोटी अशीतिश्च सहस्राणीति, प्रत्या-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रष्टिवाद अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,

प्रत सूत्रांक [१४७]

प्रत अनुक्रम [२२८--२३२]

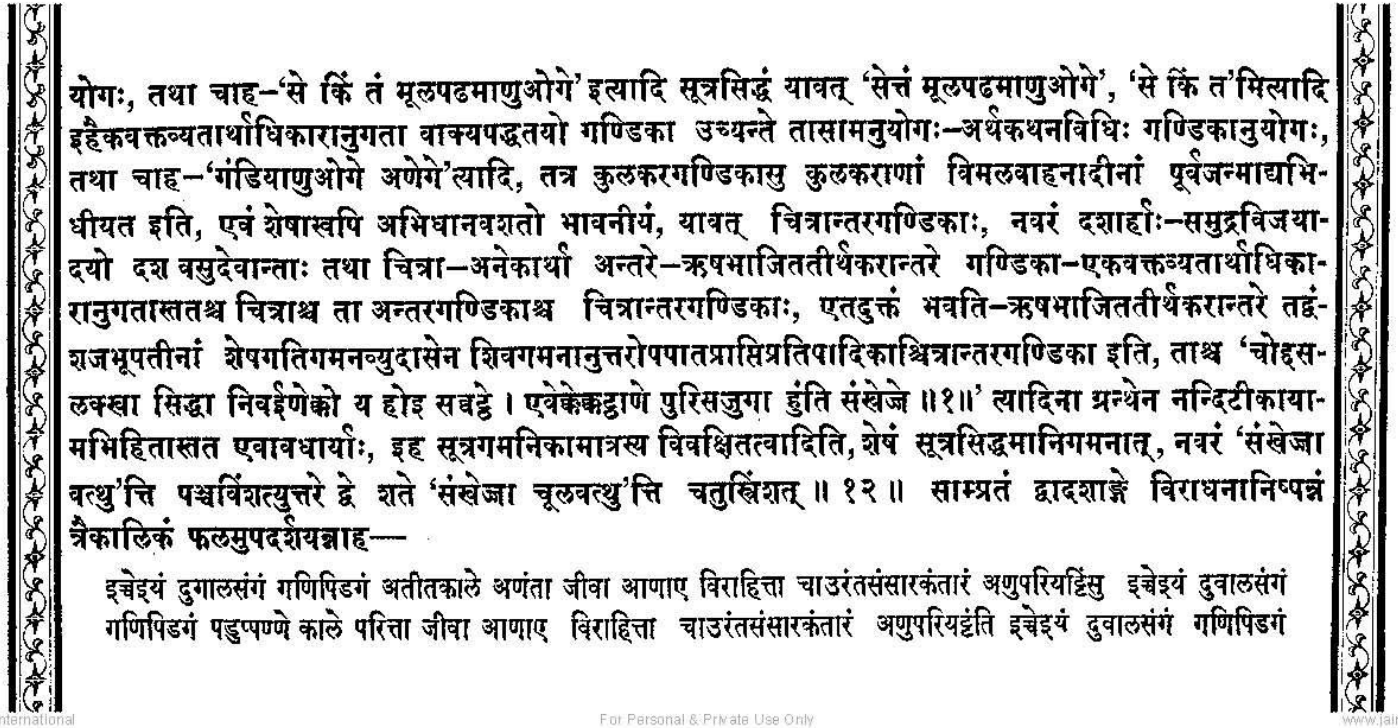
ख्यानं नवमं तत्र सर्वे प्रत्याख्यानस्वरूपं वर्ण्यत इति प्रत्याख्यानप्रवादं, तत्परिमाणं चतुरशीतिः पदशतसहस्राणीति, विद्यानुप्रवादं दशमं तत्रानेके विद्यातिशया वर्णितास्तत्परिमाणमेका पदकोटी दश च पदशतसहस्राणीति, अवन्ध्यमेकादशं, वन्ध्यं नाम निष्फलं न वन्ध्यमवन्ध्यं सफलमित्यर्थः, तत्र हि सर्वे ज्ञानतपःसंयमयोगाः शुभफलेन सफला वर्ण्यन्ते अप्रशस्ताश्च प्रमादादिकाः सर्वे अशुभफला वर्ण्यन्ते अतोऽवन्ध्यं, तस्य च परिमाणं षड्विंशतिः पदकोटयः, प्राणायुर्द्वादशं तत्राप्यायुःप्राणविधानं सर्वं सभेदमन्ये च प्राणा वर्णितास्तत्परिमाणमेका पदकोटी षट्पञ्चाशच्च पदशतसहस्राणीति, क्रियाविशालं त्रयोदशं, तत्र कायिक्यादयः क्रिया विशालत्ति–सभेदाः संयमक्रिया छन्दक्रिया विधानानि च वर्ण्यन्त इति क्रियाविशालं, तत्पदपरिमाणं नव पदकोट्यः, लोकबिन्दुसारं च चतुर्दशमं, तच्चास्मिन् लोके श्रुतलोके वा बिन्दुरिवाक्षरस्य सर्वोत्तममिति, सर्वाक्षरसन्निपातप्रतिष्ठितत्वेन च लोकबिन्दुसारं भणितं, तत्प्रमाणमर्द्धत्रयोदश पदकोट्य इति । 'उप्पायपुव्वस्से'त्यादि कण्ठ्यं, नवरं वस्तु–नियतार्थाधिकारप्रतिबद्धो ग्रन्थविशेषोऽध्ययनवदिति, तथा चूडा इव चूडा, इह दृष्टिवादे परिकर्म्मसूत्रपूर्वगतानुयोगोक्तानुक्तार्थसङ्ग्रहपरा ग्रंथपद्धतयश्चूडा इति, 'से त्तं पुव्वगते'त्ति निगमनं, 'से किं त'मित्यादि, अनुरूपोऽनुकूलो वा योगोऽनुयोगः सूत्रस्य निजेनाभिधेयेन सार्द्धमनुरूपः सम्बन्ध इत्यर्थः, स च द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा–मूलप्रथमानुयोगश्च गण्डिकानुयोगश्च, 'से किं त'मित्यादि, इह धर्म्मप्रणयनात् मूलं तावत्तीर्थकरास्तेषां प्रथमसम्यक्त्वाप्तिलक्षणपूर्वभवादिगोचरोऽनुयोगो मूलप्रथमानु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रष्टिवाद अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचय:,

प्रत सूत्रांक [१४७]

प्रत अनुक्रम [२२८--२३२]



योगः, तथा चाह–'से किं तं मूलपढमाणुओगे' इत्यादि सूत्रसिद्धं यावत् 'सेत्तं मूलपढमाणुओगे', 'से किं त'मित्यादि इहैकवक्तव्यतार्थाधिकारानुगता वाक्यपद्धतयो गण्डिका उच्यन्ते तासामनुयोगः–अर्थकथनविधिः गण्डिकानुयोगः, तथा चाह–'गंडियाणुओगे अणेगे'त्यादि, तत्र कुलकरगण्डिकासु कुलकराणां विमलवाहनादीनां पूर्वजन्माद्यभिधीयत इति, एवं शेषास्वपि अभिधानवशतो भावनीयं, यावत् चित्रान्तरगण्डिकाः, नवरं दशार्हाः–समुद्रविजयादयो दश वसुदेवान्ताः तथा चित्रा–अनेकार्था अन्तरे–ऋषभाजिततीर्थकरान्तरे गण्डिका–एकवक्तव्यतार्थाधिकारानुगतास्ततश्च चित्राश्च ता अन्तरगण्डिकाश्च चित्रान्तरगण्डिकाः, एतदुक्तं भवति–ऋषभाजिततीर्थकरान्तरे तद्दशजभूपतीनां शेषगतिगमनव्युदासेन शिवगमनानुत्तरोपपातप्राप्तिप्रतिपादिकाश्चित्रान्तरगण्डिका इति, ताश्च 'चोद्दसलक्खा सिद्धा निवईणेक्को य होइ सवट्ठे । एवेक्कट्ठाणे पुरिसजुगा हुंति संखेज्जे ॥१॥' त्यादिना ग्रन्थेन नन्दिटीकायामभिहितास्तत एवावधार्याः, इह सूत्रगमनिकामात्रस्य विवक्षितत्वादिति, शेषं सूत्रसिद्धमानिगमनात्, नवरं 'संखेज्जा वत्थु'त्ति पञ्चविंशत्युत्तरे द्वे शते 'संखेज्जा चूलवत्थु'त्ति चतुस्त्रिंशत् ॥ १२ ॥ साम्प्रतं द्वादशाङ्गे विराधनानिष्पन्नं त्रैकालिकं फलमुपदर्शयन्नाह—

इच्चेइयं दुगालसंगं गणिपिडगं अतीतकाले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टिंसु इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं पडुप्पण्णे काले परित्ता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टंति इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रष्टिवाद अंगसूत्रस्य शाश्त्रीयपरिचयः,
द्वादशांगीनाम् शाश्वतता
***सूत्रारम्भे यत् 'दुगालसंगं' मुद्रितं तत् मुद्रणदोष संभाव्यते, मूल शब्द 'दुवालसंगं' अस्ति

प्रत सूत्रांक [१४८]

प्रत अनुक्रम [२३३]

अणागए काले अणंता जीवा आणाए विराहित्ता चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टिस्संति, इच्चेइयं दुवालसंगं गणिपिडगं अतीतकाले अणंता जीवा आणाए आराहित्ता चाउरंतसंसारकंतारं वीईवइंसु एवं पडुप्पण्णेऽवि एवं अणागएवि, दुवालसंगे णं गणिपिडगे ण कयावि णत्थि ण कयाइ णासी ण कयाइ ण भविस्सइ भुविं च भवति य भविस्सति य धुवे णितिए सासए अक्खए अव्वए अवट्ठिए णिच्चे से जहा णामए पंच अत्थिकाया ण कयाइ ण आसि ण कयाइ णत्थि ण कयाइ ण भविस्सति भुविं च भवति य भविस्सति य धुवा णितिया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा एवामेव दुवालसंगे गणिपिडगे ण कयाइ ण आसि ण कयाइ णत्थि ण कयाइ ण भविस्सइ भुविं च भवति य भविस्सइ य धुवे जाव अवट्ठिए णिच्चे, एत्थ णं दुवालसंगे गणिपिडगे अणंता भावा अणंता अभावा अणंता हेऊ अणंता अहेऊ अणंता कारणा अणंता अकारणा अणंता जीवा अणंता अजीवा अणंता भवसिद्धिया अणंता अभवसिद्धिया अणंता सिद्धा अणंता असिद्धा आघविज्जंति पण्णविज्जंति परूविज्जंति दंसिज्जंति निदंसिज्जंति उवदंसिज्जंति, एवं दुवालसंगं गणिपिडगं इति (सूत्रं १४८)

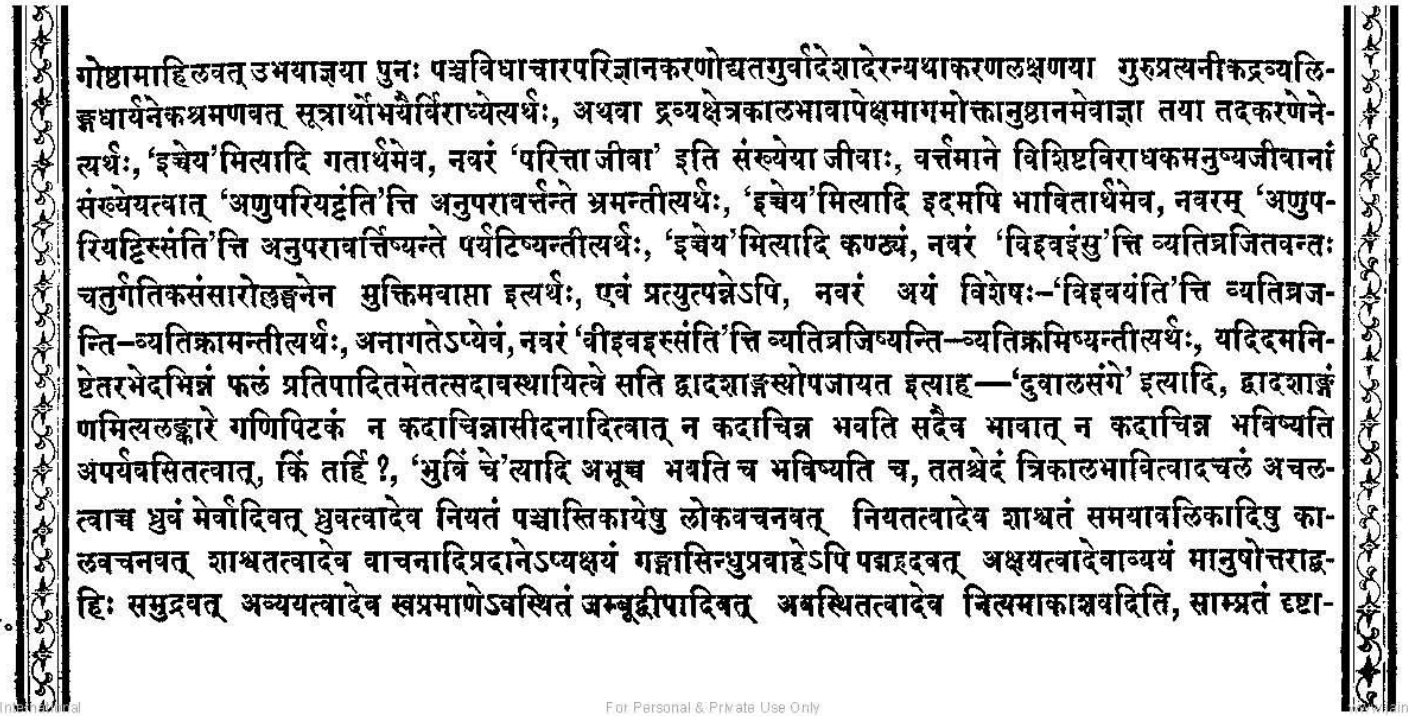
'इच्चेय'मित्यादि, इत्येतद्द्वादशाङ्गं गणिपिटकमतीतकाले अनन्ता जीवा आज्ञया विराध्य चतुरन्तं संसारकान्तारं 'अणुपरियट्टिंसु'त्ति अनुपरिवृत्तवन्तः, इदं हि द्वादशाङ्गसूत्रार्थोभयभेदेन त्रिविधं, ततश्च आज्ञया सूत्राज्ञया अभिनिवेशतोऽन्यथापाठादिलक्षणया अतीतकाले अनन्ता जीवाश्चतुरन्तं संसारकान्तारं नारकतिर्यग्नरामरविविधवृक्षजालदुस्तरं भवाटवीगहनमित्यर्थः, अनुपरावृत्तवन्तो जमालिवत् अर्थाज्ञया पुनरभिनिवेशतोऽन्यथाप्ररूपणादिलक्षणया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वादशांगीनाम् शाश्वतता

प्रत सूत्रांक [१४८]

प्रत अनुक्रम [२३३]



२३ सम०

गोष्ठामाहिलवत् उभयाज्ञया पुनः पञ्चविधाचारपरिज्ञानकरणोद्यतगुर्वादेशादेरन्यथाकरणलक्षणया गुरुप्रत्यनीकद्रव्यलिङ्गधार्यनेकश्रमणवत् सूत्रार्थोभयैर्विराध्येत्यर्थः, अथवा द्रव्यक्षेत्रकालभावापेक्षमागमोक्तानुष्ठानमेवाज्ञा तया तदकरणेनेत्यर्थः, 'इच्चेय'मित्यादि गतार्थमेव, नवरं 'परित्ता जीवा' इति संख्येया जीवाः, वर्त्तमाने विशिष्टविराधकमनुष्यजीवानां संख्येयत्वात् 'अणुपरियट्टंति'त्ति अनुपरावर्त्तन्ते भ्रमन्तीत्यर्थः, 'इच्चेय'मित्यादि इदमपि भावितार्थमेव, नवरम् 'अणुपरियट्टिस्संति'त्ति अनुपरावर्त्तिष्यन्ते पर्यटिष्यन्तीत्यर्थः, 'इच्चेय'मित्यादि कण्ठ्यं, नवरं 'विइवइंसु'त्ति व्यतिव्रजितवन्तः चतुर्गतिकसंसारोल्लङ्घनेन मुक्तिमवाप्ता इत्यर्थः, एवं प्रत्युत्पन्नेऽपि, नवरं अयं विशेषः–'विइवयंति'त्ति व्यतिव्रजन्ति–व्यतिक्रामन्तीत्यर्थः, अनागतेऽप्येवं, नवरं 'वीइवइस्संति'त्ति व्यतिव्रजिष्यन्ति–व्यतिक्रमिष्यन्तीत्यर्थः, यदिदमनिष्टेतरभेदभिन्नं फलं प्रतिपादितमेतत्सदावस्थायित्वे सति द्वादशाङ्गस्योपजायत इत्याह—'दुवालसंगे' इत्यादि, द्वादशाङ्गं णमित्यलङ्कारे गणिपिटकं न कदाचिन्नासीदनादित्वात् न कदाचिन्न भवति सदैव भावात् न कदाचिन्न भविष्यति अपर्यवसितत्वात्, किं तर्हि ?, 'भुविं चे'त्यादि अभूच्च भवति च भविष्यति च, ततश्चेदं त्रिकालभावित्वादचलं अचलत्वाच्च ध्रुवं मेर्वादिवत् ध्रुवत्वादेव नियतं पञ्चास्तिकायेषु लोकवचनवत् नियतत्वादेव शाश्वतं समयावलिकादिषु कालवचनवत् शाश्वतत्वादेव वाचनादिप्रदानेऽप्यक्षयं गङ्गासिन्धुप्रवाहेऽपि पद्मह्रदवत् अक्षयत्वादेवाव्ययं मानुषोत्तराद्बहिः समुद्रवत् अव्ययत्वादेव स्वप्रमाणेऽवस्थितं जम्बूद्वीपादिवत् अवस्थितत्वादेव नित्यमाकाशवदिति, साम्प्रतं दृष्टा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वादशांगीनाम् शाश्वतता

प्रत सूत्रांक [१४८]

प्रत अनुक्रम [२३३]

न्तमत्रार्थे आह—'से जहा नाम ए' इत्यादि, तद्यथा नाम पञ्चास्तिकाया–धर्म्मास्तिकायादयः न कदाचिन्नासन्नित्यादि प्राग्वत्, 'एवमेवे'त्यादि दार्ष्टान्तिकयोजना निगदसिद्धैवेति । 'एत्थ ण'मित्यादि अत्र द्वादशाङ्गे गणिपिटके अनन्ता भावा आख्यायन्त इति योगः, तत्र भवन्तीति भावा–जीवादयः पदार्थाः, एते च जीवपुद्गलानामनन्तत्वादनन्ता इति, तथा अनन्ता अभावाः, सर्वभावानामेव पररूपेणासत्त्वात्त एवानन्ता. अभावा इति, स्वपरसत्ताभावाभावोभयाधीनत्वाद्वस्तुतत्त्वस्य, तथाहि–जीवो जीवात्मना भावोऽजीवात्मना चाभावोऽन्यथाऽजीवत्वप्रसङ्गादिति, अन्ये तु धर्म्मापेक्षया अनन्ता भावाः अनन्ता अभावाः (च) प्रतिवस्त्वस्तित्वनास्तित्वाभ्यां प्रतिबद्धा इति व्याचक्षते, तथाऽनन्ता हेतवः, तत्र हिनोति–गमयति जिज्ञासितधर्म्मविशिष्टानर्थानिति हेतुस्ते चानन्ताः, वस्तुनोऽनन्तधर्म्मात्मकत्वात्, तत्प्रतिबद्धधर्म्मविशिष्टवस्तुगमकत्वाच्च हेतोः सूत्रस्य चानन्तगमपर्यायात्मकत्वादिति, यथोक्तहेतुप्रतिपक्षतोऽनन्ता अहेतवः, तथा अनन्तानि कारणानि मृत्पिण्डतन्त्वादीनि घटपटादिनिर्वर्त्तकानि, तथा अनन्तान्यकारणानि सर्वकारणानामेव कार्यान्तराकारणत्वात्, नहि मृत्पिण्डः पटं निर्वर्त्तयतीति, तथा अनन्ता जीवाः–प्राणिनः एवमजीवाः–द्व्यणुकादयः भवसिद्धिका–भव्याः सिद्धा–निष्ठितार्था इतरे–संसारिणः, 'आघविज्जंती'त्यादि पूर्ववदिति । द्वादशाङ्गस्य स्वरूपमनन्तरमभिहितमथ तदभिधेयस्य राशिद्वयान्तर्भावतः स्वरूपमभिधित्सुराह—

दुवे रासी पन्नत्ता, तंजहा जीवरासी अजीवरासी य, अजीवरासी दुविहा पन्नत्ता, तंजहा–रूवीअजीवरासी अरूवीअजीवरासी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वादशांगीनाम् शाश्वतता

प्रत सूत्रांक [१४९] + गाथा: प्रत अनुक्रम [२३४--२३७]

य, से किं तं अरूवी अजीवरासी?, अरूविअजीवरासी दसविहा पन्नत्ता, तंजहा–धम्मत्थिकाए जाव अद्धासमए, रूवीअजीवरासी अणेगविहा० प० जाव से किं तं अणुत्तरोववाइआ?, अत्तणुरोववाइआ पंचविहा पन्नत्ता, तंजहा–विजयवेजयंतजयंतअपराजितसव्वट्ठसिद्धिआ, सेत्तं अणुत्तरोववाइआ, सेत्तं पंचिंदियसंसारसमावण्णजीवरासी, दुविहा णेरइया पन्नत्ता, तंजहा–पज्जत्ता य अपज्जत्ता य, एवं दंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियत्ति, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए केवइयं खेत्तं ओगाहेत्ता केवइया णिरयावासा पण्णत्ता?, गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरि एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसत्तरि जोयणसयसहस्से एत्थ णं रयणप्पभाए पुढवीए णेरइयाणं तीसं णिरयावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खाया, ते णं णिरयावासा अंतो वट्टा बाहिं चउरंसा जाव असुभा णिरया असुभाओ णिरएसु वेयणाओ, एवं सत्तवि भाणियव्वाओ जं जासु जुज्जइ–'आसीयं बत्तीसं अट्ठावीसं तहेव वीसं च। अट्ठारस सोलसगं अहुत्तरमेव बाहल्लं ॥ १ ॥ तीसा य पण्णवीसा पन्नरस दसेव सयसहस्साइं। तिण्णेगं पंचूणं पंचेव अणुत्तरा नरगा ॥ २ ॥ चउसट्ठी असुराणं चउरासीइं च होइ नागाणं। बावत्तरि सुवन्नाण वाउकुमाराण छण्णउइ ॥ ३ ॥ दीवदिसाउदहीणं विज्जुकुमारिंदथणियमग्गीणं। छण्हंपि जुवलयाणं बावत्तरिमो य सयसहसा ॥ ४ ॥ बत्तीसट्ठावीसा बारस अड चउरो य सयसहस्सा। पण्णा चत्तालीसा छच्च सहस्सा सहस्सारे ॥ ५ ॥ आणयपाणयकप्पे चत्तारि सयाऽऽरणच्चुए तिन्नि। सत्त विमाणसयाइं चउसुवि एएसु कप्पेसु ॥६॥ एक्कारसुत्तरं हेट्ठिमेसु सत्तुत्तरं च मज्झिमए। सयमेगं उवरिमए पंचेव अणुत्तरविमाणा ॥ ७ ॥ दोच्चाए णं पुढवीए तच्चाए णं पुढवीए चउत्थीए पुढवीए पंचमीए पुढवीए छट्ठीए पुढवीए सत्तमीए पुढवीए गाहाहिं भाणियव्वा, सत्तमाए पुढवीए पुच्छा, गोयमा! सत्तमाए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४९] + गाथाः

प्रत अनुक्रम [२३४--२३७]

पुढवीए अहुत्तरजोयणसयसहस्साइं बाहल्लाए उवरि अद्धतेवन्नं जोयणसहस्साइं ओगाहेत्ता हेट्ठावि अद्धतेवन्नं जोयणसहस्साइं वज्जित्ता मज्झे तिसु जोयणसहस्सेसु एत्थ णं सत्तमाए पुढवीए नेरइयाणं पंच अणुत्तरा महइमहालया महानिरया पण्णत्ता, तंजहा–काले महाकाले रोरुए महारोरुए अप्पइट्ठाणे नामं पंचमे, ते णं निरया वट्टे य तंसा य अहे खुरप्पसंठाणसंठिया जाव असुभा नरगा असुभाओ नरएसु वेयणाओ (सूत्रं १४९)

इह च प्रज्ञापनायाः प्रथमपदं प्रज्ञापनाख्यं सर्वं तदक्षरमध्येतव्यं, किमवसानमित्याह–'जाव से किं त'मित्यादि, केवलमस्य प्रज्ञापनासूत्रस्य चायं विशेषः, इह 'दुवे रासी पण्णत्ता' इत्यभिलापसूत्रं (तत्र) तु 'दुविहा पण्णवणा पण्णत्ता–जीवपण्णवणा अजीवपण्णवणा य'त्ति, अतिदिष्टस्य च सूत्रतः सर्वस्य प्रज्ञापनापदस्य लेखितुमशक्यत्वादर्थतस्तलेश उपदर्श्यते–तत्राजीवराशिर्द्विविधो रूप्यरूपिभेदात्, तत्रारूप्यजीवराशिर्दशधा–धर्म्मास्तिकायस्तद्देशास्तत्प्रदेशश्चेत्येवमधर्म्मास्तिकायाकाशास्तिकायावपि वाच्यावेवं नव दशमोऽद्धासमय इति, रूप्यजीवराशिश्चतुर्द्धा–स्कन्धा देशाः प्रदेशाः परमाणवश्चेति, ते च वर्णगन्धरसस्पर्शसंस्थानभेदतः पञ्चविधाः संयोगतोऽनेकविधा इति । जीवराशिर्द्विविधः संसारसमापन्नोऽसंसारसमापन्नश्च, तत्रासंसारसमापन्ना जीवा द्विविधाः अनन्तरपरम्परसिद्धभेदात्, तत्रानन्तरसिद्धाः पञ्चदशप्रकाराः, परम्परसिद्धास्त्वनन्तप्रकारा इति, संसारसमापन्नास्तु पञ्चधैकेन्द्रियादिभेदेन, तत्रैकेन्द्रियाः पञ्चविधाः पृथिव्यादिभेदेन, पुनः प्रत्येकं द्विविधाः–सूक्ष्मबादरभेदेन, पुनः पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्विधा, एवं द्वित्रिचतुरिन्द्रिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४९] + गाथाः

प्रत अनुक्रम [२३४--२३७]

अपि, पञ्चेन्द्रियाश्चतुर्द्धा नारकादिभेदात्, तत्र नारकाः सप्तविधाः रत्नप्रभादिपृथ्वीभेदात्, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चस्त्रिधा–जलस्थलखचरभेदात्, तत्र जलचराः पञ्चविधा मत्स्यकच्छपग्राहमकरसुंसुमारभेदात्, पुनर्मत्स्या अनेकधा–श्लक्ष्णमत्स्यादिभेदात्, कच्छपा द्विधा अस्थिकच्छपमांसकच्छपभेदात्, ग्राहाः पञ्चधा दिलिवेष्टकमद्गुपुलकसीमाकारभेदात् मकरा–मत्स्यविशेषा द्विविधाः–शुण्डामकरा करिमकराश्च, सुंसुमारास्त्वेकविधाः, स्थलचरा द्विधा–चतुष्पदपरिसर्प्पभेदात्, तत्र चतुष्पदाश्चतुर्द्धा–एकखुरद्विखुरगण्डीपदसनखपदभेदात्, क्रमेण चैते अश्वगोहस्तिसिंहादयः, परिसर्प्पा द्विधा–उरःपरिसर्पभुजपरिसर्पभेदात्, उरःपरिसर्पाश्चतुर्द्धा–अहिअजगराशालिकमहोरगभेदात्, तत्राहयो द्विधा–दर्वीकरा मुकुलिनश्चेति, खचराश्चतुर्द्धा–चर्मपक्षिणो लोमपक्षिणः समुद्गपक्षिणो विततपक्षिणश्च, तत्राद्यौ द्वौ वल्गुलीहंसादिभेदाविततरौ द्वीपान्तरेष्वेव स्तः, सर्वे च पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्याश्च द्विधा–सम्मूर्च्छिमा गर्भव्युत्क्रान्तिकाश्च, तत्र संमूर्च्छिमाः नपुंसका एव, इतरे तु त्रिलिङ्गा इति, गर्भव्युत्क्रान्तिकमनुष्यास्त्रिधा–कर्मभूमिजा अकर्मभूमिजा अन्तरद्वीपजाश्चेति, कर्म्मभूमिजा द्विविधाः–आर्या म्लेच्छाश्च, आर्या द्वेधा–ऋद्धिप्राप्ता इतरे च, तत्र प्रथमा अर्हदादयः, द्वितीया नवविधाः–क्षेत्रजातिकुलकर्मशिल्पभाषाज्ञानदर्शनचारित्रभेदात्, देवाश्चतुर्विधाः भवनवास्यादिभेदाद्भवनपतयो दशधा असुरनागादयः व्यन्तरा अष्टविधा पिशाचादयः ज्योतिष्काः पञ्चधा चन्द्रादयः वैमानिका द्विधा-कल्पोपगाः कल्पातीताश्च, कल्पोपगा द्वादशधा सौधर्मादिभेदात्, कल्पातीता द्वेधा–ग्रैवेयका अनुत्तरोपपातिकाश्च

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४९] + गाथा: प्रत अनुक्रम [२३४--२३७]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥१३५॥

ग्रैवेयका नवधा अनुत्तरोपपातिकाः पञ्चधेति, एतत्समस्तं सूचयतोक्तं 'जाव से किं तं अणुत्तरे'त्यादि, पूर्वोक्तमेव जीवराशिं दण्डकक्रमेण द्विधा दर्शयन्नाह–'दुविहे'त्यादि, सुगमं नवरं 'दण्डओ'त्ति 'नेरइया १ असुराई १० पुढवाइ ५ बेइंदियादओ ४ मणुया १। वंतर १ जोइस १ वेमाणिया य १ अह दंडओ एवं ॥ १॥ अथानन्तरं प्रज्ञप्तानां नारकादीनां पर्याप्तापर्याप्तभेदानां स्थाननिरूपणायाह–'इमीसे ण'मित्यादि, अवगाहनासूत्रादर्वाक् सर्वं कण्ठ्यं, नवरं 'ते णं निरया' इत्यादि, अत्र च जीवाभिगमचूर्ण्यनुसारेण लिख्यते–किल द्विविधा नरका भवन्ति आवलिकाप्रविष्टाः आवलिकाबाह्याश्च, तत्रावलिकाप्रविष्टा अष्टासु दिक्षु भवन्ति, ते च वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रक्रमेण प्रत्यवगन्तव्याः, एतेषां च मध्ये इन्द्रकाः सीमन्तकादयो भवन्ति, आवलिकाबाह्यास्तु पुष्पावकीर्णा दिग्विदिशामन्तरालेषु भवन्ति, नानासंस्थानसंस्थिता इति निरयसंस्थानव्यवस्था, तत्र च बाहुल्यमङ्गीकृत्येदमभिधीयते–'अंतो वट्टे'त्यादि, उक्तं च सूत्रकृद्वृत्तिकृता–"नारकाः सीमन्तकादिका बाहुल्यमंगीकृत्यान्तः–मध्ये वृत्ता बहिरपि चतुरस्रा अधश्च क्षुरप्रसंस्थानसंस्थिताः, एतच्च संस्थानं पुष्पावकीर्णकानाश्रित्योक्तं तेषामेव प्रचुरत्वात्, आवलिकाप्रविष्टास्तु वृत्तत्र्यस्रचतुरस्रसंस्थाना भवन्ती"ति, तत्रान्तर्वृत्ता मध्ये शुषिरमाश्रित्य बहिश्च चतुरस्रा कुड्यपरिधिमाश्रित्य, यावत्करणादिदं दृश्यं यदुत अधः क्षुरप्रसंस्थानसंस्थिताः–भूतलमाश्रित्य क्षुरप्राकारास्तद्भूतलस्य संचारिसत्त्वपादच्छेदकत्वात् अन्ये त्वाहुः–तेषामधस्तनांशः क्षुरप्र इवाग्रेऽग्रे प्रतलो विस्तीर्णश्चेति क्षुरप्रसंस्थानता, तथा 'निचंधयारतमसा ववगयगहचंदसूरनक्खत्तजोइस-

१४९ राशिप्रज्ञापनास्थानानि.

॥१३५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४९] + गाथाः

प्रत अनुक्रम [२३४--२३७]

प्पहा मेयवसापूयरुहिरमंसचिक्खिल्ललित्ताणुलेवणतला असुइवीसा परमदुब्भिगंधा काऊअगणिवण्णाभा कक्खड-फासा दुरहियासा' इति तत्र नित्यं–सर्वदा अन्धकारं–अन्धत्वकारकं बहलबलाहकपटलाच्छादितगगनमण्डलामावास्यार्द्धरात्रान्धकारवत्तमः–तमिस्रं येषु ते नित्यान्धकारतमसः, अथवा नित्येनान्धकारेण सार्वकालिकेनेत्यर्थः तमसः–तमिस्रा नित्यान्धकारतमसः, जात्यन्धमेद्यान्धकारामावास्यानिशीथतुल्या इत्यर्थः, कथमित्यत आह—व्यपगता–अविद्यमाना ग्रहचन्द्रसूरनक्षत्ररूपाणां ज्योतिषां–ज्योतिष्कलक्षणविमानविशेषाणां ज्योतिषो वा–दीपाद्यग्नेः प्रभा–प्रकाशो येषु ते तथा, 'पह'त्ति पथशब्दो वाऽयं व्याख्येयः, तथा मेदोवसापूयरुधिरमांसानि शरीरावयवास्तेषां यच्चिक्खिलं–कर्दमस्तेन लिप्तं–उपदिग्धमनुलेपनेन सकृल्लिप्तस्य पुनः पुनरुपलेपनेन तलं–भूमिका येषां ते मेदोवसापूयरुधिरमांसचिक्खिल्ललिप्तानुलेपनतलाः, यद्यपि च तत्र मेदःप्रभृतीन्यौदारिकपञ्चेन्द्रियशरीरावयवरूपाणि न सन्ति वैक्रियशरीरत्वान्नारकाणां तथापि तदाकारास्तदवयवास्तत्र प्रोच्यन्त इति, अशुचयो विश्राः–आमगन्धयः पूतिगन्धय इत्यर्थः, अत एव परमदुरभिगन्धाः 'काऊअगणिवण्णाभ'त्ति कृष्णाग्निर्लोहादीनां ध्मायमानानां तद्वर्णवदाभा येषां ते कृष्णाग्निवर्णाभाः, तथा कर्कशः स्पर्शो येषां ते कर्कशस्पर्शाः, अत एव दुःखेन–कृच्छ्रेणाधिसोढुं शक्यते वेदना येषु ते दुरधिसह्याः, अत एवाशुभा नरका अशुभा नरकेषु वेदना इति 'एवं सत्तवि भाणियव्व'त्ति प्रथमाममुञ्चता सप्त इत्युक्तं, 'जं जासु जुज्जइ'त्ति यच्च यस्यां पृथिव्यां बाहल्यस्य नरकाणां च परिमाणं युज्यते स्थानान्तरोक्तानुसारेण तच्च तस्यां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१४९] + गाथाः

प्रत अनुक्रम [२३४--२३७]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥१३६॥

वाच्यं, तच्चेदं–'आसीतं' गाहा'तीसा य' गाहा अशीतिसहस्राधिकयोजनलक्षं रत्नप्रभायां बाहल्यमेवं शेषासु भावनीयं, तथा त्रिंशल्लक्षाणि प्रथमायां नरकावासानामित्येवं शेषास्वपि नेयमिति, आवासपरिमाणं चासुरादीनामपि दशानां सौधर्म्मादीनां च कल्पेतराणां सूत्रैर्वक्ष्यतीति, तन्निवासपरिमाणसङ्ग्रहे 'चउसट्ठी' इत्यादि गाथाः पञ्च, एवं चैव सूत्राभिलापो दृश्यः, 'सक्करप्पभाए णं पुढवीए केवइयं ओगाहित्ता केवइया निरया पण्णत्ता ?, गोयमा ! सक्करप्पभाए णं पुढवीए बत्तीसुत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरि एगं जोयणसहस्सं ओगाहित्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे तीसुत्तरे जोयणसयसहस्से एत्थ णं सक्करप्पभाए पुढवीए नेरइयाणं पणवीसं निरयावाससयसहस्सा भवन्तीतिमक्खाया, ते णं निरया' इत्यादि, एवं गाथानुसारेणान्येऽपि पञ्चालापका वाच्या इति, एतदेवाह—'दोच्चाए' इत्यादि 'वेयणाओ' इत्येतदन्तं सुगमं, नवरं 'गाहाहिं'ति गाथाभिः करणभूताभिर्गाथानुसारेणेत्यर्थः, भणितव्या–वाच्या नरकवासा इति प्रक्रमः, तथा 'वट्टे य तंसा य'त्ति मध्यमो वृत्तः शेषास्त्रयस्रा इति, अथासुराद्यावासविषयमभिलापं दर्शयति—

केवइया णं भंते ! असुरकुमारावासा प० ?, गोयमा ! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरि एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जित्ता मज्झे अट्ठहत्तरिजोयणसयसहस्से एत्थ णं रयणप्पभाए पुढवीए चउसट्ठिं असुरकुमारावाससयसहस्सा प०, ते णं भवणा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा अहे पोक्खरकण्णिआसंठाणसंठिया उक्किण्णं-

१४९ रा० शिप्रज्ञाप० नास्था० नानि.

॥१३६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा: प्रत अनुक्रम [२३८--२४४]

तरविउलगंभीरखायफलिहा अट्टालयचरियदारगोउरकवाडतोरणपडिदुवारेदसभागा जंतमुसलमुसंढिसयग्घिपरिवारिया अउज्झा अडयालकोट्ठरइया अडयालकयवणमाला लाउल्लोइयमहिया गोसीससरसरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितला कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कडज्झंतधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामा सुगंधिया गंधवट्टिभूया अच्छा सण्हा लण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया णिम्मला वितिमिरा विसुद्धा सप्पभा समिरीया सउज्जोआ पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा, एवं जं जस्स कमती तं तस्स जं जं गाहाहिं भणियं तह चेव वण्णओ। केवइया णं भंते! पुढविकाइयावासा प०?, गोयमा! असंखेज्जा पुढवीकाइयावासा प०, एवं जाव मणुस्सत्ति, केवइया णं भंते! वाणमंतरावासा प०?, गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए रयणामयस्स कंडस्स जोयणसहस्सबाहल्लस्स उवरिं एगं जोयणसयं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसयं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठसु जोयणसएसु एत्थ णं वाणमंतराणं देवाणं तिरियमसंखेज्जा भोमेज्जा नगरावाससयसहस्सा प०, ते णं भोमेज्जा नगरा बाहिं वट्टा अंतो चउरंसा, एवं जहा भवणवासीणं तहेव णेयव्वा, णवरं पडागमालाउला सुरम्मा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ॥ केवइया णं भंते! जोइसियाणं विमाणावासा प०?, गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्तनउयाइं जोयणसयाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं दसुत्तरजोयणसयबाहल्ले तिरियं जोइसविसए जोइसियाणं देवाणं असंखेज्जा जोइसियविमाणावासा प०, ते णं जोइसियविमाणावासा अब्भुग्गयमूसियपहसिया विविहरमणिरयणभत्तिचित्ता वाउद्धुयविजयवेजयंतीपडागछत्ताइछत्तकलिया तुंगा गगणतलमणुलिहंतसिहरा जालंतररयणपंजरुम्मिलियव्व मणिकणगथूभियागा वियसियसयपत्तपुण्डरीयतिलयरयणद्धचंदचित्ता अंतो बाहिं च सण्हा तवणिज्जवालुआपत्थडा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाईया दरिसणिज्जा ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथाः

प्रत अनुक्रम [२३८--२४४]

केवइया णं भंते! वेमाणियावासा प०?, गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्ढं चंदिमसूरियगहगणनक्खत्ततारारूवाणं वीइवइत्ता बहूणि जोयणाणि बहूणि जोयणसयाणि बहूणि जोयणसहस्साणि (बहूणि जोयणसयसहस्साणि) बहुइओ जोयणकोडीओ बहुइओ जोयणकोडाकोडीओ असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं वीइवइत्ता एत्थ णं विमाणियाणं देवाणं सोहम्मीसाणसणंकुमारमाहिंदबंभलंतगसुक्कसहस्सारआणयपाणयआरणअच्चुएसु गेवेज्जमणुत्तरेसु य चउरासीइं विमाणावाससयसहस्सा सत्ताणउइं च सहस्सा तेवीसं च विमाणा भवंतीतिमक्खाया, ते णं विमाणा अच्चिमालिप्पभा भासरासिवण्णाभा अरया नीरया णिम्मला वितिमिरा विसुद्धा सव्वरयणामया अच्छा सण्हा घट्टा मट्ठा णिप्पंका णिक्कंकडच्छाया सप्पभा समरीया सउज्जोया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा। सोहम्मे णं भंते! कप्पे केवइया विमाणावासा पण्णत्ता?, गोयमा! बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता, एवं ईसाणाइसु अट्ठावीस बारस अट्ठ चत्तारि एयाइ सयसहस्साइं पण्णासं चत्तालीसं छ एयाइं सहस्साइं आणए पाणए चत्तारि आरणच्चुए तिन्नि एयाणि सयाणि, एवं गाहाहिं भाणियव्वं (सूत्रं १५०)

'केवई'त्यादि सुगमं, नवरं तानि भवनानि बहिर्वृत्तानि वृत्तप्राकारावृतनगरवत् अन्तः समचतुरस्राणि तदवकाशदेशस्य चतुरस्रत्वात्, अधःपुष्करकर्णिकासंस्थानसंस्थितानि, पुष्करकर्णिका–पद्ममध्यभागः, सा चोन्नतसमचित्रबिन्दुकिनी भवतीति, तथा 'उत्कीर्णान्तरविपुलगम्भीरखातपरिखे'ति उत्कीर्णं–भुवमुत्कीर्य पालीरूपं कृतमन्तरं–अन्तरालं ययोस्ते उत्कीर्णान्तरे ते विपुलगम्भीरे खातपरिखे येषां तानि तथा, तत्र खातमध उपरि च समं परिखा तूपरि विशाला अधः सङ्कुचिता तयोरन्तरेषु पाली यत्रास्तीति भावः, तथा अट्टालका–प्राकारस्योपर्याश्रयविशेषाः चरिका–नगरप्राका-

१५० भवनादिवर्णनम्.

॥१३७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथाः

प्रत अनुक्रम [२३८--२४४]

रयोरन्तरमष्टहस्तो मार्गः पाठान्तरेण 'चतुरय'न्ति चतुरकाः सभाविशेषाः ग्रामप्रसिद्धाः 'दारगोउर'त्ति गोपुरद्वाराणि प्रतोल्यो–नगरस्यैव कपाटानि प्रतीतानि तोरणान्यपि तथैव प्रतिद्वाराणि–अवांतरद्वाराणि तत एतेषां द्वन्द्व एतानि देश-लक्षणेषु भागेषु येषां तानि तथा, इह देशो भागश्चानेकार्थः, ततोऽन्योऽन्यमनयोर्विशेष्यविशेषणभावो दृश्य इति, तथा जंताणि–पाषाणक्षेपणयन्त्राणि मुशलानि प्रतीतानि मुसुंढ्यः–प्रहरणविशेषाः शतघ्नयः–शतानामुपघातकारिण्यो महा-कायाः काष्ठशैलस्तम्भयष्टयः ताभिः 'परिवारिय'त्ति–परिवारितानि परिकलितानीत्यर्थः, तथा अयोध्यानि–योधयितुं–सङ्ग्रामयितुं दुर्गत्वान्न शक्यन्ते परबलैर्यानि तान्ययोध्यानि अविद्यमाना वा योधाः-परबलसुभटा यानि प्रति तान्ययोधानि, तथा 'अडयालकोट्ठगरइय'त्ति अष्टचत्वारिंशद्भेदभिन्नविचित्रच्छन्दगोपुररचितानि, अन्ये भणन्ति–अडयालिय(ल)शब्दः किल प्रशंसावाचकः, तथा 'अडयालकयवणमाल'त्ति अष्टचत्वारिंशद्भेदभिन्नाः प्रशंसार्हाः कृता वनमाला–वनस्पतिपल्ल-वस्रजो येषु तानि तथा, 'लाइयं'ति यद्धूमेश्छगणादिनोपलेपनं 'उल्लोइयं'ति कुड्यमालानां सेटिकादिभिः सम्मृष्टीकरणं ततस्ताभ्यामिव महितानि–पूजितानि लाउल्लोइयमहितानि, तथा गोशीर्ष–चन्दनविशेषः सरसं च–रसोपेतं यद्रक्तचन्द-नं–चन्दनविशेषः ताभ्यां दर्दराभ्यां–घनाभ्यां दत्ताः पञ्चाङ्गुलयस्तला–हस्तकाः कुड्यादिषु येषु, अथवा गोशीर्षसर-सरक्तचन्दनस्य सत्का दर्दरेण–चपेटाभिघातेन दर्दरेषु वा–सोपानवीथीषु दत्ताः पञ्चाङ्गुलयस्तला येषु तानि गोशीर्षस-रसरक्तचन्दनदर्दरदत्तपञ्चाङ्गुलितलानि, तथा कालागुरुः–कृष्णागुरुर्गन्धद्रव्यविशेषः प्रवरः–प्रधानः कुन्दुरुक्कः–चीडा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा:

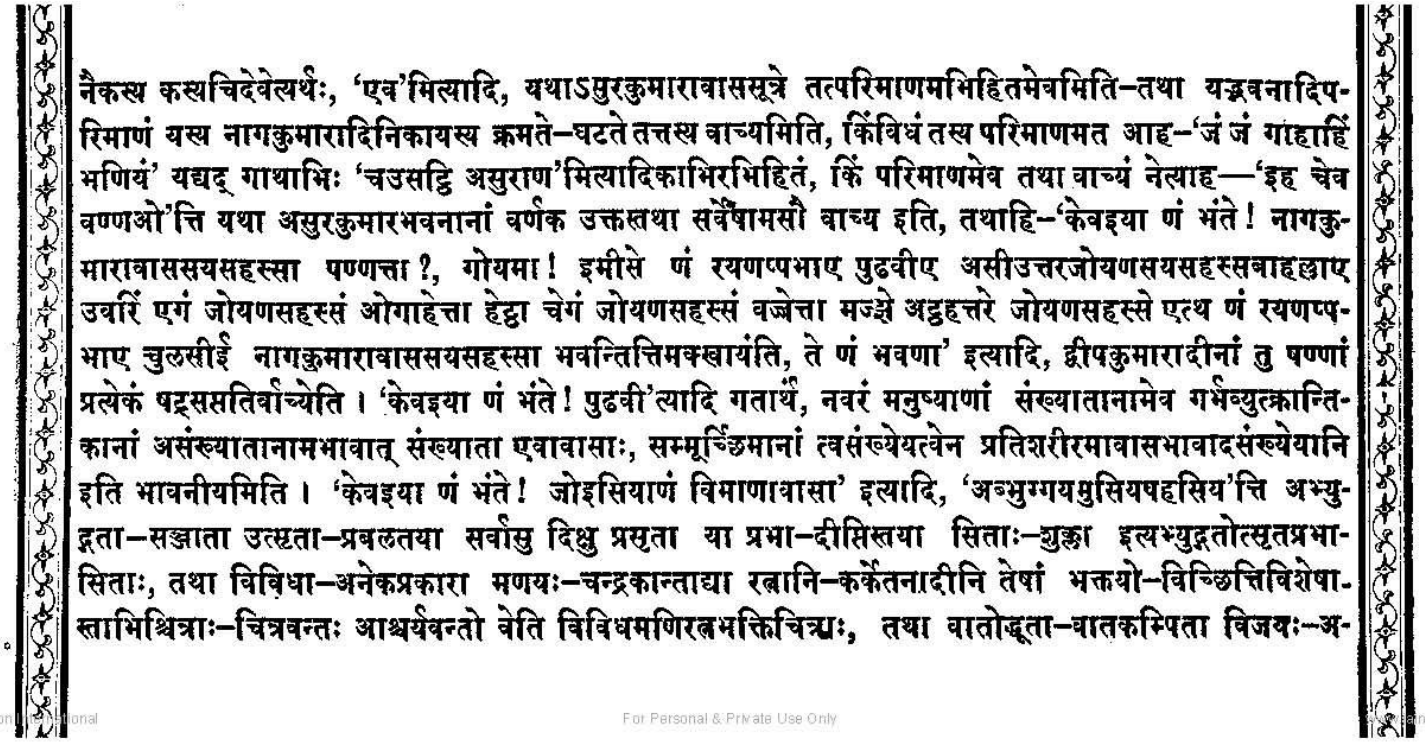
प्रत अनुक्रम [२३८--२४४]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥१३८॥

तुरुष्कः–सिल्हकं गन्धद्रव्यमेव एतानि च तानि 'डज्झंति'त्ति दह्यमानानि यानि तानि तथा तेषां यो धूमो 'मघमघेंत'त्ति अनुकरणशब्दोऽयं मघमघायमानो बहलगन्ध इत्यर्थः तेनोद्धुराणि–उत्कटानि यानि तानि तथा तानि च तान्यभिरामाणि–रमणीयानीति समासः, तथा सुगन्धयः–सुरभयो ये वरगन्धाः–प्रधानवासास्तेषां गन्धः–आमोदो येष्वस्ति तानि सुगन्धिवरगन्धिकानि, तथा गन्धवर्त्तिः–गन्धद्रव्याणां गन्धयुक्तिशास्त्रोपदेशेन निर्वर्त्तितगुटिका तद्भूतानि–तत्कल्पानीति गन्धवर्त्तिभूतानि प्रवरगन्धगुणानीत्यर्थः, तथा अच्छानि आकाशस्फटिकवत् 'सण्ह'त्ति श्लक्ष्णानि सूक्ष्मस्कन्धकनिष्पन्नत्वात् श्लक्ष्णदलनिष्पन्नपटवत् 'लण्ह'त्ति श्लक्ष्णानि मसृणानीत्यर्थः, घुटितपटवत्, 'घट्ठ'त्ति घृष्टानीव घृष्टानि खरशाणया पाषाणप्रतिमावत् 'मट्ठ'त्ति मृष्टानीव मृष्टानि सुकुमारशाणया पाषाणप्रतिमेव शोधितानि वा प्रमार्जनिकयेव, अत एव 'नीरय'त्ति नीरजांसि रजोरहितत्वात् 'निम्मल'त्ति निर्मलानि कठिनमलाभावात् 'वितिमिर'त्ति वितिमिराणि निरन्धकारत्वात् 'विसुद्ध'त्ति विशुद्धानि निष्कलङ्कत्वान्न चन्द्रवत् सकलङ्कानीत्यर्थः तथा 'सप्पह'त्ति सप्रभाणि सप्रभावाणि अथवा स्वेन–आत्मना प्रभान्ति–शोभन्ते प्रकाशन्ते वेति स्वप्रभाणि यतः 'समिरीय'त्ति समरीचीनि–सकिरणानि, अत एव 'सउज्जोय'त्ति सहोद्योतेन–वस्त्वन्तरप्रकाशनेन वर्त्तन्ते इति सोद्योतानि 'पासाईय'त्ति प्रासादीयानि मनःप्रसत्तिकराणि 'दरिसणिज्ज'त्ति दर्शनीयानि, तानि हि पश्यंश्चक्षुषा न श्रमं गच्छतीति भावः, 'अभिरूव'त्ति अभिरूपाणि कमनीयानि 'पडिरूव'त्ति प्रतिरूपाणि द्रष्टारं द्रष्टारं प्रति रमणीयानि

१५० भवनादिवर्णनम्. ॥१३८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



नैकस्य कस्यचिदेवेत्यर्थः, 'एव'मित्यादि, यथाऽसुरकुमारावाससूत्रे तत्परिमाणमभिहितमेवमिति–तथा यद्भवनादिपरिमाणं यस्य नागकुमारादिनिकायस्य क्रमते–घटते तत्तस्य वाच्यमिति, किंविधं तस्य परिमाणमत आह–'जं जं गाहाहिं भणियं' यद्यद् गाथाभिः 'चउसट्ठि असुराण'मित्यादिकाभिरभिहितं, किं परिमाणमेव तथा वाच्यं नेत्याह—'इह चेव वण्णओ'त्ति यथा असुरकुमारभवनानां वर्णक उक्तस्तथा सर्वेषामसौ वाच्य इति, तथाहि–'केवइया णं भंते! नागकुमारावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए असीउत्तरजोयणसयसहस्सबाहल्लाए उवरिं एगं जोयणसहस्सं ओगाहेत्ता हेट्ठा चेगं जोयणसहस्सं वज्जेत्ता मज्झे अट्ठहत्तरे जोयणसहस्से एत्थ णं रयणप्पभाए चुलसीई नागकुमारावाससयसहस्सा भवन्तित्तिमक्खायंति, ते णं भवणा' इत्यादि, द्वीपकुमारादीनां तु षण्णां प्रत्येकं षट्ससतिर्वाच्येति। 'केवइया णं भंते! पुढवी'त्यादि गतार्थं, नवरं मनुष्याणां संख्यातानामेव गर्भव्युत्क्रान्तिकानां असंख्यातानामभावात् संख्याता एवावासाः, सम्मूर्च्छिमानां त्वसंख्येयत्वेन प्रतिशरीरमावासभावादसंख्येयानि इति भावनीयमिति। 'केवइया णं भंते! जोइसियाणं विमाणावासा' इत्यादि, 'अब्भुग्गयमुसियपहसिय'त्ति अभ्युद्गता–सञ्जाता उत्सृता–प्रबलतया सर्वासु दिक्षु प्रसृता या प्रभा–दीप्तिस्तया सिताः–शुक्ला इत्यभ्युद्गतोत्सृतप्रभासिताः, तथा विविधा–अनेकप्रकारा मणयः–चन्द्रकान्ताद्या रत्नानि–कर्केतनादीनि तेषां भक्तयो–विच्छित्तिविशेषास्ताभिश्चित्राः–चित्रवन्तः आश्चर्यवन्तो वेति विविधमणिरत्नभक्तिचित्राः, तथा वातोद्धूता–वातकम्पिता विजयः–अ-

२४ सम०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा:

प्रत अनुक्रम [२३८--२४४]

भ्युदयस्तत्संसूचिका वैजयन्तीत्यभिधाना याः पताका अथवा विजया इति वैजयन्तीनां पार्श्वकर्णिका उच्यन्ते-तत्प्रधाना या वैजयंत्यस्ताश्च तद्वर्जिताः पताकाश्च छत्रातिच्छत्राणि च–उपर्युपरिस्थितातपत्राणि तैः कलिता–युक्ता वातोद्धूतविजयवैजयन्तीपताकाछत्रातिच्छत्रकलिता इति, तुङ्गा–उच्चैस्त्वगुणयुक्ता, अत एव 'गगनतलमणुलिहंतसिहर'त्ति गगनतलं–अम्बरतलमनुलिखद्–अभिलङ्घयच्छिखरं येषां ते गगनतलानुलिखच्छिखराः, तथा जालान्तरेषु–जालकमध्यभागेषु रत्नानि येषां ते जालान्तररत्नाः, इह प्रथमाबहुवचनलोपो द्रष्टव्यः, जालकानि च भवनभित्तिषु लोके प्रतीतान्येव तदन्तरेषु च शोभार्थं रत्नानि सम्भवन्त्येवेति, तथा पञ्जरोन्मीलिता इव–पञ्जरबहिष्कृता इव, यथा किल किञ्चिद्वस्तु पञ्जराद्–वंशादिमयप्रच्छादनविशेषाद्बहिःकृतमत्यन्तमविनष्टच्छायत्वाच्छोभते एवं तेऽपीति भावः, तथा मणिकनकानां सम्बन्धिनी स्तूपिका–शिखरं येषां ते मणिकनकस्तूपिकाकाः, तथा विकसितानि यानि शतपत्रपुण्डरीकाणि द्वारादौ प्रतिकृतित्वेन तिलकाश्च–भित्त्यादिषु पुण्ड्राणि रत्नमयाश्च ये अर्द्धचन्द्रा द्वाराग्रादिषु तैश्चित्रा ये ते विकसितशतपत्रपुण्डरीकतिलकरत्नार्द्धचन्द्रचित्राः, तथा अन्तर्बहिश्च श्लक्ष्णा मसृणा इत्यर्थः, तथा तपनीयं–सुवर्णविशेषस्तन्मय्या वालुकायाः–सिकतायाः प्रस्तटः–प्रतरो येषु ते तपनीयवालुकाप्रस्तटाः, अथवा सण्हशब्दस्य वालुकाविशेषणत्वात् श्लक्ष्णतपनीयवालुकाप्रस्तटा इति व्याख्येयं, तथा सुखस्पर्शाः शुभस्पर्शा वा, तथा सश्रीकं–सशोभं रूपं–आकारो येषां अथवा सश्रीकाणि–शोभावन्ति रूपाणि–नरयुग्मादीनि रूपकाणि येषु ते सश्रीकरूपाः, प्रासादनीया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथाः

प्रत अनुक्रम [२३८--२४४]

दर्शनीयाः अभिरूपाः प्रतिरूपा इति पूर्ववत् । 'केवइए'त्यादि, रत्नप्रभायाः पृथिव्या 'बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ'त्ति बहुसमरमणीयस्य भूमिभागस्य ऊर्द्धं–उपरि तथा चन्द्रमसः–सूर्यग्रहगणनक्षत्रतारारूपाणि णमित्यलङ्कारे किं?–'वीइवइत्त'त्ति व्यतिव्रज्य–व्यतिक्रम्येत्यर्थः, तारारूपाणि चेह तारका एवेति, तथा 'बहूनी'त्यादि, किमित्याह—ऊर्द्धम्–उपरि दूरमत्यर्थं व्यतिव्रज्य चतुरशीतिविमानलक्षाणि भवन्तीति सम्बन्धः, 'इतिमक्खाय'त्ति इति–एवंप्रकारा अथवा यतो भवन्ति तत आख्याताः सर्ववेदिनेति, 'ते णं'ति तानि विमानानि णमिति वाक्यालङ्कारे 'अच्चिमालिप्पभ'त्ति अर्चिर्मालिः–आदित्यस्तद्वत्प्रभान्ति–शोभन्ते यानि तान्यर्चिर्मालिप्रभाणि, तथा भासानां–प्रकाशानां राशिः–भासराशिः–आदित्यस्तस्य वर्णस्तद्वदाभा–छायावर्णो येषां केषांचित्तानि भासराशिवर्णाभानि, तथा 'अरय'त्ति अरजांसि स्वाभाविकरजोरहितत्वात् 'नीरय'त्ति नीरजांसि आगन्तुकरजोविरहात् 'निम्मल'त्ति निर्मलानि कक्खड(कर्कश)मलाभावात् 'वितिमिर'त्ति वितिमिराणि आहार्यान्धकाररहितत्वात् विशुद्धानि स्वाभाविकतमोविरहात् सकलदोषविरामाद्वा सर्वरत्नमयानि न दार्वादिदलमयानीत्यर्थः, अच्छान्याकाशस्फटिकवत् श्लक्ष्णानि सूक्ष्मस्कन्धमयत्वात् घृष्टानीव घृष्टानि खरशाणया पाषाणप्रतिमेव मृष्टानि सुकुमारशाणया पाषाणप्रतिमेवेति निष्पङ्का निकलङ्कविकलत्वात् कर्दमविशेषरहितत्वाद्वा निष्कङ्कटा–निष्कवचा निरावरणा निरुपघातेत्यर्थः छाया–दीप्तिर्येषां तानि निष्कण्टकच्छायानि सप्रभा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५०] + गाथा:

प्रत अनुक्रम [२३८--२४४]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥१४०॥

णि–प्रभावन्ति समरीचीनि–सकिरणानीत्यर्थः 'सोद्योतानि–वस्त्वन्तरप्रकाशनकारीणीत्यर्थः, 'पासाईए' त्यादि प्राग्वत् । 'सोहम्मे णं भंते! कप्पे केवइया विमाणावासा पण्णत्ता?, गोयमा! बत्तीसं विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता' एवमीशानादिष्वपि द्रष्टव्यं, एतदेवाह—'एवं ईसाणाइसु'त्ति, 'गाहाहिं भाणियव्वं'ति 'बत्तीस अट्ठवीसा'इत्यादिकाभिः पूर्वोक्तगाथाभिस्तदनुसारेणेत्यर्थः, प्रतिकल्पं भिन्नपरिमाणा विमानावासा भणितव्यास्तद्वर्णकश्च वाच्यो 'जाव ते णं विमाणे'त्यादि यावत् 'पडिरूवा', नवरमभिलापभेदोऽयं यथा "ईसाणे णं भंते! कप्पे केवइया विमाणावाससयसहस्सा पण्णत्ता?, गोयमा! अट्ठावीसं विमाणावाससयसहस्सा भवंतीतिमक्खाया, ते णं विमाणा जाव पडिरूवा' एवं सर्वे पूर्वोक्तगाथानुसारेण प्रज्ञापनाद्वितीयपदानुसारेण च वाच्यमिति ॥ अनन्तरं नारकादिजीवानां स्थानान्युक्तानि, अथ तेषामेव स्थितिमुपदर्शयितुमाह—

नेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं दस वाससहस्साइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई प०, अपज्जत्तगाणं नेरइयाणं भंते! केवइयं कालं ठिई प०?, जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणवि अंतोमुहुत्तं, पज्जत्तगाणं जहन्नेणं दस वाससहस्साइं अंतोमुहुत्तूणाइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तूणाइं, इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए एवं जाव विजयवेजयंतजयंतअपराजियाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई प०?, गोयमा! जहन्नेणं बत्तीसं सागरोवमाइं उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं, सव्वट्ठे अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता (सूत्रं १५१)

१५१ नारकादिस्थितिः ॥१४०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५१]

प्रत अनुक्रम [२४५]

'नेरइया णं भंते!' इत्यादि सुगमं, नवरं स्थितिः–नारकादिपर्यायेण जीवानामवस्थानकालः 'अपज्जत्तयाणं'ति नारकाः किल लब्धितः पर्याप्तका एव भवन्ति, करणतस्तूपपातकाले अन्तर्मुहूर्त्तं यावदपर्याप्तका एव भवन्ति ततः पर्याप्तकाः, ततस्तेषामपर्याप्तकत्वेन स्थितिर्जघन्यतोऽप्युत्कर्षतोऽपि चान्तर्मुहूर्त्तमेव, पर्याप्तकानां पुनरौधिक्येव जघन्योत्कृष्टा चान्तर्मुहूर्त्तोना भवतीति, अयं चेह पर्याप्तकापर्याप्तकविभागः–'नारयदेवा तिरिमणुयगब्भया जे असंखवासाऊ। एते उ अपज्जत्ता उववाए चेव बोद्धव्वा ॥ १ ॥ सेसा य तिरियमणुया लद्धिं पप्पोववायकाले य। दुहओविय भइयव्वा पज्जत्तियरे य जिणवयणं ॥२॥' ति, उक्ता सामान्यतो नारकाणां स्थितिर्विशेषतस्तामभिधातुमिदमाह—'इमीसे ण'मित्यादि, स्थितिप्रकरणं च सर्वं प्रज्ञापनाप्रसिद्धमित्यतिदिशन्नाह—'एव'मिति यथा प्रज्ञापनायां सामान्यपर्याप्तकापर्याप्तकलक्षणेन गमत्रयेण नारकाणां नारकविशेषाणां तिर्यगादिकानां च स्थितिरुक्ता एवमिहापि वाच्या, कियद्दूरं यावदित्याह–'जाव विजये'त्यादि, अनुत्तरसुराणामौधिकापर्याप्तकपर्याप्तकलक्षणं गमत्रयं यावदित्यर्थः, इह चैवमतिदिष्टसूत्राण्यर्थतो वाच्यानि रत्नप्रभानारकाणां भदन्त! कियती स्थितिः?, गौतम! जघन्येन दश वर्षसहस्राणि उत्कर्षतः सागरोपमं १, अपर्याप्तकरत्नप्रभापृथिवीनारकाणां भदन्त! कियन्तं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता?, गौतम! उभयथापि अन्तर्मुहूर्त्तमेव, पर्याप्तकानां तु सामान्योक्तैवान्तर्मुहूर्त्तोना वाच्या, एवं शेषपृथ्वीनारकाणां प्रत्येकं दशानामसुरादीनां पृथिवीकायिकानां तिरश्चां गर्भजेतरभेदानां मनुष्याणां व्यन्तराणामष्टविधानां ज्योतिष्काणां पञ्चप्रकाराणां सौधर्म्मादीनां

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैमानिकानां च गमत्रयं वाच्यं, कियद्दूरं यावदित्याह—'जाव विजये'त्यादि, इह च विजयादिषु जघन्यतो द्वात्रिंशत्सागरोपमाण्युक्तानि, गन्धहस्त्यादिष्वपि तथैव दृश्यते, प्रज्ञापनायां त्वेकत्रिंशदुक्तेति मतान्तरमिदं, पर्याप्तकापर्याप्तकगमद्वयमिह समूह्यम्, एवं सर्वार्थसिद्धिस्थितिरपि त्रिभिर्गमैर्वाच्येति ॥ अनन्तरं नारकादिजीवानां स्थितिरुक्तेदानीं तच्छरीराणामवगाहनाप्रतिपादनायाह—

कति णं भंते! सरीरा प०?, गोयमा! पंच सरीरा प०, तं०—ओरालिए वेउव्विए आहारए तेयए कम्मए, ओरालियसरीरे णं भंते। कइविहे प०?, गोयमा! पंचविहे प०, तं०—एगिंदियओरालियसरीरे जाव गब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरे य, ओरालियसरीरस्स णं भंते! केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं अंगुलअसंखेज्जतिभागं उक्कोसेणं साइरेगं जोयणसहस्सं, एवं जहा ओगाहणसंठाणे ओरालियपमाणं तहा निरवसेसं, एवं जाव मणुस्सेत्ति उक्कोसेणं तिण्णि गाउयाइं। कइविहे णं भंते! वेउव्वियसरीरे प०?, गोयमा दुविहे प०, एगिंदियवेउव्वियसरीरे य पंचिंदियवेउव्वियसरीरे अ, एवं जाव सणंकुमारे आढत्तं जाव अणुत्तराणं भवधारणिज्जा जाव तेसिं रयणी रयणी परिहायइ। आहारयसरीरे णं भंते! कइविहे पन्नत्ते?, गोयमा! एगाकारे प०, जइ एगाकारे प० किं मणुस्सआहारयसरीरे अमणुस्सआहारयसरीरे?, गोयमा! मणुस्सआहारगसरीरे णो अमणुस्सआहारगसरीरे, एवं जइ मणुस्सआहारगसरीरे किं गब्भवक्कंतियमणुस्सआहारगसरीरे संमुच्छिममणुस्सआहारगसरीरे?, गोयमा! गब्भवक्कंतियमणुस्सआहारयसरीरेनो संमुच्छिममणुस्सआहारयसरीरे, जइ गब्भवक्कंतिय० किं कम्मभूमिगा०अकम्मभूमिगा०?,गोयमा! कम्मभूमिगा० नो अकम्मभूमिगा०, जइ कम्मभूमिग० किं संखेज्जवासाउय० असंखेज्जवासाउय०?, गोयमा! संखेज्जवासाउय० नो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५२]

प्रत अनुक्रम [२४६]

असंखेज्जवासाउय०, जइ संखेज्जवासाउय० किं पज्जत्तय० अपज्जत्तय० ?, गोयमा ! पज्जत्तय० नो अपज्जत्तय०, जइ पज्जत्तय० किं समदिट्ठी० मिच्छदिट्ठी० सम्मामिच्छदिट्ठी० ?, गोयमा ! सम्मदिट्ठी० नो मिच्छदिट्ठी नो सम्मामिच्छदिट्ठी, जइ सम्मदिट्ठी० किं संजय० असंजय० संजयासंजय० ?, गोयमा ! संजय० नो असंजय० नो संजयासंजय०, जइ संजय० किं पम्मत्तसंजय० अपम्मत्तसंजय० ?, गोयमा ! पमत्तसंजय० नो अपमत्तसंजय०, जइ पमत्तसंजय० किं इड्ढिपत्त० अणिड्ढिपत्त० ?, गोयमा ! इड्ढिपत्त० नो अणिड्ढिपत्त० वयणा विभाणियव्वा आहारयसरीरे समचउरंससंठाणसंठिए, आहारयसरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?, गोयमा ! जहन्नेणं देसूणा रयणी उक्कोसेणं पडिपुण्णा रयणी । तेआसरीरे णं भंते ! कतिविहे पन्नत्ते ?, गोयमा ! पंचविहे पन्नत्ते, एगिंदियतेयसरीरे बितिचउपंच० एवं जाव गेवेज्जस्स णं भंते ! देवस्स णं मारणंतियसमुग्घाएणं समोहयस्स समाणस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पन्नत्ता ?, गोयमा ! सरीरप्पमाणमेत्ता विक्खंभबाहल्लेणं आयामेणं जहन्नेणं अहे जाव विज्जाहरसेढीओ उक्कोसेणं जाव अहोलोइयग्गामाओ, उड्ढं जाव सयाइं विमाणाइं, तिरियं जाव मणुस्सखेत्तं, एवं जाव अणुत्तरोववाइया, एवं कम्मयसरीरं भाणियव्वं (सूत्रं १५२)

'कइ णं भंते' इत्यादि कण्ठ्यं, नवरमेकेन्द्रियौदारिकशरीरमित्यादौ यावत्करणाद् द्वित्रिचतुष्पञ्चेन्द्रियौदारिकशरीराणि पृथिव्याद्येकेन्द्रियजलचरादिपञ्चेन्द्रियभेदेन प्रागुपदर्शितजीवराशिक्रमेण वाच्यानि, कियद्दूरमित्याह—'गब्भवक्कंतिये'त्यादि, 'ओरालियसरीरस्से'त्यादि, तत्रोदारं–प्रधानं तीर्थकरादिशरीराणि प्रतीत्य अथवोरालं–विस्तरालं विशालं समधिकयोजनसहस्रप्रमाणत्वात् वनस्पत्यादि प्रतीत्य अथवा उरालं–स्वल्पप्रदेशोपचितत्वात् बृहत्त्वाच्च भेण्ड-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५२]

प्रत अनुक्रम [२४६]

वदिति, अथवा मांसास्थिपूयबद्धं यच्छरीरं तत्समयपरिभाषया उरालमिति, तच्च तच्छरीरं चेति प्राकृतत्वादोरालियं शरीरं, तस्यावगाहन्ते यस्यां साऽवगाहना–आधारभूतं क्षेत्रं शरीराणामवगाहना शरीरावगाहना अथवौदारिकशरीरस्य जीवस्य औदारिकशरीररूपावगाहना सा भदन्त! केमहालिया–किम्महती प्रज्ञप्ता ?, तत्र जघन्येनाङ्गुलासंख्येयभागं यावत् पृथिव्याद्यपेक्षया उत्कर्षेण सातिरेकं योजनसहस्रमिति बादरवनस्पत्यपेक्षयेति 'एवं जाव माणुस्से'त्ति इह एवं यावत्करणादवगाहनासंस्थानाभिधानप्रज्ञापनैकविंशतितमपदाभिहितग्रन्थोऽर्थतोऽयमनुसरणीयः, तथाहि— एकेन्द्रियौदारिकस्य पृच्छा निर्वचनं च तदेव, तथा पृथिव्यादीनां चतुर्णां बादरसूक्ष्मपर्याप्तापर्याप्तानां जघन्यत उत्कृष्टतश्चाङ्गुलासंख्येयभागो, वनस्पतीनां बादरपर्याप्तानामुत्कर्षतः साधिकं योजनसहस्रं, शेषाणां त्वङ्गुलासंख्येयभाग एव, द्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां पर्याप्तानामुत्कर्षतोऽनुक्रमेण द्वादश योजनानि त्रीणि गव्यूतानि चत्वारि चेति, पञ्चेन्द्रियतिरश्चां जलचराणां पर्याप्तानां गर्भजानां संमूर्च्छनजानां चोत्कर्षतो योजनसहस्रं, एवं स्थलचराणां चतुष्पदानां संमूर्च्छनजानां पर्याप्तानां गव्यूतपृथक्त्वं गर्भव्युत्क्रान्तिकानां तेषां षड् गव्यूतानि उरःपरिसर्प्पाणां गर्भव्युत्क्रान्तिकानां योजनसहस्रं एषामेव सम्मूर्च्छनजानां योजनपृथक्त्वं भुजपरिसर्प्पाणां गर्भजानां गव्यूतपृथक्त्वं सम्मूर्च्छनजानां च धनुःपृथक्त्वं खचराणां गर्भजानां सम्मूर्छनजानां च धनुःपृथक्त्वमेव, तथा मनुष्याणां गर्भव्युत्क्रान्तिकानां गव्यूतत्रयं सम्मूर्च्छनजानामङ्गुलासंख्येयभागः, एष एव सर्वत्र जघन्यपदे अपर्याप्तपदे चेति, तथा 'कइविहे ण'मित्यादि स्पष्टं, नवरं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विविधा विशिष्टा वा क्रिया विक्रिया तस्यां भवं वैक्रियं विविधं विशिष्टं वा कुर्वन्ति तदिति वैकुर्विकमिति वा, तत्रै-केन्द्रियवैक्रियशरीरं वायुकायस्य पञ्चेन्द्रियवैक्रियशरीरं नारकादीनां 'एवं जावे'त्यादेरतिदेशादिदं द्रष्टव्यं, यदुत 'जइ एगिंदियवेउव्वियसरीरए किं वाउकाइयएगिंदियवेउव्वियसरीरए अवाउकाइयएगिंदियवेउव्वियसरीरए ?, गोयमा ! वाउकाइयएगिंदियसरीरए नो अवाउकाइय' इत्यादिनाऽभिलापेनायमर्थो दृश्यः, यदि वायोः किं सूक्ष्मस्य बादरस्य वा ?, बादरस्यैव, यदि बादरस्य किं पर्याप्तकस्यापर्याप्तकस्य वा ?, पर्याप्तकस्यैव, यदि पञ्चेन्द्रियस्य किं नारकस्य पञ्चे-न्द्रियतिरश्चो मनुजस्य देवस्य वा ?, गौतम ! सर्वेषां, तत्र नारकस्य सप्तविधस्य पर्याप्तकस्येतरस्य च, यदि तिरश्चः किं सम्मूर्च्छिमस्य इतरस्य वा ?, इतरस्य, तस्यापि संख्यातवर्षायुष एव पर्याप्तस्य, तस्यापि च जलचरादिभेदेन त्रिविध-स्यापि, तथा मनुष्यस्य गर्भजस्यैव, तस्यापि कर्मभूमिजस्यैव, तस्यापि संख्यातवर्षायुषः पर्याप्तकस्यैव, तथा देवस्य भवनवास्यादेः, तत्रासुरादेर्दशविधस्य पर्याप्तकस्येतरस्य च, एवं व्यन्तरस्याष्टविधस्य ज्योतिष्कस्य पञ्चविधस्य, तथा यदि वैमानिकस्य किं कल्पोपपन्नस्य कल्पातीतस्य ?, उभयस्यापि पर्याप्तस्यापर्याप्तस्य चेति, तथा वैक्रियं भदन्त ! किंसंस्थितं ?, उच्यते, नानासंस्थितं, तत्र वायोः पताकासंस्थितं, नारकाणां भवधारणीयमुत्तरवैक्रियं च हुण्डसंस्थितं, पञ्चेन्द्रियतिर्य-ग्मनुष्याणां नानासंस्थितं, देवानां भवधारणीयं समचतुरस्रसंस्थानसंस्थितमुत्तरवैक्रियं नानासंस्थितं, केवलं कल्पातीतानां भवधारणीयमेव, तथा वैक्रियशरीरावगाहना भदन्त ! किंमहती ?, गौतम ! जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागमुत्कर्षतः साति-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रेकं योजनलक्षं, वायोरुभयथा अङ्गुलासंख्येयभागं, एवं नारकस्य जघन्येन भवधारणीयं, उत्कर्षतः पञ्च धनुःशतानि, एषा च सप्तम्यां, षष्ठ्यादिषु त्वियमेव अर्द्धार्द्धहीनेति, उत्तरवैक्रिया तु जघन्यतः सर्वेषामप्यङ्गुलसंख्येयभागमुत्कर्षतश्च नारकस्य भवधारणीयद्विगुणेति, पञ्चेन्द्रियतिरश्चां योजनशतपृथक्त्वमुत्कर्षतः, मनुष्याणां तूत्कर्षतः सातिरेकं योजनानां लक्षं, देवानां तु लक्षमेवोत्तरवैक्रियं, भवधारणीया तु भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्म्मेशानानां सप्त हस्ताः सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः षट् ब्रह्मलान्तकयोः पञ्च महाशुक्रसहस्रारयोश्चत्वार आनतादिषु त्रयो ग्रैवेयकेषु द्वावनुत्तरेष्वेक इति, अनन्तरोक्तं सूत्र एवाह—'एवं जाव सणंकुमारे'त्यादि, एवमिति–दुविहे पन्नत्ते एगिन्दिय इत्यादिना पूर्वदर्शितक्रमेण प्रज्ञापनोक्तं वैक्रियावगाहनामानसूत्रं वाच्यं, कियद्दूरमित्याह–यावत्सनत्कुमारे आरब्धं भवधारणीयवैक्रियशरीरपरिहानिमिति गम्यं ततोऽपि यावदनुत्तराणि–अनुत्तरसुरसम्बन्धीनि भवधारणीयानि शरीराणि यानि भवन्ति तेषां रत्नी रत्निः परिहीयत इति, एतदर्थसूत्रं भवेत् तावदिति, पुस्तकान्तरे त्विदं वाक्यमन्यथापि दृश्यते, तत्राप्यक्षरघटनैतदनुसारेण कार्येति । 'आहारये'त्यादि सुगमं, नवरं 'एव'मिति यथा पूर्वं आलापकः परिपूर्ण उच्चारित एवमुत्तरत्रापि, तथाहि 'जइ मणुस्स'त्ति–जइ मणुस्साहारगसरीरे किं गब्भवक्कंतियमणुस्साहारगसरीरे किं संमुच्छिममणुस्साहारगसरीरे ?, गोयमा ! गब्भवक्कंतियमणुस्साहारगसरीरे नो संमुच्छिममणुस्साहारगसरीरे, जइ गब्भवक्कंतिय०'इत्यादि सर्वमूह्यं 'जाव जइ पमत्तसंजयसम्मद्दिट्ठिपज्जत्तयसंखेज्जवासाउयकम्मभूमिगब्भवक्कंतियमणुस्साहारगसरीरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५२]

प्रत अनुक्रम [२४६]

किं इड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तसंखेज्जवासाउयकम्मभूमिगगब्भवक्कंतियमणुस्साहारगसरीरे अणिड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तयसंखेज्जवासाउयकम्मभूमिगगब्भवक्कंतियमणुस्साहारगसरीरे ?, गोयमा !' द्वितीयस्य निषेधः प्रथमस्य चानुज्ञा वाच्या, एतदेवाह—'वयणा विभाणियव्व'त्ति सूचितवचनान्यप्युक्तन्यायेन सर्वाणि भणनीयानि, विभागेन पूर्णान्युच्चारणीयानीत्यर्थः, 'आहारय'त्ति 'आहारगसरीरस्स केमहालिया सरीरोगाहणा पण्णत्ता ?, गोयमा !' इत्येतत् सूचितं, 'जहण्णेणं देसूणा रयणी'ति कथम्?, उच्यते, तथाविधप्रयत्नविशेषतस्तथारम्भकद्रव्यविशेषतश्च प्रारम्भकालेऽप्युक्तप्रमाणभावात्, न हीहौदारिकादेरिवाङ्गुलासंख्येयभागमात्रता प्रारम्भकाले इति भावः । 'तेयासरीरे णं भंते'इत्यादि, एवं यावत्करणात् प्रज्ञापनासत्कैकविंशतितमपदोक्ता तैजसशरीरवक्तव्यता इह वाच्या, सा चेयमर्थतः—'एगिंदियतेयगसरीरे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते?, गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा—पुढवीजाववणस्सइकाइयएगिंदियतेयगसरीरे,' एवं जीवराशिप्ररूपणाऽनुसारेण सूत्रं भावनीयं, यावत् 'सव्वट्ठसिद्धगअणुत्तरोववाइयकप्पातीतवेमाणियदेवपंचेन्दियतेयगसरीरे णं भंते! किंसंठिए?, नाणासंठाणसंठिए' यस्य पृथिवादिजीवस्य यदौदारिकादिशरीरसंस्थानं तदेव तैजसस्य कार्म्मणस्य च, तथा जीवस्य मारणान्तिकसमुद्घातगतस्य कियती तैजसी शरीरावगाहना ?, शरीरमात्रा विष्कम्भबाहल्याभ्यामायामतस्तु जघन्येनाङ्गुलस्यासंख्येयभाग उत्कर्षत ऊर्द्धमधश्च लोकान्तालोकान्तं यावदेकेन्द्रियस्य, ततस्तत्रोत्पत्तिमङ्गीकृत्येति भावः, एवं सर्वेषामेवैकेन्द्रियाणां द्वीन्द्रियाणां तु आयामत उत्कर्षेण तिर्यग्लोकालोकान्तं यावत्प्रायस्तिर्यग्-

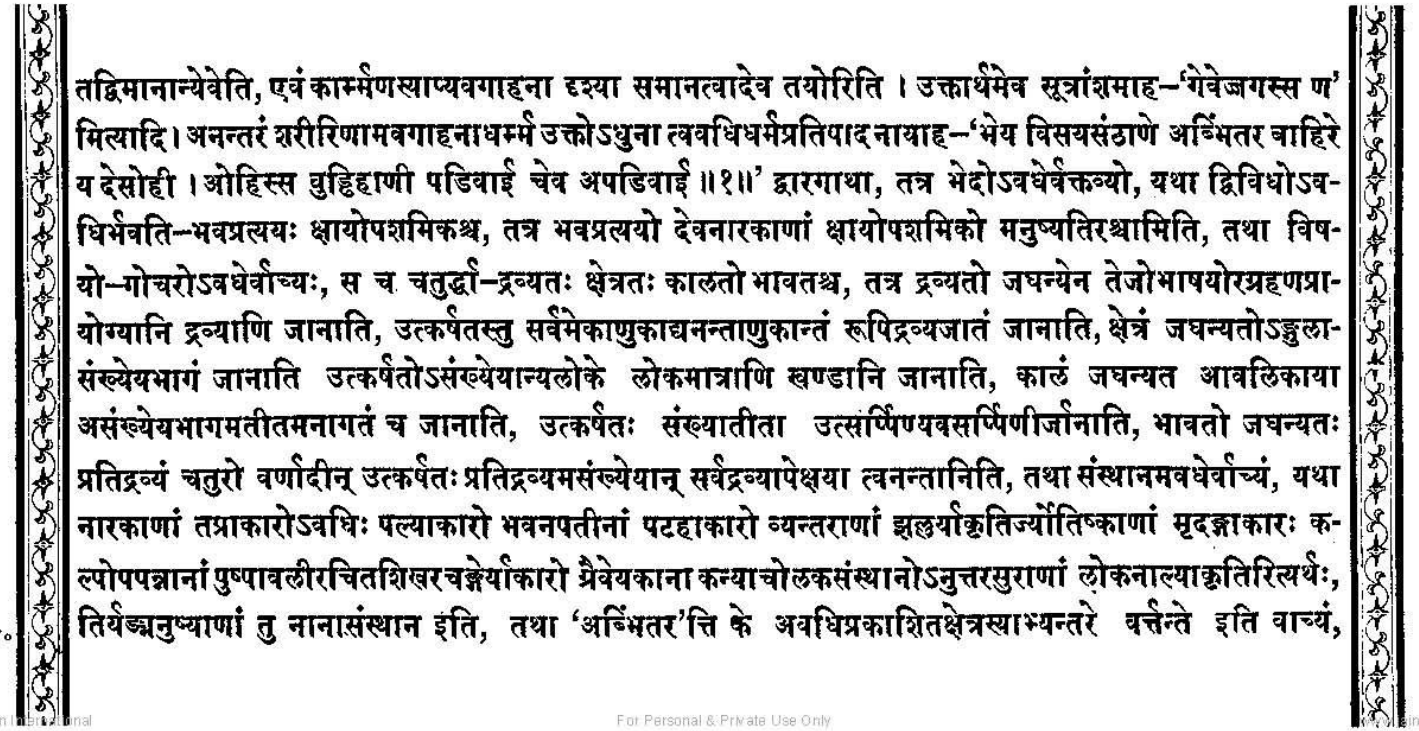
Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५२]

प्रत अनुक्रम [२४६]

लोके द्वीन्द्रियादितिरश्चां भावात्, नारकस्य जघन्यतो योजनसहस्रं, कथं ?, नरकात्पातालकलशस्य सहस्रमानं कुड्यं भित्त्वा तत्र मत्स्यतयोत्पद्यमानस्य, उत्कर्षेण तु अधःसप्तमीं यावत् सप्तमपृथ्वीनारकं समुद्रादिमत्स्येषूत्पद्यमानं प्रतीत्य, तिर्यक् स्वयम्भूरमणं यावत् ऊर्ध्वं पण्डकवनपुष्करिणीं यावत्, यतस्तयोर्नारक उत्पद्यते, न परतः, मनुष्यस्य लोकान्तं यावत्, भवनपतिव्यन्तरज्योतिष्कसौधर्मेशानदेवानां जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयतमभागः स्वस्थान एव पृथिव्यादितयोत्पादात्, उत्कर्षतस्तु अधस्तृतीयपृथ्वीं यावत् तिर्यक् स्वयम्भूरमणवहिर्वेदिकान्तं ऊर्ध्वमीषत्प्राग्भारां यावत्, यत एते शुभपर्याप्तबादरेष्वेव पृथिव्यादिषूत्पद्यन्ते अतो न परतोऽपीति, सनत्कुमारादिसहस्रारान्तदेवानां तु जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागः, कथं ?, पण्डकवनादिपुष्करिणीमज्जनार्थमवतारे मृतस्य तत्रैव मत्स्यतयोत्पद्यमानत्वात् पूर्वसम्बन्धिनीं वा मनुष्योपभुक्तस्त्रियं परिष्वज्य मृतस्य तद्गर्भे समुत्पादादिति, उत्कर्षतस्तु अधो यावन्महापातालकलशानां द्वितीयत्रिभागः, तत्र हि जलसद्भावान्मत्स्येषूत्पद्यमानत्वात्, तिर्यक् स्वयम्भूरमणसमुद्रं यावत्, ऊर्ध्वमच्युतं यावत्, तत्र हि सङ्गतिकदेवनिश्रया गतस्य मृत्वेहोत्पद्यमानत्वादिति, आनतादीनामच्युतानां तु जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येय भागः, कथं ?, इहागतस्य मरणकालविपर्यस्तमतेर्मनुष्योपभुक्तस्त्रियमप्यभिष्वज्य मृतस्य तत्रैवोत्पत्तेरिति, उत्कर्षतस्त्वधो यावदधोलोकग्रामान् तिर्यङ्मनुष्यक्षेत्रे ऊर्ध्वमच्युतविमानानि यावत् मनुष्येष्वेवोत्पद्यन्ते इति भावना तथैव कार्या, ग्रैवेयकानुत्तरोपपातिकदेवानां जघन्यतो विद्याधरश्रेणीं यावत् उत्कर्षतोऽधो यावदधोलोकग्रामान् तिर्यङ्मनुष्यक्षेत्रं ऊर्ध्वं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



तद्विमानान्येवेति, एवं कार्म्मणस्याप्यवगाहना द्रष्टव्या समानत्वादेव तयोरिति । उक्तार्थमेव सूत्रांशमाह–'गेवेज्जगस्स ण' मित्यादि। अनन्तरं शरीरिणामवगाहनाधर्म्म उक्तोऽधुना त्ववधिधर्मप्रतिपादनायाह–'भेय विसयसंठाणे अब्भिंतर बाहिरे य देसोही । ओहिस्स वुड्ढिहाणी पडिवाई चेव अपडिवाई ॥१॥' द्वारगाथा, तत्र भेदोऽवधेर्वक्तव्यो, यथा द्विविधोऽवधिर्भवति–भवप्रत्ययः क्षायोपशमिकश्च, तत्र भवप्रत्ययो देवनारकाणां क्षायोपशमिको मनुष्यतिरश्चामिति, तथा विषयो–गोचरोऽवधेर्वाच्यः, स च चतुर्द्धा–द्रव्यतः क्षेत्रतः कालतो भावतश्च, तत्र द्रव्यतो जघन्येन तेजोभाषयोरग्रहणप्रायोग्यानि द्रव्याणि जानाति, उत्कर्षतस्तु सर्वमेकाणुकाद्यनन्ताणुकान्तं रूपिद्रव्यजातं जानाति, क्षेत्रं जघन्यतोऽङ्गुलासंख्येयभागं जानाति उत्कर्षतोऽसंख्येयान्यलोके लोकमात्राणि खण्डानि जानाति, कालं जघन्यत आवलिकाया असंख्येयभागमतीतमनागतं च जानाति, उत्कर्षतः संख्यातीता उत्सर्प्पिण्यवसर्प्पिणीर्जानाति, भावतो जघन्यतः प्रतिद्रव्यं चतुरो वर्णादीन् उत्कर्षतः प्रतिद्रव्यमसंख्येयान् सर्वद्रव्यापेक्षया त्वनन्तानिति, तथा संस्थानमवधेर्वाच्यं, यथा नारकाणां तप्राकारोऽवधिः पल्याकारो भवनपतीनां पटहाकारो व्यन्तराणां झल्लर्याकृतिर्ज्योतिष्काणां मृदङ्गाकारः कल्पोपपन्नानां पुष्पावलीरचितशिखरचङ्गेर्याकारो ग्रैवेयकाना कन्याचोलकसंस्थानोऽनुत्तरसुराणां लोकनाल्याकृतिरित्यर्थः, तिर्यङ्मनुष्याणां तु नानासंस्थान इति, तथा 'अब्भिंतर'त्ति के अवधिप्रकाशितक्षेत्रस्याभ्यन्तरे वर्त्तन्ते इति वाच्यं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५२]

प्रत अनुक्रम [२४६]

यथा 'नेरइयदेवतित्थंकरा य ओहिस्सऽवाहिरा हुंती'त्यादि, तथा 'बाहिरे य'त्ति केऽवधिक्षेत्रस्य बाह्या भवन्तीति वाच्यं, तत्र शेषा जीवा बाह्यावधयोऽभ्यन्तरावधयश्च भवन्ति, तथा 'देसोहि'त्ति अवधिप्रकाश्यवस्तुनो देशप्रकाशी अवधिर्देशावधिः स केषां भवतीति वाच्यं, तद्विपरीतस्तु सर्वावधिः, तत्र मनुष्याणां उभयमन्येषां देशावधिरेव, यतः सर्वावधिः केवलज्ञानलाभप्रत्यासत्तावेवोत्पद्यत इति, तथाऽवधेर्वृद्धिर्हानिश्च वाच्या, यो येषा भवति, तत्र तिर्यग्मनुष्याणां वर्द्धमानो हीयमानश्च भवति, शेषाणामवस्थित एष, तत्र वर्द्धमानोऽङ्गुलासंख्येयभागादि दृष्ट्वा बहु बहुतरं पश्यति, विपरीतस्तु हीयमान इति, तथा प्रतिपाती चाप्रतिपाती चावधिर्वाच्यः, तत्रोत्कर्षतो लोकमात्रः प्रतिपात्यतः परमप्रतिपाती, तत्र भवप्रत्ययस्तं भवं यावन्न प्रतिपतति, क्षायोपशमिकस्तूभयथेति । एतदेव दर्शयति—

कइविहे णं भंते! ओही पन्नत्ता ?, गोयमा! दुविहा पन्नत्ता, भवपच्चइए य खओवसमिए य, एवं सव्वं ओहिपदं भाणियव्वं, सीया य दव्व सारीर साया तह वेयणा भवे दुक्खा । अब्भुवगमुवक्कमिया णीयाए चेव अणियाए ॥ १ ॥ नेरइया णं भंते! किं सीतं वेयणं वेयंति उसिणं वेयणं वेयंति सीतोसिणं वेयणं वेयंति ?, गोयमा! नेरइया० एवं चेव वेयणापदं भाणियव्वं ॥ कइ णं भन्ते! लेसाओ पं० ?, गो०! छ लेसाओ पं०, तं०—किण्हा नीला काऊ तेऊ पम्हा सुक्का, एवं लेसापयं भाणियव्वं ॥ अणंतरा य आहारे आहाराभोगणा इय। पोग्गला नेव जाणंति, अज्झवसाणे य सम्मत्ते ॥१॥ नेरइया णं भंते! अणंतराहारा तओ निव्वत्तणया तओ परियाइयणया तओ परिणामणया तओ परियारणया तओ पच्छा विकुव्वणया ?, हंता गोयमा! एवं आहारपदं भाणियव्वं (सूत्रं१५३)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५३]

प्रत अनुक्रम [२४७--२५१]

'कइविहे'इत्यादि, अत्रावसरे प्रज्ञापनायास्त्रयस्त्रिंशत्तमं पदमन्यूनमध्येयमिति, अनन्तरमुपयोगविशेषः क्षायोपशमिको जीवपर्यायः उक्तोऽधुना स एवौदयिको वेदनालक्षणोऽभिधीयते–'सीया'इत्यादि द्वारगाथा, तत्र 'सीया य'त्ति वशब्दोऽनुक्तसमुच्चये तेन त्रिविधा वेदना–शीता उष्णा शीतोष्णा चेति, तत्र शीतामुष्णां च वेदयन्ति नारकाः, शेषास्त्रिविधामपि, 'दव्वे'त्ति उपलक्षणत्वाच्चतुर्विधा वेदना द्रव्यादिभेदेन, तत्र पुद्गलद्रव्यसम्बन्धात् द्रव्यवेदना नारकाद्युपपातक्षेत्रसम्बन्धात् क्षेत्रवेदना नारकाद्यायुःकालसम्बन्धात् कालवेदना वेदनीयकर्म्मोदयाद्भाववेदना, तत्र नारकादयो वैमानिकान्ताश्चतुर्विधामपि वेदनां वेदयन्तीति, तथा 'सारीर'त्ति त्रिविधा वेदना शारीरी मानसी शारीरमानसी च, तत्र संज्ञिपञ्चेन्द्रियाः सर्वे त्रिविधामपि इतरे तु शारीरीमेवेति, तथा 'साय'त्ति त्रिविधा वेदना–साता असाता सातासाता चेति, तत्र सर्वे जीवाः त्रिविधामपि वेदयन्तीति, 'तह वेयणा भवे दुक्ख'त्ति त्रिविधा वेदना–सुखा दुःखा सुखदुःखा चेति, तत्र सर्वेऽपि त्रिविधामपि वेदयन्ति, नवरं सातासातयोः सुखदुःखयोश्चायं विशेषः–सातासाते क्रमेणोदयप्राप्तवेदनीयकर्म्मपुद्गलानुभवलक्षणे सुखदुःखे तु परेण उदीर्यमाणवेदनीयकर्म्मानुभवलक्षणे, तथा 'अब्भुवगमुवक्कमिय'त्ति द्विधा वेदना–आभ्युपगमिकी औपक्रमिकी चेति, तत्राद्यामभ्युपगमतो वेदयन्ति जीवा यथा साधवः शिरोलुञ्चनब्रह्मचर्यादिकां द्वितीया तु स्वयमुदीर्णस्योदीरणाकरणेन वोदयमुपनीतस्य वेदनीयस्यानुभवतः, तत्र पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्या द्विविधामपि शेषास्त्वौपक्रमिकीमेव वेदयन्तीति, तथा 'णीयाए चेव अणियाए'त्ति द्विविधा वेदना,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५३]

प्रत अनुक्रम [२४७--२५१]

तत्र निदया आभोगतः अनिदया त्वनाभोगतः, तत्र संज्ञिन उभयतोऽसंज्ञिनस्त्वनिदयेति, एतद्द्वारविवरणाय 'नेरइयाण'मित्यादि, इहावसरे प्रज्ञापनायाः पञ्चत्रिंशत्तमं वेदनाख्यं पदमध्येयमिति । अनन्तरं वेदना प्ररूपिता, सा च लेश्यावत एव भवतीति लेश्याप्ररूपणायाह—'कइ णं भंते'इत्यादि, इह स्थाने प्रज्ञापनायाः सप्तदशं षड्डुद्देशकं लेश्याभिधानं पदमध्येतव्यं, तच्चास्माभिरतिबहुत्वादर्थतोऽपि न लिखितमिति तत एवावधारणीयमिति । अनन्तरं लेश्या उक्ताः, सलेश्या एव चाहारयन्तीत्याहारप्ररूपणायाह—'अणंतरा ये'त्यादिद्वारश्लोकमाह, तत्र 'अणंतरा य आहारे'त्ति अनन्तराश्च—अव्यवधानाश्चाहारविषये अनन्तराहारा जीवा वाच्या इत्यर्थः, तथाऽऽहारस्याभोगता, अपिचेति वचनादनाभोगता च वाच्या, तथा पुद्गलान्न जानन्त्येव एवकारान्न पश्यन्तीति चतुर्भङ्गी सूचिता, तथा अध्यवसानानि सम्यक्त्वं च वाच्यमिति, तत्राद्यद्वारार्थमाह—'नेरइए'त्यादि, 'अनन्तराहार'त्ति उपपातक्षेत्रप्राप्तिसमय एवाहारयन्तीत्यर्थः 'ततो निवत्तणया'इति ततः शरीरनिर्वृत्तिः, ततो 'परियाइयणय'त्ति ततः पर्यादानमङ्गप्रत्यङ्गैः समन्तात्पा (दादा)नमित्यर्थः, 'ततो परिणामय'त्ति ततः शब्दादिविषयोपभोग इत्यर्थः 'ततो पच्छा विउवणय'त्ति ततः पश्चाद्विक्रिया नानारूपा इत्यर्थः, हन्ता गौतम!, एवमेतदिति भावः, एवं सर्वेषां पञ्चेन्द्रियाणां वक्तव्यं, नवरं देवानां पूर्वं विकुर्वणा पश्चात्परिचारणा शेषाणां तु पूर्वं परिचारणा पश्चाद्विकुर्वणा, एकेन्द्रियादीनामप्येवं प्रश्ने, निर्वचने तु यत्र वैक्रियसम्भवो नास्ति तत्र विकुर्वणा निषेधनीयेति, 'एवमाहारपयं भाणियव्वं'ति यथाऽऽद्यद्वारस्य प्रश्न उक्तस्तथा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५३]

प्रत अनुक्रम [२४७--२५१]

तदुत्तरं शेषद्वाराणि च भणद्भिः प्रज्ञापनायाश्चतुस्त्रिंशत्तमं परिचारणापदाख्यं पदमिह भणितव्यमिति, इदं चात्राहारविचारप्रधानतया आहारपदमुक्तमिति, तत्पुनरेवमर्थतस्तत्र 'आहाराभोगणाइय'त्ति एतस्य विवरणं–नारकाणा किमाभोगनिर्वर्त्तित आहारोऽनाभोगनिर्वर्त्तितो वा ?, उभयथापीति निर्वचनं, एवं सर्वेषां नवरमेकेन्द्रियाणामनाभोगनिर्वर्त्तित एवेति, तथा 'पोग्गला नेव जाणंति'त्ति अस्यार्थः–नारका यान् पुद्गलान् आहारयन्ति तानवधिनापि न जानन्ति अविषयत्वात्तदवधेस्तेषां, न पश्यन्ति चक्षुषाऽपि लोमाहारत्वात् तेषां, एवमसुरादयस्त्रीन्द्रियान्ताः, केवलं एकेन्द्रिया अनाभोगाहारत्वाद्वित्रीन्द्रियाश्च मत्यज्ञानित्वान्न जानन्ति चक्षुरिन्द्रियाभावाच्च न पश्यन्तीति, चतुरिन्द्रियास्तु चक्षुःसद्भावेऽपि मत्यज्ञानित्वात् प्रक्षेपाहारं न जानन्ति, चक्षुषापि न पश्यन्ति, तथा त एव लोमाहारमाश्रित्य न जानन्ति न पश्यन्तीति व्यपदिश्यते, चक्षुषोऽविषयत्वात्तस्य, पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो मनुष्याश्च केचिज्जानन्ति पश्यन्ति चावधिज्ञानादिषु युक्ताः लोमाहारप्रक्षेपाहाराच्च, तथाऽन्ये जानन्ति न पश्यन्ति लोमाहारं जानन्त्यवधिना न पश्यन्ति चक्षुषा, तथा अन्ये न जानन्ति पश्यन्ति, तत्र न जानन्ति प्रक्षेपाहारं मत्यज्ञानित्वात्पश्यन्ति चक्षुषा, तथा अन्ये न जानन्ति न पश्यन्ति लोमाहारं निरतिशयत्वादिति, व्यन्तरज्योतिष्का नारकवत्, वैमानिकास्तु ये सम्यग्दृष्टयस्ते जानन्ति विशिष्टावधित्वात् पश्यन्ति चक्षुषोऽपि विशिष्टत्वात्, मिथ्यादृष्टयस्तु न जानन्ति न पश्यन्ति, प्रत्यक्षपरोक्षज्ञानयोस्तेषामस्पष्टत्वादिति, तथा 'अज्झवसाणे य'त्ति द्वारं, नारकादीनां प्रशस्ताप्रशस्तान्यसंख्येयान्यध्यवसायस्थाना-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५३]

प्रत अनुक्रम [२४७--२५१]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥१४७॥

नीति, तथा 'संमत्ते'त्ति द्वारं, तत्र नारकाः किं सम्यक्त्वाभिगमिनो मिथ्यात्वाभिगमिनः सम्यक्त्वमिथ्यात्वाभिगमिनश्चेति, त्रिविधा अपि, एवं सर्वेऽपि, नवरमेकेन्द्रियविकलेन्द्रिया मिथ्यात्वाभिगमिन एवेति । अनन्तरमाहारप्ररूपणा कृता आहारश्चायुर्बन्धवतामेव भवतीत्यायुर्बन्धप्ररूपणायाह—

कइविहे णं भंते! आउगबन्धे पन्नत्ते?, गोयमा! छव्विहे आउगबन्धे पन्नत्ते, तंजहा–जाइनामनिहत्ताउए गतिनामनिहत्ताउए ठिइनामनिहत्ताउए पएसनामनिहत्ताउए अणुभागनामनिहत्ताउए ओगाहणानामनिहत्ताउए, नेरइयाणं भंते! कइविहे आउगबन्धे पन्नत्ते?, गोयमा! छव्विहे पन्नत्ते, तंजहा–जातिनाम० गइनाम० ठिइनाम० पएसनाम० अणुभागनाम० ओगाहणानाम० एवं जाव वेमाणियाणं ॥ निरयगई णं भंते! केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पं०?, गोयमा! जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं बारस मुहुत्ते, एवं तिरियगई मणुस्सगई देवगई, सिद्धिगई णं भंते! केवइयं कालं विरहिया सिज्झणयाए पन्नत्ता?, गोयमा! जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासे, एवं सिद्धिवज्जा उव्वट्टणा, इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केवइयं कालं विरहिया उववाएणं?, एवं उववायदंडओ भाणियव्वो उवट्टणादंडओ य, नेरइया णं भंते! जातिनामनिहत्ताउगं कति आगरिसेहिं पगरंति?, गो० सिय १ सिय २।३।४।५।६।७। सिय अट्ठहिं, नो चेव णं नवहिं, एवं सेसाणवि आउगाणि जाव वेमाणियत्ति ॥ सूत्रं १५४ ॥

'कइविहे'त्यादि, तत्रायुषो बन्धनिषेक आयुर्बन्धः, निषेकश्च प्रतिसमयं बहुहीनहीनतरस्य दलिकस्यानुभवनार्थं रचना, निधत्तमपीह निषेक उच्यते, अत एवाह—'जाइनामनिधत्ताउए, जातिनाम्ना सह निधत्तं–निषिक्तमनुभ-

१५४ आयुर्बन्धभेदोत्पादोद्वर्त्तनाविरहाकर्षाः ॥१४७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५४]

प्रत अनुक्रम [२५२]

वनार्थं बह्वल्पाल्पतरक्रमेण व्यवस्थापितमायुर्जातिनामनिधत्तायुः, अथ किमर्थं जात्यादिनामकर्म्मणाऽऽयुर्विशेष्यते ?, आयुष्कस्य प्राधान्योपदर्शनार्थं, यस्मान्नारकाद्यायुरुदये सति जात्यादिनामकर्म्मणामुदयो भवति, नारकादिभवोपग्राहकं चायुरेव, यस्माद्व्याख्याप्रज्ञप्त्यामुक्तं–"नेरइए णं भंते! नेरइएसु उववज्जइ अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ ?, गोयमा! नेरइए नेरइएसु उववज्जइ नो अनेरइए नेरइएसु उववज्जइ" एतदुक्तं भवति–नारकायुःप्रथमसमयसंवेदनकाल एव नारक इत्युच्यते, तत्सहचारिणां च पञ्चेन्द्रियजात्यादिनामकर्म्मणामप्युदय इति, तथा 'गतिनामनिधत्ताउए'त्ति गतिर्नारकगत्यादिः तल्लक्षणं नामकर्म्म तेन सह निधत्तं–निषिक्तमायुर्गतिनामनिधत्तायुः, तथा 'ठिइनामनिधत्ताउए'त्ति स्थितिर्यत् स्थातव्यं तेन भावेनायुर्दलिकस्य सैव नामः–परिणामो धर्म इत्यर्थः स्थितिनाम, गतिजात्यादिकर्म्मणां च प्रकृत्यादिभेदेन चतुर्विधानां यः स्थितिरूपो भेदस्तत् स्थितिनाम तेन सह निधत्तमायुः स्थितिनामनिधत्तायुरिति, तथा 'पएसनामनिधत्ताउए'त्ति प्रदेशानां–प्रमितपरिमाणानामायुःकर्मदलिकानां नाम–परिणामो यः तथाऽऽत्मप्रदेशेषु सम्बन्धनं स प्रदेशनाम जातिगत्यवगाहनाकर्म्मणां वा यत्प्रदेशरूपं नामकर्म्म तत्प्रदेशनाम तेन सह निधत्तमायुः प्रदेशनामनिधत्तायुरिति, तथा 'अणुभागनामनिधत्ताउए'त्ति अनुभागः–आयुष्कर्मद्रव्याणां तीव्रादिभेदो रसः स एव तस्य वा नामः–परिणामोऽनुभागनाम अथवा गत्यादीनां नामकर्मणामनुभागबन्धरूपो भेदोऽनुभागनाम तेन सह निधत्तमायुरनुभागनामनिधत्तायुरिति, तथा 'ओगाहणानामनिधत्ताउए'त्ति अवगाहते जीवो यस्यां साऽवगाहना–शरीरमौदा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रिकादि पञ्चविधं तत्कारणं कर्मोप्यवगाहना तद्रूपं नामकर्म्मावगाहनानाम तेन सह निधत्तमायुरवगाहनानामनिधत्तायुरिति॥ 'नेरइयाण'मित्यादि स्पष्टं। अनन्तरमायुर्बन्ध उक्तोऽधुना बद्धायुषां नारकादिगतिषूपपातो भवतीति तद्विरहकालप्ररूपणायाह—'निरयगई ण'मित्यादि कण्ठ्यं, नवरं यद्यपि रत्नप्रभादिषु चतुर्विंशतिमुहूर्त्तादिविरहकालो, यथोक्तं—'चउवीसई मुहुत्ता सत्त अहोरत्त तहय पन्नरसा। मासो य दो य चउरो छम्मासा विरहकालोत्ति॥ १॥' तथापि सामान्यगत्यपेक्षया द्वादश मुहूर्त्ता उक्ताः, तथा एवंकरणाद्यत्तिर्यङ्मनुष्यगत्योः सामान्येन द्वादश मुहूर्त्ता उक्ताः तद्भेदव्युत्क्रान्तिकापेक्षया, दैवगतौ तु सामान्यत एव, 'सिद्धिवज्जा उवट्टणे'ति नारकादिगतिषु द्वादशमुहूर्त्तो विरहकाल उद्वर्त्तनायामिति, सिद्धानां तूद्वर्त्तनैव नास्ति, अपुनरावृत्तित्वात्तेषामिति, 'इमीसे णं रयणप्पभाए पुढवीए नेरइया केवइयं कालं विरहिया उववाएणं पण्णत्ता ?, एवं उववायदंडओ भाणियव्वो'त्ति, स चायं—"गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं चउवीसं मुहुत्ताइं' अनेनाभिलापेन शेषा वाच्याः, तथाहि—'सक्करप्पभाए णं उक्कोसेणं सत्त राइंदियाणि वालुयप्पभाए अद्धमासं पंकप्पभाए मासं धूमप्पभाए दो मासा तमप्पभाए चउरो मासा अहेसत्तमाए छमास'त्ति असुरकुमारा 'चउवीसइ मुहुत्ता' एवं जाव थणियकुमारा, पुढविकाइया अविरहिया उववाएणं एवं सेसावि, बेइंदिया अंतोमुहुत्तं, एवं तेइंदियचउरिंदियसंमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियावि गब्भवक्कंतियतिरिया मणुया य बारस मुहुत्ता संमुच्छिममणुस्सा चउवीसई मुहुत्ता विरहिआ उववाएणं, वंतरजोइसिया चउवीसं मुहुत्ताइं, एवं सोहम्मी-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साणेवि, सणंकुमारे णव दिणाइं वीसा य मुहुत्ता, माहिंदे बारस दिवसाइं दस मुहुत्ता बंभलोए अद्धतेवीसं राइंदियाइं लंतए पणयालीसं महासुक्के असीइं सहस्सारे दिणसयं आणए संखेज्जा मासा एवं पाणएवि आरणे संखेज्जा वासा एवं अच्चुएवि गेवेज्जपत्थडेसु तिसु कमेण संखेज्जाइं वाससयाइं वाससहस्साइं वाससयसहस्साइं विजयाइसु असंखेज्जं कालं, सव्वट्ठसिद्धे पलिओवमस्सासंखेज्जइभागं'ति 'एवं उवट्टणादंडओवि'त्ति । उपपात उद्वर्त्तना चायुर्बन्धे एव भवतीत्यायुर्बन्धे विधिविशेषप्ररूपणायाह—'नेरइए'त्यादि कण्ठ्यं, नवरं आकर्षो नाम कर्मपुद्गलोपादानं, यथा गौः पानीयं पिबन्ती मयेन पुनः पुनः आवृहति, एवं जीवोऽपि तीव्रेणायुर्बन्धाध्यवसानेन सकृदेव जातिनामनिधत्तायुः प्रकरोति, मन्देन द्वाभ्यामाकर्षाभ्यां मन्दतरेण त्रिभिर्मन्दतमेन चतुर्भिः पञ्चभिः षड्भिः सप्तभिरष्टाभिर्वा न पुनर्नवभिः, एवं शेषाण्यपि, 'आउगाणि'त्ति गतिनामनिधत्तायुरादीनि वाच्यानि यावद्वैमानिका इति, अयं चैकाद्याकर्षनियमो जात्यादिनामकर्मणामायुर्बन्धकाल एव बध्यमानानां शेषकालमायुर्बन्धपरिसमाप्तेरुत्तरकालमपि बन्धोऽस्त्येव, एषां ध्रुवबन्धिनीनां च ज्ञानावरणादिप्रकृतीनां प्रतिसमयमेव बन्धनिर्वृत्तिर्भवति, एतास्तु परावृत्य बध्यन्त इति, अनन्तरं जीवानामायुर्बन्धप्रकार उक्तोऽधुना तेषामेव संहननसंस्थानवेदप्रकारमाह—

कइविहे णं भंते! संघयणे पन्नत्ते?, गोयमा! छव्विहे संघयणे पन्नत्ते, तंजहा–वइरोसभनारायसंघयणे रिसभनारायसंघयणे नारायसंघयणे अद्धनारायसंघयणे कीलियासंघयणे छेवट्टसंघयणे, नेरइया णं भंते! किंसंघयणी?, गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

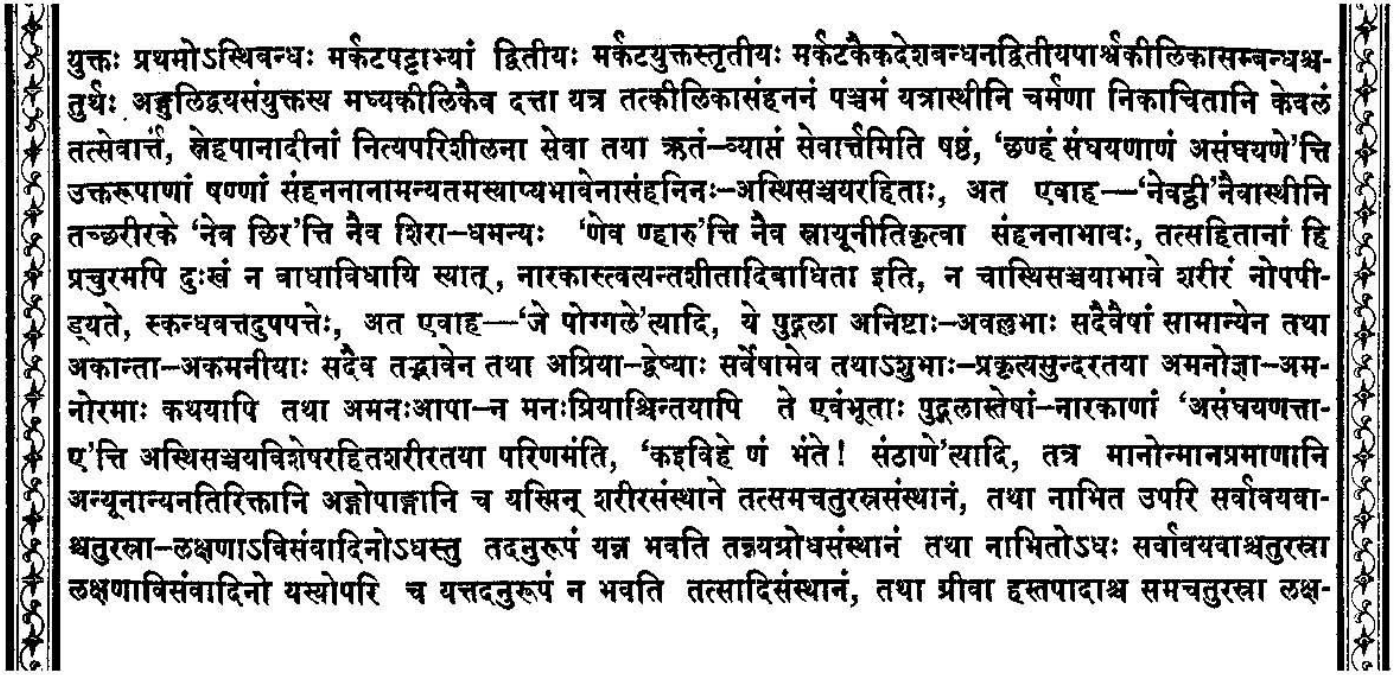
प्रत सूत्रांक [१५५]

प्रत अनुक्रम [२५३]

णेव अट्ठि णेव छिरा णेव ण्हारू जे पोग्गला अणिट्ठा अकंता अप्पिया अणाएज्जा असुभा अमणुण्णा अमणामा अमणाभिरामा ते तेसिं असंघयणत्ताए परिणमंति, असुरकुमारा णं भंते! किंसंघयणा पन्नत्ता?, गोयमा! छण्हं संघयणाणं असंघयणी णेवट्ठी णेव छिरा णेव ण्हारू जे पोग्गला इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा मणाभिरामा ते तेसिं असंघयणत्ताए परिणमंति, एवं जाव थणियकुमाराणं, पुढवीकाइया णं भंते! किंसंघयणी पन्नत्ता?, गोयमा! छेवट्ठसंघयणी प०, एवं जाव संमुच्छिमपञ्चिन्दियतिरिक्खजोणियत्ति, गब्भवक्कंतिया छव्विहसंघयणी, संमुच्छिममणुस्सा छेवट्ठसंघयणी गब्भवक्कंतियमणुस्सा छव्विहे संघयणे प०, जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतरजोइसियवेमाणिया य ॥ कइविहे णं भंते! संठाणे पन्नत्ते?, गोयमा! छव्विहे संठाणे प०, तं०— समचउरंसे १ णिग्गोहपरिमण्डले २ साइए ३ वामणे ४ खुज्जे ५ हुंडे ६, णेरइया णं भंते! किंसंठाणी प०?, गोयमा! हुंडसंठाणी प०, असुरकुमारा किंसंठाणी प०?, गोयमा! समचउरंससंठाणसंठिया प०, एवं जाव थणियकुमारा, पुढवी मसूरसंठाणा प०, आऊ थिबुयसंठाणा पन्नत्ता, तेऊ सूइकलावसंठाणा पन्नत्ता, वाऊ पडागासंठाणा पन्नत्ता, वणस्सई नाणासंठाणसंठिया पन्नत्ता, बेइंदियतेइंदियचउरिंदियसंमुच्छिमपंचेंदियतिरिक्खा हुंडसंठाणा प०, गब्भवक्कंतिया छव्विहसंठाणा संमुच्छिममणुस्सा हुंडसंठाणसंठिया पन्नत्ता, गब्भवक्कंतियाणं मणुस्साणं छव्विहा संठाणा पन्नत्ता, जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतरजोइसियवेमाणियावि ॥ (सूत्रं१५५)

'कइविहे ण'मित्यादि, दण्डकत्रयं कण्ठ्यं, नवरं संहननमस्थिबन्धविशेषः, मर्कटस्थानीयमुभयोः पार्श्वयोरस्थि नाराचं ऋषभस्तु पट्टः वज्रं कीलिका, वज्रश्च ऋषभश्च नाराचं च यत्रास्ति तद्वज्रर्षभनाराचसंहननं, मर्कटपट्टकीलिकारचना-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



युक्तः प्रथमोऽस्थिबन्धः मर्कटपट्टाभ्यां द्वितीयः मर्कटयुक्तस्तृतीयः मर्कटैकदेशबन्धनद्वितीयपार्श्वकीलिकासम्बन्धश्च-
तुर्थः अङ्गुलिद्वयसंयुक्तस्य मध्यकीलिकैव दत्ता यत्र तत्कीलिकासंहननं पञ्चमं यत्रास्थीनि चर्मणा निकाचितानि केवलं
तत्सेवार्त्त, स्नेहपानादीनां नित्यपरिशीलना सेवा तया ऋतं–व्याप्तं सेवार्त्तेमिति षष्ठं, 'छण्हं संघयणाणं असंघयणे'त्ति
उक्तरूपाणां षण्णां संहननानामन्यतमस्याप्यभावेनासंहनिनः–अस्थिसञ्चयरहिताः, अत एवाह—'नेवट्ठी'नैवास्थीनि
तच्छरीरके 'नेव छिर'त्ति नैव शिरा–धमन्यः 'णेव ण्हारु'त्ति नैव स्नायूनीतिकृत्वा संहननाभावः, तत्सहितानां हि
प्रचुरमपि दुःखं न बाधाविधायि स्यात्, नारकास्त्वत्यन्तशीतादिबाधिता इति, न चास्थिसञ्चयाभावे शरीरं नोपपी-
ड्यते, स्कन्धवत्तदुपपत्तेः, अत एवाह—'जे पोग्गले'त्यादि, ये पुद्गला अनिष्टाः–अवल्लभाः सदैवैषां सामान्येन तथा
अकान्ता–अकमनीयाः सदैव तद्भावेन तथा अप्रिया–द्वेष्याः सर्वेषामेव तथाऽशुभाः–प्रकृत्यसुन्दरतया अमनोज्ञा–अम-
नोरमाः कथयापि तथा अमनःआपा–न मनःप्रियाश्चिन्तयापि ते एवंभूताः पुद्गलास्तेषां–नारकाणां 'असंघयणत्ता-
ए'त्ति अस्थिसञ्चयविशेषरहितशरीरतया परिणमंति, 'कइविहे णं भंते! संठाणे'त्यादि, तत्र मानोन्मानप्रमाणानि
अन्यूनान्यनतिरिक्तानि अङ्गोपाङ्गानि च यस्मिन् शरीरसंस्थाने तत्समचतुरस्रसंस्थानं, तथा नाभित उपरि सर्वावयवा-
श्चतुरस्रा–लक्षणाऽविसंवादिनोऽधस्तु तदनुरूपं यन्न भवति तन्न्यग्रोधसंस्थानं तथा नाभितोऽधः सर्वावयवाश्चतुरस्रा
लक्षणाविसंवादिनो यस्योपरि च यत्तदनुरूपं न भवति तत्सादिसंस्थानं, तथा ग्रीवा हस्तपादाश्च समचतुरस्रा लक्ष-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५५]

प्रत अनुक्रम [२५३]

णयुक्ता यत्र संक्षिप्तं विकृतं च मध्ये कोष्ठं तत् कुब्जसंस्थानं, तथा यल्लक्षणयुक्तं कोष्ठं चतुरस्रलक्षणापेतं ग्रीवाद्यवयवहस्तपादं च तद्वामनं, तथा यत्र हस्तपादाद्यवयवाः बहुप्रायाः प्रमाणविसंवादिनश्च तद्धुण्डमित्युच्यते ।

कइविहे णं भंते! वेए प०?, गोयमा! तिविहे वेए प०, तं० इत्थीवेए पुरिसवेए नपुंसवेए, नेरइया णं भंते! किं इत्थीवेया पुरिसवेया णपुंसगवेया प०?, गोयमा! णो इत्थी० णो पुंवेए णपुंसगवेया प०, असुरकुमारा णं भंते! किं इत्थी०पुरिस० नपुंसगवेया?, गोयमा! इत्थी० पुरिसवेया णो णपुंसगवेया जाव थणियकुमारा, पुढवी आऊ तेऊ वाऊ वणस्सई बितिचउरिंदियसंमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खसंमुच्छिममणुस्सा णपुंसगवेया गब्भवक्कंतियमणुस्सा पंचिंदियतिरिया य तिवेया, जहा असुरकुमारा तहा वाणमंतरा जोइसियवेमाणियावि (सूत्रं १५६) तेणं कालेणं तेणं समएणं कप्पस्स समोसरणं णेयव्वं जाव गणहरा सावच्चा निरवच्चा वोच्छिण्णा जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे तीयाए उस्सप्पिणीए सत्त कुलगरा होत्था तं–मित्तदामे सुदामे य, सुपासे य सयंपभे। विमलघोसे सुघोसे य, महाघोसे य सत्तमे ॥ १ ॥ जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे तीयाए ओसप्पिणीए दस कुलगरा होत्था, तंजहा–सयंजले सयाऊ य, अजियसेणे अणंतसेणे य। कज्जसेणे भीमसेणे महाभीमसेणे य सत्तमे ॥ २ ॥ दढरहे दसरहे सयरहे ॥ जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए समाए सत्त कुलगरा होत्था, तंजहा–पढमेत्थ विमलवाहण [चक्खुम जसमं चउत्थमभिचंदे। तत्तो पसेणईए मरुदेवे चेव नाभी य ॥ ३ ॥] एतेसि णं सत्तण्हं कुलगराण सत्त भारिआ होत्था, तंजहा–चंदजसा चंदकंता [सुरूवपडिरूव चक्खुकंता य। सिरिकंता मरुदेवी कुलगरपत्तीण णामाइं ॥ ४ ॥] जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगराणं पियरो होत्था, तंजहा–णाभी य जियसत्तु य [जियारी संवरे इय, मेहे धरे पइट्ठे य महसेणे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



य खत्तिए ॥५॥ सुग्गीवे दढरहे विण्हू वसुपूज्जे य खत्तिए । कयवम्मा सीहसेणे भाणू विस्ससणे इय ॥६॥ सूरे सुदंसणे कुंभे सुमित्तविजए समुद्दविजये य । राया य आससेणे य सिद्धत्थेचिय खत्तिए ॥ ७ ॥] उदितोदियकुलवंसा विसुद्धवंसा गुणेहि उववेया । तित्थप्पवत्तयाणं एए पियरो जिणवराणं ॥ ८ ॥ जंबूदीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगराणं मायरो होत्था तं०–मरुदेवी विजया सेणा [सिद्धत्था मंगला सुसीमा य । पुहवी लखणा रामा नंदा विण्हू जया सामा ॥ ९ ॥ सुजसा सुव्वय अइरा सिरिया देवी पभावई पउमा । वप्पा सिवा य वामा तिसला देवी य जिणमाया ॥ १० ॥] जंबूदीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगरा होत्था, तंजहा–उसभ १ अजिय २ संभव ३ अभिणंदण ४ सुमइ ५ पउमप्पह ६ सुपास ७ चंदप्पभ ८ सुविहिपुप्फदंत ९ सीयल १० सिज्जंस ११ वासुपुज्ज १२ विमल १३ अणंत १४ धम्म १५ संति १६ कुंथु १७ अर १८ मल्लि १९ मुणिसुव्वय २० णमि २१ णेमि २२ पास २३ वद्धमाणो २४ य, एएसिं चउवीसाए तित्थगराणं चउव्वीसं पुव्वभवया णामधेया होत्था, तं०–'पढमेत्थ वइरणाभे विमले तह विमलवाहणे चेव । तत्तो य धम्मसीहे सुमित्त तह धम्ममित्ते य ॥ ११ ॥ सुंदरबाहु तह दीहबाहु जुगबाहु लट्ठबाहू य । दिण्णे य इंददत्ते सुंदर माहिंदरे चेव ॥ १२ ॥ सीहरहे मेहरहे रुप्पी अ सुंदसणे य बोद्धव्वे । तत्तो य नंदणे खलु सीहगिरी चेव वीसइमे ॥ १३ ॥ अदीणसत्तु संखे सुदंसणे नंदणे य बोद्धव्वे ॥ [इमीसे] ओसप्पिणीए एए, तित्थकराणं तु पुव्वभवा ॥ १४ ॥ एएसिं चउव्वीसाए तित्थकराणं चउव्वीसं सीयाओ होत्था, तंजहा–सीया सुदंसणा सुप्पभा य सिद्धत्थ सुप्पसिद्धा य । विजया य वेजयंती जयंती अपराजिया चेव ॥ १५ ॥ अरुणप्पभ चंदप्पभ सूरप्पह अग्गि सप्पभा चेव । विमला य पंचवण्णा सागरदत्ता य णागदत्ता य ॥ १६ ॥

२६ सम०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभयकर निव्वुइकरा मणोरमा तह मणोहरा चेव । देवकुरूत्तरकुरा विसाल चंदप्पभा सीया ॥ १७ ॥ एआओ सीआओ सव्वेसिं चेव जिणवरिंदाणं । सव्वजगवच्छलाणं सव्वोउगसुभाए छायाए ॥१८॥ पुव्विं ओकूखित्ता माणुसेहिं साहट्टु(ट्ठ) रोमकूवेहिं । पच्छा वहंति सीअं असुरिंदसुरिंदनागिंदा ॥ १९ ॥ चलचवलकुंडलधरा सच्छंदविउव्वियाभरणधारी । सुरअसुरवंदिआणं वहंति सीअं जिणंदाणं ॥ २० ॥ पुरओ वहंति देवा नागा पुण दाहिणम्मि पासम्मि । पच्चिछमेण असुरा गरुला पुण उत्तरे पासे ॥ २१ ॥ उसभो अ विणीयाए बारवईए अरिट्ठवरणेमी । अवसेसा तित्थयरा निक्खंता जम्मभूमीसु ॥ २२ ॥ सव्वेवि एगदूसेण [णिग्गया जिणवरा चउव्वीसं । ण य णाम अण्णलिंगे ण य गिहिलिंगे कुलिंगे य ॥ २३ ॥] एक्को भगवं वीरो [पासो मल्ली य तिहि तिहि सएहिं । भगवंपि वासुपुज्जो छहिं पुरिससएहिं निक्खंतो ॥ २४ ॥] उग्गाणं भोगाणं राइण्णाणं [च खत्तियाणं च । चउहि सहस्सेहिं उसभो सेसा उ सहस्सपरिवारा ॥ २५ ॥] सुमइत्थ णिच्च भत्तेण [णिग्गओ वासुपुज्ज चोत्थेणं । पासो मल्ली य अट्ठमेण सेसा उ छट्ठेणं ॥ २६ ॥] एएसिं णं चउव्वीसाए तित्थगराण चउव्वीसं पढमभिक्खादायारो होत्था, तंजहा–'सिज्जंस बंभदत्ते सुरिंददत्ते य इंददत्ते य । पउमे य सोमदेवे माहिंदे तह सोमदत्ते य ॥ २६ ॥ पुस्से पुणव्वसू पुण्णणंद सुणंदे जये य विजये य । तत्तो य धम्मसीहे सुमित्त तह वग्गसीहे अ ॥२७॥ अपराजिय विस्ससेणे वीसइमे होइ उसभसेणे य । दिण्णे वरदत्ते धणे बहुले य आणुपुव्वीए ॥ २८॥ एए विसुद्धलेसा जिणवरभत्तीइ पंजलिउडा उ । तं कालं तं समयं पडिलाभेई जिणवरिंदे ॥ २९ ॥ संवच्छरेण भिक्खा [लद्धा उसभेण लोयणाहेण । सेसेहि बीयदिवसे लद्धाओ पढमभिक्खाओ ॥३०॥] उसभस्स पढमभिक्खा खोयरसो आसि लोगणाहस्स । सेसाणं परमण्णं अमियरसरसोवमं आसि ॥ ३१ ॥] सव्वेसिंपि जिणाणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



तहियं लद्धाउ पढमभिक्खाउ । तहियं वसुधाराओ सरीरमेत्तीओ वुट्ठाओ ॥ ३२ ॥ एएसिं चउव्वीसाए तित्थगराणं चउवीसं चेइयरुक्खा होत्था, तंजहा–णग्गोहसत्तिवण्णे साले पियए पियंगु छत्ताहे । सिरिसे य णागरुक्खे माली य पिलंक्खुरुक्खे य ॥ ३३ ॥ तिंदुग पाडल जंबू आसत्थे खलु तहेव दहिवण्णे । णंदीरुक्खे तिलए अंबयरुक्खे असोगे य ॥ ३४ ॥ चंपय बउले व तहा वेडसरुक्खे य धायईरुक्खे । साले य वद्धमाणस्स चेइयरुक्खा जिणवराणं ॥ ३५ ॥ बत्तीसं धणुयाइं चेइयरुक्खो य वद्धमाणस्स । णिच्चोउगो असोगो ओच्छण्णो सालरुक्खेणं ॥ ३६ ॥ तिण्णे व गाउआइं चेइयरुक्खो जिणस्स उसभस्स । सेसाणं पुण रुक्खा सरीरओ बारसगुणा उ ॥ ३७ ॥ सच्छत्ता सपडागा सवेइया तोरणेहिं उववेया । सुरअसुरगरुलमहिया चेइयरुक्खा जिणवराणं ॥ ३८ ॥ एएसिं चउव्वीसाए तित्थगराणं चउव्वीसं पढमसीसा होत्था, तंजहा–'पढमेत्थ उसभसेणे बीइए पुण होइ सीहसेणे य । चारू य वज्जणाभे चमरे तह सुव्वय विदब्भे ॥ ३९ ॥ दिण्णेय वराहे पुण आणंदे गोथुभे सुहम्मे य । मंदर जसे अरिट्ठे चक्काह सयंभु कुंभे य ॥ ४० ॥ इंदे कुंभे य सुभे वरदत्ते दिण्ण इंदभूई य । उदितोदितकुलवंसा विसुद्धवंसा गुणेहि उववेया । तित्थप्पवत्तयाणं पढमा सिस्सा जिणवराणं ॥ ४१ ॥ एएसि णं चउवीसाए तित्थगराणं चउवीसं पढमसिस्सिणी होत्था, तंजहा–बंभी य फग्गु सामा अजिया कासवीरई सोमा । सुमणा वारुणि सुलसा धारणि धरणी य धरणिधरा ॥ ४२ ॥ पढम सिवासुयी तह अंजुया भावियप्पा य रक्खी य । बंधुवती पुप्फवती अज्जा अमिला य अहिया ॥ ४३ ॥ जक्खिणी पुप्फचूला य चंदणऽज्जा य आहियाउ ॥ उदितोदियकुलवंसा विसुद्धवंसा गुणेहिं उववेया । तित्थप्पवत्तयाणं पढमा सिस्सी जिणवराणं ॥ ४४ ॥ गाहा । (सूत्रं १५७) जंबुद्दीवे णं भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए बारस चक्कवट्टि-



Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पियरो होत्था, तंजहा–उसभे सुमित्ते विजए समुद्दविजए य आससेणे य । विस्ससेणे य सूरे सुदंसणे कत्तवीरिए चेव ॥ ४५ ॥ पउमुत्तरे महाहरी, विजए राया तहेव य । बंभे बारसमे उत्ते, पिउनामा चक्कवट्टिणं ॥ ४६ ॥ जंबूदीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए बारस चक्कवट्टिमायरो होत्था, तंजहा–सुमंगला जसवती भद्दा सहदेवी अइरा सिरिदेवी तारा जाला मेरा वप्पा चुलणि अपच्छिमा ॥ जंबुद्दीवे० बारस चक्कवट्टी होत्था, तंजहा–भरहो सगरो मघवं [सणंकुमारो य रायसद्दूलो । संती कुंथू य अरो हवइ सुभूमो य कोरव्वो ॥ ४७ ॥ नवमो य महापउमो हरिसेणो चेव रायसद्दूलो । जयनामो य नरवई, बारसमो बंभदत्तो य ॥ ४८ ॥] एएसिं बारसण्हं चक्कवट्टीणं बारस इत्थिरयणा होत्था, तंजहा–पढमा होइ सुभद्दा भद्द सुणंदा जया य विजया य । कण्हसिरी सूरसिरी पउमसिरी वसुंधरा देवी ॥ ४९ ॥ लच्छिमई कुरुमई इत्थीरयणाण नामाइं ॥ जंबूद्दीवे० नवबलदेवनववासुदेवपितरो होत्था, तंजहा–पयावई य बंभो [सोमो रुद्दो सिवो महसिवो य । अग्गिसिहो य दसरहो नवमो भणिओ य वसुदेवो ॥ ५० ॥ जंबूद्दीवे णं० णव वासुदेवमायरो होत्था, तंजहा–मियावई उमा चेव पुहवी सीया य अम्मया । लच्छिमई सेसमई, केकई देवई तहा ॥ ५१ ॥ जंबूद्दीवे णं० णवबलदेवमायरो होत्था, तंजहा–भद्दा तह सुभद्दा य, सुप्पभा य सुदंसणा । विजया वेजयंती य, जयंती अपराजिया ॥ ५२ ॥ णवमीया रोहिणी य, बलदेवाण मायरो ॥ जंबूदीवे णं नव दसारमंडला होत्था, तंजहा–उत्तमपुरिसा मज्झिमपुरिसा पहाणपुरिसा ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी छायंसी कंता सोमा सुभगा पियदंसणा सुरूआ सुहसीला सुहाभिगमा सव्वजणणयणकंता ओहबला अतिबला महाबला अनिहता अपराइया सत्तुमद्दणा रिपुसहस्समाणमद्दणा साणुक्कोसा अमच्छरा अचवला अचंडा मियमंजुलपलावहसिया गंभीरमधुरपडिपुण्णसच्चवयणा अब्भुवगयव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

च्छला सरण्णा लक्खणवंजणगुणोववेआ माणुम्माणपमाणपडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरंगा ससिसोमागारकंतपियदंसणा अमरिसणा पयंडदंडप्पभारा गंभीरदरसणिज्जा तालद्धओव्विद्धगरुलकेऊमहाधणुविकट्टया महासत्तसाअरा दुद्धरा धणुद्धरा धीरपुरिसा जुद्धकित्तिपुरिसा विउलकुलसमुब्भवा महारयणविहाडगा अद्धभरहसामी सोमा रायकुलवंसतिलया अजिया अजियरहा हलमुसलकणकपाणी संखचक्कगयसत्तिनंदगधरा पवरुज्जलसुकंतविमलगोत्थुभतिरीडधारी कुंडलउज्जोइयाणणा पुंडरीयणयणा एकावलिकण्ठलइयवच्छा सिरिवच्छसुलंछणा वरजसा सव्वोउयसुरभिकुसुमरचितपलंबसोभंतकंतविकसंतविचित्तवरमालरइयवच्छा अट्ठसयविभत्तलक्खणपसत्थसुंदरविरइयंगमंगा मत्तगयवरिंदललियविक्कमविलसियगई सारयनवथणियमहुरगंभीरकुंचनिग्घोसदुंदुभिसरा कडिसुत्तगनीलपीयकोसेज्जवाससा पवरदित्ततेया नरसीहा नरवई नरिंदा नरवसहा मरुयवसभकप्पा अब्भहियरायतेयलच्छीए दिप्पमाणा नीलगपीयगवसणा दुवे दुवे रामकेसवा भायरो होत्था, तंजहा–तिविट्ठू जाव कण्हे अयले जाव रामे यावि अपच्छिमे ॥ ५३ ॥ एएसि णं णवण्हं बलदेववासुदेवाणं पुव्वभविया नव नामधेज्जा होत्था, तंजहा–विस्सभूई पव्वयए धणदत्त समुद्दत्त इसिवाले । पियमित्त ललियमित्ते पुणव्वसू गंगदत्ते य ॥५४॥ एयाइं नामाइं पुव्वभवे आसि वासुदेवाणं । एत्तो बलदेवाणं जहक्कमं कित्तइस्सामि ॥५५॥ विसनंदी य सुबन्धू सागरदत्ते असोगललिए य । वाराह धम्मसेणे अपराइय रायललिए य ॥५६॥ एएसिं नवण्हं बलदेववासुदेवाणं पुव्वभविया नव धम्मायरिया होत्था, तंजहा–संभूय सुभद्द सुदंसणे य सेयंस कण्ह गंगदत्ते आसागरसमुद्दनामे दुमसेणे य णवमए ॥५७॥ एए धम्मायरिया कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं । पुव्वभवे एआसिं जत्थ नियाणाइं कासीय ॥५८॥ एएसिं नवण्हं वासुदेवाणं पुव्वभवे नव नियाणभूमिओ होत्था, तंजहा–महुरा य० हत्थिणाउरं च ॥ ५९ ॥ एतेसि णं नवण्हं वासुदेवाणं नव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६-१५९] गाथा: १-९३

प्रत अनुक्रम [२५४--३८३]

नियाणकारणा होत्था, तंजहा–गावी जुवे० जाव माउआ ॥ ६० ॥ एएसिं नवण्हं वासुदेवाणं नव पडिसत्तू होत्था, तंजहा–अस्सग्गीवे जाव जरासंधे ॥ ६१ ॥ एए खलु पडिसत्तू जाव सचक्केहिं ॥ ६२ ॥ एक्को य सत्तमीए पंच य छट्ठीए पंचमी एक्को। एक्को य चउत्थीए कण्हो पुण तच्चपुढवीए ॥६३॥ अणिदाणकडा रामा [सव्वेवि य केसवा नियाणकडा । उड्ढंगामी रामा केसव सव्वे अहोगामी ॥६४॥] अट्ठंतकडा रामा एगो पुण बंभलोयकप्पंमि । एक्कस्स गब्भवसही सिज्झिस्सइ आगमिस्सेणं ॥ ६५ ॥ (सूत्रं १५८) जंबूद्दीवे० एरवए वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसं तित्थयरा होत्था, तंजहा–चंदाणणं सुचंदं अग्गीसेणं च नंदिसेणं च । इसिदिण्णं ववहारिं वंदिमो सोमचंदं च ॥ ६६ ॥ वंदामि जुत्तिसेणं अजियसेणं तहेव सिवसेणं । बुद्धं च देवसम्मं सययं निक्खित्तसत्थं च ॥ ६७ ॥ असंजलं जिणवसहं वंदे य अणंतयं अमियणाणिं । उक्संतं च धुयरयं वंदे खलु गुत्तिसेणं च ॥ ६८ ॥ अतिपासं च सुपासं देवेसरवंदियं च मरुदेवं । निव्वाणगयं च वरं खीणदुहं सामकोट्ठं च ॥ ६९ ॥ जियरागमग्गिसेणं वंदे खीणरायमग्गिउत्तं च । वोक्कसियपिज्जदोसं वारिसेणं गयं सिद्धिं ॥ ७० ॥ जंबूद्दीवे० आगमिस्साए उस्सप्पिणीए मारहे वासे सत्त कुलगरा भविस्संति, तंजहा–मियवाहणे सुभूमे य, सुप्पभे य सयंपभे । दत्ते सुहुमे सुबन्धू य, आगमिस्साण होक्खति ॥७१॥ जंबुद्दीवे णं दीवे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए एरवए वासे दस कुलगरा भविस्संति, तंजहा–विमलवाहणे सीमंकरे सीमंधरे खेमंकरे खेमंधरे दढधणू दसधणू सयधणू पडिसूई सुमइत्ति । जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए चउवीसं तित्थगरा भविस्संति, तंजहा–महापउमे सूरदेवे, सुपासे य सयंपभे । सव्वाणुभूई अरहा, देवस्सुए य होक्खई ॥ ७२ ॥ उदए पेढालपुत्ते य, पोट्टिले सत्तकित्ति य । मुणिसुव्वए य अरहा, सव्वभावविऊ जिणे ॥ ७३ ॥ अममे णिक्कसाए य, निप्पुलाए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

य निम्मले । चित्तउत्ते समाही य, आगमिस्सेण होक्खई ॥ ७४ ॥ संवरे अणियट्टी य, विजए विमलेति य । देवोववाए अरहा, अणंतविजए इय ॥ ७५ ॥ एए वुत्ता चउव्वीसं भरहे वासम्मि केवली । आगमिस्सेण होक्खंति, धम्मतित्थस्स देसगा ॥ ७६ ॥ एएसि णं चउव्वीसाए तित्थकराणं पुव्वभविया चउव्वीसं नामधेज्जा भविस्संति, तंजहा–सेणिय सुपास उदए पोट्टिल अणगार तह दढाऊ य । कत्तिय संखे य तहा नंद सुनंदे य सतए य ॥ ७७ ॥ बोद्धव्वा देवई य सच्चइ तह वासुदेव बलदेवे । रोहिणि सुलसा चेव तत्तो खलु रेवई चेव ॥ ७८ ॥ ततो हवइ सयाली बोद्धव्वे खलु तहा भयाली य । दीवायणे य कण्हे तत्तो खलु नारए चेव ॥ ७९ ॥ अंबड दारुमडे य साई बुद्धे य होइ बोद्धव्वे । भावी तित्थगराणं णामाइं पुव्वभवियाइं ॥ ८० ॥ एएसि णं चउव्वीसाए तित्थगराणं चउव्वीसं पियरो भविस्संति चउव्वीसं मायरो भविस्संति चउव्वीसं पढमसीसा भविस्संति चउव्वीसं पढमसिस्सणीओ भविस्संति चउव्वीसं पढमभिक्खादायगा भविस्संति चउव्वीसं चेइयरुक्खा भविस्संति, जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए बारस चक्कवट्टिणो भविस्संति, तंजहा–भरहे य दीहदंते गूढदंते य सुद्धदंते य । सिरिउत्ते सिरिभूई सिरिसोमे य सत्तमे ॥ ८१ ॥ पउमे य महापउमे विमलवाहणे (लेतह) विपुलवाहणे चेव । वरिट्ठे बारसमे वुत्ते आगमिसा भरहाहिवा ॥ ८२ ॥ एएसि णं बारसण्हं चक्कवट्टीणं बारस पियरो भविस्संति, बारस मायरो भविस्संति, बारस इत्थीरयणा भविस्संति, जंबुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए नव बलदेववासुदेवपियरो भविस्संति, नववासुदेवमायरो भविस्संति, नव बलदेवमायरो भविस्संति, नव दसारमंडला भविस्संति, तंजहा–उत्तमपुरिसा मज्झिमपुरिसा पहाणपुरिसा ओयंसी तेयंसी एवं सो चेव वण्णओ भाणियव्वो जाव नीलगपीतगवसणा दुवे दुवे रामकेसवा भायरो भविस्संति, तंजहा–नंदे य नंदमित्ते दीहबाहू तहा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महाबाहू । अइबले महाबले बलभद्दे य सत्तमे ॥८३॥ दुविट्ठू य तिविट्ठू य आगमिस्साण वण्हिणो । जयंते विजए भद्दे सुप्पभे य सुदंसणे । आणंदे नंदणे पउमे, संकरिसणे य अपच्छिमे ॥८४॥ एएसि णं नवण्हं बलदेववासुदेवाणं पुव्वभविया णव नामधेज्जा भविस्संति, नव धम्मायरिया भविस्संति, नव नियाणभूमीओ भविस्संति, नव नियाणकारणा भविस्संति, नव पडिसत्तू भविस्संति, तंजहा–तिलए य लोहजंघे, वइरजंघे य केसरी पहराए । अपराइए य भीमे, महाभीमे य सुग्गीवे ॥८५॥ एए खलु पडिसत्तू कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं । सव्वेवि चक्कजोही हम्मिहिंति सचक्केहिं ॥ ८६ ॥ जंबुद्दीवे एरवए वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए चउव्वीसं तित्थकरा भविस्संति, तंजहा–सुमंगले अ सिद्धत्थे, णिव्वाणे य महाजसे । धम्मज्झए य अरहा, आगमिस्साण होक्खई ॥ ८७ ॥ सिरिचंदे पुप्फकेऊ, महाचंदे य केवली । सुयसागरे य अरहा, आगमिस्साण होक्खई ॥८८॥ सिद्धत्थे पुण्णघोसे य, महाघोसे य केवली । सच्चसेणे य अरहा, आगमिस्साण होक्खई ॥ ८९ ॥ सूरसेणे य अरहा, महासेणे य केवली । सव्वाणंदे य अरहा, देवउत्ते य होक्खई ॥ ९० ॥ सुपासे सुव्वए अरहा, अरहे य सुकोसले । अरहा अणंतविजए, आगमिस्सेण होक्खई ॥ ९१ ॥ विमले उत्तरे अरहा, अरहा य महाबले । देवाणंदे य अरहा, आगमिस्सेण होक्खई ॥ ९२ ॥ एए वुत्ता चउव्वीसं, एरवयम्मि केवली । आगमिस्साण होक्खंति, धम्मतित्थस्स देसगा ॥९३॥ बारस चक्कवट्टिणो भविस्संति, बारस चक्कवट्टिपियरो भविस्संति, बारस मायरो भविस्संति, बारस इत्थीरयणा भविस्संति, नव बलदेववासुदेवपियरो भविस्संति, णव वासुदेवमायरो भविस्संति, णव बलदेवमायरो भविस्संति, णव दसारमंडला भविस्संति, उत्तमपुरिसा मज्झिमपुरिसा पहाणपुरिसा जाव दुवे दुवे रामकेसवा भायरो भविस्संति, णव पडिसत्तू भविस्संति, नव पुव्वभवणामधेज्जा णव धम्मायरिया णव णियाणभूमीओ णव णियाणकारणा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६-१५९] गाथाः १-९३

प्रत अनुक्रम [२५४--३८३]

आयाए एरवए आगमिस्साए भाणियव्वा, एवं दोसुवि आगमिस्साए भाणियव्वा (सूत्रं १५८) इच्चेयं एवमाहिज्जंति, तंजहा–कुलगरवंसेइ य एवं तित्थगरवंसेइ य चक्कवट्टिवंसेइ य गणधरवंसेइ य इसिवंसेइ य जइवंसेइ य मुणिवंसेइ य सुएइ वा सुअंगेइ वा सुयसमासेइ वा सुयखंधेइ वा समवाएइ वा संखेइ वा सम्मत्तमंगमक्खायं अज्झयणन्तिबेमि ॥ (सूत्रं १५९) इति समवायं चउत्थमंगं समत्तम् ॥

'कइविहे वेए'त्यादि, तत्र स्त्रीवेदः–पुंस्कामिता पुरुषवेदः–स्त्रीकामिता नपुंसकवेदः–स्त्रीपुंस्कामितेति, एते च पूर्वोदिता अर्थाः समवसरणस्थितेन भगवता देशिता इति समवसरणवक्तव्यतामाह—'तेणं कालेणं तेणं समएणं कप्पस्स समोसरणं णेयवं' इह णङ्कारौ वाक्यालङ्काराथौं अतस्ते इति प्राकृतत्वात् तस्मिन् काले सामान्येन दुष्षमसुषमालक्षणे तस्मिन् समये विशिष्टे यत्र भगवानेवं विहरति स्मेति 'कप्पस्स समोसरणं नेयवं'ति इहावसरे कल्पभाष्यक्रमेण समवसरणवक्तव्यताऽध्येया, सा चावश्यकोक्ताया न व्यतिरिच्यते, वाचनान्तरे तु पर्युषणाकल्पोक्तक्रमेणेत्यभिहितं, कियद्दूरमित्याह—'जाव गणे'त्यादि, तत्र गणधरः पञ्चमः सुधर्माख्यः सापत्यः शेषा निरपत्याः–अविद्यमानशिष्यसन्ततय इत्यर्थः 'वोच्छिन्न'त्ति सिद्धा इति, तथाहि–'परिनिवुया गणहरा जीयन्ते नायए नव जणा उ । इन्दभूइ सुहम्मो य रायगिहे निवुए वीरे ॥ १ ॥' त्ति, अयं च समवसरणनायकः कुलकरवंशोत्पन्नो महापुरुषश्चेति कुलकराणां वरपुरुषाणां च वक्तव्यतामाह—'जंबुद्दीवे' इत्यादि, सुगमं नवरं 'पढमेत्थ विमलवाहण चक्खुम जसमं चउत्थमभि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६-१५९] गाथा: १-९३

प्रत अनुक्रम [२५४--३८३]

चंदे । तत्तो य पसेणइए मरुदेवे चेव नाभीय ॥ ३ ॥' त्ति तथा 'चंदजस चंदकंता सुरूव पडिरूव चक्खुकंता य । सिरिकंता मरुदेवी कुलगरपत्तीण नामाइं ॥ ४ ॥' ति, तथा 'नाभी य जियसत्तू य जियारी संवरे इय । मेहे धरे पइट्ठे य, महसेणे य खत्तिए ॥ ५ ॥ सुग्गीवे दढरहे विण्हू वसुपुज्जे य खत्तिए । कयवम्मा सीहसेणे य भाणू विस्ससणे इअ ॥६॥ सूरे सुदंसणे कुंभे सुमित्तविजए समुद्दविजये य । राया य अस्ससेणे य सिद्धत्थे विय खत्तिए ॥ ७ ॥' त्ति, तथा 'मरुदेवी विजयासेणा सिद्धत्था मङ्गला सुसीमा य पुहवी लक्खणा रामा नंदा विण्हू जया सामा ॥ ९ ॥ सुजसा सुव्वय अइरा, सिरिआ देवी पभावई पउमा वप्पा सिवा य वामा, तिसलादेवी य जिणमाय ॥ १० ॥ त्ति तथा 'सव्वोउगसुभयाए छायाए'त्ति सर्वर्तुकया–सर्वेषु शरदादिषु ऋतुषु सुखदया छायया–प्रभया आतपाभावलक्षणया युक्ता इति शेषः ॥ १७ ॥ तथा 'सा हट्ठरोमकूवेहिं'ति सा शिबिका यस्यां जिनोऽध्यारूढः हृष्टरोमकूपैः–उद्भुतरोमभिरित्यर्थः ॥ १८ ॥ तथा 'चलचवलकुंडलधर'त्ति चलाश्च ते चपलकुण्डलधराश्चेति वाक्यं, तथा स्वच्छन्देन–स्वरुच्या विकुर्वितानि यान्याभरणानि–मुकुटादीनि तानि धारयन्ति ये ते तथेति ॥ १९ ॥ तथा असुरेन्द्रादय इति योगः 'गरुल'त्ति गरुडध्वजाः सुपर्णकुमारा इत्यर्थः ॥२१॥ 'तथा सव्वेवि एगदूसेण निग्गया जिणवरा चउवीसं। न य णाम अण्णलिंगे नय गिहिलिंगे कुलिंगे य ॥२२॥ त्ति 'दूसेण'त्ति एकेन वस्त्रेणेन्द्रसमर्पितेन नोपधिभूतेन युक्ता निष्क्रान्ता इत्यर्थः न चान्यलिङ्गे–स्थविरकल्पिकादिलिङ्गेन तीर्थकरलिङ्ग एवेत्यर्थः, कुलिङ्गे–शाक्यादिलिङ्गे, तथा 'एक्को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६-१५९] गाथाः १-९३

प्रत अनुक्रम [२५४--३८३]

भगवं वीरो पासो मल्ली य तिहि तिहि सएहिं । भवयंपि वासुपुज्जो छहिं पुरिससएहिं निक्खंतो ॥ २३ ॥ उग्गाणं भोगाणं राइण्णाणं च खत्तियाणं च । चउहिं सहस्सेहिं उसभो सेसा उ सहस्सपरिवारा ॥२४॥ तथा 'सुमइत्थ निच्चभत्तेण निग्गओ वासुपुज्ज चोत्थेणं । पासो मल्लीवि य अट्ठमेण सेसा उ छट्ठेणं ॥२५॥ ति, सुमतिरत्र नित्यभक्तेनानुपोषितो निष्क्रान्त इत्यर्थः, तथा 'संवच्छरेण भिक्खा लद्धा उसभेण लोगनाहेण । सेसेहि बीयदिवसे लद्धाओ पढमभिक्खाओ ॥ ३० ॥' त्ति तथा 'उसभस्स पढमभिक्खा खोयरसो आसि लोगनाहस्स । सेसाणं परमण्णं अमियरसरसोवमं आसि ॥ ३१ ॥ 'सरीरमेत्तीओ'त्ति पुरुषमात्रा 'चेइयरुक्खे'ति बद्धपीठवृक्षा येषामधः केवलान्युत्पन्नानीति, 'बत्तीसं धणुयाइं' गाहा 'निच्चोउगो'त्ति नित्यं–सर्वदा ऋतुरेव-पुष्पादिकालो यस्य स नित्यर्तुकः 'असोगो'त्ति अशोकाभिधानो यः समवसरणभूमिमध्ये भवति, 'ओच्छन्नो सालरुक्खेणं'ति अवच्छन्नः शालवृक्षेणेत्यत एव वचनादशोकस्योपरि शालवृक्षोऽपि कथञ्चिदस्तीत्यवसीयत इति ॥ ३६ ॥ 'तिण्णेव गाउयाइं' गाहा, ऋषभस्वामिनो द्वादशगुण इत्यर्थः ॥३७॥ 'सचेइय'त्ति चैदिकायुक्ताः, एते चाशोकाः समवसरणसम्बन्धिनः सम्भाव्यन्त इति ॥३८॥ तथा 'भरहो सगरो मघवं सणंकुमारो य रायसद्दूलो । संती कुंथू य अरहो हवइ सुभूमो य कोरवो ॥४६॥ नवमो य महापउमो हरिसेणो चेव रायसद्दूलो । जयनामो य नरवई बारसमो बंभदत्तो य ॥ ४७ ॥ तथा 'पयावती य बंभो सोमो रुद्दो सिवो महसिवोय । अग्गिसिहो दसरहो नवमो भणिओ य वसुदेवो'त्ति दशाराणां–वासुदेवानां मण्डलानि–बलदेववासुदेवद्वयद्व-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्ति:

प्रत सूत्रांक [१५६-१५९] गाथा: १-९३

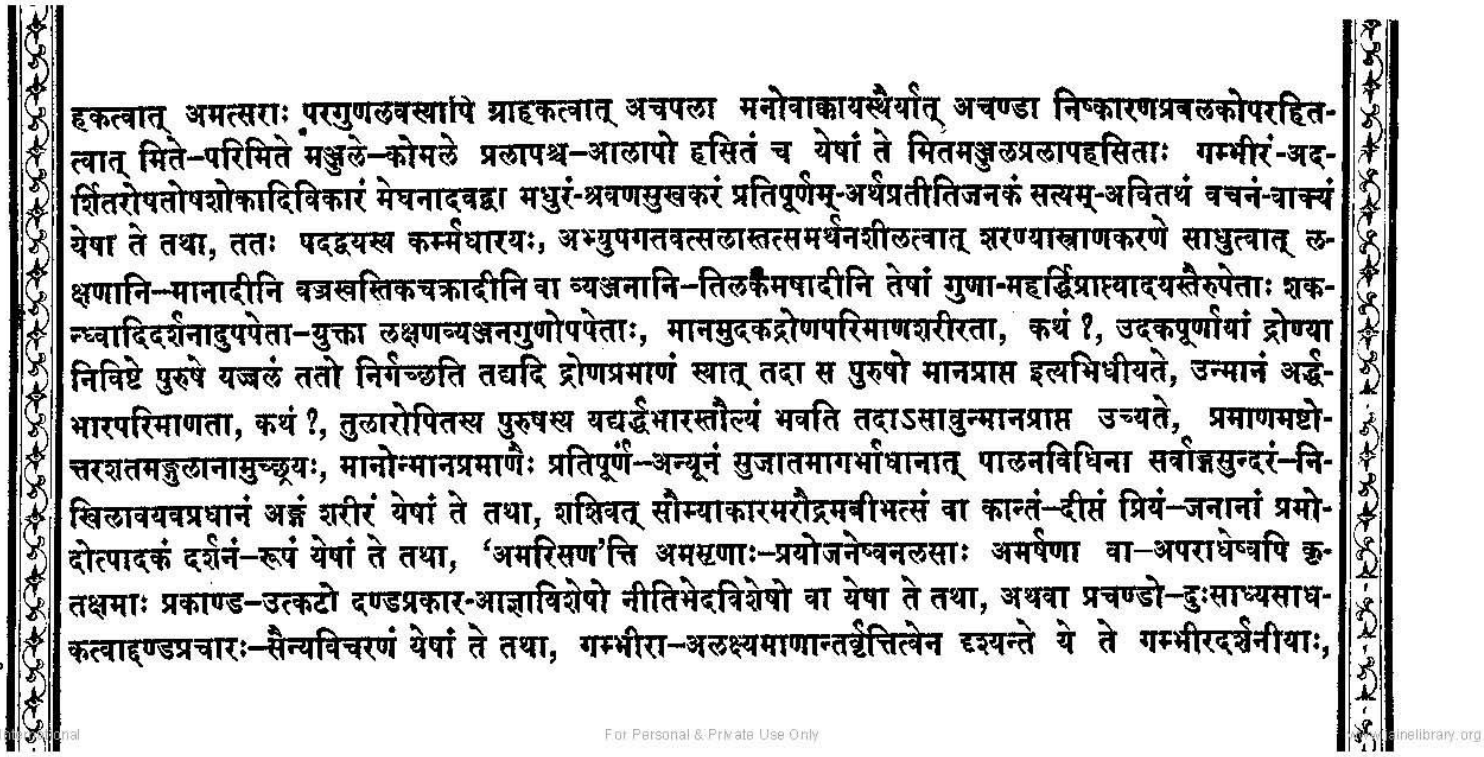
प्रत अनुक्रम [२५४--३८३]

यलक्षणाः समुदाया दशारमण्डलानि अत एव 'दो दो रामकेसव'त्ति वक्ष्यति, दशारमण्डलाव्यतिरिक्तत्वाच्च बलदेववासुदेवानां दशारमण्डलानीति पूर्वमुद्दिश्यापि दशारमण्डलव्यक्तिभूतानां तेषा विशेषणार्थमाह–'तद्यथे'त्यादि, तद्यथेति बलदेववासुदेवस्वरूपोपन्यासारम्भार्थः, केचित्तु 'दशारमण्डणाइं'ति, तत्र दशाराणां-वासुदेवकुलीनप्रजानां मण्डनाः–शोभाकारिणो दशारमण्डना उत्तमपुरुषा इति, तीर्थकरादीनां चतुष्पञ्चाशत उत्तमपुरुषाणा मध्यमवर्त्तित्वात् मध्यमपुरुषाः, तीर्थकरचक्रिणां प्रतिवासुदेवादीनां च बलाद्यपेक्षया मध्यवर्त्तित्वात्, प्रधानपुरुषास्तत्कालिकपुरुषाणां शौर्यादिभिः प्रधानत्वात्, ओजस्विनो मानसबलोपेतत्वात्, तेजस्विनो दीप्तशरीरत्वात्, वर्चस्विनः शारीरबलोपेतत्वात्, यशस्विनः पराक्रमं प्राप्य प्रसिद्धिप्राप्तत्वात्, 'छायंसि'त्ति प्राकृतत्वात् छायावन्तः शोभमानशरीरा अत एव कान्ताः कान्तियोगात् सौम्या अरौद्राकारत्वात् सुभगा जनवल्लभत्वात् प्रियदर्शनाः चक्षुष्यरूपत्वात् सुरूपाः समचतुरस्रसंस्थानत्वात् शुभं सुखं वा सुखकरत्वाच्छीलं-स्वभावो येषां ते शुभशीलाः सुखशीला वा सुखेनाभिगम्यंते–सेव्यन्ते ये शुभशीलत्वादेव ते सुखाभिगम्याः सर्वजनगम्याः सर्वजननयनानां कान्ता–अभिलाष्या ये ते तथा, ततः पदत्रयस्य कर्म्मधारयः, ओघबलाः–प्रवाहबलाः अव्यवच्छिन्नबलत्वात् अतिबलाः शेषपुरुषबलानामतिक्रमात् महाबलाः–प्रशस्तबलाः अनिहता–निरुपक्रमायुष्कत्वादुरोयुद्धे वा भूम्यामपातित्वात् अपराजितास्तैरेव शत्रूणां पराजितत्वात्, एतदेवाह—शत्रुमर्दनास्तच्छरीरतत्सैन्यकदर्थनाद् रिपुसहस्रमानमथनास्तद्वाञ्छितकार्यविघटनात् सानुक्रोशाः प्रणतेष्वद्रो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६-१५९] गाथाः १-९३

प्रत अनुक्रम [२५४--३८३]



हकत्वात् अमत्सराः परगुणलवस्यापि ग्राहकत्वात् अचपला मनोवाक्कायस्थैर्यात् अचण्डा निष्कारणप्रबलकोपरहित-त्वात् मिते–परिमिते मञ्जुले–कोमले प्रलापश्च–आलापो हसितं च येषां ते मितमञ्जुलप्रलापहसिताः गम्भीरं-अद-र्शितरोषतोषशोकादिविकारं मेघनादवद्वा मधुरं-श्रवणसुखकरं प्रतिपूर्णम्-अर्थप्रतीतिजनकं सत्यम्-अवितथं वचनं-वाक्यं येषा ते तथा, ततः पदद्वयस्य कर्म्मधारयः, अभ्युपगतवत्सलास्तत्समर्थनशीलत्वात् शरण्यास्त्राणकरणे साधुत्वात् ल-क्षणानि–मानादीनि वज्रस्वस्तिकचक्रादीनि वा व्यञ्जनानि–तिलकैमषादीनि तेषां गुणा-महर्द्धिप्रास्वादयस्तैरुपेताः शक-न्ध्वादिदर्शनादुपपेता–युक्ता लक्षणव्यञ्जनगुणोपपेताः, मानमुदकद्रोणपरिमाणशरीरता, कथं ?, उदकपूर्णायां द्रोण्या निविष्टे पुरुषे यज्जलं ततो निर्गच्छति तद्यदि द्रोणप्रमाणं स्यात् तदा स पुरुषो मानप्राप्त इत्यभिधीयते, उन्मानं अर्द्ध-भारपरिमाणता, कथं ?, तुलारोपितस्य पुरुषस्य यद्यर्द्धभारस्तौल्यं भवति तदाऽसावुन्मानप्राप्त उच्यते, प्रमाणमष्टो-त्तरशतमङ्गुलानामुच्छ्रयः, मानोन्मानप्रमाणैः प्रतिपूर्ण–अन्यूनं सुजातमागर्भाधानात् पालनविधिना सर्वाङ्गसुन्दरं–नि-खिलावयवप्रधानं अङ्गं शरीरं येषां ते तथा, शशिवत् सौम्याकारमरौद्रमबीभत्सं वा कान्तं–दीप्तं प्रियं–जनानां प्रमो-दोत्पादकं दर्शनं–रूपं येषां ते तथा, 'अमरिसण'त्ति अमर्षणाः–प्रयोजनेष्वनलसाः अमर्षणा वा–अपराधेष्वपि कृ-तक्षमाः प्रकाण्ड–उत्कटो दण्डप्रकार-आज्ञाविशेषो नीतिभेदविशेषो वा येषा ते तथा, अथवा प्रचण्डो–दुःसाध्यसाध-कत्वाद्दण्डप्रचारः–सैन्यविचरणं येषां ते तथा, गम्भीरा–अलक्ष्यमाणान्तर्वृत्तित्वेन दृश्यन्ते ये ते गम्भीरदर्शनीयाः,

२७ सम०

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६-१५९] गाथाः १-९३

प्रत अनुक्रम [२५४--३८३]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥१५७॥

ततः पदद्वयस्य कर्म्मधारयः, प्रचण्डदण्डप्रचारेण वा ये गम्भीरा दृश्यन्ते, तथा तालस्तलो वा वृक्षविशेषो ध्वजो येषां ते तालध्वजाः बलदेवा उद्विद्धः–उच्छ्रितो गरुडलक्षितः केतुः–ध्वजो येषां ते उद्विद्धगरुडकेतवो वासुदेवाः तालध्वजाश्च उद्विद्धगरुडकेतवश्च तालध्वजोद्विद्धगरुडकेतवः महाधनुर्विकर्षकाः महाप्राणत्वात् महासत्त्वलक्षणजलस्य सागरा इव सागरा आश्रयत्वान्महासत्त्वसागराः दुर्द्धरा रणाङ्गणे तेषां प्रहरतां केनापि धन्विना धारयितुमशक्यत्वात्, धनुर्धराः–कोदण्डप्रहरणाः, धीरेष्वेवैतेषु च ते पुरुषाः-पुरुषकारवन्तो न कातरेष्विति धीरपुरुषाः, युद्धजनिता या कीर्त्तिस्तत्प्रधानाः पुरुषा युद्धकीर्त्तिपुरुषाः, विपुलकुलसमुद्भवा इति प्रतीतं, महारत्नं–वज्रं तस्य महाप्राणतया विघटका–अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां चूर्णका महारत्नविघटकाः, वज्रं हि अधिकरण्यां धृत्वा अयोघनेनाऽऽस्फोट्यते न च भिद्यते तावेव भिनत्तीति, दुर्भेदं तदिति, अथवा महती या रचना सागरशकटव्यूहादिना प्रकारेण सिसङ्गामयिषोर्महासैन्यस्य रणरङ्गरसिकतया महाबलतया च विघटयन्ति—वियोजयन्ति ये ते महारचनाविघटकाः, पाठान्तरेण तु महारणविघटकाः, अर्द्धभरतस्वामिनः सौम्या नीरुजा राजकुलवंशतिलकाः अजिताः अजितरथाः, 'हलमुशलकणकपाणयः' तत्र हलमुशले प्रतीते ते प्रहरणतया पाणौ-हस्ते येषां ते तथा बलदेवाः येषां तु कणका–बाणाः पाणौ ते शार्ङ्गधन्वानो वासुदेवाः, शंखश्च पाञ्चजन्याभिधानः चक्रं तु सुदर्शननामकं गदा च कौमोदकीसंज्ञा लकुटविशेषः शक्तिश्च त्रिशूलविशेषो नन्दकश्च नन्दकाभिधानः खड्गस्तान् धारयन्तीति शंखचक्रगदाशक्तिनन्दकधराः वासुदेवाः, प्रवरो वरप्रभाव-

१५९ जिनचक्रिवासुदेवादि

॥१५७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६-१५९] गाथाः १-९३

प्रत अनुक्रम [२५४--३८३]

योगादुज्ज्वलः शुक्लत्वात् स्वच्छतया वा शुक्लान्तः कान्तियोगात् पाठान्तरे सुकृतः–सुपरिकर्म्मितत्वात् विमलो मलवर्जितत्वात् गोथुभत्ति–कौस्तुभाभिधानो यो मणिविशेषस्तं तिरीडंति–किरीटं च मुकुटं धारयन्ति ये ते तथा, कुण्डलोद्योतिताननाः पुण्डरीकवन्नयने येषां ते तथा, एकावली-आभरणविशेषः सा कण्ठे ग्रीवायां लगिता–अवलम्बिता सती वक्षसि–उरसि वर्त्तते येषां ते एकावलीकण्ठलगितवक्षसः, श्रीवत्साभिधानं सुष्ठु लाञ्छनं महापुरुषत्वसूचकं वक्षसि येषां ते श्रीवत्सलाञ्छनाः, वरयशसः सर्वत्र विख्यातत्वात् सर्वर्तुकानि-सर्वऋतुसंभवानि सुरभीणि–सुगन्धीनि यानि कुसुमानि तैः सुरचिता–कृता या प्रलम्बा-आप्रदीपना सोभंतत्ति–शोभमाना कान्ता–कमनीया विकसन्ती–फुल्लन्ती चित्रा–पञ्चवर्णा वरा–प्रधाना माला–स्रक् रचिता–निहिता रतिदा वा–सुखकारिका वक्षसि येषां ते सर्वर्तुकसुरभिकुसुमरचितप्रलम्बशोभमानकान्तविकसच्चित्रवरमालारचितवक्षसः, तथा अष्टशतसंख्यानि विभक्तानि–विविक्तरूपाणि यानि लक्षणानि–चक्रादीनि तैः प्रशस्तानि–मङ्गल्यानि सुन्दराणि च—मनोहराणि विरचितानि–विहितानि 'अंगमंग'त्ति अङ्गोपाङ्गानि शिरोऽङ्गुल्यादीनि येषां ते अष्टशतविभक्तलक्षणप्रशस्तसुन्दरविरचिताङ्गोपाङ्गाः, तथा मत्तगजवरेन्द्रस्य यो ललितो–मनोहरो विक्रमः–संचरणं तद्वद्विलासिता संजातविलासा गतिः–गमनं येषां ते मत्तगजवरेन्द्रललितविक्रमविलासितगतयः, तथा शरदि भवः शारदः स चासौ नवं स्तनितं-रसितं यस्मिन्निर्घोषे स नवस्तनितः स चेति समासः स चासौ मधुरो गम्भीरश्च यः क्रौञ्चनिर्घोषः–पक्षिविशेषनिनादस्तद्वद् दुन्दुभिस्वरो–वर्च-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूज्य आगमोद्धारकश्री संशोधित: मुनि दीपरत्नसागरेण संकलित.आगमसूत्र- [०४], अंगसूत्र- [०४] "समवाय" मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचिता वृत्तिः

प्रत सूत्रांक [१५६-१५९] गाथा: १-९३

प्रत अनुक्रम [२५४--३८३]

स्वरो नादो येषां ते शारदनवस्तनितमधुरगम्भीरक्रौञ्चनिर्घोषदुन्दुभिस्वराः, इह च शरत्काले हि क्रौञ्चा माद्यन्ति मधुरध्वनयश्च भवन्तीति शारदग्रहणं, तथा पौनःपुन्येन शब्दग्रवृत्तौ तद्भङ्गादमनोज्ञता तस्य स्यादिति नवस्तनितग्रहणं स्वरूपोपदर्शनार्थं मधुरगभीरग्रहणमिति, तथा कटीसूत्रकं–आभरणविशेषस्तत्प्रधानानि नीलानि बलदेवानां पीतानि वासुदेवानां कौशेयकानि–वस्त्रविशेषभूतानि वासांसि-वसनानि येषां ते कटीसूत्रनीलपीतकौशेयवाससः, प्रवरदीप्ततेजसो वरप्रभावतया वरदीप्तितया च, नरसिंहा विक्रमयोगात् नरपतयः तन्नायकत्वात् नरेन्द्राः परमैश्वर्ययोगात् नरवृषभा उत्क्षिप्तकार्यभरनिर्वाहकत्वात् मरुद्वृषभकल्पाः-देवराजोपमा अभ्यधिकं शेषराजेभ्यः राजतेजोलक्ष्म्या दीप्यमानाः, नीलकपीतकवसना इति पुनर्भणनं निगमनार्थं, कथं ते नवेत्याह—'दुवे दुवे' इत्यादि, एवं च नव वासुदेवा नव बलदेवा इति, 'तिविट्ठे य'यावत्करणात् 'दुविट्ठे य, सयंभू पुरिसुत्तमे पुरिससीहे । तह पुरिसपुंडरीये दत्ते नारायणे कण्हे ॥ ५२ ॥ त्ति, 'अयले विजये भद्दे, सुप्पभे य सुदंसणे । आनंदे णंदणे पउमे रामे यावि अपच्छिमे ॥ ५३ ॥' त्ति 'कित्तीपुरिसाणं'ति कीर्त्तिप्रधानपुरुषाणामिति ॥ ५८ ॥ महुरा य कणगवत्थू सावत्थी पोयणं च रायगिहं । कायंदी कोसम्बी मिहिलपुरी हत्थिणपुरं च ॥ ५९ ॥ तथा 'गावि जुए संगामे तह इत्थी पराइओ रज्जे । भज्जाणुराग गोट्ठी परइड्ढी माउया इय ॥ ६० ॥' त्ति तथा 'अस्सग्गीवे तारए मेरए महुकेढवे निसुंभे य । बलि पहराए तह रावणे य नवमे जरासंधे ॥ ६१ ॥' त्ति 'एए खलु पडिसत्तू कित्तीपुरिसाण वासुदेवाणं । सव्वेवि चक्क-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जोही सव्वेवि हया सचक्केहिं ॥ ६२ ॥' ति 'अणियाणकडा रामा सव्वेवि य केसवा नियाणकडा । उड्ढंगामी रामा केसव सव्वे अहोगामी ॥ ६४ ॥' ति 'आगमिस्सेणं'ति आगमिष्यता कालेन 'आगमेस्साणं'ति पाठान्तरे आगमिष्यतां-भविष्यतां मध्ये सेत्स्यन्ति ॥ ६५ ॥' त्ति जंबूद्वीपैरवते अस्यामवसर्पिण्यां चतुर्विंशतिस्तीर्थकरा अभूवन्, तांश्च स्तुतिद्वारेणाह—तद्यथा—'चंदाणणं' गाहा, चन्द्राननं सुचन्द्रं अग्निसेनं च नन्दिसेनं च, क्वचिदात्मसेनोऽप्ययं दृश्यते, ऋषिदिन्नं व्रतधारिणं च वन्दामहे श्यामचन्द्रञ्च ॥ ६६ ॥ 'वन्दामि' गाहा, वन्दे युक्तिसेनं क्वचिदयं दीर्घबाहुर्दीर्घसेनो वोच्यते, अजितसेनं क्वचिदयं शतायुरुच्यते, तथैव शिवसेनं क्वचिदयं सत्यसेनोऽभिधीयते, सत्यकिश्चेति बुद्धं चावगततत्त्वं च देवशर्म्माणं देवसेनापरनामकं सततं सदा वंद इति, प्रकृतं निक्षिप्तशस्त्रं च नामान्तरतः श्रेयांसः ॥ ६७ ॥ 'असंजलं' गाहा, असंज्वलं जिनवृषभं पाठान्तरेण स्वयंजलं वंदे अनन्तकं जिनममितज्ञानिनं सर्वज्ञमित्यर्थः, नामान्तरेणायं सिंहसेन इति, उपशान्तं च—उपशान्तसंज्ञं धूतरजसं वन्दे खलु गुप्तिसेनं च ॥ ६८ ॥ 'अइपासं' गाहा, अतिपार्श्वं च सुपार्श्वं देवेश्वरवन्दितं च मरुदेवं निर्वाणगतं च धरं–धरसंज्ञं प्रक्षीणदुःखं श्यामकोष्ठं च ॥ ६९ ॥ 'जिय' गाहा, जितरागमग्निसेनं महासेनमपरनामकं वन्दे क्षीणरजसमग्निपुत्रं च व्यवकृष्टप्रेमद्वेषं च वारिषेणं गतं सिद्धिमिति, स्थानान्तरे किञ्चिदन्यथाप्यानुपूर्वी नाम्नामुपलभ्यते ॥ ७० ॥ महापद्मादयो विजयान्ताश्चतुर्विंशतिः ॥ ७५ ॥ एवमिदं सर्वं सुगमं ग्रंथसमाप्तिं यावत्, नवरं 'आयाए'त्ति बलदेवादेरायातं देवलोकादेश्च्युतस्य मनु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६-१५९] गाथा: १-९३

प्रत अनुक्रम [२५४--३८३]

श्रीसमवायांगे श्रीअभय० वृत्तिः ॥१५९॥

ष्येषूत्पादः सिद्धिश्च यथा रामस्येति, एवं 'दोसुवि'त्ति भरतैरावतयोरागमिष्यन्तो वासुदेवादयो भणितव्याः। इत्येवमने-
कधार्थानुपदर्श्याधिकृतग्रन्थस्य यथार्थान्यभिधानानि दर्शयितुमाह—इत्येतदधिकृतशास्त्रमेवमनेनाभिधानप्रकारेणाऽऽ-
ख्यायते–अभिधीयते, तद्यथा—कुलकरवंशस्य–तत्प्रवाहस्य प्रतिपादकत्वात् कुलकरवंश इति च, इतिरुपदर्शने चशब्दः
समुच्चये, एवं तित्थगरवंसेइ यत्ति यथा देशेन कुलकरवंशप्रतिपादकत्वात् कुलकरवंश इत्येतदाख्यायते एवं देशतस्ती-
र्थकरवंशप्रतिपादकत्वात् तीर्थकरवंश इति च आख्यायते एतदिति, एवं चक्रवर्त्तिवंश इति च तत्प्रतिपादकत्वात्
दशारवंश इति च गणधरवंश इति च गणधरव्यतिरिक्ताः शेषा जिनशिष्या ऋषयस्तद्वंशप्रतिपादकत्वादृषिवंश इति च
तत्प्रतिपादनं चात्र पर्युषणाकल्पस्य ऋषिवंशपर्यवसानस्य समवसरणप्रक्रमेण भणितत्वादत एव यतिवंशो मुनिवंशश्चैत-
दुच्यते, यतिमुनिशब्दयोः ऋषिपर्यायत्वात्, तथा श्रुतमिति चैतदाख्यायते, परोक्षतया त्रैकालिकार्थावबोधनसह-
त्वादस्य, तथा 'श्रुताङ्गमिति वा' श्रुतस्य–प्रवचनस्य पुरुषरूपस्याङ्गं–अवयव इतिकृत्वा, तथा 'श्रुतसमास इति वा' सम-
स्तसूत्रार्थानामिह संक्षेपेणाभिधानात् 'श्रुतस्कन्ध इति वा' श्रुतसमुदायरूपत्वादस्य 'समाए व'त्ति समवाय इति वा,
समस्तानां जीवानां–जीवादिपदार्थानामभिधेयतयेह समवायनात् मीलनादित्यर्थः, तथा एकादिसंख्याप्रधानतया
पदार्थप्रतिपादनपरत्वादस्य संख्येति व्याख्यायते, तथा समस्तं–परिपूर्णं तदेतदङ्गमाख्यातं भगवता, नेह श्रुतस्कन्ध-
द्वयादिखण्डनेनाचारादिवदङ्गतेति भावः, तथा 'अज्झयणंति'त्ति समस्तमेतदध्ययनमित्याख्यातं नेहोद्देशकादिखण्ड-

निगमनं.

॥१५९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत सूत्रांक [१५६-१५९] गाथाः १-९३

प्रत अनुक्रम [२५४--३८३]

नाऽस्ति शस्त्रपरिज्ञादिष्विवेति भावः, इतिशब्दः समाप्तौ 'ब्रवीमी'ति किल सुधर्म्मस्वामी जम्बूस्वामिनं प्रत्याह स्म, ब्रवीमि–प्रतिपादयामि, एतत् श्रीमन्महावीरवर्द्धमानस्वामिनः समीपे यदवधारितमित्यनेन गुरुपारम्पर्यमर्थस्य प्रतिपादितं भवति, एवं च शिष्यस्य ग्रन्थे गौरवबुद्धिरुपजनिता भवति, आत्मनश्च गुरुषु बहुमानो दर्शित औद्धत्यं च परिहृतं, अयमेवार्थः शिष्यस्य सम्पादितो भवति मुमुक्षूणां चायं मार्ग इत्यावेदितमिति समवायाख्यं चतुर्थमङ्गं वृत्तितः समाप्तम् ॥

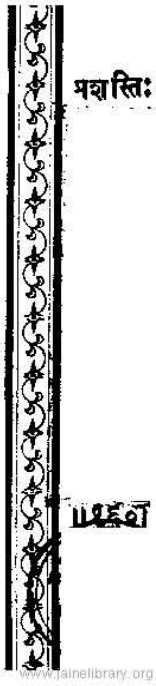
नमः श्रीवीराय प्रवरवरपार्श्वाय च नमो, नमः श्री वाग्देव्यै वरकविसभाया अपि नमः ॥
नमः श्रीसङ्घाय स्फुटगुणगुरुभ्योऽपि च नमो, नमः सर्वस्मै च प्रकृतविधिसाहाय्यककृते ॥ १ ॥
यस्य ग्रन्थवरस्य वाक्यजलधेर्लेक्षं सहस्राणि च, चत्वारिंशदहो चतुर्भिरधिका मानं पदानामभूत् ॥
तस्योच्चैश्चुलकाकृतिं निदधतः कालादिदोषात्तथा, दुर्लेखात् खिलतां गतस्य कुधियः कुर्वन्तु किं मादृशाः? ॥२
स्वं कष्टेऽतिनिधाय कष्टमधिकं मा मेऽन्यदा जायतां, व्याख्यानेऽस्य तथा विवेक्तुमनसामल्पश्रुतानामसुम् ॥
इत्यालोचयता तथापि किमपि प्रोक्तं मया तत्र च, दुर्व्याख्यानविशोधनं विदधतु प्राज्ञाः परार्थोद्यताः ॥ ३ ॥
इह वचसि विरोधो नास्ति सर्वज्ञवाक्यात्, क्वचन तदवभासो यः स मान्द्यान्मृबुद्धेः ।
वरगुरुविरहाद्वाऽतीतकाले मुनीशैर्गणधरवचनानां श्रुतसङ्घातनाद्वा ॥ ४ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org



व्याख्यानं यद्यपीदं प्रवरकविवचःपारतंत्र्येण दृष्टं(ब्धं)सम्भाव्योऽस्खिलस्तथापि क्वचिदपि मनसो मोहतोऽर्थादिभेदः ।
किन्तु श्रीसङ्घबुद्धेरनुशरणविधेर्भावशुद्धेश्च दोषो, मा मेऽभूदल्पकोऽपि प्रशमपरमना अस्तु देवी श्रुतस्य ॥ ५ ॥
निःसम्बन्धविहारहारिचरितान् श्री वर्द्धमानाभिधान्, सूरीन् ध्यातवतोऽतितीव्रतपसो ग्रन्थप्रणीतिप्रभोः ॥
श्रीमत्सूरिजिनेश्वरस्य जयिनो दर्प्पीयसां वाग्मिनां, तद्बन्धोरपि बुद्धिसागर इति ख्यातस्य सूरेर्भुवि ॥ ६ ॥
शिष्येणाभयदेवाख्यसूरिणा विवृतिः कृता ॥ श्रीमतः समवायाख्यतुर्याङ्गस्य समासतः ॥ ७ ॥
एकादशसु शतेष्वथ विंशत्यधिकेषु विक्रमसमानाम् । अणहिलपाटकनगरे रचिता समवायटीकेयम् ॥ ८ ॥
प्रत्यक्षरं निरूप्यास्याः, ग्रन्थमानं विनिश्चितम् । त्रीणि श्लोकसहस्राणि, पादन्यूना च षट्शती ॥ ९ ॥
सूत्रसंख्या श्लोक १६६७ वृत्तिः ३५७५ उभयोर्मीलनेन ५२४२ ॥

इति चन्द्रकुलाम्बरनभोमणिश्रीमदभयदेवाचार्यदग्धा समवायाङ्गसूत्रवृत्तिः समाप्ता ॥



अत्र प्रकिर्णक: समवाय: परिसमाप्त:

Jain Education International
www.jainelibrary.org

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
01	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १,२		३१४
02	आगम ०१ आचार मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- ३ से ९, श्रुतस्कन्ध- २		५८६
03	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन- १ से १३		४९८
04	आगम ०२ सूत्रकृत मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ श्रुतस्कन्ध-१, अध्ययन १४ से १६, श्रुतस्कन्ध-२		३९२
05	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ स्थान- १ से ४		५९४
06	आगम ०३ स्थान मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ स्थान- ५ से १० संपूर्ण		४९४
07	आगम ०४ समवाय मूलं एवं वृत्ति.		३३८
08	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-१ शतक- १ से ६		५९२
09	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-२ शतक- ७ से ११		५५२
10	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ शतक- १२ से २०		५१४
11	आगम ०५ भगवती मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ शतक- २१ से ४१ संपूर्ण		३८४
12	आगम ०६ ज्ञाताधर्मकथा मूलं एवं वृत्ति.		५२२
13	आगम-७,८,९,१०उपासकदशा, अंतकृतदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण मूलं एवं वृत्ति.		५३८
14	आगम-११,१२, विपाक, उववाई मूलं एवं वृत्ति.		३८४
15	आगम १३ राजप्रश्नीय मूलं एवं वृत्ति.		३१४
16	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १ से १३८		४८०
17	आगम१४ जीवाजीवाभिगम भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. [प्रतिपत्ति-३-अतर्गत] सूत्र- १३९ से प्रतिपत्ती-१० संपूर्ण		४८८
18	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. पद- १ से ५		४२६
19	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. पद- ६ से २२		५१४
20	आगम १५ प्रज्ञापना भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. पद- २३ से ३६ संपूर्ण		३३६
21	आगम १६ सूर्यप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१०

	सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि भाग १ से ४० में कहां क्या मिलेगा?		
भाग	इस भागमे समाविष्ट आगम के नाम और आगम-क्रम		कुलपृष्ठ
22	आगम १७ चन्द्रप्रज्ञप्ति मूलं एवं वृत्ति.		६१४
23	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-१ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- १ एवं २.		३७६
24	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-२ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ३ एवं ४.		४२६
25	आगम१८ जंबूद्विपप्रज्ञप्ति भाग-३ मूलं एवं वृत्ति. वक्षस्कार- ५ से ७.		३४४
26	आगम १९ थी ३२ निरयावलिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा, चतु:शरण, आतुरपरत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, तंदुलवैचारिक, संस्तारक, गच्छाचार, गणिविद्या, देवेन्द्रस्तव मूलं एवं छाया		३१२
27	आगम ३३ थी ३९ मरणसमाधि मूलं एवं छाया, निशीथ, ब्रुहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, जीतकल्प/पंचकल्प, महानिशीथ मूलं एव		३३०
28	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, निर्युक्ति- १ से ५२१		४६६
29	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, निर्युक्ति- ५२२ से ९५१		४४२
30	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-३ निर्युक्ति- ९५२ से १२७३ अपूर्ण, [अध्ययन- १ से ४ अपूर्ण]		४६४
31	आगम ४० आवश्यक मूलं एवं वृत्ति, भाग-४ निर्युक्ति- १२७३ अपूर्ण से १६२३, [अध्ययन- ४ अपूर्ण से ६ संपूर्ण]		४२६
32	आगम ४१/१ ओघनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		४७२
33	आगम ४१/२ पिंडनिर्युक्ति मूलं एवं वृत्ति.		३७६
34	आगम ४२ दशवैकालिक मूलं एवं वृत्ति.		५९०
35	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-१, अध्ययन- १ से ५		५२२
36	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-२, अध्ययन- ६ से २१		४८२
37	आगम ४३ उत्तराध्यन मूलं एवं वृत्ति, भाग-३, अध्ययन- २२ से ३६		४६६
38	आगम ४४ नन्दिसूत्र मूलं एवं वृत्ति.		५२८
39	आगम ४५ अनुयोगद्वार् मूलं एवं वृत्ति.		५६०
40	कल्प(बारसा)सूत्र... चतु:शरण, तन्दुलवैचारिक, गच्छाचार मूलं एवं वृत्ति.		३९४

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

पूज्य आनंद-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर गुरूभ्यो नम:

भाग- 7

पूज्य आगमोध्धारक आचार्य श्री सागरानंदसूरीश्वरेण संशोधित: संपादितश्च

"समवायाङ्गसूत्र" [मूलं एवं अभयदेवसूरि-रचित वृत्ति:]

(किंचित् वैशिष्ठ्यं समर्पितेन सह)

मुनि दीपरत्नसागरेण पुन: संकलित:

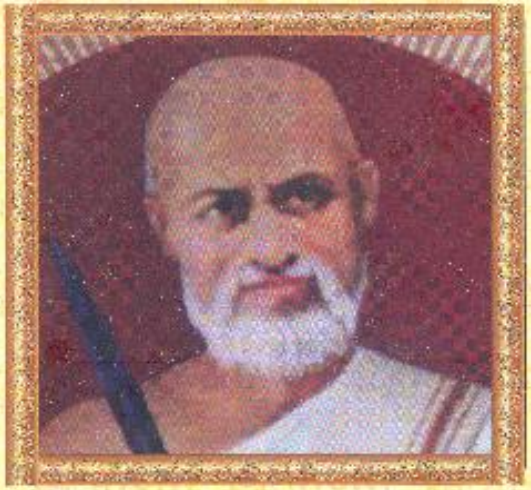
"समवाय" मूलं एवं वृत्ति:" नामेण **परिसमाप्त:**


आगम
वाचना शताब्दी वर्ष

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

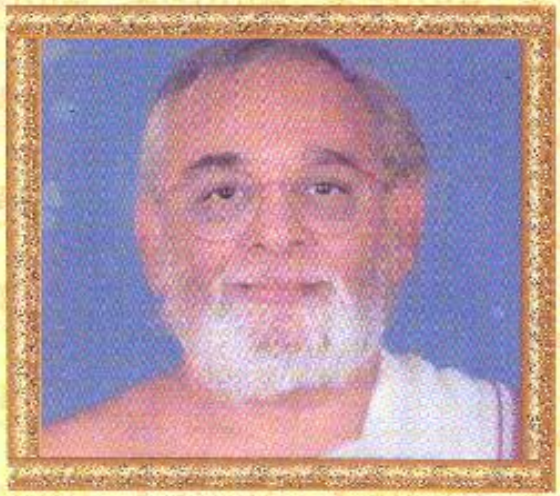
सवृत्तिक-आगम-सुत्ताणि

मूल संशोधक



पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य
श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराज

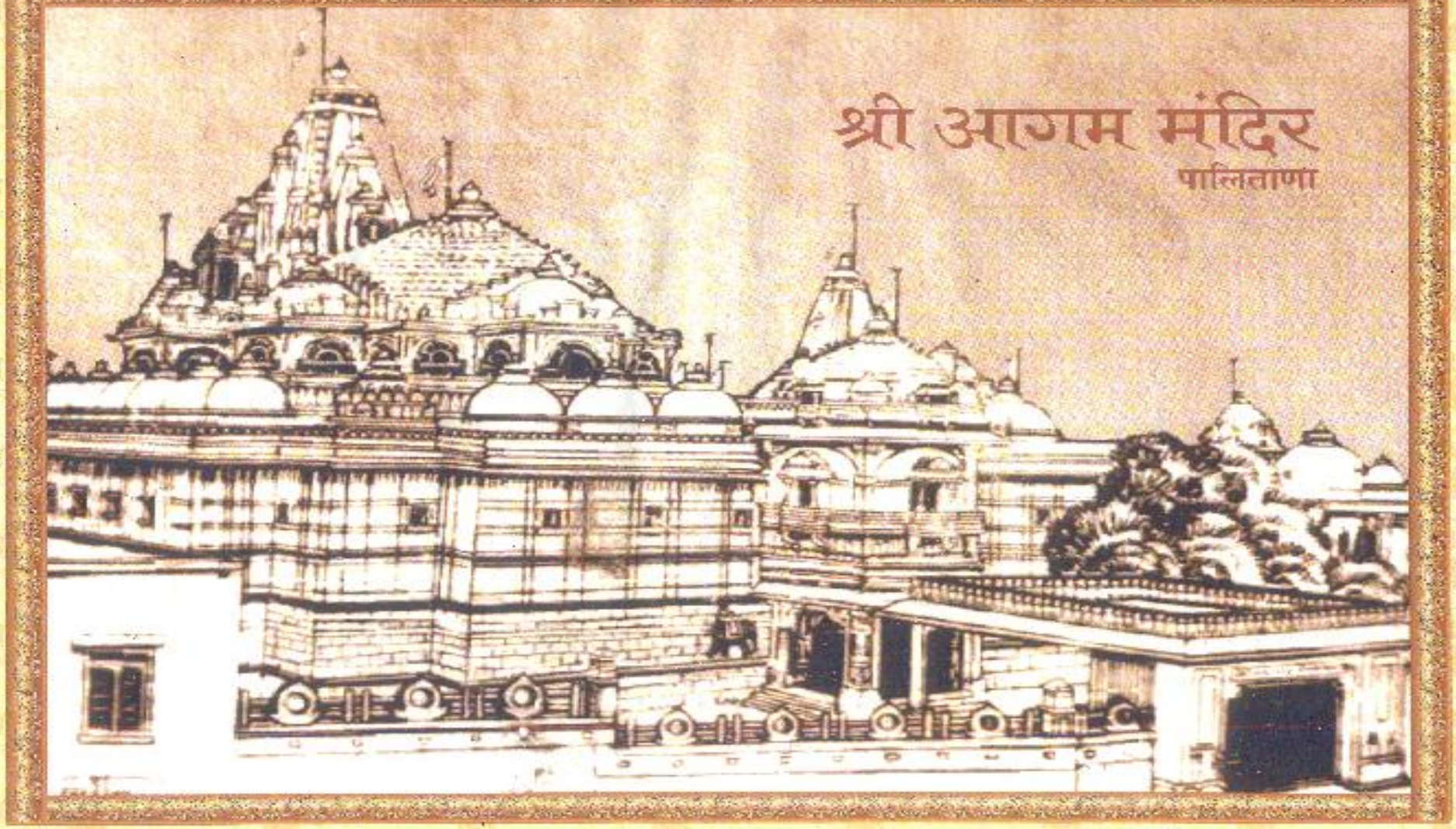
अभिनव-संकलनकर्ता

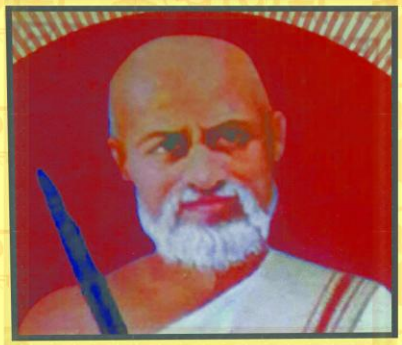


आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी
[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

प्रत-प्राप्ति और पेज-सेटिंग कर्ता : www.jainelibrary.org के चेरमन श्री प्रवीणभाई शाह, अमेरिका
मुद्रक : नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस अमदाबाद Mo 9825598855 / 9825306275

ईस प्रोजेक्ट के संपूर्ण-अनुदान-दाता





मूल संशोधक

पूज्यपाद आगमोद्धारक आचार्य

श्री आनंदसागरसूरीश्वरजी महाराजसाहेब

आगम - ०४

'समवाय' मूलं एवं वृत्तिः

अभिनव-संकलनकर्ता

आगम दिवाकर मुनिश्री दीपरत्नसागरजी

[M.Com., M.Ed., Ph.D., श्रुतमहर्षि]

